भारतेन्दु ग्रन्थावली

पहला खंड

गोलोकवासी भारत-भूषण भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्रजी
के समग्र नाटकों का संग्रह



संकलनकर्ता तथा संपादक
ब्रजरत्नदास

काशी नागरी प्रचारिणी सभा

प्रकाशक
नागरी प्रचारिणी सभा,
काशी

प्रथम संस्करण, २००० प्रतियां
संवत् २००७ वि०
मूल्य

मुद्रक
बाल कृष्ण शास्त्री,
ज्योतिष प्रकाश प्रेस, बनारस

समर्पण

भारत-भूषण भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र

की

एकमात्र संतान

उनकी

पुत्री

श्रीमती विद्यावती देवी

को

उनके

प्रिय पुत्र

द्वारा

यह ग्रंथावली

सादर समर्पित

रेवती रमणदास
(ब्रजरत्नदास)



गोलोकवासी श्री भारतेंदु हरिश्चंद्र

विषय-सूची

नाटक

संख्या		नाम		पृष्ठ
१	...	विद्यासुंदर	...	१–४०
२.	...	रत्नावली	...	४१–४८
३.	...	पाखंड विडंबन	...	४९–६४
४.	...	वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति		६५–९५
५.	...	धनंजय विजय	...	९७–११७
६.	...	मुद्राराक्षस	...	११९–२४९
७.	...	सत्यहरिश्चंद्र	...	२५१–३१८
८.	...	प्रेमजोगिनी	...	३१९–३५४
९.	...	विषस्य विषमौषधम्	...	३५५–३६८
१०.	...	कर्पूरमंजरी	...	३६९–४०८
११.	...	चंद्रावली	...	४०९–४६६
१२.	...	भारतदुर्दशा	...	४६९–४९७
१३.	...	भारत जननी	...	४९९–५१४
१४.	...	नीलदेवी	...	५१५–५४६
१५.	...	दुर्लभ बंधु	...	५४७–६५३
१६.	...	अंधेर नगरी	...	६५५–६७५
१७.	...	सतीप्रताप	...	६७७–७०८

निबन्ध

१८.	...	नाटक	...	७०९–६०
	...	पात्रानुक्रमणिका	...	१–४
	...	प्रतीकानुक्रमणिका	...	११–२

निवेदन

समस्त हिंदी जनता के लिये यह आनंद तथा सौभाग्य की बात है कि नवीन हिंदी के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र की जन्मशती हम स्वतंत्र भारत में मना रहे हैं। आज से पचासों वर्ष पहले जिस स्वाधीनता की कल्पना उन्होंने अपने नाटकों में की थी वह साकार हुई। इस कारण आज भारतेंदु की स्मृति की पुनर्नवता में हमें विशेष प्रसन्नता होती है।

भारतेंदु की प्रतिभा विशेषतः नाटक में व्यक्त हुई है। इस लिये उनकी शतवर्षीय जयंती के अवसर पर नागरीप्रचारिणी सभा, काशी ने उनके नाटकों का संग्रह प्रकाशित किया है। नागरी-प्रचारिणी सभा उनकी प्रेरणा का परिणाम है और यह स्वाभाविक है कि सभा के कार्यकर्ता उस प्रेरणा से प्रभावित हों।

हम इस शुभ अवसर पर सभा की ओर से, समस्त हिंदीवालों की ओर से इस नाटकावली द्वारा भारतेंदु को श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

हम सृष्टि के सूत्रधार से प्रार्थना करते हैं कि भारत के रंग-मंच पर स्वाधीनता देवी का लास्य होता रहे, हिंदी भारती आनंद का गान करती रहे; यही भारतेंदु का संदेश है।

कृष्णदेवप्रसाद गौड़
प्रधान मंत्री

नम्र निवेदन

भारतेंदु श्री हरिश्चंद्र जी का जन्म भाद्रपद शुक्ल ५ ऋषिपंचमी सं० १९०७ (ता० ९ सितंबर सन् १९५० ई०) को काशी में हुआ था और उनका गोलोकवास भी यहीं माघ कृष्ण ६ सं० १९४१ (ता० ९ जनवरी सन् १८८५) को हुआ था। भारतेंदुजी की मृत्यु अर्द्धशती पर सर्वत्र हिंदी प्रेमियों ने उत्सव मनाया था और काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने उत्सव मनाने के साथ भारतेंदु का समग्र रचनाएँ चार भागों में प्रकाशित करने का निश्चय किया था। द्वितीय भाग में काव्यग्रंथ, तृतीय में नाटक और चतुर्थ में गद्य-रचनाएँ रहेंगी और प्रथम खंड में बची हुई रचनाएँ, उनकी जीवनी तथा आलोचना आदि रहेंगी। परंतु अनेक प्रकार की कठिनाइयों तथा बाधाओं के आ जाने के कारण अर्द्धशती के उत्सव पर केवल द्वितीय खंड ही प्रकाशित हो सका, जिसमें उनके सभी काव्य-ग्रंथ, स्फुट कविताएं तथा पद संगृहीत हो गए हैं। तृतीय खंड के लिए इनके समग्र नाटक संपादित होकर पड़े थे पर उस अवसर पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा विशेष कारणों से उसे प्रकाशित नहीं कर सकी थी। पंद्रह वर्ष के अनंतर दूसरा अवसर भारतेंदुजी की जन्म-शती जयंती मनाने का भाद्रपद शुक्ल ५ सं० २००७ को आगया है। दो वर्ष से अधिक हुए इस नाटक खंड के प्रकाशन में सभा ने हाथ लगा दिया और अब यह खंड इस रूप में प्रकाशित हो सका है।

भारतेंदुजी के नाटक के समय ही के प्रकाशित संस्करणों की प्रतियों की बहुत खोज करने पर भी वे सब नहीं प्राप्त हो सकीं। खड्ग-विलास प्रेस से बाद में छपी हरिश्चंद्रकला का नाटकखंड भी बहुत दिनों से अप्राप्य है पर तब भी इस प्रयास से उनके नाटकों में से कोई लभ्य या प्राप्य न हो सके। प्राचीन संस्करणों की आवश्यकता विशेष रूप से नाटकों का रचना-क्रम निश्चित करने के लिए ही थी और कुछ पाठ भी मिलान करने के लिए। सौभाग्य से कई नाटकों के पुराने संस्करण मेरे संग्रह में थे और हरिश्चंद्र मैगजीन, हरिश्चंद्र चंद्रिका, बालबोधिनी, कविवचन सुधा आदि की जो कुछ फाइलें मेरे पास थीं उन सबकी सहायता से इन नाटकों का रचनाक्रम निश्चित किया गया

और यथासाध्य पाठ भी ठीक किए गए। दो एक प्राचीन संस्करणों की प्रतियाँ संयोग से आप से आप मिल भी गईं जैसे एक मित्र के पास प्रेमयोगिनी का पहिला संस्करण कई अन्य छोटी छोटी पुस्तकों के साथ एक जिल्द में बँधा हुआ जराजीर्ण अवस्था में मिला, जिसे उन्होंने इस ग्रंथावली के द्वितीय खंड की एक प्रति के बदले में दे दिया। इसका नाम पहिले काशी के छाया चित्र या दो भले बुरे फोटोग्राफ था और उसमें केवल दो गर्भांक थे। बाद में कई गर्भांक बढ़ाकर इसका नाम प्रेमयोगिनी रखा गया।

इस संग्रह में भारतेंदुजी के सत्रह नाटक दिए गए हैं, जिनमें पाँच संस्कृत से, एक बँगला से तथा एक अंग्रेजी से अनुवादित हैं। अन्य दस मौलिक नाटक हैं। रत्नावली की भूमिका से उसके पूरे अनुवाद हो जाने की ध्वनि निकलती है पर इतना ही प्राप्त है। प्रवास नाटक के लिखे जाने की सूचना मिलती है पर उसका कुछ भी अंश प्राप्त नहीं है। भारतेंदुजी के गोस्वामी श्रीराधाचरणजी से लिखे एक पत्र से ज्ञात होता है कि वह श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की लीला को नाटक रूप में लिखना चाहते थे और उसके लिए उनसे कुछ साधन माँगा गया था। परंतु इसका भी कोई अंश प्राप्त नहीं है अतः यही समझ पड़ता है कि यह आरंभ ही नहीं किया गया था। इस प्रकार इनकी प्रायः सभी नाट्य रचनाएँ इस भाग में संगृहीत हो गई हैं। नाटक के संबंध में आलोचना आदि चतुर्थ खंड में दिया जायगा।

—संपादक

विद्यासुंदर

नाटक

द्वितीय आवृत्ति का उपक्रम

विद्यासुंदर की कथा बंग देश में अति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि चोर कवि जो संस्कृत में चौरपंचाशिका का कवि है यही सुंदर है। कोई इस चौरपंचाशिका को वररुचि की बनाई मानते हैं। जो कुछ हो, विद्यावती की आख्यायिका का मूल सूत्र वही चौरपंचाशिका है। प्रसिद्ध कवि भारतचंद्र राय ने इस उपाख्यान को बंगभाषा में काव्य स्वरूप में निर्माण किया है और उसकी कविता ऐसी उत्तम है कि बंग देश में आबाल वृद्ध वनिता सब उसको जानते हैं। महाराज यतींद्रमोहन ठाकुर ने उसी काव्य का अवलंबन करके जो विद्यासुंदर नाटक बनाया था उसी की छाया लेकर आज पंद्रह बरस हुए यह हिंदी भाषा में निर्मित हुआ है। विशुद्ध हिंदी भाषा के नाटकों के इतिहास में यह चौथा नाटक है। निवाज का शकुंतला या ब्रजवासीदास का प्रबोधचंद्रोदय नाटक नहीं काव्य हैं। इससे हिंदी भाषा में नाटकों की गणना की जाय तो महाराज रघुराजसिंह का आनंदरघुनंदन और मेरे पिता का नहुष नाटक यही दो प्राचीन ग्रंथ भाषा में वास्तविक नाटकाकार मिलते हैं, यों नाम को तो देवमायाप्रपंच, समय-सार इत्यादि कई भाषा ग्रंथों के पीछे नाटक शब्द लगा दिया है। इनके पीछे शकुंतला का अनुवाद राजा लक्ष्मणसिंह ने किया है। यदि पूर्वोक्त दोनों ग्रंथों को ब्रजभाषा-मिश्र होने के कारण हिंदी न मानो तो विद्यासुंदर नाटक गुणों में अद्वितीय न होने पर भी द्वितीय है। पश्चिमोत्तर देश की मान्य गवर्न्मेंट ने इसकी एक सौ पुस्तक लेकर इसका मान बढ़ाया है। पूर्व आवृत्ति का अत्यंताभाव ही इसकी पुनरावृत्ति का कारण है।

यह दूसरी आवृत्ति उसी को समर्पित है जिससे इस ग्रंथ से त्रिपथगा घनिष्ठ संबंध है। प्रथम विद्या मानो उसकी द्वितीया संतति-संपत्ति है, द्वितीय एक देशी कथा-भाग और तृतीय हमारा संबंध।

काशी, चैत्र १९३९। } हरिश्चन्द्र

को भी पावेगा। यद्यपि ईश्वर की इच्छा और होनहार अत्यंत प्रबल है तथापि हमको निश्चित हो के बैठ रहना उचित नहीं है। इस कहने का अभिप्राय यह है कि आप कांचीपुर में किसी को समाचार लेने के हेतु भेजिए।

राजा—ठीक है, तो अब विलंब क्यों करते हो? शीघ्र ही वहाँ किसी को भेजना चाहिए। (द्वार की ओर देखकर) कोई है? गंगा भाट को अभी बुला लाओ।

(प्रतिहारी आकर)

प्रतिहारी—जो आज्ञा महाराज। (जाता है)

राजा—(खेदपूर्वक) विद्यावती का यह केवल अदृष्ट है कि अब तक कहीं विवाह नहीं ठहरता। देखें क्या होता है?

मंत्री—महाराज, आज तक कोई कन्या कारी नहीं रही। सीता और द्रौपदी इत्यादि जिनके बड़े कठिन प्रण थे उनका तो विवाह हो ही गया। जब ईश्वर कन्या उत्पन्न करता है तो उसका वर भी उसी के साथ उत्पन्न कर देता है। अतएव आपको सोच करना न चाहिए।

(प्रतिहारी के सहित गंगा भाट का प्रवेश)

गंगा भाट—

वीरसिंह महराज को, दिन दिन ही जय होय।
तेज बुद्धि बल नित बढ़ै, शत्रु रहे नहिं कोय॥

राजा—कविराज, अब तक तुमने अनेक देशों में भ्रमण किया और अनेक राजपुत्रों को यहाँ ले आए, परंतु उनमें सुपात्र एक भी न आया। अब हम सुनते है कि कांचीपुर के राजा गुणसिंधु के पुत्र सुंदर ने अनेक विद्या उपार्जन की है, इससे हम सोचते हैं कि वही हमारी विद्या के योग्य भी होगा, इससे तुम वहाँ शीघ्र गमन करो और राजपुत्र को अपने संग ही लेते आओ तो अति उत्तम हो जिसमें विलंब न हो, क्योंकि राजकन्या विवाह-योग्य हो चुकी है।

भाट—महाराज, यह कौन बड़ी बात है, मैं अभी जाता हूँ।

[जाता है

राजा—(मंत्री से) गुणसिंधु राजा को एक पत्र भी देना उचित है। तुमें यह सब वृत्तांत इस रीति से लिख दो कि जिसमें हमारा सब कार्य सिद्ध हो जाय और गंगा भाट की यात्रा की सब वस्तु शीघ्र ही सिद्ध कर दो जिसमें उसे विलंब न हो। अब बेला ढल चली, हम भी रनवास को जाते हैं।

मंत्री—जो आज्ञा।

(जवनिका गिरती है)

दूसरा गर्भांक

स्थान—वर्द्धमान नगर का* एक उद्यान

(सुंदर आता है)

सुंदर—(स्वगत) वर्द्धमान की शोभा का वर्णन मैंने जैसा सुना था उससे कहीं बढ़कर पाया। आहा! कैसे सुंदर-सुंदर घर बने हैं, कैसी चौड़ी-चौड़ी सुंदर स्वच्छ सड़कें हैं, वाणिज्य की कैसी वृद्धि हो रही है, दुकानें अनेक स्थान की अनेक प्रकार की सब वस्तुओं से पूर्ण हो रही हैं, सब लोग अपने-अपने काम में लगे है और बहुतेरे लोग नदी के प्रवाह की भाँति इधर-उधर दौड़ रहे हैं, स्थान-स्थान पर पहरेदार लोग सावधानी से पहरे दे रहे हैं, प्रजा लोग सुख से अपना कालक्षेप करते हैं। निश्चय यहाँ का राजा बड़ा भाग्यमान है। यद्यपि हमारे पिता की राजधानी भी अत्यंत अपूर्व है परन्तु इस स्थान सा तो मुझे पृथ्वी में कोई स्थान ही नहीं दिखाई देता। इसका वर्द्धमान नाम बहुत ठीक है, क्योंकि इसमें रूप और धन दोनों की वृद्धि है। (हँसकर) परंतु हमारा अभिलाष भी वर्द्धमान हो तो हम जानें। (चारों ओर देखकर) वाह! यह उद्यान भी कैसा मनोहर है, इसके सब वृक्ष कैसे फले-फूले हैं और यह सरोवर कैसे निर्मल जल से भरा हुआ है, मानो सब वृक्षों ने अपने अनेक रंग के फूलों की शोभा देखने को इस उद्यान के बीच में एक सुंदर आरसी लगा

---

* द्वितीय आवृत्ति (सन् १८८३ ई०) में नहीं हैं।

दी है। पक्षी भी कैसे सुंदर स्वर से बोल रहे हैं, मानो पुकारते हैं कि इससे सुंदर संसार में और कोई उद्यान नहीं है। आहा! कैसा मनोहर स्थान है! हम इस बकुल के कुंज में थोड़ा विश्राम करेंगे। (बैठता है) अहा! शरीर कैसा शीतल हो गया। निश्चय यह पौन (साँस लेकर) हमारी प्राणप्यारी त्रिभुवनमोहिनी विद्या का अंग स्पर्श करके आता है, नहीं तो ऐसी मधुर सुगंध इसमें न होती। (कुछ सोचकर) यह तो सब ठीक है, परंतु जिस काम के हेतु मैं यहाँ आया हूँ उसका तो कुछ सोच ही नहीं किया! यहाँ मैं किसी को जानता भी नहीं कि उससे कुछ उपाय पूछूँ, क्योंकि मैं तो यहाँ छिपके आया हूँ। (चिंता-नाट्य करता है)

(एक चौकीदार आता है)

चौकीदार—(स्वगत) ई के हौ भाई? कोई परदेसी जान पड़ाला, हमहन के कुछ घूस-फूस देई की नाहीं, भला देखीं तो सही। (प्रकाश) कौन है?

सुंदर—हम एक परदेशी हैं।

चौ०—सो क्या हमें नहीं सूझता, पर कहाँ रहते हौ?

सुं०—हमारा घर दक्षिण है।

चौ०—दक्षिण तो जमराज के घर तक सभी है। तुम किस दक्षिण में रहते हो?

सुं०—सो नहीं, हमारा घर इतनी दूर नहीं है।

चौ०—तो फिर कहते क्यों नहीं कि तुम्हारा घर कहाँ है?

सुं०—कांचीपुर।

चौ०—काशी कांची जो सुनते हैं सोई कांची?

सुं०—काशी दूसरा नगर है, कांची दूसरा, काशी कांची एक हो कैसी?

चौ०—तो फिर यहाँ क्यों आए हो?

सुं०—यहाँ विद्याप्राप्ति के अर्थ आए हैं।

चौ०—कौन विद्या?

सुं०—जो विद्या सब में प्रधान है।

चौ०—सब में प्रधान विद्या ? सब में प्रधान विद्या तो चोरी है।

सुं०— (मुसक्याकर) तुम्हारे यहाँ यही विद्या प्रधान होगी।

चौ०—(सोंटा उठाकर पैंतरे से चलता हुआ) हाँ रे यही तो हमारा काम है कि जो इस विद्या के पंडित हों उन्हें हम वैसा पुरस्कार दें।

सुं०—क्या पुरस्कार देता है ?

चौ०—इस विद्या के पुरस्कार के हेतु एक यंत्र बना है जिसका नाम काठ तुड़ुम, हर और चोरशत्रु है।

सुं०—कैसा है ?

चौ०—दो बड़े-बड़े काठ एकत्र करके चोर भाई का पाँव उसके भीतर डाल देते हैं। (सुन्दर का दाहिना पैर बल से खींचकर अपने दोनों जाँघ में रखकर दबाता है।) अब जब तक हमारी पूजा न दोगे तब तक न छूटोगे।

सुं०—(चौकीदार को बल-पूर्वक लात मारता है और चौकीदार पृथ्वी पर गिरता है) लो तुम्हारी यही पूजा है।

चौ०—(उठकर) हाँ-हाँ बचा, अभी तुमको दूसरा पुरस्कार नहीं दिया। चार-पाँच कोड़े तुम्हारी पीठ पर लगें तब जानो।

सुं०—बस अब बहुत भई, मुँह सम्हाल के बोलो, नहीं तो एक मुक्का ऐसा मारूँगा कि पृथ्वी पर लोटने लगोगे और दक्षिण दिशा में यमराज के घर की ओर गमन करोगे। जिसके हेतु तुम इतना उपद्रव करते हो सो मैं जानता हूँ, परन्तु धमकी दिखाने से तो मैं एक कौड़ी भी न दूँगा और तुमको भी परदेशियों से झगड़ा करना उचित नहीं है। (कुछ देता है) इसे लो और अपने घर चल दो।

चौ०—(आनंद से लेकर) नहीं-नहीं, हमने आपको जाना नहीं, निस्संदेह आप बड़े योग्य पुरुष हैं, हम आशीर्वाद देते हैं कि आप अनेक विद्या लाभ करें, राजकुमारी विद्या भी आपको मिले।

[हँसता हुआ जाता है

सुं०—आज बहुत बचे, नहीं तो यह दुष्ट बहुत कुछ दुख देता। जिस काम को चलो उसमें पहले अनेक प्रकार के विघ्न होते हैं। देखें अब क्या होता है। (पेड़ के नीचे बैठ जाता है)

(हीरा मालिन आती है)

ही० मा०—(आश्चर्य से) अरे, यह कौन है? हाय-हाय, ऐसा सुंदर रूप तो न कभी आँखों देखा, न कानों सुना, इसकी दोनों हाथ से बलैया लेने को जी चाहता है। लोग सच कहते हैं कि चंद्रमा को सिंगार न चाहिए। हमको तो जान पड़ता है कि चंद्रमा ही पृथ्वी पर उतर के बैठा है। क्या कामदेव इस रूप की बराबरी कर सकता है? ऐसी कौन स्त्री है जो इसको देख के धीरज धरेगी। हम सोचते हैं कि यह कोई परदेशी है, क्योंकि इस नगर में ऐसा कोई नहीं है जिसको हीरा मालिन न जानती हो। हाय-हाय इसके मा-बाप का कलेजा पत्थर का है कि ऐसे सुकुमार सुंदर पुरुष को घर से निकलने दिया। निश्चय इसको स्त्री नहीं है, नहीं तो ऐसे पति को कभी न छोड़ती। जो कुछ हो, एक बेर इससे पूछना तो अवश्य चाहिए। (पास जाकर, हँसती हुई) क्यों जी तुम कौन हो? हमको तो कोई परदेशी जान पड़ते हो।

सुं०—(स्वगत) अब यह कौन आई? (प्रकाश) हमारा घर दक्षिण है और विद्या को खोजते-खोजते यहाँ तक आए हैं।

ही० मा०—उतरे कहाँ हो?

सुं०—अभी कहाँ उतरे हैं, क्योंकि हम इस नगर में किसी को नहीं जानते। इसी हेतु अब तक उतरने का निश्चय नहीं किया और इसी वृक्ष की ठंढी छाया में विश्राम करते हैं और सोचते हैं कि अब कौन उपाय करें। तुम कौन हो?

ही० मा०—हम राजा के यहाँ की मालिन हैं, हमारा नाम हीरा है, हमारा घर यहाँ से बहुत पास है। भैया, हमारा दुख कुछ मत पूछो। (पास बैठ जाती है) हमारे दोनों कुल में कोई नहीं है, यमराज सबको तो ले गए पर न जानें हमको क्यों भूल गए। (लम्बी साँस लेती है) पर रानी और

राजकुमारी हम पर बड़ी दया रखती हैं और उन्हीं के पास जाकर हम अपना जी बहलाती हैं। अभी तो आपने अपने रहने का निश्चय कहीं नहीं किया है। (रुककर) हमें कहने में लाज लगती है, क्योंकि हमारे यहाँ बड़ी-बड़ी अटारी तो हैं नहीं, केवल एक झोपड़ी है, जो आप दुःखिनी जानकर हमसे बचना न चाहिए, तो चलिए, हम सेवा में सब भाँति लगी रहेंगी।

सुं०—(स्वगत) तो इसमें हमारी क्या हानि? जो रहने का ठिकाना होगा तो काम का भी ठिकाना हो रहेगा, क्योंकि यह रात-दिन रनिवास में आती-जाती है इससे वहाँ के सब समाचार मिलते रहेंगे और ऐसे कामों में जहाँ अच्छा बिचवई मिला तहाँ उसके सिद्ध होने में विलंब नहीं होता। (प्रकाश) अब इससे बढ़कर हमारा क्या उपकार होगा कि इस परदेश में हमको आपसे आप रहने को घर मिले। तुमने हम पर बड़ी कृपा की, आज से तुम हमारी मौसी और हम तुम्हारे भांजे हुए।

हीं० मा०—यह हमारे भाग्य की बात है कि आप ऐसे कहते हो और यों तो आप हमारे बाप के भी अन्नदाता हो। दया करके जो चाहो पुकारो, तो हम आज से तुमको बेटा कहेंगे। (स्वगत) हाय-हाय! इसका मुँह कैसा सूख गया है। (प्रकाश) तो अब बेटा अपने घर चलो, हमारा जो कुछ है सो सब तुम्हारा है।

सुं०—हाँ चलो।

(जवनिका गिरती है)

तीसरा गर्भांक

स्थान—हीरा मालिन का घर

(सुंदर और हीरा मालिन आती हैं)

सुं०—रनिवास का समाचार मैंने सब सुना। तो मौसी, राजा को क्या केवल एक ही कन्या है।

ही० मा०—हाँ बेटा, केवल एक ही कन्या है, पर वह कुछ सामान्य कन्या नहीं है, मानो कोई देवता की कन्या श्राप से पृथ्वी पर जनमी है, और राजा-रानी दोनों उसको वैसा ही प्यार भी करते हैं। घर में सबसे विशेष उनको वही प्यारी है, यहाँ तक कि उसको प्राण से भी अधिक समझते हैं।

सु०—भला मौसी, वह राजकन्या कैसी है ?

ही० मा०—बेटा, उसकी कथा कोई एक मुँह से नहीं कह सकता। (गाती है)

(राग सोरठ तिताला)

कहो यह कैसे बरनैं रूप ?

नख-सिख सों सबही विधि सुंदर सोभा अतिहि अनूप ॥ १ ॥

नैन धरे को कौन सुफल जो नैन न देख्यौ याहि।
कोटि चंद हू लाज करत हैं तनिक विलोकत जाहि ॥ २ ॥

घुँघरारे सटकारे कारे बिथुरे सुथरे केस।
एड़ी लौं लाँबे अति सोभित नव जलधर के भेस ॥ ३ ॥

लचकीली कटि अतिहि पातरी चालत झोका खाय।
अति सुकुमार सकल अँग वाके कवि सो नहिं कहि जाय ॥ ४ ॥

दिन दिन जोबन बढ़त उमग अति पूरि रहे सब गात।
लाज भरी चितवन चित चोरति जब मुसुकाइ जँभात ॥ ५ ॥

तरुनाई अँगराई अँग अँग नैन रहत ललचाय।
मनु जग-जुवजन जीतन एकहि विधिना रची बनाय ॥ ६ ॥

बेटा, हम उसका क्या वर्णन करैं, क्योंकि वह शोभा देखते ही बन आती है, कुछ कही नहीं जाती। उसकी प्रतिज्ञा तो तुमने सुनी ही होगी, अब अधिक क्या कहैं ?

सु०—हाँ मौसी, यह सब बात तो हम जानते हैं, पर हम चाहते हैं कि एक बेर राजसभा में जाकर विद्या के विद्या की परीक्षा करैं। जो जीत गए तो सब काम सिद्ध भया और जो हार गए तो कुछ लाज नहीं, क्योंकि हमैं इस नगर में कोई पहिचानता नहीं। भला एक दिन मौसी हमारे हाथ की गूँथी माला तू वहाँ ले जा सकती है ?

हीं० मा०—(हँसकर) वाह बेटा, तुम क्या माला बनाने भी जानते हो ? तुम लोगों का तो यह काम नहीं है। क्या माला गूँथ कर राजकन्या के गले के हार हुआ चाहते हो ?

सुं०—नहीं मौसी, हम केवल एक प्रकार की माला गूँथना जानते हैं, जिसे तुम देख लेना, जो अच्छी बने तो राजकन्या के पास ले जाना।

हीं० मा०—(हँसकर) अच्छा, कल तुम माला गूँथना, देखें कैसी बनती है। अब रात बहुत गई, उठो और कुछ भोजन करके सो रहो।

(जवनिका गिरती है)

चौथा गर्भांक

स्थान—विद्याका मंदिर

(विद्या बैठी हुई है, डाली हाथ में लिए हीरा मालिन आती है)

हीं० मा०—(हँसकर) राजकुमारी कहाँ है ? (सामने देखकर) अहा यहाँ बैठी है। आज मुझको इस माला के गूँथने में बड़ी देर लगी, इससे मैं दौड़ी आती हूँ। यह माला लीजिए और आज का अपराध क्षमा कीजिए।

वि०—चल बहुत बातें न बना। जो रात भर चैन करेगी तो सबेरे जलदी कैसे आ सकेगी, तेरा शरीर बूढ़ा हो गया है पर चित्त अभी बारही बरस का है। इतना दिन आया अब तक मैंने पूजा नहीं किया, पर तुझे क्या ? तू तो अपने रंग में रँग रही है। मेरी पूजा हो या न हो।

हीं० मा०—वाह वाह ! बाल पके, दाँत टूटे, पर अभी हम बारही बरस की बनी हैं। आप धन्य हैं, हमने तो आज बड़े परिश्रम से माला गूँथी कि राजकुमारी इसको देख कर अत्यंत प्रसन्न होंगी, उसके बदले आपने हमको गाली दिया, सच है अभागे को कहीं भी सुख नहीं है। अब हमने अपना कान पकड़ा।

अब की बार क्षमा कीजिए, ऐसा अपराध फिर कभी-न होगा। यह माला लीजिए।

वि०—(माला हाथ में लेती है) तभी ! आज तो माला बड़ी सुंदर है। (पत्ते की पुड़िया में फूल के धनुषबाण देखकर) क्यों रे, इसमें यह फूल के धनुषबाण कहाँ से आये, क्या तू हम से ठठोली करती है ? सच बतला यह माला किसने बनाई है ?

ही० मा०—मेरे बिना कौन बनावेगा ?

वि०—नहीं नहीं, तू तो नित्य ही बनाती थी, पर ऐसी माला तो किसी दिन नहीं बनी, आज निश्चय किसी दूसरे ने बनाई है।

ही० मा०—मैं तो एक बेर कह चुकी कि हमारे घर में दस बीस देवर जेठ तो बैठे नहीं हैं कि बना देंगे। (आकाश देखकर) अब साँझ होती है, हमको आज्ञा दो।

वि०—वाह वाह ! आज तो आप मारे अभिमान के फूली जाती हैं, ऐसा घर पर कौन बैठा है जिसके हेतु इतनी घबड़ाती है। बैठ, तुझे मेरी सौगन्द है। बता यह माला किसने बनाई है ? (मालिन का अँचरा पकड़ के खींचती है)

ही० मा०—नहीं भाई नहीं, मैं कुछ न कहूँगी। जड़ काट के पल्लव सींचने से क्या होगा, बैठे बैठाये दुःख कौन मोल ले, क्योंकि प्रीत करनी तो सहज है, पर निबाहना कठिन है, इस हेतु इससे दूर ही रहना उचित है।

वि०—वाह वाह ! तू बड़ा हठ करती है, एक छोटी सी बात मैंने पूछी सो नहीं बताती। क्या मुझसे भी छिपाने की कोई बात है, जो नहीं बतलाती ?

ही० मा०—मैं तो तुम्हारे लिए प्राण देती हूँ और भगवान से नित मनाती हूँ कि हमारी राजकुमारी को सुंदर वर मिलै, जिसे देख देख के मैं अपनी आँख ठंढी करूँ और आप उसके बदले मुझ पर क्रोध करती हो। इसी के जतन में तो मैं रात-दिन लगी रहती हूँ।

वि०—तो खुलकर क्यों नहीं कहती ? आधी बात कहती है आधी नहीं कहती, व्यर्थ देर करती है।

ही० मा०—सुनिए दक्षिण देश के कांचीपुर के गुणसिंधु राजा का नाम आपने सुना ही होगा, उसका पुत्र सुंदर जिसे ले आने के हेतु राजा ने गंगाभाट को भेजा था, यहाँ आप से आप आया है।

वि०—(घबड़ाकर) कहाँ कहाँ ? (फिर कुछ लज्जित होकर) नहीं, क्या वह सचमुच यहाँ आया है ?

ही० मा०—(हँस कर) मैं उसको बड़े यत्न से लाई हूँ, क्योंकि मैं सर्वदा खोजा करती थी, कि मेरी बेटी को दूल्हा चाँद का टुकड़ा मिले तो मैं सुखी होऊँ, सो मैंने कहीं से खोजकर उसे अपने घर में रक्खा है, पर यहाँ तो वही दशा है "जाके हित चोरी करो सोई बनावै चोर"।

वि०—तो फिर वे छिप के क्यों आए हैं ?

ही० मा०—आपकी प्रतिज्ञा तो संसार में सब पर विदित ही है, सो प्रत्यक्ष वाद करने में जो कोई हारे तो प्रेम भंग होय और परस्पर संकोच लगे इस हेतु छिप के आए हैं।

वि०—उनका रूप कैसा है ?

ही० मा०—उनका रूप वर्णन के बाहर है। (गाती है)

(राग—बिहाग)

कहै को चन्द वदन की शोभा ?
जाको देखत नगर-नारि को सहजहि ते मन लोभा ॥
मनु चन्दा आकास छोड़ि कै भूमि लखन को आयो।
कैधौं काम वाम के कारन अपुनो रूप छिपायो ॥
भौंह कमान कटाच्छ बान से अलक भ्रमर घुँघुरारे।
देखत ही बेधत हैं मन-मृग, नहि बचि सकत विचारे ॥

वि०—तो भला उनको एक बेर किसी उपाय से देख भी सकते हैं।

ही० मा०—वाह वाह ! यह तुमने अच्छी कही। पहिले राजा रानी से कहें, वह देख सुन के जाँच लें, पीछे तुम देखना।

वि०—नहीं, ऐसा न होने पावे, पहिले मैं देख लूँ तब और कोई देखे।

ही० मा०—मैं कैसे पहिले तुम्हें दिखला दूँ। यह राजा का घर है, चारों ओर चौकी पहरा रहता है, यहाँ मक्खी तो आही नहीं

सकती, भला वह कैसे आ सकते हैं ? जो कोई जान जायगा तो क्या होगा।

वि०—सो मैं कुछ नहीं जानती, जैसे चाहो वैसे एक बेर मुझको उनका दर्शन करा दो। तू आप चतुर है, कोई न कोई उपाय सोच लेना और जो तू मेरा मनोर्थ पूरा करेगी तो मैं भी तेरा मनोर्थ पूरा कर दूँगी।

ही० मा०—यह तो मैं भी समझती हूँ, पर मैं सोचती हूँ कि किस रीति से उसे ले आऊँ। हाँ एक उपाय यह तो है कि वह इस वृक्ष के नीचे ठहरें और तुम अपनी अटारी पर से देख लो।

वि०—हाँ ठीक है। यह उपाय बहुत अच्छा है। पर कब, आज या कल ?

ही० मा०—कल उनको लाऊँगी। (हँस कर) एक बात मैं कहे देती हूँ कि उनको एक बेर देखके फिर भूल न जाना।

वि०—भूल जाऊँगी ? हाय ! (गाती है)

(ठुमरी)

मेरे तन अति बाढी बिरह पीर अब नहि सहि जाई हो।
अब कोउ उपाय मोहि नहिं लखाय, दुख कासो कहौ कछु कहि न जाय, मनहीं मैं बिरह की अगिनि बरै, धूआँ न दिखाई हो॥
दईमारी लाज बैरिन सी आज, कहो आवत मेरे कौन काज,
पिय बिन मेरो जियरा तड़पै, कछु नाहि बसाई हो॥

(राग बिहाग)

चढावत मो पैं काम कमान।
बेधत है जिय मारि मारि कै तानि श्रवन लगि बान॥
पिया बिना निसिदिन डरपावत मोहि अकेली जान।
तुमरे बिनु को धीर धरावै पीतम चतुर सुजान॥

ही० मा०—(हँसकर) वाह वाह ! यह अनुराग हम नहीं जानती थीं।

(गाती है) (राग—कलिंगड़ा)

अहो तुम सोच करो मति प्यारी।
तुम्हरो प्रीतम तुमहि मिलैहैं करि अनेक उपचारी॥

अति कुम्हलाने कमल बदन को प्रफुलित करिहौ बारी।
चन्दहिं जौ चाहे तौ लाऊँ यह तो बात कहारी॥

वि०—तो मैं * छत पर उसकी आसा देखूँगी।

(जवनिका गिरती है)

प्रथम अंक समाप्त हुआ

---

* खड्गविलास प्रथम संस्करण में 'संध्या के बाद' अधिक है।

द्वितीय अंक

पहिला गर्भांक

स्थान—विद्या का महल

(विद्या बैठी है और चपला पखा हाँकती है और सुलोचना पान का डिब्बा लिए खड़ी है)

सुलो०—(बीड़ा देकर) राजकुमारी, एक बात पूछूँ, पा जो बताओ।

वि०—क्यों सखी क्यों नहीं पूछती ? मेरी ऐसी कौन सी बात है जो तुम लोगों से छिपी है ?

सुलो०—और कुछ नहीं, मुझे केवल इतना पूछना है कि कई दिन से तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो रही है, सर्वदा अनमनी सी बनी रहती हो, और खान पान सब छूट गया है, और दिन दिन शरीर गिरा पड़ता है, रात दिन मुँह सूखा रहता है। इसका कारण क्या है ?

वि०—(मुँह नीचा कर लाज से चुप रह जाती है)

सुलो०—(बीड़ा देकर) यह तो मैं पहिले ही जानती थी कि तुम न कहोगी।

वि०—नहीं सखी, मैं क्यों न कहूँगी, पर तू क्या उसका कारण अब तक नहीं जानती ?

सुलो०—जो जानती तो क्यों पूछती ?

वि०—हीरा मालिन जो उस दिन माला लाई थी वह क्या तू ने नहीं देखी थी ?

सुलो०—हाँ देखी तो थी, तो उससे क्या ?

वि०—और उस दिन छत पर से मैं जिसे वृक्ष तले देखने गई थी उसे तू ने नहीं देखा था।

सुलो०—हाँ, सो सब जानती हूँ।

वि०—तो अब नहीं क्या जानती ?

सुलो०—तो फिर उसमें इतना सोच विचार क्यों चाहिए, केवल एक बेर बड़ी रानी जी से कहने से सब काम सिद्ध हो जायगा ।

चपला—वाह-वाह, क्या इसी बात का इतना सोच विचार था, तो मैं अभी जाती हूँ । (जाना चाहती है)

वि०—नहीं नहीं, ऐसा काम कभी न करना, नहीं तो सब बात बिगड़ जायगी ।

चप०—क्यों, इसमें दोष क्या है ?

सुलो०—और फिर यह न होगा तो होगा क्या ?

वि०—सखी मेरी प्रतिज्ञा ने सब बात बिगाड़ रक्खी है !

चप०—क्यों ?

वि०—मा से कह देने से फिर उनके संग विचार करना पड़ेगा, और उस में जो मैं जीती तौ भी अनुचित है, क्योंकि मैं अपना प्राण-धन सब उनसे हार चुकी हूँ और फिर उनसे विवाह भी कैसे होगा, और वह जीते तो इस बात का लोगों को निश्चय कैसे होगा कि गुणसिंधु राजा के पुत्र यही हैं और निश्चय बिना तो विवाह भी नहीं हो सकता, इससे मेरा जी दुबधे में पड़ा है । और जिस दिन से मैंने उन्हें देखा है उस दिन से अपने आपे में नहीं हूँ, क्योंकि उस मनमोहन रूप को देखकर कुल और लाज दोनों छोड़ चुकी हूँ और उस विषय में जो जो उमंग उठते हैं वह कहने के बाहर हैं । और सखियो, तुम लोग भी तो स्त्री हो, अपने ऐसा जी सब का समझो । हाय, मुझे कोई उपाय नहीं दिखाता । (गाती है)

(राग सोरठा)

सखी हम कहा करैं कित जायँ ?
बिनु देखे वह मोहिनि मूरति नैना नाहिं अघायँ ॥ १ ॥
कछु न सुहात धाम धन गेह सुख मात पिता परिवार ।
बसति एक हिय मैं उनकी छबि नैनन वही निहार ॥ २ ॥
बैठत उठत सयन सोवत निसि चलत फिरत सब ठौर ।
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और ॥ ३ ॥

हमरे तो तन मन धन प्यारे मन बच क्रम चित माँहि ।
पै उन के मन की गति, सजनी, जान परत कछु नाँहि ॥ ४ ॥
सुमिरन वही, ध्यान उनको ही, मुख मे उनको नाम ।
दूजी और नाहि गति मेरी, बिन पिय और न काम ॥ ५ ॥
नैना दरसन बिनु नित तलफैं, बोल * सुनन कों कान ।
बात करन को मुख तलफैं, गर मिलिबे को ये प्रान ॥ ६ ॥

सुलो०—हाँ, इन बातों को तो मैं समझती हूँ, पर कर क्या सकती हूँ ? क्योंकि कोई उपाय नहीं दिखाता। हम तो तेरे दुःख से दुखी और तेरे सुख से सुखी है। जो किसी उपाय से यह सुख होय तो हम सब अपने शरीर बेंचकर भी उसे कर सकती हैं, परन्तु यह ऐसी कठिन बात है कि इसका उपाय ही नहीं है।

चप०—इसमें क्या सन्देह। आज दिन राजा के प्रताप से सब देश थर थर काँपता है और द्वारों पर चौकीदार यमदूत की भाँति खड़े रहते हैं, तब फिर ऐसी भयानक बात कैसे हो सकती है।

वि०—(लम्बी साँस लेकर) हाय सखी, अब मैं क्या करूँगी। जो शीघ्र ही कोई उपाय न होगा तो प्राण कैसे बचेंगे। यह प्रीत दईमारी बड़ी दुखद होती है। (गाती है)

(राग बिहाग)

बावरी प्रीति कसै मति कोय ।
प्रीति किये कौनै सुख पायो, मोहि सुनाओ सोय ॥ १ ॥
प्रीति कियो गोपिन माधव सो लोक लाज भय खोय ।
उन कों छोड़ि गए मथुरा को बैठि रहीं सब रोय ॥ २ ॥
प्रीति पतग करत दीपक सों सुन्दरता कहँ जोय ।
सो उलट्यो तेहि दाह करत है पच्छ नसावत दोय ॥ ३ ॥
जानि बूझि कै प्रीति करी हम कुल मरजादा धोय ।
अब तो प्रीतम रंग रँगी मै होनी होय सो होय ॥ ४ ॥

हीरा मालिन ने हमको बचन तो दिया है कि किसी भाँति उसे एक बेर तुझसे मिला दूँगी, पर देखूँ अब वह क्या उपाय करती है।

---

* यहाँ पाठ 'श्रवन' था।

(एक सुरंग का मुँह खुलता है और उसमें से सुंदर निकलता है। सब सखी घबड़ाकर एक दूसरी का मुँह देखती हैं और विद्या लाज से मुँह नीचे कर लेती हैं)

चप०—अरे यह कौन है और कहाँ चला आता है ?

सुलो०—सोई तो मैं घबड़ाती हूँ कि यह कौन है और कहाँ से आया है। अब मैं चोर चोर कह कर पुकारती हूँ जिसमें सब चौकीदार लोग दौड़ कर हम लोगों को बचावें।

वि०—(हाथ से पुकारने का निषेध करके धीरे से) नहीं नहीं, मैं समझती हूँ कि यह चोर नहीं है, मेरा चितचोर है कोई जाकर उससे पूछो।

चप०—भला देखो, मेरी छाती कैसी धड़कती है, इससे मैं तो नहीं पूछने की। (सुलोचना से) सुलोचना, तू जा कर पूछ आ यह कौन है।

सुलो०—(सुंदर से) तुम कौन हो और बिराने घर में क्यों घुस आए हो। सच बतलाओ, क्योंकि हम लोगों का डर से कलेजा काँपता है, इससे कहो कि तुम देवता हो, या दानव हो, या मनुष्य हो।

सुं०—(मुसुकाकर) नहीं सखी, डरने का क्या काम है ? न मै देवता हूँ न दानव, मै तो साधारण मनुष्य हूँ, और कांचीपुर के महाराज गुणसिंधु का पुत्र हूँ, और मेरा नाम सुंदर है। भाट के मुख से तुम्हारी राजकन्या के विचार का समाचार सुन के यहाँ आया हूँ परन्तु विचार तो दूर रहे, तुम्हारी सभा में अविचार बहुत है।

चप०—(धीरे से) सखी यह तो वही है।

सुलो०—क्यों हमारी सभा में अविचार कौन सा है ?

सुं०—और अविचार किसको कहते हैं ? जो कोई परदेशी अतिथि आवे तो न तो उस का आदर होता है और न कोई उसे बैठने को कहता है।

(विद्या संकेत से चपला से बैठाने को कहती है और सुदर बैठता है, और विद्या लाज से वस्त्र से अपना सब शरीर ढाँक लेती है)

सुं०—(सुलोचना से) सखी, विद्यावती के गुण की मैंने जैसी प्रशंसा सुनी थी उससे भी अधिक आश्चर्य गुण देखने में आए।

सुलो०—ऐसे आपने कौन आश्चर्य गुण देखे ?

सुं०—जाल में चन्द्रमा को फँसाना, बिजली को मेंघ में छिपाना, और वस्त्र से कमल की सुगंधि को मिटाना, यह सब बात तुम्हारी राजकन्या कर सकती है।

सुलो०—(हँसकर) यह आप कैसी बातें कहते है, क्या ये बातें हो सकती है।

सुं०—जो नहीं हो सकतीं तो तुम्हारी राजकन्या नें अंचल से मुख क्यों छिपा लिया ?

सुलो०—(हँसकर) आप बड़े सुरसिक और पंडित हैं, इससे मैं आप की बात का उत्तर नहीं दे सकती, "दीपक की रवि के उदय बात न पूछै कोय" पर हाँ, जो लज्जा न करती तो हमारी सखी कुछ उत्तर देती।

सुं०—(हँसकर) तो आज तुम्हारी राजकन्या हम से हार गई।

सुलो०—क्यों, हार क्यों गई ?

सुं०—और हारने के माथे क्या सींग होती है ? मुझे देकर लाज के मारे वह कुछ उत्तर नहीं दे सकती इसी से हार गई।

सुलो०—(हँसकर) आपको सब कहना शोभा देता है।

वि०—(सखी से) सुलोचने, तुझे कुछ उत्तर देने नहीं आता, तू क्यों नहीं कहती कि हमारी विद्यावती ने विद्या के विचार का प्रण किया था, कुछ चोरी-विद्या के विचार का प्रण नहीं किया था, आप सेंध देकर घुस आए और अब बातें बनाते हैं।

सुं—(हँस के) हाँ इस देश के विचार की चाल ही यही है और उलटे हमी चोर बनाए जाते हैं। मैंने क्या अपराध किया था कि उस दिन वृक्ष के नीचे घंटों खड़ा किया गया और तुम्हारी राजकुमारी ने हमारा तन मन धन सब लूट लिया। अब कहो, पहिले चोरी का आरम्भ किस ने किया, वही बात भई कि उलटा चोर कोतवाल को डाँटे।

वि०—और सुनो ! यह चोर नहीं हैं बड़े साधु हैं। सच है साधु न होते तो सेंध देने की विद्या कहाँ सीखते ! यह कर्म साधुओं ही के तो हैं। सखियो, आज तुमने बड़े महात्मा का दर्शन किया। निश्चय तुम्हारे सब पाप कट गए, क्योंकि शंख बजाने वाले साधु तो बहुत देखे थे पर सेंध लगाने वाले आज ही देखने में आए।

सुं०—(हँस कर) इसमें क्या संदेह है। सखियो, तुम परीक्षा कर लो कि हम में सब साधुओं के लक्षण हैं कि नहीं ? देखो मैं अपने चोर को ढूँढ़ता ढूँढ़ता यहाँ तक आया और उसे पाकर उसको पकड़ने और धन फेर लेने के बदले और भी जो कुछ मेरे पास बच गया है भेंट किया चाहता हूँ, परन्तु जो यह लें।

वि०—(धीरे से) दीजिए।

सुं०—(प्रसन्न होकर) सखियो, तुम साक्षी रहना, मन और प्राण तो इसने चोरी करके ले लिया, एक देह बच गई है, इसे मैं अपनी ओर से अर्पण करता हूँ। (विद्या से) प्यारी, मैं यहाँ केवल इसी हेतु आया था सो तुम ने मुझे अपना कर लिया है, अब इसका निबाह करना। (हाथ बढ़ाता है)

वि०—(लाज से) यह मैंने कब कहा था ?

सुलो०—(विद्या से हँसकर) सखी, अब तेरी ये बातें न चलेंगी। आज के विचार में तू हार गई।

च०—इसमें क्या संदेह है, यहाँ न्याय के विचार का क्या काम है ? जो रस के विचार में जीते सो जीता, क्योंकि न्याय का विचार करके स्त्री को जीतना यह भी एक अविचार है।

सुलो०—(हँसकर विद्या से) सखी, अब विलंब क्यों करती है, क्योंकि राजपुत्र तुझे अपना शरीर समर्पण करके पाणिग्रहण के हेतु हाथ फैलाए हुए हैं इससे या तो तुम उसकी बनो या उसे अपना करो, क्योंकि आज से हम उसमें और तुममें कुछ भेद नहीं समझतीं और हस्तकमल के संग अपना हृदय-कमल भी राजपुत्र के अर्पण करो, क्योंकि अच्छे काम में विलंब न करना चाहिए।

सुं०—(प्रसन्नता से विद्या का हाथ अपने हाथ में लेकर) अहाहा! ऐसा भी कोई दिन होगा ?

सुलो०—अब होने में विलंब क्या है ? परंतु मैं यह विनती करती हूँ कि हमारी राजकुमारी अत्यंत सीधी और सच्ची है, क्योंकि इसने पहिले ही जान पहिचान में आपका विश्वास करके अपना तन मन धन आपके अर्पण किया, परंतु आप सुरसिक और पंडित हैं इससे इस धन की रक्षा का कोई उपाय कीजियेगा। (फूल की माला से दोनों का हाथ बाँधती है) हम भगवान् से प्रार्थना करती है कि तुम दोनों सर्वदा इसी फूल की माला की भाँति आपस में प्रेम के डोरे में बँधे रहो।

सुं०—सखी, हम भी हृदय से एवमस्तु कहते हैं।

च०—राजनंदिनी तो इस समय कुछ कहने ही की नहीं, पर मैं उसकी ओर से कहती हूँ कि ऐसा ही हो।

सुलो०—ऐसी नई बहू की प्रतिनिधि कौन नहीं होना चाहती ?

च०—चल तुझे तो ऐसी ही बातें सूझती हैं।

सुलो०—अब नए दुलहा-दुलहिन को दूर दूर बैठाना उचित नहीं है, इससे कृपा कर के दोनों एक पास बैठो, जिसे देखकर हमारी आँखें सुखी हों।

सुं०—(हँसकर) ठीक है। (विद्या के पास बैठता है और विद्या कटाक्ष से देखती है)

सुलो०—(हँस कर) सखी, सब बातें हो चुकीं तो अब गांधर्व विवाह की कुछ रीतें बची क्यों जाती हैं। और हमारी आज्ञा करने में तुझे क्या लज्जा है। अब तुम दोनों माला का अदला बदला करो जिसे देखकर हम सुखी हों।

(सुन्दर के यत्न से दोनो परस्पर माला बदलते हैं और सखी लोग आनन्द से ताली बजाती हैं)

वि०—(मन ही मन) विधाता क्या सचमुच आज ऐसा दिन हुआ है, कि मैं सपना देखती हूँ ? नहीं, यह सपना है।

च०—हमारे नेत्र आज सुफल हुए।

सुलो०—(आनंद से गाती है)

आजु अति मोहि अनंद भयो ।
बहुत दिवस की इच्छा पूजी सब दुख दूर गयो ॥
यह सोहाग की राति रसीली सब मिलि मंगल गाओ ।
जनम लिए को आज मिल्यौ फल अँखियाँ निरखि सिराओ ॥
दिन दिन प्रेम बढ़ो दोउन कों सब अति ही सुख पावैं ।
चिरजीवो दुलहा अरु दुलहिन दोउ कर जोरि मनावैं ॥

सुं०—अहाहा ! कैसा मधुर गीत है, सखी जो तुझे कष्ट न हो तो एक गीत और गा ।

सुलो०—वाह ऐसे आनन्द के समय में मै और गीत न गाऊँ, तिस में नए जमाई की पहिली आज्ञा न माननी तो सर्वथा अनुचित है ।

च०—सखी, हमारी राजनंदिनी ने उस दिन जो गीत बनाई थी सो क्यों नहीं गाती ? क्योंकि नए बर उस गीत से निश्चय बड़े प्रसन्न होंगे ।

(विद्या आँखो से निषेध करती है)

सुलो०—हाँ सखी, बहुत ठीक कहा । (विद्या से) क्यों सखी, इसमें दोष क्या है ? तू क्यों निषेध करती है ? अब तो मैं निश्चय वही गीत गाऊँगी । (चपला ताल देती है और सुलोचना गाती है)

(राग देस)

जहाँ पिय तहीं सबै सुख साज ।
बिनु पिय जीवन व्यर्थ सखी री यद्यपि सबै समाज ॥
जो अपुनो पीतम सँग नाहीं सुरपुर कौने काज ।
निरजन बनहू मैं पीतम के सँग सुरपुर को राज ॥

सुं०—वाह वाह ! बहुत अच्छा गीत गाया, जैसे मेरे कान में अमृत की धारा की वर्षा हुई । सखी, सुरपुर-सुख आज मुझे यथार्थ अनुभव होता है ।

सुलो०—(हँसकर) क्या मेरे गाने से ! जो हो अब रात बहुत गई और नई बहू के मिलाप में पहले ही दिन बहुत विलंब करना योग्य नहीं ।

सुं०—हाँ सखी अब जाता हूँ। (अँगूठी उतारकर दोनों सखियों को देता है) यह हमारे संतोष का चिह्न सर्वदा अपने पास रखना।

सुलो०—(लेती है) यद्यपि यह अँगूठी सहज ही बहुमूल्य है परंतु आप के संतोष का चिह्न होने से और भी अमूल्य हो गई और इसे हम सर्वदा बड़े प्यार से अपने पास रखेंगी।

च०—आपका प्रसादी फूल भी हमें रत्न के समान है।

सुलो०—तो अब उठिए।

सुं०—तुम आगे चलो हम लोग भी आते हैं।

सुलो०—(उठकर) इधर से आइए।

(सुलोचना और चपला आगे आगे, उनके पीछे विद्या का हाथ पकड़े हुए सुंदर चलता है और जवनिका गिरती है)

दूसरा गर्भांक

स्थान-विद्या का मंदिर

(विद्या और मालिन बैठी हैं)

वि०—कहो, उनके लाने का क्या किया, लंबी चौड़ी बातें ही बनाने आती है कि कुछ करना भी आता है?

मा०—भला इसमें मेरा क्या दोष है। मैंने तो पहले ही कहा था कि यह काम छिपाकर न होगा। जब मैंने कहा कि मैं रानी से कहूँ तो भी तुमने मना किया और उलटा दोष भी मुझीको देती हो। उस दिन तुमने कहा कि उनसे कहो वे कोई उपाय आप सोच लेंगे, उसका उनने यह उत्तर दिया कि "मौसी, मैं परदेशी हूँ, इस नगर की सब बातें नहीं जानता और राजा के घर में चोरी से घुस कर बच जाना भी साधारण कर्म नहीं है। जब तुम्हीं कोई उपाय नहीं सोच सकती तो मैं क्या सोचूँगा और अब मुझे मनुष्यों का कुछ भरोसा नहीं हैं, इससे मैं अब दैवकर्म करूँगा, सो तू घर में एक अग्नि का कुंड बना दे और रात भर मेरा पहरा दिया कर"। वे तो यों कहते हैं पर देखूँ उनका देवता कब सिद्ध होता है। भला वह तो

चाहे जब हो एक नई बात और सुनने में आई है, जिससे जी में तो रुलाई आती और ऊपर से हँसी आती है ?

वि०--क्या कोई और भी नई बात सुनने में आई है ?

ही० मा०--हाँ मैंने सुना है कि राजसभा में कोई सन्यासी आया है।

वि०--तो फिर क्या ?

ही० मा०--मैं सुनती हूँ कि वह विचार में सब सभा को तो जीत चुका है और अब कहता है कि मैं राजकुमारी से शास्त्रार्थ करूँगा।

वि०--ऐसा कभी हो सकता है कि मैं सन्यासी से विचार करूँ।

ही० मा०--क्यों नहीं, क्या प्रण करने के समय तुमने यह प्रतिज्ञा थोड़ी ही की थी कि सन्यासी को छोड़कर मैं प्रण करती हूँ, अब तो जैसा राजकुँवर वैसा ही सन्यासी।

वि०--तो मैं तो उससे विचार नहीं करने की।

ही० मा०—अब नहीं कहने से क्या होता है, विचार तो करना ही होगा और फिर इस में दोष क्या है, जैसा तुम्हारा दिव्य राजा के कुल में जन्म है वैसा ही दिव्य सन्यासी वर मिल जायगा। मैंने तो चन्द्रमा का टुकड़ा वर खोज दिया था पर तू कहती है कि रानी से उसका समाचार ही मत कहो, तो अब मैं कौन उपाय करूँ। अच्छा है, जैसी तुम्हारी चोटी है उससे भी लंबी उसकी डाढ़ी है, सिर पर बड़ी भारी जटा है और सब अंग में भभूत लगाए है, ऐसे जोगी नित्य नित्य नहीं आते। अहाहा ! कैसा अद्भुत रूप है !

(राग देस)

(गाती है)

अरे यह जोगी सब मन मानै।
लबीं जटा रँगीले नैना जंत्र मंत्र सब जानैं॥
कामदेव मनु काम छोड़ि कै जोगी ह्वै बौरानै।
या जोगिया की मै बलिहारी जग जोगिन कियो जानै॥

अरे यह जोगी०—

ऐसा रसिक जोगी वर मिलता है और क्या चाहिए ?

वि०—चल तू भी चूल्हे में जा और जोगी भी।

ही० मा०—ऐसा कभी न कहना, मैं भले चूल्हे में जाऊँ पर सन्यासी बिचारा क्यों चूल्हे में जायगा ? भला यह तो हुआ, पर अब मैं यह पूछती हूँ कि एक भलेमानस के लड़के को मैंने आस देकर घर में बैठा रक्खा है, उसकी क्या दशा होगी और मैं उसको क्या उत्तर दूँगी, क्योंकि तुम तो महादेव जी की सेवा में जाओगी पर वह बिचारा क्या करेगा। और क्या होगा ? तुम सन्यासी को लेकर आनंद करना और वह बिचारा आप सन्यासी होकर हाथ में डंड-कमंडल लेकर तुम्हारे नाम भीख माँग खायगा।

वि०—चल लुच्ची ! ऐसी दशा शत्रु की होय ! मैं तो उसे उसी दिन बर चुकी जिस दिन उसका आगमन सुना और उसी दिन उसे तन मन धन दे चुकी जिस दिन उसका दर्शन किया, इससे अब प्रण कहाँ रहा और विचार का क्या काम है ?

ही० मा०—पर मन के लड्डू खाने से तो काम नहीं चलेगा, क्योंकि मन से हमने इन्द्र का राज कर लिया, इससे क्या होता है, सपने की संपति किस काम की कि जब आँख खुली तो फिर वही टूटी खाट। राजा यह बात कैसे जानेंगे और रानी इस बात को क्या समझती हैं कि मेरी कन्या का गांधर्व विवाह हो चुका है और जब सन्यासी से व्याह देंगे तब तुम क्या करोगी और वह तब कहाँ जायगा ?

वि०—हाँ तुम तो इस बात से बड़ी प्रसन्न हो। तुम्हारी क्या बात है ! मैंने कई बार कहा कि उसको एक बार मुझसे और मिला दे पर तू उसे कब छोड़ती है। अरी पापिन, जमाई को तो छोड़ देती, पर तू भी तो धन्य है कि इतनी बूढ़ी हुई और अभी मद नहीं उतरा। जब बुढ़ापे में यह दशा है तो चढ़ते जोबन में न जाने क्या रही होगी !

ही० मा०—सच है, उलटा उराहना तो मुझे मिलेहीगा क्योंकि अब तो सब दोष मुझे लगेगा। तुमको सब बात में हँसी सूझती है, पर मुझे ऐसा दुःख होता है कि उसका वर्णन नहीं होता।

जो विधि चन्दहि राहु बनायो।
सोइ तुम कहँ सन्यासी लायो॥

इस दुःख से प्राण त्याग करना अच्छा है। मेरी तो छाती फटी जाती है। यह मैंने जो सुना सो कहा। अब तुम जानो तुम्हारा काम जाने, मैंने जो सुना सो कहा।

वि०—नहीं नहीं, मैं तो तेरे भरोसे हूँ जो तू करेगी सो होगा, भला उनसे भी एक बेर यह समाचार कह दे।

(चपला आती है)

च०—राजकुमारी, पूजा का समय हुआ।

वि०—चलो सखी, मैं अभी आई।

(चपला जाती है)

हो० मा०—तो मैं आज जाकर उससे यह वृत्तान्त कहती हूँ, इस पर वह जो कहेगा सो मैं कल तुमसे फिर कहूँगी।

वि०—ठीक है, कल अवश्य इसका कुछ उपाय करेंगे।

(जवनिका गिरती है)

—०*०—

तीसरा गर्भांक

स्थान—विद्या का मंदिर

(विद्या अकेली बैठी है और सुंदर आता है)

वि०—आज मेरे बड़े भाग्य है कि आप साँझ ही आए।

सुं०—(पास बैठ कर) प्यारी, मुझे जब तेरे मुखचंद्र का दर्शन हो तभी साँझ है!

वि०—परंतु प्राणनाथ, ये दिन सर्वदा न रहेंगे, चार दिन की चाँदनी है।

सुं०—हाँ, यह तो मैं भी कहता हूँ।

वि०—क्यों?

सुं०—क्योंकि जब मैं "बैठिए" तो कभी नहीं सुनता और "जाइए" प्रायः सुनता हूँ तो अवश्य ऐसा होगा।

वि०—वाह वाह ! अब तो आप बहुत हीं हँसी करना सीखे हैं। कहिए कै उपास में यह विद्या आई है। (पान का डब्बा देती है) लीजिए इसे छूके शुद्ध कर दीजिए।

सुं०—पहिले आप तो मुझे पवित्र कीजिए, पीछे मैं जब आप शुद्ध हो जाऊँगा तब इसे भी पवित्र कर सकूँगा।

वि०—भला यह बात तो हुई। आज सबेरे मालिन आई थी उसका समाचार आप जानते हैं ?

सुं०—हाँ, सो तो वह नित्य सबेरे आती है। आज विशेष क्या हुआ ? क्या उस को किसी ने एक दो धौल लगाई ?

वि०—भला, मेरे सामने ऐसा कभी हो सकता है और फिर वह ऐसी डरपोकनी है कि जो उसको कोई मारता तो वह तुरंत रानी से जाकर सब समाचार कह देती, तौभी तो बुरा होता।

सुं०—तो उससे बहुत चौकस रहना चहिए।

वि०—नहीं ! इसका कुछ भय नहीं है पर एक दूसरी बात जो कि सुनी है उसका बहुत भय है।

सुं०—क्या कोई दूसरा उपद्रव हुआ ?

वि०—एक बड़े पंडित सन्यासी आए हैं वह मुझसे विचार करना चाहते हैं।

सुं०—(विषाद से) अरे, यह बड़ा उपद्रव हुआ। मैं उन सन्यासी को जानता हूँ क्योंकि जब मैं वर्द्धमान को आता था तो वह मुझे मार्ग में मिला था। वह निश्चय बड़ा पंडित है, उसके हाथ से विचार में जीतना कठिन है।

वि०—तब क्या होगा।

सुं०—होगा क्या "चोर का धन बटपार लूटै"।

वि०—भगवान ऐसा न हो कि मुझे उससे विचार करना हो।

सुं०—जो महाराज विचार करने की आज्ञा देंगे तो करना होगा।

वि०—हाँ, यह तो ठीक है। हाय हाय, मैं बड़े विपत्ति में पड़ी हूँ क्या करूँगी।

सुं०—तुम्हें किस बात का सोच है, पुराना कपड़ा उतारा नया पहिना, सोच तो मुझे है।

वि०—(उदास होकर) चलो सब समय हँसी नहीं अच्छी होती। "पुराना उतारा नया पहिना" यह तो पुरुषों का काम है, स्त्री बिचारी तो एक बेर जिसकी हुई जन्म भर उसीकी हो रहती है।

सुं०—(हँस कर) ऐसा मत कहो, क्योंकि स्त्रियों के चरित्र अत्यन्त विलक्षण होते हैं।

वि०—मैं तो नये पुरुषों का मुख भी नहीं देखने पाती, मैं नई पुरानी क्या जानूँ। आपही नित्य नई नई स्त्री को देखते हैं आप जानें।

सुं०—तो क्या हुआ इतने दिन तक राजसुख भोग किया अब जोगिन का सुख भोग करना।

वि०—यह बात कैसे हो सकती है कि जिसके वियोग में एक पलक प्रलय सा जान पड़ता है उसको छोड़ कर मैं जोगिन हूँगी। हा! मैं सन्यासिनी हूँगी! हे भगवान! तूने कर्म्म में क्या क्या लिखा है! (अत्यंत शोच करती है और लंबी साँसें लेती है)।

सुं०—(हँसकर) और जो वह सन्यासी हमी होयँ।

वि०—यह बात कैसी?

सुं०—नहीं, मैंने एक बात कही, जो वह सन्यासी हमीं होयँ।

वि०—तो फिर तुम्हारे लिए तो मैं जोगिन आप ही हो रही हूँ इस में क्या कहना है। जो यह बात सच होय तो शीघ्र ही कहो तुम्हें मेरी सौगंद है। जब से मैंने उसका समाचार सुना है तब से मुझे रात दिन नींद नहीं आती।

सुं०—(हँसकर) जो तुम्हें दुःख होता है तो मैं कहता हूँ, पर किसीसे कहना मत, अपनी सखियों से भी न कहना। देखो, मैं राजसभा देखने को सन्यासी बन के गया था और मैंने बिचारा कि यहाँ विचार की चरचा निकालें, देखें क्या फल होता है?

वि०—हाय हाय, अब मेरे प्राण में प्राण आए। अरे तू बड़ा बहुरूपिया है और तुझे बड़े बड़े नखरे आते हैं। पुरुष में तो यह दशा है जो स्त्री होता तो न जाने क्या करता। चल, तू बड़ा छलिया है। हाय हाय, मुझे कैसा धोखा दिया, भला तूने यह विद्या कहाँ सीखी। (कुछ ठहरकर) हाँ तब, तब क्या हुआ ?

सुं०—तब क्या हुआ सो तो तुम जानती होगी, पर राजा ने कुछ निश्चय नहीं किया।

वि०—यह बड़ा आनंद हुआ, मानो आज मेरी छाती पर से एक बोझा उतर गया, मुझे आज रात को नींद सुख से आवेगी। कल मैंने मालिन से हँसी में यह बात उड़ा तो दी थी, पर भीतर मेरा जी ही जानता था और मैंने आप से भी कई बेर कहना चाहा पर सोचती थी कि कैसे कहूँ।

(सुलोचना आती है)

सुलो०—राजकुमारी, रात बहुत हो गयी, जो बहुत जागेगी तो कल दिन को जी आलस में रहेगा।

वि०—नहीं सखी, अब जाती हूँ (सुलोचना जाती है और विद्यासुंदर भी उठकर चलते हैं) पर एक बेर मुझे भी उस रूप का दर्शन करा देना क्योंकि मुझे भी तो जोगिन बनना है।

सुं०—प्यारी, उस प्रेम के जोगी की जोगिन होना तुम्हीं को शोभा देता है।

वि०—नाथ, तुम जो कहो सो सब उचित है।

(जवनिका पतन)

दूसरा अंक समाप्त हुआ

———

तृतीय अंक

पहिला गर्भांक

स्थान—राजमार्ग

(विमला और चपला आती है)

विमला—वाहरे वाहरे, कैसी दौड़ी चली जाती है। देखकर भी बहाली दिए जाती है,

चपला—(देखकर) नहीं बहिन, नहीं, मैंने तुम्हें नहीं देखा, क्षमा करना।

विम०—भला मैंने क्षमा तो किया, पर अपनी कुशल कहो ?

च०—कुशल मैं क्या कहूँ उस दिन के तो समाचार तूने सुने ही होंगे।

विम०—कौन समाचार ? राजकन्या के ? बड़े घर की बात ?

च०—अरे चुप चुप, भाई, धीरे धीरे-जो कोई सुन ले तो कहे कि यह सब ऐसे ही रनवास की बातें कहती फिरती होंगी।

विम०—हाँ तो फिर रानी ने सब बात जानकर क्या कहा ?

च०—कहेंगी क्या अपना सिर ? राजकुमारी को बुलाकर बड़ी ताड़ना किया और हम लोगों पर जो क्रोध किया उसका तो कुछ पार ही नहीं है, और राजा से जाकर सब कह दिया। राजा ने और भी दस बीस बातें सुनाईं, क्रोध से लाल होकर कोतवाल को आज्ञा दी कि नंगे शस्त्र लेकर रात भर राजकुमारी के महल के चारों ओर घूमा करो और किसी प्रकार से उस चोर को पकड़ो।

विम०—(घबड़ा कर) तब क्या हुआ ?

च०—उसी समय से कोतवाल ने हम लोगों के महल में बड़ा उपद्रव मचा रक्खा है, और कहाँ तक कहें कई चौकीदार स्त्री बन बन के विद्या के सोने के महल में रात भर बैठे रहे, पर जिसके हेतु इतना उपद्रव हुआ वह अभी यह समाचार नहीं जानता और

फिर उसकी क्या दशा होगी, इस सोच से विद्यावती रात भर रोती रही। यद्यपि हम लोगों ने बहुत समझाया परंतु उसको धीरज कहाँ। इसी बिपत में सब रात कटी।

विम०—फिर सबेरे क्या हुआ सो कहो।

च०—फिर क्या हुआ सो तो मैं ठीक ठीक नहीं जानती, पर कोतवाल सबेरे उठके चले गए और विद्या ने मुझ से कहा कि तू सोध ले कि अब क्या होता है।

विम०—सो तूने कुछ सोध पाई?

च०—अब तक तो कुछ सोध नहीं मिली, लोगों के मुँह से ऐसा सुनती हूँ कि चोर पकड़ गया और एक आपत्ति यह भी न है कि मैं तो किसी से पूछ भी नहीं सकती। परंतु कोतवाल इत्यादिक बड़े प्रसन्न हैं। इससे जाना जाता है कि चोर पकड़ गया। मैंने पहिले ही कहा था कि इस काम को छिपा के करना अच्छी बात नहीं है। (नेपथ्य में कोलाहल होता है) अरे यह क्या है? यह तो कोतवाल का शब्द जान पड़ता है और मानो सब इसी ओर आते हैं, तो अब हम लोग किनारे खड़ी हो जायँ जिससे वह सब हमें न देखें। (दोनों एक ओर खड़ी हो जाती हैं)

(नेपथ्य में फिर कोलाहल होता है और कोई गाता है। हाथ बँधे हुए सुंदर और मालिन को लेकर चौकीदार आते हैं)

१ चौ०—चल रे चल।

२ चौ०—आज इसका पाँव फूल गया है, जिस दिन सुरंग खोदकर राजकुमारी के महल में गया था उस दिन पैर नहीं फूले थे, आज आप "गजगति" चलते है।

सुं०—क्यों व्यर्थ बकता है, राजा के पास तो सब चलते ही हैं, वह जो समझेगा सो उचित दंड देगा, फिर तुमको अपनी तीन छटाँक पकाए बिना क्या डूबी जाती है।

१ चौ०—अहा! मानो हमारे राजपुत्र आए हैं, देखो सब लोग मुँह सम्हाल के बोलो, कहीं अप्रसन्न न हो जायँ और उनकी अक्षत चंदन से पूजा करो। लुच्चा, जिस दिन सेंध लगाया था उस

दिन आदर कहाँ गया था, आज आप बड़े पढ़ती बने हैं, चल चुपचाप आगे चला चल नहीं तो—

२ चौ०—सुनो भाई, बहुत शब्द मत करो, कोतवाल ने कह दिया है कि चुपचाप जाना, हम पीछे पीछे आते हैं और सब लोग संग ही महाराज के यहाँ जायँगे, इससे जब तक वह न आवें तब तक यहाँ चुपचाप खड़े रहो।

३ चौ०—अच्छा, आइए चोर जी यहाँ ठहरिए। राजकन्या के महल में जाने का समय गया, अब कारागार में चलने का समय आया। (सब बैठते हैं)

२ चौ०—देखो भाई भला यह तो परदेसी है पर इस राँड़ मालिन को क्या सूझी कि इसने ऐसा साहस किया।

१ चौ०—अरे यह छिनाल बड़ी छत्तीसी है, इसको तुमने समझा है क्या! ऐसा मन होता है कि इस राँड़ की जीभ पकड़ के खींच ले। (हीरा के पास जाता है)

हीरा मा०—दोहाई महाराज की, दोहाई महाराज की, हे धर्मदेवता तुम साक्षी रहना, देखो यह सब मुझे अकेली पाकर मेरा धर्म लिया चाहते हैं, दोहाई राजा की।

१ चौ०—वाह वाह, चुप रह।

(धूमकेतु कोतवाल आता है)

धू० के०—क्यों रे तुम लोगों ने क्या शब्द कर रक्खा है?

हीरा मा०—दोहाई कोतवाल की, यह सब जो चाहते हैं सो गाली देते हैं, हाय इस राज्य में स्त्रियों का ऐसा अपमान! महाराज धूमकेतु आप तो पंडित हैं, आप इसका विचार क्यों नहीं करते?

१ चौ०—महाराज! यही राँड़ सब कुकर्म की जड़ है और तिस पर ऐसी ऐसी बातें बनाती है।

हीरा मा०—एक मैं ही दुष्कर्म करती हूँ और तुम साधू हो। देखो कोतवाल, हम तो कुछ नहीं करते, और तुम सब हमारी प्रतिष्ठा बिगाड़ते हो।

धू० के०—(हँसकर) हाँ हाँ ! मैं तेरी सब प्रतिष्ठा समझता हूँ, पर यहाँ इससे क्या ? सब लोग महाराज के पास चलें जो वह चाहेंगे सो करेंगे।

हीरा मा०—अरे कोतवाल बाबा, इस बुढ़िया को क्यों पकड़े लिए जाते हौ, बुढ़िया के मारने से क्या लाभ होगा, मुझे अपने बाप की सौगंध जो मैं कुछ जानती हूँ, भगवान् साक्षी है कि मैं किसी पाप में रही हूँ।

सुं०—मौसी, इतनी शीघ्रता क्यों करती है ? सब लोग महाराज के पास चलते है। जो महाराज उचित समझेंगे सो करेंगे।

हीरा मा०—(क्रोध से) अरे दुष्ट, तेरी मौसी कौन है ? इसी के पीछे तो हमारा सब कुछ नाश हुआ, अब तेरा होमकुंड क्या हुआ और तेरे इष्ट-देवता कहाँ गये ? अरे, तू बड़ा जालिया है और तूने मुझे बड़ा धोखा दिया है। अब मै आज पीछे अपने घर में किसी परदेसी को न उतारूँगी।

धू० के०—अब भले ही न उतारना, पर इस उतारने का फल तो भुगतना ही पड़ेगा।

हीरा मा०—(रोती है) हाय, मैं हाथ जोड़ के कहती हूँ कि मै इस विषय में कुछ नहीं जानती, दोहाई भगवान की मैं कुछ नहीं जानती। (कोतवाल से) अरे बेटा ! तुम्हारे माँ-बाप मुझे बड़े प्यार से रखते थे, सो तुम अपने माँ-बाप के पुण्य पर मुझे छोड़ दो और इसने जैसा कर्म किया है वैसा दंड दो। दोहाई कोतवाल की, मैं बिना अपराध मारी जाती हूँ।

धू० के०—इससे क्या होता है ? अब तुम दोनों को महाराज के पास ले चलते हैं और उनकी आज्ञा से एक संग ही बंदीगृह में छोड़ देंगे।

(सुंदर का हाथ पकड़ कर कोतवाल जाता है और हीरा को खींच कर चौकीदार लोग ले जाते हैं)।

विम०—अब सचमुच चोर पकड़ा गया।

च०—जो आँख से देखती है उसका पूछना क्या ?

विम०—पर भाई ! ऐसा रूप तो न आँखों देखा और न कानों सुना,

यह तो राजकन्या के योग्य ही है। इसमें उसने अनुचित क्या किया, क्योंकि जैसो सुंदर वह है वैसा ही यह भी है, "उत्तम को उत्तम मिलै मिलै नीच को नीच",

च०—पर उस निर्दई विधाता से तो सही नहीं गई।

विम०—सोई तो, आहा! जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रसै। हा! विधाता बड़ा कपटी है।

च०—सखी, अब और कुछ मत कह, क्योंकि इस कथा के सुनने से मेरी छाती फटी जाती है और राजकन्या का दुःख स्मरण करके मुझसे यहाँ खड़ा नहीं रहा जाता। देखें, और क्या क्या होता है।

विम—तो फिर कब मिलेंगी?

च०—जो जीती रहूँगी तो शीघ्र ही फिर मिलूँगी। (दोनों जाती हैं)

(जवनिका गिरती है)

दूसरा गर्भांक

स्थान—विद्या का मंदिर

च०—(धीरे से) सखी, मुझसे तो यह दुःख की कथा न कही जायगी, तू ही आगे चल कर कह।

सुलो०—तो तुम मत कहना, पर संग चलने में क्या दोष है? जो विपत्ति आती है सो भोगनी ही पड़ती है।

च०—चल।

(दोनो विद्या के पास जाती हैं)

वि०—(घबड़ा कर) कहो सखी कहो, क्या समाचार लाई हो?

सुलो०—सखी क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता। मेरे मुख से ऐसे दुःख की बात नहीं निकलती। हाय! हम इसी दुःख देखने को जीती हैं। सखी, जिस प्रीतम के सुख से तू सुखी रहती थी वह आज पकड़ा गया। हाय! उसके दोनों कोमल

हाथों को निर्दई कोतवाल ने बाँध रक्खा है। हाय! उसकी यह दशा देख कर मेरी छाती क्यों नहीं फट गई।

वि०—(घबड़ा कर) अरे सच ही ऐसा हुआ। हाय! फिर क्या हुआ होगा। हाय! (माथे पर हाथ मार कर) हा विधाता, तेरे मन में यही थी (मूर्छा खाती है और फिर उठ कर) हाय! प्राणनाथ बंधन में पड़े हैं और मैं जीती हूँ। हाय!

धिक है वह देह औ गेह सखी जिहि के बस नेह को टूटनो है।
उन प्रानपियारे बिना यह जीवहि राखि कहा सुख लूटनो है॥
'हरिचन्द जू' बात ठनी जिय मैं नित की कलकानि ते छूटनो है।
तजि और उपाय अनेक सखी अब तो हमको विष घूटनो है॥

सखी, अब मैं किसके हेतु जीऊँगी। आओ हम तुम मिल लें क्योंकि यह पिछला मिलना है, फिर मैं कहाँ और तुम कहाँ! सखी, जो प्राणप्यारे जीते बचें तो उनसे मेरा सँदेसा कह देना कि मैंने तुम्हारी प्रीति का निबाह किया कि अपना प्राण दिया, पर मुझे इतना सोच रह गया कि हाय! मेरे प्राण-प्रीतम बाँधे गये, पर मेरी इस बात का निबाह करना कि मेरे दुःख से तुम दुखी न होना। हाय! मेरी छाती वज्र की है कि अब भी नहीं फटती। (रोती है और मूर्छा खाकर गिरती है)

सुलो०—(उठाकर) सखी, इतनी उदास न हो और रो रो कर प्राण न दे। यद्यपि जो तू कहती है सो सब सत्य है पर जब ईश्वर ही फिर जाय तो मेरा तेरा कौन वश है? हाय! बादल से कोई बिजली भी नहीं गिरती कि हमको यह दुःख न देखना पड़े। सखी धीरज धर, सखी धीरज धर।

वि०—(रोकर) सखी, मन नहीं मानता। हाय! बिसासी विधाता ने क्या दिखाकर क्या दिखाया! हाय अब मैं क्या करूँगी, और कैसे दिन काटूँगी?

"मोल गरे मृदु बेलिसी बाँहन कौन सी चाहन छाहन डोलिहौ।
कासों सुहास बिलास 'मुबारक' ही के हुलासन सो हँस बोलिहौं॥
औनन प्याइहौं कौन सुधा रस कासों बिथा की कथा गढ़ि छोलिहौं।
प्यारे बिनाहौ कहा लखिहौं सखियाँ दुखियाँ अखियाँ जब खोलिहौं॥"

सखी, केवल दुःख भोगने को जन्मी हूँ, क्योंकि आज तक एक भी सुख नहीं मिला। क्या विधाता की सब उलटी रीति है कि जिस वस्तु से मुझे सुख होता है उसी को हरण करता है। हाय! मैंने जाना था कि मुझे मनमाना प्रीतम मिला, अब मैं कभी दुखी न हूँगी सो आशा आज पूरी हो गई। हाय! अब मुझे जन्म भर दुःख भोगना पड़ा।

सुलो०—सखी, यह सब कर्म्म के भोग हैं, नहीं तो तुम राजा की कन्या हो तुम्हारे तो दुःख पास न आना चाहिए, पर क्या करैं? सखी, तू तो आप बड़ी पंडिता है, मैं तुझे क्या समझाऊँगी, पर फिर भी कहती हूँ कि धीरज धर।

वि०—सखी, मैं यद्यपि समझती हूँ पर मेरा जी धीरज नहीं धरता, कर्म्म के भोग न होते तो यह दिन क्यों देखना पड़ता। हाय! जो पिता-माता प्राण देकर संतान की रक्षा करते हैं उन्हीं पिता-माता ने मुझे जन्म भर रँड़ापे का दुख दिया। (रोती है)।

च०—सखी, अब इन बातों से और भी दुःख बढ़ेगा, इससे चित्त से यह बातें उतार दे और किसी भाँति धीरज धर के जी को समझा।

वि०—सखी, मैं तो समझती हूँ पर मन नहीं समझता। हाय! और जिसका सर्बस नाश हो जाय वह कैसे समझे और कैसे धीरज धरे। हाय! हाय! प्राण बड़े अधम हैं कि अब भी नहीं निकलते। (लंबी साँस लेती है और रोती है)

सुलो०—पर एक बात यह भी तो है कि अभी राजा ने न जाने क्या आज्ञा दिया। बिना कुछ भए इतना दुःख उचित नहीं, न जाने राजा छोड़ दें।

वि०—राजसभा में क्या होगा, केवल हमारे शोकानल में पूर्णाहुति दी जायगी और क्या होगा। हाय! प्राणनाथ, इस अभागिनी के हेतु तुम्हें बड़े दुःख भोगने पड़े।

सुलो०—जो तू कहे तो मैं छत पर से देखूँ कि सभा में क्या होता है।

वि०—जो तेरे जी में आवे और जिससे मेरा भला हो सो कर।

सुलो०—चपला, चल हम देखें तो क्या होता है।

च०—चल। (दोनों जाती हैं)

वि०—अब मैं यहाँ बैठी बैठी क्या करूँगी और मन को कैसे समझाऊँगी। हे भगवान, मेरे अपराधों को क्षमा कर। मैं बड़ी दीन हूँ, मैंने क्या ऐसा अपराध किया है कि तू मुझे दुःख दे रहा है। नहीं, भगवान् का क्या दोष है, सब दोष मेरे भाग्य का है। (हाथ जोड़ कर) हे दीनानाथ, हे दीनबंधु, हे नारायण, मुझ अबला पर दया करो। और जो मैंने सदा निश्छल चित्त से तुम्हारी आराधना क्रिया हो तो मुझे इस दुःख से पार करो।

(नेपथ्य में)

अरे राजकाज के लोगों ने बड़ा बुरा किया कि बिना पहिचाने कांचीपुरी के महाराज गुणसिंधु के पुत्र राजकुमार सुंदर को कारागार में भेज दिया। क्या किसी ने उसे नहीं पहिचाना? मैं अभी जाकर महाराज से कहता हूँ कि यह तो वही है जिसके बुलाने के हेतु आपने मुझे कांचीपुर भेजा था।

वि०—(हर्ष से) अरे, यह कौन अमृत की धार बरसाता है? अहा भगवान ने फिर दिन फेरे क्या? अब मैं भी छत पर चल कर देखूँ कि सभा में क्या होता है।

(जवनिका गिरती है)

तीसरा गर्भांक

स्थान—राजभवन

(राजा सिंहासन पर बैठा है। मंत्री पास है और कुछ दूर पर गंगा भाट खड़ा है)

राजा—मंत्री, गंगा भाट ने जो कहा सो तुम ने सुना?

मंत्री—महाराज, सब सुना।

रा०—तब फिर उनको चोर जानकर कारागार में भेज देना बुरा हुआ।

मं०—महाराज, पहिले यह कौन जानता था कि यह राजा गुणसिंधु का पुत्र है, केवल चोर समझकर उसे दंड दिया गया।

रा०—पर जब से मैंने उसे देखा तभी से मुझको संदेह था कि आकार से यह कोई बड़ा तेजस्वी जान पड़ता है, और मैं सच कहता हूँ कि उसकी मधुर मूर्ति और तरुण अवस्था देखकर मुझे बड़ा मोह लगता था। जो कुछ हो, अब तो विलंब मत कर और शीघ्र ही आप जाकर उसे ले आ, क्योंकि कोतवाल अभी कारागार तक न पहुँचा होगा।

मं०—जो आज्ञा महाराज, मैं अभी जाता हूँ। (जाना चाहता है)

रा०—पर केवल सुंदर को लाना और कोतवाल इत्यादिक को मत लाना।

मं०—जो आज्ञा। (जाता है)

रा०—क्यों कविराज, तुम उसे अच्छी भाँति पहिचानते हो कि नहीं ?

गंगा०—महाराज मैं भली भाँति पहिचानता हूँ और पृथ्वीनाथ, बिना जाने मैं कोई बात निवेदन भी तो नहीं कर सकता।

रा०—तो गुणसिंधु राजा का पुत्र वही है ?

गं०—महाराज, इसमें कोई संदेह नहीं।

रा०—तुम जो न कहते तो बड़ा अनर्थ होता। यह भी हमारे भाग्य की बात है कि ईश्वर ने धर्म बचा लिया। पर मंत्री के आने में इतना विलंब क्यों हुआ, इससे तुम जाकर देखो तो सही।

गं०—जो आज्ञा। (जाता है)

रा०—(आप ही आप) इतना विलंब क्यों लगा ? (शरीर हिलाकर) विद्यावती के संग जो इसका गांधर्व विवाह हुआ वह अच्छा ही हुआ, क्योंकि नीच कुल में विवाह करने से तो मरना अच्छा होता है, परंतु हमारी विद्यावती ने कुछ अयोग्य नहीं किया। यह एक भाग्य की बात है, नहीं तो मैं अपने हाथ से कन्या को जन्मभर का दुःख दे चुका था, अहा भगवान ने बहुत बचाया। (द्वार की ओर देखकर) मंत्री अब तक नहीं आया। (नेपथ्य में पैर का शब्द सुनकर) जान पड़ता है कि सब आते हैं। (गंगा भाट आता है)

गं०—महाराज कांचीराजपुत्र को मंत्री आदरपूर्वक ले आते हैं। (मंत्री और सुंदर आते हैं)

रा०—(सुंदर का मुख चूमकर) यहाँ आओ पुत्र यहाँ। (हाथ पकड़ कर अपने सिंहासन पर बैठाता है) बेटा, मैंने तुमको आज तक अनेक दुःख दिए, इस दोष को मैं स्वीकार करता हूँ और यह माँगता हूँ कि तुम आज से इन बातों को भूल जाओ।

सुं०—(हाथ जोड़कर) महाराज, आप का क्या दोष है? यह तो आपने मुझे उचित दंड दिया था। यह केवल मेरे यौवन का दोष था कि मैंने आपके यहाँ अनेक अपराध किए, सो मै हाथ जोड़कर माँगता हूँ कि आप मुझे क्षमा करें।

रा०—(मंत्री से) मंत्री, रनिवास में से विद्यावती को शीघ्र ही ले आओ।

मं०—जो आज्ञा। (जाता है)

रा०—बेटा, मैंने तुमको जितना दुःख दिया है उसके बदले तो मैं तुम्हारा कुछ भी संतोष नहीं कर सकता, पर मैं इतना कहता हूँ कि तूने विद्यावती से जो गांधर्व विवाह किया है उसमें मैं प्रसन्नतापूर्वक सम्मति प्रगट करता हूँ, जिससे अवश्य तुमको बड़ा संतोष होगा?

सुं०—(हाथ जोड़कर) महाराज, आपकी कृपा ही से मुझको बड़ा संतोष हुआ।

(मंत्री आता है)

रा०—मंत्री, क्या विद्यावती आई?

मं०—महाराज, अभी आती है।

रा०—(सुंदर से) बेटा, तुमने पकड़े जाने के समय अपना नाम क्यों नहीं बताया, नहीं तो इतना उपद्रव क्यों होता?

सुं०—महाराज, जो मैं नाम बतलाता तो भी मेरी बात कौन सुनता और सभासद जानते कि यह प्राण बचाने को झूठी बातें बनाता है, और फिर क्षत्री के निष्कलंक कुल में उत्पन्न होकर ऐसे बुरे कर्म में अपना नाम प्रगट करने से प्राणत्याग करना उत्तम है।

(सुलोचना और चपला के संग विद्या नीची आँख किये हुए आती है)

वि०—(धीरे से) सखी, मैं पिता को मुँह कैसे दिखाऊँगी?

सुलो०—(धीरे से) जब पिता ने बुला भेजा है तो कौन सी लज्जा है।

रा०—आ मेरी प्यारी बेटी, इधर आ। आज तक मैंने तुझे अनेक दुःख दिए थे पर वे सब दुःख आज संपूर्ण हो गए। (उठकर और विद्या का हाथ पकड़कर) प्यारे, यह लो, वीरसिंह का सर्वस्व धन मैं तुम्हें आज समर्पण करता हूँ। (विद्या का हाथ सुंदर के हाथ में देता है और नेपथ्य में बाजा बजता है। और आनंद के शब्द से रंगभूमि भर जाती है) यह बात तो कहना सर्वथा अनुचित है कि इस कन्या पर प्रीति रखना क्योंकि जो परस्पर अत्यंत नेह न होता तो इतना दुःख क्यों सहते, परंतु ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि आज से फिर तुम्हें कोई दुःख न हो और सर्वदा अखंड सुख करो और शीघ्र ही एक बालक हो जिसके देखने से हमारा हृदय और आँखें शीतल हों।

(दोनों दडवत करते हैं)

सुं०—महाराज आप की दया से मेरे सब दुःख दूर हुए, पर यह शंका है कि मैं आपकी प्रसन्नता के हेतु कोई योग्य सेवा नहीं कर सका।

गं०—आज अनंद भयो अति ही बिपदा सबको दुरि दूरि नसाई।
मोद बढयो परजागन को दुख को कहुँ नाम न नेकु लखाई॥
मंगल छाइ रह्यो चहुँ ओर असीसत हैं सब लोग लुगाई।
जोरी जियो दुलहा दुलही की बधाई बधाई बधाई बधाई॥

सुं०—महाराज, आपने मुझे यद्यपि सब सुख दिया तथापि एक प्रार्थना और है।

रा०—कहो, ऐसी कौन वस्तु है जो तुमको अदेय है।

सुं०—(हाथ जोड़कर) महाराज ने यद्यपि मालिन को प्राणदान दिया है, परंतु देश से निकाल देने की आज्ञा है सो अब उसके सब अपराध क्षमा किए जायँ।

रा०—(हँसकर) जो तुम कहते हो सोई होगा (मंत्री से) मंत्री, मालिन के सब अपराध क्षमा हुए, इससे अब उसे कोई दंड न दिया जाय।

मं०—जो आज्ञा।

रा०—(मंत्री से) मंत्री, अब तुम शीघ्र ही ब्याह के सब मंगलसाज सजो, जिसमें नगर में कहीं शोच का नाम न रहै, क्योंकि पुरवासियों को दुलहा दुलहिन के देखने की बड़ी अभिलाषा है और मै वर-वधू को लेकर रनिवास में जाता हूँ।

मं०—महाराज, हम लोगों का जीवन आज सुफल हुआ।

(मंत्री और भाट एक ओर से जाते हैं और राजा और विद्या सुंदर दूसरी ओर से और उनके पीछे सखी जाती हैं)

[जवनिका-पतन होती है]

नेपथ्य में मंगल का बाजा बजता है

॥ इति ॥

रत्नावली

नाटिका

१६२५

भूमिका

हिंदी भाषा में जो सब भाँति की पुस्तकें बनने के योग्य हैं, अभी बहुत कम बनी हैं, विशेष करके नाटक तो [कुँवर लक्ष्मणसिंह के शकुंतला के सिवाय] कोई भी ऐसे नहीं बने हैं जिनको पढ़ के कुछ चित्त को आनंद और इस भाषा का बल प्रगट हो। इस वास्ते मेरी ऐसी इच्छा है कि दो चार नाटकों का तर्जुमा हिंदी में हो जाय तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।

शकुंतला के सिवाय और सब नाटकों में रत्नावली नाटिका बहुत अच्छी और पढ़नेवालों को आनंद-देनेवाली है इस हेतु से मैंने पहिले इसी नाटिका का तर्जुमा किया है और जो ईश्वरेच्छा अनुकूल है और आप गुणगाहकों की अनुग्रहदृष्टि है तो धीरे धीरे कुछ नाटकों का तर्जुमा कर प्रकाशित होता जायगा।

इस नाटिका में मूल संस्कृत में जहाँ छंद थे वहाँ मैंने भी छंद किए हैं। यदि संस्कृत के छंदों से इसके छंदों को मिला के पढ़िए तो इसका परिश्रम प्रगट होगा।

मुझे इसका उल्था करने में श्री पंडित शीतलाप्रसादजी से बहुत सहायता मिली है।

और निश्चय है कि इसका उल्था अगर कोई अच्छी हिंदी जानने वाला करता तो रचना अति उत्तम होती, इससे मुझे आप लोगों से आशा है कि इसके भूल-चूक को सुधारेंगे और मुझे अपने एक दास की नाईं सदा स्मरण करेंगे।

बनारस
मि० वैशाख १ सं० १९२५

हरिश्चंद्र

रत्नावली

नादी

पादाग्रस्थितया मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां ।
शम्भोः सस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने ॥
ह्रीमत्या शिरसीहितः सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया ।
विश्लिष्यन् कुसुमाञ्जलिर्गिरिजया क्षिप्तोऽन्तरे पातु वः ॥१॥

पार्वती शिवजी के पूजन के समय उनके मस्तक पर पुष्पांजलि चढ़ाने के लिए कई बार चरण के अँगूठों के बल से ऊँची हुईं और स्तनों के भार से फिर नीची हो गईं। परंतु जब शिवजी इनकी ओर तीनों नेत्रों से बड़े अभिलाष से देखने लगे तो इनको बड़ी लज्जा हुई और रोम खड़े होगए और अंग में पसीना और कंप होने लगा और हाथ न सम्हल सका तो इन्होंने उस पुष्पांजलि को बीच ही में छोड़ दिया। ऐसी पुष्पांजलि तुम्हारी रक्षा करे।

औत्सुक्येन कृतत्वरा सह भुवाः व्यावर्तमाना ह्रिया ।
तैस्तैर्बन्धुवधूजनस्य वचनैर्नीताऽभिमुख्यं पुनः ॥
दृष्ट्वाऽग्रे परमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे सङ्गमे ।
सद्रोहत्पुलका हरेण हसता श्लिष्टा शिवायास्तु वः ॥२॥

पार्वती प्रथम समागम के समय पहिले तो उत्कंठित हो कर जल्दी से चलीं परंतु जब थोड़ी दूर गईं तो स्वभाव ही से लजा कर फिर पीछे हटीं। जब बंधुजनों की स्त्रियों ने अनेक प्रकार से समझाया तो फिर सन्मुख हुईं और जब पति को आगे देखा तो इनको अति भय हुआ और इनके अंग में रोमांच हो आया तब शिवजी ने हँस कर कंठ से लगा लिया। ऐसी पार्वती तुम्हारा कल्याण करें।

क्रोधोद्दीप्तदृष्टिपातैस्त्रिभिरुपशमिता वह्नयोऽमि त्रयोऽपि ।
त्रासार्त्ता ऋत्विजोऽधश्चपलगणहुतोष्णीषपट्टाः पतन्ति ॥
दक्षः स्तौत्यस्य पत्नी विलपति करुणं विद्रुता चापि देवैः ।
शंसन्नित्यात्तहासो मखमथनविधौ पातु देवैर्शिवो वः ॥३॥

प्रज्वलित हमारी तीनों दृष्टियों के पड़ने से ये तीनों अग्नि बुझ गईं। हमारे चंचल गणों ने ऋत्विकों के माथे की पाग छीन ली है और वे मारे डर के मुँह के बल गिरे पड़ते हैं। दक्ष स्तुति करता है, इसकी स्त्री करुणा कर के रोती है। देवता सब भाग गए, शिवजी दक्ष के यज्ञ के विध्वंस के समय यह कहते हुए तुम्हारी रक्षा करें।

(नांदी के पीछे सूत्रधार आता है)

सूत्रधार—बस बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं। आज इस वसंतोत्सव में महाराज श्रीहर्ष देव के चरण-कमल के आश्रित राजा लोग, जो बहुत देशों से आकर इकट्ठे हुए हैं, उन लोगोंने हमको बड़े आदर से बुलाकर कहा है कि हमारे स्वामी श्रीहर्षदेव ने जो बहुत अपूर्व रत्नावली नाटिका बनाई है उसका वृत्तांत हम लोगों ने बहुत लोगों के मुँह से सुना है पर अब तक उसकी लीला नहीं देखी। इस वास्ते सब लोगों के चित्त को आनंद देनेवाले उनके बहुत मान से और हम लोगों पर अनुग्रह की दृष्टि से उस नाटिका की लीला कीजिए। (घूम कर और चारों तरफ देख कर) अब इस समय नेपथ्य रचना कर लूँ तो फिर जो करना हो सो करूँ। (सब लोगों की तरफ देखकर) अरे, मुझे निश्चय होता है कि सब सभासदों का मन इसी ओर लगा है। क्यों न होय—

श्री हर्ष सो अति निपुन कवि यह सभा जन गुन को धरैं।
जग बत्सराज - चरित्र मन हर हम ललित लीला करैं॥
इन सबन सो जहँ होय एकहु मिलहिं मन बाँछित घने।
यह उदय मेरे भाग्य को जहँ सकल गुन गन हैं बने॥ १॥

तब तक घर से सुघर घरनी को बुलाकर कुछ गाना आरंभ करें। (घूमकर और नेपथ्य की ओर देखकर) यही मेरा घर है, इसके भीतर चलें। (कुछ आगे बढ़ कर) प्यारी, इधर आइयो।

(नटी आई)

नटी—प्राणनाथ! मैं आई हूँ। कहिए आज कौन सी लीला करनी है।

सूत्रधार—प्यारी! इन राजा लोगों को रत्नावली देखने की बड़ी इच्छा है, सो तुम जाकर नेपथ्य के सब साजों को सम्हालो।

नटी—(चिंता से लंबी साँस लेकर) प्राणनाथ ! आप इस बेला निश्चित हो, आप क्यों न नाचोगे। मुझ अभागिन की तो एक ही कन्या है, उसे भी आप ने दूसरे देश में देने कहा है। ऐसे दूर रहनेवाले वर से उसका ब्याह कैसे होगा, इस सोच में मुझे तो अपने देह की भी सुधि नहीं है। नाचना कैसा।

सू०—प्यारी ! वर दूर देश में है, इस बात की कुछ चिंता न करो, क्योंकि—

जौ बिधना अनुकूल तौ दीपन सों सब लाय।
सागर मधि दिग अंत सों तुरत हिं देत मिलाय॥

(नेपथ्य में)

वाहरे नट के छोकड़े वाह "जौ बिधना" यह फिर से पढ़ता है।

सू०—(सुनकर नेपथ्य की ओर देखकर) प्यारी ! अब क्यों विलंब करती हो, यह मेरा छोटा भाई यौगंधरायण बन के आया है। आओ हम लोग भी चल कर अपना अपना भेष धारण करें।

(यह कह के दोनों चले जाते हैं)

[इति प्रस्तावना]

[बहुत प्रसन्न भेष से यौगंधरायण आता है]

यौगंधरायण—यह सच है इसमें कुछ संदेह नहीं। ('जौ बिधना अनुकूल' इत्यादि फिर से पढ़ता है) जो ऐसा न होता तो ये अनहोनी बातें कैसे होतीं कि हमने सिद्ध की बात का विश्वास करके सिंहल द्वीप के राजा की कन्या अपने स्वामी के लिए माँगी और जब उसने भेजी तो जहाज टूट जाने से वह डूबने लगी और एक तखते पर, जो उसको मिल गया था, बहती फिरी और संयोग से उसी समय कौशाम्बी के एक महाजन ने, जो सिंहल द्वीप से फिरा आता था, उसे बहते देखा और उसके गले की रत्नमाला से इसने जाना कि कोई बड़े घर की बेटी है, इससे वह उसको यहाँ लाया। (प्रसन्न होकर) सब भाँति हमारे स्वामी की बढ़ती ही होती जाती है। (विचार करके) और हमने भी उस कन्या को बड़े गौरव से रानी को सौंपा है, यह बात अच्छी हुई। अब सुनने में आया है कि महाराज के

व्याघ्रव्य कंचुकी और सिंहलेश्वर का वसुभूति मंत्री, जो राजकन्या के साथ चले थे, दोनों किसी उपाय से बचकर समुद्र के किनारे लगे और वहाँ सेनापति रमण्व से, जो कौशला नगरी जीतने गया था, मिल के यहाँ आ पहुँचे। इन बातों से यद्यपि हमारे स्वामी का सब काम सिद्ध ही होता है तो भी हमारे जी को धीरज नहीं होता! हा! सेवक का धर्म बड़ा कठिन है।

जद्यपि स्वामिहिं के हित कारन मैंने सबै यह काज कियो है।
देखहु तौ यह भाग की बात सुदैव ने आइ सहाय दियो है॥
सिद्धहु होइगो संसय नाहि सदा निहचै मन माँह लियो है।
तौहू कियो अपने चित सों यह सोचि डरै सब काल हियो है॥

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

(कान लगाकर) अरे यह नगर-निवासियों के चाचर की धुन सुन पड़ती है। मृदंग भी कैसा मधुर बज रहा है और उसी के साथ कैसी मीठी मीठी तानें सुनाई देती हैं। ऐसा अनुमान होता है कि इस वसंतोत्सव में नगरनिवासियों का कौतुक देखने को महाराज अटारी की ओर जाते हैं। (ऊपर देखकर) आहा! महाराज तो अटारी पर आ गए। देखो—

याके राज बीच कहूँ विग्रह नहीं है अरु
विग्रहरहित कामदेवहू सुहायो है।
यह रतिमान और वह रतिपति, यह
प्रजा-चित्त बसे वह जगचित छायो है॥
याको है वसंतक परम सखा, वाहू को
वसंत रितु मित्र यह जग बीच गायो है।
आपुनो महोत्सव विलोकिबे को अनुरागी
काम देव मानो वत्सराज बनि आयो है *॥

तो घर जाकर अब जो करना है उसकी चिंता करूँ। (चला जाता है)

(इति विष्कंभक, परदा गिरा)

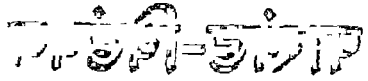
---

* अथवा यह पाठान्तर। दोहा।
रति घर जन चित बसत बिन बिग्रह मित्र बसत।
आयो उत्सव लखन बनि वत्सराज रितु-कंत॥

पाखंड-विडंबन

रूपक

संवत् १९२९



बनारस प्रिंटिंग प्रेस का
सन् १८७३ ई० का संस्करण

समर्पण

मेरे प्यारे !

भला इससे पाखंड का विडंबन क्या होना है ? यहाँ तो तुम्हारे सिवा सभी पाखंड है, क्या हिंदू क्या जैन ? क्योंकि मैं पूछता हूँ कि बिना तुमको पाए मन की प्रवृत्ति ही क्यों है, तुम्हें छोड़ कर मेरे जान सभी झूठे हैं, चाहे ईश्वर हो चाहे ब्रह्म, चाहे वेद हो चाहे इंजील। तो इससे यह शंका न करना कि मैंने किसी मत की निंदा के हेतु यह उल्था किया है क्योंकि सब तुम्हारा है इस नाते से तो सभी अच्छा है और तुमसे किसी से संबंध नहीं इस नाते सभी बुरे हैं। इन बातों को जाने दो।

क्यों जी ऐसे निष्ठुर क्यों हो गए हो ? क्या वह तुम नहीं हो ? इतने दिन पीछे मिलना उस पर भी आँखें निगोड़ी प्यासी ही रहें। मुँह न छिपाओ, देखो, यह कैसा सुंदर नाटक का तमाशा तुमको दिखाता हूँ क्योंकि जब तुम अपने नेत्रों को स्थिर करके यह तमाशा देखने लगोगे तो मैं इतना ही अवसर पाकर तुम्हारी भोली छवि चुपचाप देख लूँगा।

फाल्गुन सुदी १४ सं० १९२९ } तुम्हारा हरिश्चंद्र

पाखंड-विडंबन



(शांति और करुणा आती हैं)

शांति—(सोच से) मेरी प्यारी माँ कहाँ है ? जल्दी मुझे अपना मुखड़ा दिखा। हा !

जो बन मैं, सरितान के तीर, जहाँ बहै सीतल पौन सुहाई।
देवन के घर मैं, ऋषि के घर मैं, जिन आपुनी आयु बिताई॥
सज्जन के चित में जो रही, हिय मैं जिन पुन्य की बेलि बढ़ाई।
सो परी जाय पखंडिन के कर, गाय ज्यौं बाँधि कै राखै कसाई॥

अब मैं जी के क्या करूँगी ? क्योंकि,

मम देखे बिन न्हाय नहिं, नाहिं पिवै, नहिं खाय।
मो बिन प्रान न राखिहै, प्यारी श्रद्धा माय॥

हा ! तो अब श्रद्धा माता के बिना जीना तो दुख ही भोग करना है। सखी करुणा, तू मेरा सोच मत करियो, मैं तो आग में जल के अपनी माँ के पास पहुँचूँगी। (रोती है)

करु०—(सोच से) सखी, यह क्या करती है, तेरा यह दुःख मुझसे सहा नहीं जाता। तू ऐसी बातें कहकर मुझे क्यों अधमरी किए देती है। सखी, धीरज धर और प्राण मत दे, तब तक मैं उसको तीर्थों में, गंगाजी के किनारों पर, सूने बनों में, मुनि लोगों की कुटियों में और देवता के मंदिरों में ढूँढ़ती हूँ। ऐसा न हो कि वह महाराज महामोह के डर से कहीं छिप रही हो।

शां०—सखी, अकारथ क्यों खोज करती है ? क्योंकि,

कूल मैं छाइ रहे हैं सिवार, घिरे हैं विखानस के समुदाई।
त्यों घर ब्राह्मन के चरु सो कुश सों समिधान सो राखे छिराई॥
चारहु आश्रम के इमि मूढ़न कामना की बहु बेलि बढ़ाई।
बातहु नाहिं कहूँ सुनिए कित श्रद्धा गई कछू जान न जाई॥

करु०—सखी, ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो सतोगुनी श्रद्धा है, उसकी ऐसी दुर्गति तो सपने में भी नहीं हो सकती।

शां०—सखी, जब दैव फिर जाता है तो क्या-क्या नहीं होता देख—

श्रीरघुनाथ की प्राण-प्रिया मिथिलेस-लली दससीस चही है।
वेद चुराय कै दानव के गन भागे पताल न जाय कही है॥
वाम मदालसा जो सुरलोक की सो छलिकै खल दैत लही है।
जो विधि वाम भयो सजनी तब जो जो करै सो अचर्ज नहीं है॥

तो चल अब पाखंड ही के घर में चलकर खोज करें।

करु०—ठीक है, चल। (दोनों घूमती हैं)

करु०—(डर से) सखी, मुझे जल्दी बचा।

शां०—हैं! क्या कोई राक्षस है?

करु०—देख, इधर देख, यह शरीर में कीचड़ लगाकर अपने को मैला-कुचैला बनाए, नोचे-खसोटे बाल, नंगा-धिड़ंगा, खोंड़े-मैले दाँत, भोंड़ी-भयावनी सूरत, राक्षस की मूरत हाथ में झाड़ू सा एक मोरछल लिए इधरी चला आता है।

शां०—सखी यह राक्षस नहीं है, क्योंकि ऐसा बलवान् नहीं जान पड़ता।

करु०—तो सखी फिर यह कौन है?

शां०—सखी, हो न हो यह पिशाच है।

करु०—सखी, दिन में पिशाच का गम कहाँ।

शां०—तो कोई नरक से तुरत का ढकेला पापी होगा।

(पास से देखकर और जानकर)

अरे जाना! यह तो महाराज महामोह का भेजा दिगंबर सिद्धांत है, तो इससे दूर ही रहना चाहिए। (मुँह फेरती है)

करु०—सखी, एक-दो घड़ी यहीं ठहर तो श्रद्धा को खोजें।

(दोनों किनारे खड़ी हो जाती हैं, ऊपर कहे हुए भेष से दिगंबर सिद्धात आता है)

दिगं०—नमो अर्हंत, नमो अर्हंत।

नवद्वारां रो देह घर तिसमां आतम दीप।
जिन-वर रो सिद्धांत यह देसी मोच्छ समीप॥

(आकाश की ओर देखकर)

अरे सुणौरे सरावगियो सुणौ अरे,
या मल रूपी देह माँ कसी जलारी सुद्धि।
आतम बिमल स्वभाव छै यह रिषिआँरि बुद्धि॥

(ऊपर कान लगाकर)

क्या कह्यां, कौण रिषिआँरी? अरे सुण—

जौ न करौ परनाम दै मिष्ट भोग सतकार।
तौ बैरहु तिनसों न कर जदपि रमत रिषि दार॥

संरघे इठे इठे।

(वैसा ही भेष बनाए श्रद्धा आती है)

श्र०—हुक्म, महाराज।

(शांति मूर्च्छा खाके गिरती है)

दिगं०—अरे सरावकाँरा कुल एक छिण मत छोड़िया।

श्र०—जो हुक्म, महाराज। [जाती है]

करु०—सखी धीरज धर, धीरज धर, तू इतना क्यों डरती है, क्योंकि मैंने अहिंसा से सुना है कि पाखंडियों की भी तमोगुण की बेटी श्रद्धा है, इससे यह तो तमोगुनी श्रद्धा है।

शां०—(उठकर और अपने को सँभालकर) सखी, ठीक है।

दुराचार मैं अति लपटाई। वेष कुरूप न देख्यौ जाई॥
सब बिधि हीन अहै गुन माहीं। माता की सरि कोउ बिधि नाहीं॥

तो अब हम लोग बौद्धों के घर में उसे खोजें।

(शांति और करुणा घूमती हैं। हाथ में पोथी लिए भिक्षुक बुद्धागम आता है)

भि०—(चिंता करके) अले अले उपाछको, छुनो-छुनो।

छन छन मैं बिगरत बनत जग ता भावहि मानि।
छोड़ि बासना सकल मे मुक्त तत्त्व हम जानि॥

(फिरकर बड़े चाव से)

अलें अले अहाहा ! अले छाबाछ-छाबाछ, इछ धलम्म मैं दोनों लोक का छुख है ।

लहने को मिला घल छुंदलछा, अल भोगन को मिली छुंदल नाली ।
लद्दु अनेकन भोजन को मिले, छैन के हेत ऐ छेज छुखाली ॥
कै छलधा जुअती छब अगन, लाओत तेल फुएल छुवाली ।
दै गल मैं बइयाँ छुल छो इमि, बीतत है नित लात उजाली ॥

करु०—सखी, यह ताड़ सा लंबा, बड़ा गेरुआ काछे, सिरमुँडा कौन है जो इधर की ओर चला आता है ?

शां०—सखी, यह बुद्धागम है ।

भि०—(ऊँचे स्वर से) अले अले उपाछकओ, अले अले भिच्छुओ, अले सुनो, भगवान् छौगत का बचन छुनो—

(पुस्तक पढ़ता है)

अले भिच्छुओ, हम दिव्य चच्छु छे छब लोकों की दुलगति छुलगति छब देखते हैं । अले छब छंछार छनिक है. अले आम्मा भी थायी नहीं हैं, अले इच्छे जोऊ के दाछभिच्छु ओछे जिय की लाअ अच्छी नईं । अले बछ बछ इनकी लाअ छे । (नेपथ्य की ओर देखकर) छलधे, इधल आना इधल ।

(श्रद्धा भिक्षुकी बनी आती है)

श्र०—आज्ञा महाराज ।

भि०—अले उपाछको औ भिच्छुओ छे छब्बदा लपती लहु ।

श्र०—जो आज्ञा, महाराज । [जाती है

शां०—सखी, यह भी तामसी श्रद्धा होगी ।

करु०—सखी, ऐसा ही है ।

दिगं०—(भिक्षुक को देखकर बड़े ऊँचे शब्द से) अरे-अरे भिच्छुक इठे आ, इठे आ, म्हाँ तोसूँ कछू पूछाँगा ।

भि०—(क्रोध से) हट पाप पिछाचकी मूलत, का बकता है ।

दिगं०—अरे क्रोध क्यूँ करै है रे । हों शास्त्रारो बिचार पूछंवावालोछूं ।

भि०—अले छपनक, तू छाछतल वी जानता है, अच्छा देखते हैं। (बैठकर) पूछ, का पूछता है।

दिगं०—अरे कहे छन-निवास वाला मतवारौ तेरो कसो व्रत छै।

भि०—(हिंदी) सुन छनछन में ज्ञान का नाश और उदय होता है इससे जब कोई विज्ञान क्षण में प्राण त्याग करता है तो उसको मोक्ष होता है।

दिगं०—अरे मूरख, अरे जो कोई मन्वंतर मां कोई रो मोछहोवावालो छे वा भयो तौ वह तेरो उपकार कैसे करेगो और पूछूँ के यह धरमरो उपदेश कोएने कियो छै।

भि०—अले छलवग्ग बुध भगोआन ने उपदेछ किआ है।

दिगं०—अरे बुद्ध सरवज्ञ छे यह थैने कहाँ सूँ काढो रे?

भि०—अले उनके छाछतलै छे छिद्ध है।

दिगं०—अरे थोरी बुद्धि के, अरे जो वाही के कहेसुं सर्वज्ञता होती होय तो हूँ भी कहूँ छूँ के हूँ सर्वज्ञ छूँ, और हूँ भले जानू छूँ, जो हूँ सर्वज्ञांरो सर्वज्ञ छूँ, और थैं और थारे बाप दादे सात पुरषा म्हारे दास छैं।

भि०—अले पाप पिछाच, अले मैला कुचैला, अले हम तेले दाछ हैं ले।

दिगं०—अरे दासियों के दास! यह तो मैंने एक दृष्टांत दियो। अरे अब तेरे हित की कहूँ सुन। बुद्ध का धरम छोड़ि और अर्हंत को धरम लै।

भि०—अले पापी, आप नाछ होकल दूछलों को वी नाछ कलता है।

[हिं०] छोड़ि सबै घरबार कौ करि निंदित के कर्म।
भयो पिशाच समान तू लै जैनिन के धर्म॥

औल वी जैन धलम्म की छलवग्गता तैने कैछै जानी।

दिगं०—अरे ग्रह-नक्षत्र, चंद्र सूर्य्य ग्रहण के ज्ञान के संवाद का देखवाही सूं भगवान अरहंतरी सर्व्वज्ञता प्रगट थायछै।

भि०—(हँसकर) अले जोतिछ छाछतल तो अनादिं है, न जाने किछ ने तुम लोगों को धोखा देकल इछ धलम मैं लखाछै।

[हिं०] है जितनो बड़ो देह को पिंडक जीवहू तैसई रूपहि धारिहै ।
तासो न जानिहै और कछू निज देह ही को सब बात सम्हारिहै ॥
जाकी नहीं गति दूसरे लोक मैं सो किमि बात कहूँ को बिचारिहै ।
कुंभ के भीतर दीप ढँक्यो सो न बाहर क्यौंहूँ प्रकाश पसारिहै ॥

इछछे दोनों लोक-विलुद्ध जैनमत छे, छुगत भगवान ही का मत अच्छा है, इछमें छंदेह कुछ नई है ।

शां०—सखी, चल उधर चलें ।

करु०—चल, सखी ।

(दोनो घूमती हैं)

शां०—सखी, देख यह सामने सोम सिद्धांत आता है तो चल इसके पीछे चलें ।

(कापालिक का रूप धारण किए सोम सिद्धांत आता है;)

कापा०—(घूमकर)

हाड़ की कंठ मैं चारु माला धरे ।
मर्घटी खोपड़ी मैं अहारै करे ॥
देखते जोग की दृष्ट मंझार से ।
एक श्री संभु से भिन्न संसार से ॥

दिगं०—अरे यह पुरुष कापालिक व्रत धारे है तौ, यासूँ होहूँ कछु पूछूँ ।

(पास जाकर)

बोल रे बोल कापालिका तू अरे ।
हाड़ और मूड़ को कंठ माला धरे ॥
कौन सो धर्म्म रे कौन सो धर्म्म है ।
मोच्छ जामैं मिलै सो कसो कर्म्म है ॥

कापा०—अरे छपनक, सुन जो हम लोगों का धर्म्म है

नित सीस के काटे लहू सों भरे चरबी लगे मास को होम करैं ।
पुनि खोपड़ी ब्राह्मण जात की लाइकै पारन कै हित मद्य भरैं ॥
अरु काटि कै कंठ कठोर तुरत के रक्तन कुंभ भराइ धरैं ।
मम देवता भैरवनाथ जू हैं, जिन्हैं पूजत लोग अनेक तरैं ॥

भि०—(दोनों कान मूँदकर) बुद्ध बुद्ध अले बला कथिन धलम्म है।

दिगं०—(कान मूँदकर) अर्हंत अर्हंत, अरे कोऊ बड़े पापी ठगिया ने या बिचारा कूँ ठग लियो छै।

कापा०—(क्रोध के) क्यों रे पाप पाखंडियों में नीच, मुड़मुड़े, नीचे खसोटे! अरे चौदहो भुवन के स्वामी, स्थिति उत्पत्ति प्रलय पालन करनेवाले, वेदांत वेद्य भगवान् भवानीनाथ का मत ठगों का है! क्यों रे? अरे सुन इस मत की महिमा।

हरि हर आदिक देवगनन को बाँधि मँगाऊँ।
नभ-पथ मैं नक्षत्रन की गति रोकि थिराऊँ॥
परबत नदी समुद्र नगर नर सह यह धरनी।
इक प्यालें में घोरि पिऊँ, यह सुनि मम करनी॥

दिगं०—अरे कपालिया सोई तो कहूँ छूँ कै काहू इंद्रजाल-वारे ने तोकूँ इंद्रजाल दिखाइ कै भरमाइ दियो छै।

कापा०—अरे पापी, फिर भी भगवान् पर इंद्रजालवाले का आक्षेप करता है? तो अब इसका घमंड दूर करना चाहिए। (खड्ग खींचकर) तो अब मैं।

अहो खींच कै खड्ग की तीक्ष्ण धारैं।
गरौ काटि कै दुष्ट को मारि डारैं॥
लग्यौ फेन ताजो लहू यासु लैहौं।
अबै हौं भवानी-भवै तृप्ति दैहौं॥

(खड्ग लेकर दौड़ता है)

दिगं० (डर से) महाभाग "अहिंसा परमो धर्म्मः।"

(भिक्षुक की गोद में छिपता है)

भि०—(कापालिक को निवारण करके)। महालाज, महालाज, हँछी की बकवाद में इछ तपच्छी को बध उचित नहीं है।

कापा०— (खड्ग मियान में रखता है)

दिगं०—(फिर उठकर) जो महाराजरों क्रोध शान्त भयो होय तो हौं कछू पूछिबे की इच्छा करूँ छूँ।

कापा०—पूछ, क्या पूछता है ?

दिगं०—आप को धरम्म तो सुन्यौ पर मोक्ष को सुख कसो होय छै ?

कापा०—सुन—

है न कछू बिन भोग के या जग, कौन जो दूसरो सुक्ख बतावै ।
मानि कै वेद न ज्ञानहि छाँड़ि कै ह्वै पथरा निज मुक्ति बनावै ॥
पारबती सम प्यारिन सों बिहरै रति मैं मुख सों मुख लावै ॥
ह्वै शिव नाचै अनंद भरो जग मैं सुख सो निज काल बितावै ॥

भि०— महालाज, वैलागियों को तो ऐछी मुक्ति न अच्छी लगेगी ।

दिगं०— अरे खप्परवारे, जो तू रीसे न तो यह पूछूँ जो शरीर और प्रेम दोऊ होते हू मुक्ति तो वेद में नहीं ।

कापा०—(आप ही आप) अरे इनके चित्त में तनिक भी श्रद्धा नहीं है । अच्छा देखो । (प्रकाश) श्रद्धे, इधर तो आना ।

(कापालिनी बनी हुई श्रद्धा आती है)

कप०—सखी, देख यह रजोगुण की बेटी श्रद्धा है ।

दृगयुग अलसाने कज से नील सोहैं ।
जुवजन गजमाला अस्थि की देखि मोहैं ॥
कुच अरु उरु भारैं चाल धीरी लई है ।
मुखछबि यह देखौ चंद की सी भई है ॥

श्र०—(घूम कर) रावलजी, मैं आई, कहिए क्या आज्ञा है ?

कापा०—प्यारी, पकड़ तो इस भिक्षुक को ।

(श्रद्धा भिक्षुक को लपट जाती है)

भि०—(लपटकर और रोमांच दिखाकर) वाहले, कपालिनी का लपटने का छुख । [हिंदी में]

बार अनेकन रंडन कों हम लै निज कंठ लगायो ।
चूमि मुखै गल मैं भुज डालि सदा निज जन्म बितायो ॥
औरहु भोग अनेक किए कुचवारिन कों लपटायो ।
जो सुख मोहि कपालिनी दीन न सो कबहूँ हम पायो ॥

अले कपालिक चलित्तवाला पवित्तल है, अहाहा अले छोम छिद्धान्त इच्छा कलने के जोग हैं, अले यह वला अचलज धलम है। महालाज, हमने आजछे बुद्ध का मत छोआ औल कौल धलमें लिआ, आप हमाले आचालज हो, हम आपके छिछ भए, छो अब हमको पलमेछुली दिच्छा दीजिए।

दिगं०—अरे भिच्छुक, तू अबी कपालिनी के संग सूँ दूषित होय गयो सो दूर हट।

भि०—अले दिगंबल तू अबी कपालिनी का छुख का जानै!

कापा०—प्यारी पकड़ इसको भी।

(श्रद्धा दिगंबर को लपटती है)

दिगं०—(रोमांचित होकर) अहाहा! वाह रे! कपालिनी-गल लगवा रो सुख, अरी सुन्दरी एक-बार तो फेर गरे-सूँ लपटि जा। *(स्वगत) अरे ऐसी समय नाँगो रहिवो उचित नहीं, तासूँ लंगोटी* लगाय लेऊँ तो ठीक पुरै। (लंगोटी कसकर) अहाहा (गाता है)

अरे सुण पीण-पयोधर-वारी।
थारे इन नैणाँरी सोभा मृगनू लजावनहारी॥
री कपालिनी जौं तू म्हासूँ रमण करै मिलि प्यारी।
तौ सुरावणिए और जतिणरो काम कछू न यहाँ री॥

अरे कपालिक रो दरसन ही मोच्छ को सुख छै। अरे आचारज, हूँ थारो सेवक छूँ, हमकूँ भैरवी दिच्छा ध्यान सूँ दै।

कापा०—अच्छा बैठो।

(दोनो बैठते हैं। कापालिक हाथ में बोतल लेकर ध्यान करता है)

श्र०—रावलजी, बोतल मद से भर गया।

कापा०—(देखकर और कुछ पीकर, शेष भिक्षुक को देता है)

यह पवित्र भवभयहरण, अमृत पियो इक साथ।
करम-पास यासों कटत, भाखत भैरवनाथ॥

(दोनो कुछ सकोच करते हैं)

दिगं०—अरे म्हारें अर्हंतानुशासन में मद पीवारी आज्ञा तो कोई नहीं।

भि०—अले कपालिक की जूथी मदिला कैछे पीयैंगे।

कापा०—क्या सोचते हो ? श्रद्धे, इन दोनों का पशुत्व अब भी नहीं गया। ये हमारे पीने से मदिरा को जूठी समझते हैं, इससे तू अपने अधर के रस से इसको पवित्र करके इन दोनों को दे, क्योंकि कथावाले भी कहते हैं, "स्त्रीमुखं तु सदा शुचि।"

श्र०—महाराज की जो आज्ञा। (आप पीकर बोतल भिक्षुक को देती है)

भि०—महापछाद है। (बोतल लेकर पीता है) अहा कैछी छुंदल दुधिया है।

बहु बार वारबधून के सँग पान हम मद को करयौ।
जो अधर-मधु के संग मौलसिरी सुगंधन सों भरयौ॥
यह तौ सुवासित आप जोगिनि वदन सगम जानहीं।
जेहि जानि दुरलभ देवगन लै अमृत बहु सुख मानहीं॥

दिगं०—अरे भिक्षुक, सब आप ही आप मत पी जा, कपालिनीरी जूठी मीठी मदिरा थोड़ी म्हारे कूँ बी तो छोड़।

(भिक्षुक दिगंबर को बोतल देता है)

दिगं०—(पीकर) अहाहा! वाह रे या मदिरा की मिठास, वाह रे स्वाद, वाह रे सुगंध, वाह रे मादकता, अरे मैं तो अर्हंत के मत में रह्यौ सो ऐसो मदिरा बिना बहुत ही ठग्यो गयो रे, अरे भिक्षुक मेरो तो माथो घूमै छै, तासों हूँ तो सोऊँगो।

भि०—बहुत थीक है। (दोनों लेटते हैं)

कापा०—प्यारी, यह आज बिना मोल के दो दास मिले हैं, तो उठ इस आनंद में हम लोग नृत्य करें। (दोनों नाचते हैं)

दिगं०—अरे भिक्षुक, यह कपालिक, अरे हौं भूल्यो, आचारज कपालिनी के संग नाच रह्यो छै तो हम दोऊ क्यौं न नाचैं।

भि०—थीक है। (दोनों नाचते हैं)

दिगं०—("अरे सुण पीण-पयोधर-वारी..." यह गाता है और गिरता-गिरता नृत्य करता है)

भि०—आचालज ! इस मत में यह अचलज है कि विना पलिछलम ही छब छिद्धि मिलती है।

कापा०—अरे तूने इसमें आश्चर्य क्या समझा ?

जाहि बिलोकौं बनै सोई सिद्ध, धरूँ निज चित्त जो सोई करौं।
अरु कामकलान की बातैं अनेक पढ़ाइ सिखाइ कै कष्ट हरौं॥
पुनि मोहन मारन कर्षन थंभन आदि अनेकन सिद्धि भरौं।
वह कौनसी कामना जो न मिले जिय यामें कछू न संदेह धरौं॥

दिगं०—अरे कपालिक, (कुछ ठहरकर) नहिं आचरज वा आचार्ज रावलजी, श्री आचारजजी महाराज।

भि०—अले इछ विचाले तपछली ने कवी मद-पान तो कियाई नईं था, इच्छे बावला ओगया है। महालाज, आप इछका मद उताल दीजिए।

कापा०—ठीक है। (अपने जूठे पान की सीठी देता है)

दिगं०—(खाकर और स्वस्थ होकर) आचार्य, हों यह पूछूँ के जैसी या मदिरा में आहरण सिद्धि छे वैसो स्त्री-पुरुष के आहरण मैं छे के नहीं ?

कापा०—अरे यह क्या पूछता है, देख—

सुर, मुनि विद्याधर की नारी। यच्छरच्छ किन्नर की प्यारी॥
स्वर्ग भूमि पाताल छिपाई। भोगैं सब विद्या बल लाई॥

दिगं०—(कुछ उँगलियों पर गिनकर) सूणौ सूणौ अरे हमनै गनित सूँजान्यौ के हम सब महामोह के किंकर हैं।

दोनों—(स्मरण आना नाट्य करके) ठीक है, आपने बहुत ठीक समझा है।

दिगं०—तो अब राजा को कछु काम करो।

कापा०—वह क्या ?

दिगं०—धर्म्मरी बेटी श्रद्धा कूँ पकड़ कै म्हाराजरे पास ले चलो।

कापा०—बोल वह दासी को पुत्री कहाँ है, अभी उसको विद्या के बल से खींच मँगाता हूँ।

दिगं०—(खड़ी लेकर गणित करता है।)

शां०—सखी, देख यह सब माता की बात करते है, इससे कान लगाकर सुनना चाहिए।

करु०—सखी, ठीक है। (दोनों सुनती हैं)

दिगं०—(विचारकर)

नहि जल थल पाताल मै, गिरवर हू मैं नाहि।
कृष्णभक्ति के सग वह बसत साधु-चित माहि।

करु०—सखी, बधाई है! सुन तेरी माँ श्रद्धा श्रीकृष्ण की भक्ति महारानी के सँग है।

(शांति हर्ष नाट्य करती है)

कापा०—और कामदेव के डर से भागकर धर्म्म कहाँ छिपा है?

दिगं०—(गिनकर "नहि जल थल..." फिर से पढ़ता है।)

कापा०—(सोच से) हा! महाराज के बुरे दिन आए।

हरिभक्ति सबै कछु सिद्ध करै। सरधा सतकन्यका दोष हरै॥
पुनि धर्म्महूँ सो कर छूट गयो। सबही विधि हाय अनर्थ भयो॥

जो होय। प्राण रहे तक तो स्वामी का काम साधना ही है, तो अब हम महाभैरवी विद्या का प्रयोग करके धर्म्म और श्रद्धा को खींचते हैं।

(चारो जाते हैं)

शां०—सखी, चल हमलोग भी इन पापियों का मनोरथ देवी विष्णु-भक्ति से कहें। [दोनों जाती हैं

(जवनिका पतन)

इति श्रीप्रबोधचंद्रोदय नाटक में पाखंड-विडंबन नाम यह तीसरा खेल समाप्त हुआ।

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

प्रहसन

संवत् १९३०

सन् १८७३ ई० में मेडिकलहाल प्रेस से,
सन् १८८४ ई० में भारतजीवन प्रेस से,
प्रकाशित

DEDICATION

प्यारे !

मैं तुम्हें क्या तमाशा दिखाऊँगा, हाँ धन्यवाद करूँगा क्योंकि निस्संदेह तुमने ऐसा तमाशा दिखाया कि सब कुछ भूल गया। अहा ! स्त्री-पुरुष, पंडित-मूर्ख, अपना-बिगाना और छोटे-बड़े सबका तमाशा देखा पर वाह ! क्या ही तमाशा है—तमाशा तो है पर देखनेवाले थोड़े हैं, न हो तुम देखो मैं देखूँ, उन्हीं तमाशाओं में से यह भी एक तमाशा है, देखो।

चश्मे मन् बर चश्मे तू चश्मान् तू जाए दिगर।
मन तमाशाए तू बीनम् तू तमाशाए दिगर ॥*

श्रावण शुद्धा ११
सोम-सं० १९३०

तुम्हारा
हरिश्चंद्र

---

* मेरी आँख तुम्हारी आँख पर है और तुम्हारी आँखें अन्यत्र हैं। मैं तुम्हारी लीला देखता हूँ और तुम दूसरे की। (स०)

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति

प्रहसन

—०※०—

नांदी

दोहा—बहु बकरा बलि हित कटैं, जाके बिना प्रमान।
सो हरि की माया करै, सब जग को कल्यान॥

(सूत्रधार और नटी आती है)

सूत्रधार—अहा हा ! आज की संध्या को कैसी शोभा है। सब दिशा ऐसी लाल हो रही है, मानों किसी ने बलिदान किया है और पशु के रक्त से पृथ्वी लाल हो गई है।

नटी—कहिए आज भी कोई लीला कीजिएगा ?

सूत्र०—बलिहारी ! अच्छी याद दिलाई। हाँ जो लोग मांसलीला करते हैं उनकी लीला करेंगे।

(नेपथ्य में) अरे शैलूषाधम ! तू मेरी लीला क्या करेगा। चल भाग जा, नहीं तो तुझे भी खा जायँगे।

(दोनों सभय) अरे हमारी बात गृध्रराज ने सुन ली, अब भागना चाहिए, नहीं तो बड़ा अनर्थ करेगा।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना

———

प्रथम अंक

स्थान–रक्त से रँगा हुआ राजभवन

(नेपथ्य में) बढ़े जाइयो ! कोटिन लवा बटेर के नाशक, वेद-धर्म प्रकाशक, मंत्र से शुद्ध करके बकरा खानेवाले, दूसरे के मांस से अपना मांस बढ़ानेवाले, सहित सकल समाज श्रीगृध्रराज महाराजाधिराज !

(गृध्रराज, चोबदार, पुरोहित और मंत्री आते हैं)

राजा—(बैठकर) आज की मछली कैसी स्वादिष्ट बनी थी ।

पुरोहित—सत्य है । मानो अमृत में डुबोई थी और ऐसा कहा भी है—

केचित् वदन्त्यमृतमस्ति सुरालयेषु केचित् वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु ।
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षाः जंबीरनीरपरिपूरितमत्स्यखण्डे ॥[1]

राजा—क्या तुम ब्राह्मण होकर ऐसा कहते हो ? ऐं तुम साक्षात् ऋषि के वंश में होकर ऐसा कहते हो !

पुरो०—हाँ हाँ ! हम कहते हैं और वेद, शास्त्र, पुराण, तंत्र सब कहते हैं । "जीवो जीवस्य जीवनम् ।"[2]

राजा—ठीक है इसमें कुछ संदेह नहीं है ।

पुरो०—संदेह होता तो शास्त्र में क्यों लिखा जाता । हाँ, बिना देवी अथवा भैरव के समर्पण किये कुछ होता हो तो हो भी ।

मंत्री—सो भी क्यों होने लगा । भागवत में लिखा है—

" लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्ति जन्तोर्नहि तत्र चोदना ॥ "[3]

---

१. कुछ कहते हैं कि अमृत स्वर्ग में है, कुछ कहते हैं कि स्त्री के अधर-पल्लव में रहता है पर सभी शास्त्रों के विचार में कुशल हम कहते हैं कि वह नीबू के रस में डूबे हुए मछली के टुकड़े में है ।

२. जीव का जीवन जीव ही है अर्थात् एक प्राणी को खाकर अन्य प्राणी प्राण धारण करते हैं ।

३. संसार में मैथुन, मांस तथा मद्य की सेवा जीव मात्र के लिए अनिवार्य है । उसके लिए कोई नियंत्रण नहीं है ।

पुरो०—सच है और देवी की पूजा नित्य करना इसमें कुछ सन्देह नहीं है, और जब देवी की पूजा भई तो मांस-भक्षण आ ही गया। बलि बिना पूजा होहीगी नहीं और जब बलि दिया तब उसका प्रसाद अवश्य ही लेना चाहिये। अजी भागवत में बलि देना लिखा है, जो वैष्णवों का परम पुरुषार्थ है।

"धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरेश्वरीं" [1]

मंत्री—और "पंच पंचनखा भक्ष्याः" [2] यह सब वाक्य बराबर से शास्त्रों में कहते ही आते हैं।

पुरो०—हाँ हाँ, जी इसमें भी कुछ पूछना है, अभी साक्षात् मनुजी कहते हैं—

"न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने" [3]

और जो मनुजी ने लिखा है कि—

"स्वमांस परमांसेन यो वर्द्धयितुमिच्छति" [4]

सो वही लिखते हैं—

"अनभ्यर्च्य पितॄन् देवान्" [5]

इससे जो खाली मांस-भक्षण करते हैं उनको दोष है। महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मण गोमांस खा गये पर पितरों को समर्पित था इससे उन्हें कुछ भी पाप न हुआ।

मंत्री—जो सच पूछो तो दोष कुछ भी नहीं है, चाहे पूजा करके खाओ चाहे वैसे खाओ।

पुरो०—हाँ जी, यह सब मिथ्या एक प्रपंच है, खूब मजे में मांस कचर-कचर के खाना और चैन करना। एक दिन तो आखिर

---

१. सब इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली भगवती का धूप, भेंट, बलि आदि से (पूजन करना चाहिए)।

२. पाँच नखवाले पाँच जीव खाने योग्य हैं।

३. मास खाने, मद्य पीने तथा मैथुन में दोष नहीं है।

४. जो दूसरे के मांस से अपना मांस बढ़ाना चाहता है।

५. पितरों और देवताओं की पूजा न करके।

मरना ही है, किस जीवन के वास्ते शरीर को व्यर्थ वैष्णवों की तरह क्लेश देना, इससे क्या होता है ?

राजा—तो कल हम बड़ी पूजा करेंगे। एक लाख बकरा और बहुत से पक्षी मँगवा रखना।

चोबदार—जो आज्ञा।

पुरो०—(उठ करके नाचने लगा) अहाहा ! बड़ा आनंद भया, कल खूब पेट भरेगा।

(राग कन्हरा ताल चर्चरी)

धन्य वे लोग जो मांस खाते।
मच्छ बकरा लवा ससक हरना चिड़ा भेड़ इत्यादि नित चाभ जाते॥
प्रथम भोजन बहुरि होइ पूजा सुनित अतिही सुखमा भरे दिवस जाते।
स्वर्ग को वास यह लोक में है तिन्हैं नित्य एहि रीति दिन जे बिताते॥

(नेपथ्य में वैतालिक)

राग सोरठ

सुनिए चित धरि यह बात।
बिना भक्षण मांस के सब व्यर्थ जीवन जात॥
जिन न खायो मच्छ जिन नहिं कियो मदिरा पान।
कछु कियो नहिं तिन जगत मैं यह सुनिहचै जान॥
जिन न चूम्यौ अधर सुंदर और गोल कपोल।
जिन न परस्यौ कुंभ-कुच, नहिं लखि नासा लोल॥
एकहू निसि जिन न कीना भोग, नहिं रस लीन।
जानिए निहचै ते पशु हैं तिन कछू नहिं कीन॥

दोहा—एहि असार संसार में चारि वस्तु है सार।
जूआ मदिरा मांस अरु नारी-संग बिहार॥

क्योंकि

"मास एव परो धर्मो मास एव परागतिः।
मास एव परो योगी मांस एव पर तपः॥"[1]

---

१. मांस ही श्रेष्ठ धर्म, मांस ही परम गति, मांस ही पूर्ण योग और मांस ही उत्तम तप है।

हे परम प्रचंड भुजदंड के बल से अनेक पाखंड के खंड को खंडन करनेवाले, नित्य एक अजापुत्र के भक्षण की सामर्थ्य आप में बढ़ती जाय और अस्थि-माला धारण करनेवाले शिवजी आपका कल्याण करें। आप बिना ऐसी पूजा और कौन करे। (आकर बैठता है)

पुरो०—वाह वाह ! सच है, सच है।

(नेपथ्य में)

पतीहीना तु या नारी पत्नीहीनस्तु यः पुमान्।
उभाभ्यां षंडरंडाभ्यान्न दोषो मनुरब्रवीत् ॥ [1]

(सब चकित होकर)

ऐसा मालूम होता है कि कोई पुनर्विवाह का स्थापन करनेवाला बंगाली आता है।

(नंगे सिर बड़ी धोती पहिने बंगाली आता है)

बंगाली—अक्षर जिसके सब बे-मेल, शब्द सब बे-अर्थ, न छंद वृत्ति न कुछ, ऐसे भी मंत्र जिसके मुँह-से निकलने से सब कार्यों के सिद्ध करनेवाले हैं ऐसी भवानी और उनके उपदेष्टा शिवजी इस स्वतंत्र राजा का कल्याण करें।

(राजा दंडवत् करके बैठाता है)

राजा—क्यों जी भट्टाचार्यजी, पुनर्विवाह करना वा नहीं ?

बंगाली—पुनर्विवाह का करना क्या ! पुनर्विवाह अवश्य करना। सब शास्त्र की यही आज्ञा है, और पुनर्विवाह के न होने से बड़ा लोकसान होता है, धर्म का नाश होता है, ललनागन पुंश्चली हो जाती हैं, जो विचार कर देखिए तो विधवागन का विवाह कर देना उनको नरक से निकाल लेना है और शास्त्र की भी आज्ञा है।

"नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥" [2]

---

१. विधवा स्त्री और विधुर पुरुष इन दोनों षंड-रंडा (के समागम में) दोष नहीं है, ऐसा मनु कहते हैं।

२. पति के नष्ट हो जाने, मर जाने, लापते हो जाने, षंड होने और पतित हो

ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेद्यती गच्छेत्तपस्विनीं ।
अस्त्रीको विधवा गच्छेन्न दोषो मनुरब्रवीत् ॥ [१]

राजा—यह वचन कहाँ का है ?

बंगाली—यह वचन श्रीपराशर भगवान् का है जो इस युग के धर्म्मवक्ता हैं यथा—कलौ पाराशरी स्मृतिः । [२]

राजा—क्यों पुरोहितजी, आप इसमें क्या कहते हैं ?

पुरो०—कितने साधारण धर्म ऐसे हैं कि जिनके न करने से कुछ पाप नहीं होता, जैसा—"मध्याह्ने भोजनं कुर्यात्" [३] तो इसमें न करने से कुछ पाप नहीं है, बरन व्रत करने से पुण्य होता है। इसी तरह पुनर्विवाह भी है। इसके करने से कुछ पाप नहीं होता और जो न करे तो पुण्य होता है। इसमें प्रमाण श्रीपाराशरीय स्मृति में—

"मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थिता ।
सा नारी लभते स्वर्गं यावच्चंद्रदिवाकरौ ॥" [४]

इस वचन से, और भी बहुत जगह शास्त्र में आज्ञा है, सो जो विधवा विवाह करती है उनको पाप तो नहीं होता पर जो नहीं करतीं उनको पुण्य अवश्य होता है, और व्यभिचारिणी होने का जो कहो सो तो विवाह होने पर भी जिसको व्यभिचार करना होगा सो करेहीगी। जो आपने पूछा वह हमारे समझ में तो यों आता है परंतु सच पूछिए तो स्त्री तो जो चाहे सो करे इनको तो दोष ही नहीं है—

जाने पर, इस प्रकार की पाँच आपत्तियों में पड़ी, स्त्रियों के लिए दूसरे पति का विधान है।

१. ब्राह्मणी में ब्राह्मण, साधुनी में साधु और विधवा में स्त्री-रहित पुरुष रमण करे तो दोष नहीं है, ऐसा मनु ने कहा है।

२. कलियुग में पराशर ऋषि की बनाई स्मृति मान्य है।

३. मध्यान्ह के समय भोजन करना चाहिए।

४. पति की मृत्यु पर जो स्त्री ब्रह्मचर्य व्रत धारण करती है वह जब तक सूर्य-चंद्र हैं तब तक स्वर्ग में स्थान पाती है।

"न स्त्री जारेण दुष्यति", ।[१] "स्त्रीमुख तु सदा शुचि", ।[२]
"स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु", ।[३] "व्यभिचारादृतौ शुद्धिः" ।[४]

इनके हेतु तो कोई विधि-निषेध है ही नहीं, जो चाहें करें, चाहें जितना विवाह करें, यह तो केवल एक बखेड़ा मात्र है।

(सब एक-मुख होकर) सत्य है, वाह जी, क्यों न हो यथार्थ है।

चोबदार—संध्या भई महाराज !

राजा—सभा समाप्त करो।

—०❀०—

१. स्त्री जार पुरुष के कारण दूषित नहीं होती।

२. स्त्री का मुख सर्वदा पवित्र है।

३. ससार में सभी स्त्रियाँ कला युक्त हैं।

४. व्यभिचार के अनन्तर ऋतु प्राप्त होने पर शुद्धि हो जाती है।

द्वितीय अंक

स्थान—पूजाघर

(राजा, मन्त्री, पुरोहित और भट्टाचार्य्य आते हैं और अपने अपने स्थान पर बैठते हैं)

चोबदार—(आकर) श्रीमच्छंकराचार्य्यमतानुयायी कोई वेदांती आया है।

राजा—आदरपूर्वक ले आओ।

(विदूषक आया)

विदूषक—हे भगवान्, इस बकवादी राजा का नित्य कल्याण हो जिससे हमारा नित्य पेट भरता है। हे ब्राम्हण लोगों! तुम्हारे मुख में सरस्वती हंस-सहित वास करे और उसकी पूँछ मुख में न अटके। हे पुरोहित, नित्य देवी के सामने मराया करो और प्रसाद खाया करो।

(बीच में चूतर फेर कर बैठ गया)

राजा—अरे मूर्ख फिर के बैठ।

विदू०—ब्राह्मण को मूर्ख कहते हो फिर हम नहीं जानते जो कुछ तुम्हें दंड मिले, हाँ!

राजा—चल मुझ उद्दंड को कौन दंड देनेवाला है।

विदू०—हाँ फिर मालूम होगा।

(वेदांती आए)

राजा—बैठिए।

वेदांती-अद्वैतमत के प्रकाश करनेवाले भगवान् शंकराचार्य इस माया-कल्पित मिथ्या संसार से तुझको मुक्त करें।

विदू०—क्यों वेदांतीजी, आप मांस खाते हैं कि नहीं?

वेदांती—तुमको इससे कुछ प्रयोजन है?

विदू०—नहीं, कुछ प्रयोजन तो नहीं है। हमने इस वास्ते पूछा कि आप वेदांती अर्थात् बिना दाँत के हैं सो आप भक्षण कैसे करते होंगे।

(वेदांती टेढ़ी दृष्टि से देखकर चुप रह गया। सब लोग हँस पड़े)

विदू०—(बंगाली से) तुम क्या देखते हो ? तुम्हें तो चैन है। बंगाली मात्र मच्छ भोजन करते हैं।

बंगाली—हम तो बंगालियों में वैष्णव है। नित्यानंद महाप्रभु के संप्रदाय में हैं और मांसभक्षण कदापि नहीं करते और मच्छ तो कुछ मांसभक्षण में नहीं।

वेदांती—इसमें प्रमाण क्या ?

बंगाली—इसमें यह प्रमाण कि मत्स्य की उत्पत्ति वीर्य और रज से नहीं है। इनकी उत्पत्ति जल से है। इस हेतु जो फलादिक भक्ष्य हैं तो ये भी भक्ष्य हैं।

पुरो०—साधु-साधु ! क्यों न हो। सत्य है।

वेदांती—क्या तुम वैष्णव बनते हो ? किस संप्रदाय के वैष्णव हो ?

बंगाली—हम नित्यानंद महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय में हैं और श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु श्रीकृष्ण ही हैं, इसमें प्रमाण श्रीभागवत में—

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं सांगोपागास्त्रपार्षदैः।[1]
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति ह्यणुमेधसा॥

वेदांती—वैष्णवों के आचार्य्य तो चार हैं। तो तुम इन चारों से विलक्षण कहाँ से आए ?

अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः।[2]

राजा—जाने दो, इस कोरी बकवाद का क्या फल है ?

(नेपथ्य मे)

---

१. श्याम वर्ण होते हुए भी गौर कांति युक्त, अस्त्र पार्षद आदि से सर्वांग पूर्ण महाप्रभु का कीर्तन रूप यज्ञ से विचारवान पूजा करते हैं।

२. इस प्रकार कलियुग में चार सप्रदाय होंगे।

उमासहायं परमेश्वर विंभु त्रिलोचन नीलकंठं दयालुम् । [१]

(पुनः) गोविन्द नारायण माधवेति । [२]

पुरो०—कोई वैष्णव और शैव आते हैं।

राजा—चोबदार जा करके आदर से ले आओ। (चोबदार बाहर गया, वैष्णव और शैव को लेकर फिर आया)

(राजा ने उठ कर दोनों को बैठाया)

दोनों—शंख कपाल लिए कर मैं, कर दूसरे चक्र त्रिशूल सुधारें।
माल बनी मणि अस्थि की कंठ मैं, तेज दसो दिसि माँझ पसारें॥
राधिका पारवती दिसि बाम, सबै जगनाशन पालनवारे।
चंदन भस्म को लेप किए हरि ईश हरैं सब दुःख तुम्हारे॥

बंगाली—महाराज, शैव और वैष्णव ये दोनों मत वेद के बाहर हैं।

सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः।
आदिदेवीमुपासन्ते गायत्री वेदमातरम्॥[३]

तथा—तस्मान्माहेश्वरी प्रजा।[४]

इस युग का शास्त्र तंत्र है।

कृते श्रुत्युक्तमार्गाश्च त्रेताया स्मृतिभाषिताः।
द्वापरे वै पुराणोक्ताः कलावागमसंभवाः॥[५]

और कंठी रुद्राक्ष तुलसी की माला तिलक यह सब अप्रमाण है।

शैव—मुँह सम्हाल के बोला करो, उस श्लोक का अर्थ सुनो, सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ताः परन्तु, शैवा वैष्णवा न शाक्ताः प्रोक्ताः। जो

---

१. गौरीश, परमेश्वर, प्रभु, त्रिलोचन और दयालु महादेव।

२. गोविन्द, नारायण और माधव (श्रीकृष्ण)।

३. शाक्त द्विज कहे जाते हैं, सभी शैव और वैष्णव नहीं, क्योंकि वे आदि देवी वेदमाता गायत्री की आराधना करते हैं।

४. इसलिए प्रजा देवी की है।

५. सत्ययुग में वेद कथित, त्रेता में स्मृति-लिखित तथा द्वापर में पुराणोक्त मार्ग मान्य है और कलियुग में वेद-संभव बात मान्य है।

केवल गायत्री की उपासना करते हैं वे शाक्त हैं। "पुराणे हरिणा प्रोक्तौ मार्गौ द्वौ शैववैष्णवौ" ॥ [1] और वेदों करके वेद्य शिव ही हैं। [2]

बंगाली—भवव्रतधरा ये च ये च तान्समनुव्रताः।
पाखण्डिनश्च ते सर्वे सच्छास्त्रपरिपन्थिनः॥[3]

इस वाक्य में क्या कहते हैं?

शैव—इस वाक्य में ठीक कहते हैं। इसके आगेवाले वाक्यों से इसको मिलाओ। यह दोनों तांत्रिकों ही के वास्ते लिखते हैं। वह शैव कैसे कि—

"नष्टशौचा मूढधियो जटा-भस्मास्थिधारिणः।
विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैव सुरासवम्।" [4]

तो जहाँ दैव सुरा और आसव यही है अर्थात् तांत्रिक शैव, कुछ हम लोग शुद्ध शैव नहीं।

राजा—भला वैष्णव और शैव मांस खाते हैं कि नहीं?

शैव—महाराज, वैष्णव तो नहीं खाते और शैवों को भी न खाना चाहिए परन्तु अब के नष्ट-बुद्धि शैव खाते हैं।

पुरो०—महाराज, वैष्णवों का मत तो जैनमत की एक शाखा है और महाराज दयानंद स्वामी ने इन सब का खूब खंडन किया है, पर वह तो देवी की मूर्ति भी तोड़ने को कहते हैं। यह नहीं हो सकता क्योंकि फिर बलिदान किसके सामने होगा?

(नेपथ्य में) नारायण

राजा—कोई साधु आता है।

---

१. पुराणों में भगवान ने शैव-वैष्णव दो ही मार्ग बतलाए हैं।

२. 'क्योंकि गायत्री भी तो किसी की स्तुति करने वाली है।' इतना भा० प्रे० की प्रति में अधिक है।

३. महादेव जी का व्रत धारण करने वाले तथा उनके अनुयायी सभी अच्छे शास्त्र के मनन करते हुए पाखंडी होते हैं।

४. आचार से हीन, मूर्ख तथा जटा-भस्म-मुंडधारी शिव दीक्षा के लिए वहाँ बैठते हैं, जहाँ देवता के लिए अमृत आसव रहता है।

(धूर्तशिरोमणि गंडकीदास का प्रवेश)

राजा—आइए गंडकीदास जी।

पुरो०—गंडकीदासजी हमारे बड़े मित्र है। यह और वैष्णवों की तरह जंजाल में नहीं फँसे हैं। यह आनंद से संसार का सुख भोग करते हैं।

गंडकी०—(धीरे से पुरोहित से) अजी, इस सभा में हमारी प्रतिष्ठा मत बिगाड़ो। वह तो एकांत की बात है।

पुरो०—वाह जी इसमें चोरी की कौन बात है ?

गंडकी०—(धीरे से) यहाँ वह वैष्णव और शैव बैठे हैं।

पुरो०—वैष्णव तुम्हारा क्या कर लेगा ! क्या किसी की डर पड़ी है ?

विदू०—महाराज, गंडकीदासजी का नाम तो रंडादासजी होता तो अच्छा होता।

राजा—क्यों ?

विदू०—यह तो रंडा ही के दास हैं।

आशङ्खचक्राङ्कितबाहुदण्डा गृहे समालिङ्गितबालरण्डाः।
अथच—भण्डा भविष्यन्ति कलौ प्रचण्डाः।
रण्डाभ्रण्डलभण्डनेषु पटवो धूर्ताः कलौ वैष्णवाः।[1]

शैव, वैष्णव और वेदांती—अब हम लोग आज्ञा लेते हैं। इस सभा में रहने का हमारा धर्म नहीं।

विदू०—दंडवत्, दंडवत्, जाइए भी किसी तरह।

(सब जाते हैं)

विदू०—महाराज, अच्छा हुआ यह सब चले गए। अब आप भी चलें। पूजा का समय हुआ।

राजा—ठीक है।

(जवनिका गिरती है)

---

१. जिनके भुजदंड पर शंख-चक्र अंकित हैं और जो घर में बाल विधवा को आलिंगन करते हैं, ऐसे भंड पुरुष कलियुग में बड़े उद्दंड होंगे। कलि के वैष्णव राँडों को प्रसन्न करने में पटु और धूर्त होंगे।

तृतीय अंक

स्थान—राजपथ,

(पुरोहित गले में माला पहिने टीका दिए बोतल लिए उन्मत्त सा आता है)

पुरो०—(घूमकर) वाह भगवान करे ऐसी पूजा नित्य हो, अहा ! राजा धन्य है कि ऐसा धर्मनिष्ठ है, आज तो मेरा घर माँस और मदिरा से भर गया। आहा ! और आज की पूजा की कैसी शोभा थी, एक ओर ब्राह्मणों का वेद पढ़ना, दूसरी ओर बलिदानवालों का कूद-कूदकर बकरा काटना, 'वाचं ते शुंधामि'[1], तीसरी ओर बकरों का तड़पना और चिल्लाना, चौथी ओर मदिरा के घड़ों की शोभा और बीच में होम का कुंड, उसमें मांस का चटचटाकर जलना और उसमें से चिरांहिन की सुगंध का निकलना, वैसा ही लोहू का चारों ओर फैलना और मदिरा की छलक, तथा ब्राह्मणों का मद्य पीकर पागल होना, चारों ओर घी और चरबी का बहना, मानो इस मंत्र की पुकार सत्य होती थी।

"घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः"[2]

अहा ! वैसी ही कुमारियों की पूजा—

"इमं ते उपस्थं मधुना संसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद्द्वितीयं तस्या योनिं परिपश्यति धीराः"।[3]

---

१. तुम्हारी वाणी को पवित्र करते हैं।

२. घृत पीने वाले घृत और वसा पीने वाले वसा पीएँ। (यजुर्वेद ६ अ० १६ मंत्र)

३. इस आनंदेंन्द्रिय को, जो प्रजापति का दूसरा मुख है, मधु से संयुक्त करता हूँ, धीर लोग उसकी योनि को देखते हैं। (सामवेद ब्राह्मण भाग, प्रथम-खंड, ३ मंत्र)

अहाहा ! कुछ कहने की बात नहीं है सब बातें उपस्थित थीं।

" मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः"[1]

ऐसे ही मदिरा की नदी बहती थी। (कुछ ठहरकर) जो कुछ हो मेरा तो कल्याण हो गया, अब इस धर्म के आगे तो सब धर्म तुच्छ है और जो मांस न खाय, वह तो हिन्दू नहीं जैन है वेद में सब स्थानों पर बलि देना लिखा है। ऐसा कौन सा यज्ञ है जो बिना बलिदान का है और ऐसा कौन देवता है जो मांस बिना ही प्रसन्न हो जाता है, और जाने दीजिए इस काल में ऐसा कौन है जो मांस नहीं खाता ? क्या छिपा के क्या खुले-खुले, अँगौछे में मांस और पोथी के चोंगे में मद्य छिपाई जाती है। उसमें जिन हिन्दुओं ने थोड़ी भी अंगरेजी पढ़ी है वा जिनके घर में मुसलमानी स्त्री है उनकी तो कुछ बात ही नहीं, आजाद हैं। (सिर पकड़कर) हैं माथा क्यों घूमता है ? अरे मदिरा ने तो जोर किया। (उठकर गाता है)।

जोर किया जोर किया जोर किया रे, आज तो मैंने नशा जोर किया रे। साँझहि से हम पीने बैठे पीते पीते भोर किया रे ॥ आज तो मैंने०

(गिरता-पड़ता नाचता है)

रामरस पीओ रे भाई, जो पीए सो अमर होय जाई।
चौके भीतर मुरदा पाकै जेवेलैं नहाय कै ऐसन जनम जर जाई ॥
रामरस पीओ रे भाई

अरे जो बकरी पत्ती खात है ताकी काढ़ी खाल।
अरे जो नर बकरी खात हैं तिनको कौन हवाल ॥
रामरस पीओ रे भाई

यह माया हरि की कलवारिन मद पियाय राखा बौराई।
एक पड़ा भुइँया में लोटै दूसर कहै चोखी दे माँई ॥
रामरस पीओ रे भाई

---

१. यज्ञ के इच्छुकों के लिए सरस वायु तथा नदियाँ जल बहें। (यजुर्वेद १३ अ० २७ मंत्र)

अरे चढी है सो चढ़ी नहिं उतरन को नाम ।
भर रही खुमारी तब क्या रे किसी से है काम ॥
रामरस पीओ रे भाई

मीन काट जल धोइए खाए अधिक पियास ।
अरे तुलसी प्रीत सराहिए मुए मीत की आस ॥
रामरस पीओ रे भाई

अरे मीन पीन पाठीन पुराना भरि भरि भार कँहारन आना ।
महिष खाइ करि मदिरा पाना अरे गरजा रे कुभकरन बलवाना ॥
रामरस पीओ रे भाई

ऐसा है कोइ हरिजन मोदी तन की तपन बुझावेगा ।
पूरन प्याला पिये हरी का फेर जनम नहिं पावेगा ॥
रामरस पीओ रे भाई

अरे भक्तो ने रसोई की तो मुरज़ाद ही खोई ।
कलिए की जगह पकने लगी रामतरोई रे ॥
रामरस पीओ रे भाई

भगतजी गदहा क्यो न भयो ।
जब से छोड़यो मॉस-मछरिया सत्यानाश गयो ॥
रामरस पीओ रे भाई

अरे एकादशी कें मछली खाई ।
अरे कबौ मरे बैकुंठै जाई ॥
रामरस पीओ रे भाई

अरे तिलभर मछरी खाइबो कोटि गऊ को दान ।
ते नर सीधे जात है सुरपुर बैठि बिमान ॥
रामरस पीओ रे भाई

कटी तोड़ो माला तोड़ो गंगा देहु बहाई ।
अरे मदिरा पीयो खाइ कै मछरी बकरा जाहु चबाई ॥
रामरस पीओ रे भाई

ऐसी गाढ़ी पीजिए ज्यौं मोरी की कीच ।
घर के जाने मर गए आप नशे के बीच ॥
रामरस पीओ रे भाई

(नाचता-नाचता गिर के अचेत हो जाता है)

[मतवाले बने हुए राजा और मंत्री आते हैं]

राजा—मंत्री, पुरोहितजी तो बेसुध पड़े हैं।

मंत्री—महाराज, पुरोहित जी आनंद में हैं। ऐसे ही लोगों को मोक्ष मिलता है।

राजा—सच है। कहा भी है-

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पतित्वा धरणीतले।
उत्थाय च पुनः पीत्वा नरो मुक्तिमवाप्नुयात्॥[1]

मंत्री—महाराज, संसार के सार मदिरा और मांस ही हैं।

"मकाराः पञ्च दुर्ल्लभाः।"[2]

राजा—इसमें क्या संदेह।

वेद वेद सबही कहैं, भेद न पायो कोय।
बिन मदिरा के पान सो, मुक्ति कहो क्यों होय॥

मंत्री—महाराज, ईश्वर ने बकरा इसी हेतु बनाया ही है, नहीं और बकरा बनाने का काम क्या था? बकरे केवल यज्ञार्थ बने हैं और मद्य पानार्थ।

राजा—यज्ञो वै विष्णुः, यज्ञेन यज्ञमयजंति देवाः, यज्ञाद्भवति पर्ज्जन्यः,[3] इत्यादि श्रुतिस्मृति में यज्ञ की कैसी स्तुति की है और "जीवो जीवस्य जीवनं" जीव इसी के हेतु हैं क्योंकि—"मांस भात को छोड़िकै का नर खैहैं घास?"

मंत्री—और फिर महाराज, यदि पाप होता भी हो तो मूर्खों को होता होगा। जो वेदांती अपनी आत्मा में रमण करनेवाले ब्रह्म-स्वरूप ज्ञानी हैं उनको क्यों होने लगा? कहा है न—

---

१. पीकर, पीकर फिर पीकर, पृथ्वी पर गिरकर तथा उठकर पुनः पीकर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है।

२. पाँच मकार दुर्लभ हैं।

३. यज्ञ ही विष्णु है, देवतागण यज्ञ ही से यज्ञ की पूजा करते हैं, यज्ञ ही से बादल बनते हैं।

यावद्धतोस्मि हंतास्मीत्यात्मानं मन्यतेऽस्वदृक् ।
तावदेवाभिमानज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ [१]
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पंडिताः ॥ [२]
नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥ [३]
अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ॥ [४]
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ [५]

इससे हमारे आप से ज्ञानियों को तो कोई बंधन ही नहीं है। और सुनिए मदिरा को अब लोग कमेटी करके उठाया चाहते हैं वाह वे वाह !

राजा—छिः अजी मद्यपान गीता में लिखा है "मद्याजी मां नमस्कुरु।" [६]

मंत्री—और फिर इस संसार में मांस और मद्य से बढ़कर कोई वस्तु है भी तो नहीं।

राजा—अहा ! मदिरा की समता कौन करेगा जिसके हेतु लोग अपना धर्म छोड़ देते हैं। देखो—

मंदिरा ही के पान हित, हिंदू धर्महिं छोड़ि।
बहुत लोग ब्राह्मो बनत, निज कुल सों मुख मोड़ि ॥
ब्रांडी को अरु ब्राह्म को, पहिलो अच्छर एक।
तासों ब्राह्मो धर्म में, यामें दोस न नेक ॥

मंत्री—महाराज, ब्राह्मो को कौन कहे हम लोग तो वैदिक धर्म मानकर सौत्रामणि यज्ञ करके मदिरा पी सकते हैं।

राजा—सच है, देखो न—

---

१. 'जब तक मैं मारा गया, मैं घातक हूँ' आदि का आने पर आरोप करता है तब तक उसमें अहंता है।

२. बीती हुई या होने वाली बातों का पंडितगण सोच नहीं करते।

३. इसे न शस्त्र काटते हैं और न अग्नि जलाती है।

४. यह न कटने योग्य, न जलने योग्य, न सड़ने योग्य और न सूखने योग्य है।

५. नश्वर शरीर को कोई नहीं मारता।

६. मदिरा युद्ध में मुझे नमस्कार करो।

मदिरा को तो अंत अरु आदि राम को नाम ।
तासों तामैं दोष कछु नहिं यह बुद्धि ललाम ॥
तिष्ठ तिष्ठ क्षण मद्य हम पियैं न जब लौं नीच ।
यह कहि देवी क्रोध सों हत्यौ शुंभ रने बीच ॥
मद पी विधि जग को करत, पालत हरि करि पान ।
मद्यहि पी कै नाशैं सब करत शंभु भगवान ॥
विष्णु वारुनी, पोर्ट पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि ।
शांपिन शिव, गौड़ी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म विचारि ॥

मंत्री—और फिर महाराज, ऐसा कौन है जो मद्य नहीं पीता, इससे तो हमीं लोग न अच्छे जो विधिपूर्वक वेद की रीति से पान करते हैं और यों छिपके इस समय में कौन नहीं करता ।

ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु सैयद सेख पठान ।
दै बताइ मोहि कौन जो करत न मदिरा पान ॥
पियत भट्ट के ठट्ट अरु गुजरातिन के वृंद ।
गौतम पियत अनंद सो पियत अग्र के नंद ॥
ब्राह्मण सब छिपि छिपि पियत जामैं जानि न जाय ।
पोथी के चोंगान भरि बोतल बगल छिपाय ॥
वैष्णव लोग कहावही कंठी मुद्रा धारि ।
छिपि छिपि कै मदिरा पियहि, यह जिय माँझ बिचारि ॥
होटल में मदिरा पियैं, चोट लगे नहिं लाज ।
लोट लए, ठाढ़े रहत टोटल देवै काज ॥
राजा गजकुमार मिलि बाबू लोने सग ।
बार-बधुन लै बाग में पीअत भरे उमग ॥

राजा—सच है इसमें क्या संदेह है ।

मंत्री—महाराज, मेरा सिर घूमता है और ऐसी इच्छा होती है कि कुछ नाचूँ और गाऊँ ।

राजा—ठीक है मैं भी नाचूँगा गाऊँगा, तुम प्रारंभ करो ।

(मंत्री उठकर राजा का हाथ पकड़ कर गिरता-पड़ता नाचता और गाता है)

पीले अवधू के मतवाले प्याला प्रेम हरी रस का रे।
ननुं ननुं ननुं नुननु में गाने का है चसका रे॥
निनि धध पप मम गग रिरि सासा भरले सुर अपने बस का रे।
धिधिकट धिधिकट धिधिकट धाधा बजे मृदंग थाप कस कारे॥
पीले अवधू के०।

भट्ठी नहिं सिल लोढ़ा नहीं घोरघार।
पलकन की फेरन में चढ़त धुआँधार॥
पीले अवधू के०।

कलवारिन मदमाती काम कलोल।
भरि भरि देत पियलवा महा ठठोल॥
पीले अवधू के०

अरी गुलाबी गाल को लिए गुलाबी हाथ।
मोहि दिखाव मद की झलक छलकै पियालो साथ॥
पीले अवधू के मतवाले०

बहार आई है भर दे बादए गुलगूँ से पैमाना।
रहै लाखो बरस साकी तेरा आबाद मैखाना॥
सम्हल बैठो अरे मस्तो जरा हुशियार हो जाओ।
कि साकी हाथ में मै का लिए पैमाना आता है॥
उड़ाता खाक सिर पर झूमता मस्ताना आता है।
पीले अवधू के—अहाँ अहाँ अहाँ॥

यह अठरंग है लोग चतुरंग ही गाते हैं।
न जाय न जाय मो सों मदवा भरीलो न जाय

तब फिर कहाँ से—

ड्रिंक डीप ऑर टेस्ट नॉट दे पीयेरियन स्प्रिंग[1]
Drink deep or taste not the Pierian spring
पीले अवधू के मतवाले प्याला प्रेमहरी रस का रे

(एक दूसरे के सिर पर धौल मारकर ताल देकर नाचते हैं। फिर एक पुरोहित का सिर पकड़ता है, दूसरा पैर और उसको लेकर नाचते हैं)

(जवनिका गिरती है)

---

१. अच्छी तरह पीओ या स्वाद तक न लो इस पाएरिआ के सोते का।

चतुर्थ अंक

स्थान—यमपुरी

[यमराज बैठे हैं और चित्रगुप्त पास खड़े हैं]

(चार दूत राजा, पुरोहित, मंत्री, गंडकीदास, शैव और वैष्णव को पकड़कर लाते हैं)

१ दूत—(राजा के सिर में धौल मारकर) चल बे चल, अब यहाँ तेरा राज नहीं है कि छत्र-चँवर होगा, फूल से पैर रखता है, चल भगवान् यम के सामने और अपने पाप का फल भुगत, बहुत कूद-कूदके हिंसा की और मदिरा पी, सौ सोनार की न एक लोहार की। (दो धौल और लगाता है)

२ दूत—(पुरोहित को घसीट कर) चलिए पुरोहितजी, दक्षिणा लीजिये, वहाँ आपने चक्र-पूजन किया था, यहाँ चक्र में आप चलिए, देखिए बलिदान का कैसा बदला लिया जाता है।

३ दूत—(मंत्री की नाक पकड़कर) चल बे चल, राज के प्रबन्ध के दिन गये, जूती खाने के दिन आये, चल अपने किये का फल ले।

४ दूत—(गंडकीदास का कान पकड़कर झोंका देकर) चल रे पाखंडी चल, यहाँ लम्बा टीका काम न आवेगा। देख वह सामने पाखंडियों का मार्ग देखनेवाले सर्प मुँह खोले बैठे हैं।

(सब यमराज के सामने जाते हैं)

यम०—(वैष्णव और शैव से) आप लोग यहाँ आकर मेरे पास बैठिए।

वै० और शै०—जो आज्ञा। (यमराज के पास बैठ जाते हैं)

यम०—चित्रगुप्त, देखो तो इस राजा ने कौन-कौन कर्म किये है।

चित्र०—(बही देखकर) महाराज, सुनिये, यह राजा जन्म से पाप में रत रहा, इसने धर्म को अधर्म माना और अधर्म को धर्म माना, जो जी चाहा किया और उसकी व्यवस्था पण्डितों से ले ली, लाखों जीव का इसनें नाश किया और हजारों घड़े मदीरा के पी गया पर आड़ सर्वदा धर्म की रखी, अहिंसा, सत्य, शौच, दया, शान्ति और तप आदि सच्चे धर्म इसने एक न किये, जो कुछ किया वह केवल वितंडा कर्म-जाल किया, जिसमें मांस भक्षण और मदिरा पीने को मिले, और परमेश्वर-प्रीत्यर्थ इसने एक कौड़ी भी नहीं व्यय की, जो कुछ व्यय किया सब नाम और प्रतिष्ठा पाने के हेतु।

यम०—प्रतिष्ठा कैसी, धर्म और प्रतिष्ठा से क्या सम्बन्ध ?

चित्र०—महाराज सर्कार अंगरेज के राज्य में जो उन लोगों के चित्तानुसार उदारता करता है उसको "स्टार आफ इंडिया" की पदवी मिलती है।

यम०—अच्छा ! तो बड़ा ही नीच है, क्या हुआ मैं तो उपस्थित ही हूँ।

"अंतःप्रच्छन्न पापाना शास्ता वैवस्वतो यमः" [१]

भला पुरोहित के कर्म तो सुनाओ।

चित्र०—महाराज यह शुद्ध नास्तिक है, केवल दंभ से यज्ञोपवीत पहने है, यह तो इसी श्लोक के अनुरूप है—

अतःशाक्ता बहिःशैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले॥ [२]

इसने शुद्ध चित्त से ईश्वर पर कभी विश्वास नहीं किया, जो-जो पक्ष राजा ने उठाये उसका समर्थन करता

---

१. अंतःकरण में स्पष्ट पापो का दंड देनेवाला वैवस्वत यम है।

२. भीतर शाक्त, बाहर शैव और सभा बीच वैष्णव ऐसे अनेक रूपधारी दुष्ट पृथ्वी पर विचरण करते हैं।

रहा और टके-टके पर धर्म छोड़कर इसने मनमानी व्यवस्था दी, दक्षिणा मात्र दे दीजिए फिर जो कहिए उसी में पंडितजी की सम्मति है, केवल इधर-उधर कमंडला-चार करते इसका जन्म बीता और राजा के संग से मांस-मद्य का भी बहुत सेवन किया, सैकड़ों जीव अपने हाथ से वध कर डाले।

यम०—अरे यह तो बड़ा दुष्ट है, क्या हुआ मुझसे काम पड़ा है, यह बचा जी तो ऐसे ठीक होंगे जैसा चाहिये, अब तुम मंत्री जी के चरित्र कहो।

चित्र०—महाराज, मन्त्रीजी की कुछ न पूछिए। इसने कभी स्वामी का भला नहीं किया, केवल चुटकी बजाकर हाँ में हाँ मिलाया, मुँह पर स्तुति पीछे निंदा, अपना घर बनाने से काम, स्वामी चाहे चूल्हे में पड़े, घूस लेते जन्म बीता, मांस और मद्य के बिना इसने न और धर्म जाने न कर्म जाने—यह मंत्री की व्यवस्था है, प्रजा पर कर लगाने में तो पहले सम्मति दी पर प्रजा के सुख का उपाय एक भी न किया।

यम०—भला ये श्रीगंडकीदासजी आये हैं इनका पवित्र चरित्र पढ़ो कि सुनकर कृतार्थ हों, देखने में तो बड़े लम्बे-लम्बे तिलक दिये हैं।

चित्र०—महाराज, ये गुरु लोग हैं, इनके चरित्र कुछ न पूछिये, केवल दंभार्थ इनका तिलक-मुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा, कभी भक्ति से मूर्त्ति को दंडवत् न किया होगा पर मंदिर में जो स्त्रियाँ आईं उनको सर्वदा तकते रहे; महाराज, इन्होंने अनेकों को कृतार्थ किया है और समय तो मैं श्रीरामचंद्रजी का श्रीकृष्ण का दास हूँ पर जब स्त्री सामने आवे तो उससे कहेंगे मैं राम तुम जानकी, मैं कृष्ण तुम गोपी और स्त्रियाँ भी ऐसी मूर्ख कि फिर इन लोगों के पास जाती हैं, हा! महाराज, ऐसे पापी धर्मवंचकों को आप किस नरक में भेजियेगा।

(नेपथ्य में बड़ा कलकल होता है)

यम०—कोई दूत जाकर देखो यह क्या उपद्रव है ।

१ दूत—जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज, संयमनीपुरी की प्रजा बड़ी दुखी है, पुकार करती है कि ऐसे आज कौन पापी नरक में आए हैं जिनके अंग के वायु से हम लोगों का सिर घूमा जाता है और अंग जलता है । इनको तो महाराज शीघ्र ही नरक में भेजें नहीं तो हम लोगों के प्राण निकल जायँगे !

यम०—सच है, ये ऐसे ही पापी हैं, अभी मैं इनका दंड करता हूँ, कह दो घबड़ायँ न ।

१ दूत—जो आज्ञा । (बाहर जाकर फिर आता है)

यम०—(राजा से) तुझ पर जो दोष ठहराए गए हैं बोल उनका क्या उत्तर देता है ।

राजा—(हाथ जोड़कर) महाराज, मैंने तो अपने जान सब धर्म ही किया कोई पाप नहीं किया, जो मांस खाया वह देवता-पितर को चढ़ाकर खाया और देखिए महाभारत में लिखा है कि ब्राह्मणों ने भूख के मारे गोवध करके खा लिया पर श्राद्ध कर लिया था इससे कुछ नहीं हुआ ।

यम०—कुछ नहीं हुआ, लगें इसको कोड़े ।

२ दूत—जो आज्ञा । (कोड़े मारता है)

राजा—(हाथ से बचा-बचाकर) हाय-हाय, दुहाई-दुहाई, सुन लीजिए—

सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालंजरे गिरौ ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥
तेपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
प्रस्थिता दीर्घमध्वान यूयं किमवसीदथ ॥[३]

---

३. दशार्ण वन में सात व्याधे, कालंजर पर्वत पर मृग, शरद्वीप में चक्रवाक, मान सरोवर में हंस और अंत में कुरुक्षेत्र मे वेदज्ञ ब्राह्मण हुए । अब वे (अर्थात् उनमें से चार) दूर मार्ग पर चले गए और तुम (अर्थात् तीन) क्यों कष्ट सह रहे हो । (देखिए हरिवंशपुराण, श्राद्ध माहात्म्य)

यह वाक्य लोग श्राद्ध के पहिले श्राद्ध शुद्ध होने को पढ़ते हैं फिर मैंने क्या पाप किया। अब देखिए, अँगरेजों के राज्य में इतनी गोहिंसा होती है सब हिंदू बीफ खाते हैं उन्हें आप नहीं दंड देते और हाय हमसे धार्मिक की यह दशा, दुहाई वेदों की, दुहाई धर्म-शास्त्र की, दुहाई व्यासजी की, हाय रे, मैं इनके भरोसे मारा गया।

यम०—बस चुप रहो, कोई है? यह अंधतामिस्र नामक नरक में जायगा। अभी इसको अलग रखो।

१ दूत—जो आज्ञा महाराज। (पकड़-खींचकर एक ओर खड़ा करता है)

यम०—(पुरोहित से) बोल बे ब्राह्मणाधम! तू अपने अपराधों का क्या उत्तर देता है।

पुरो०—(हाथ जोड़कर) महाराज, मैं क्या उत्तर दूँगा, वेद-पुराण सब उत्तर देते हैं।

यम०—लगें कोड़े, दुष्ट वेद-पुराण का नाम लेता है।

२ दूत—जो आज्ञा। (कोड़े मारता है)

पुरो०—दुहाई-दुहाई, मेरी बात तो सुन लीजिए। यदि मांस खाना बुरा है तो दूध क्यों पीते हैं, दूध भी तो मांस ही है और अन्न क्यों खाते हैं अन्न में भी तो जीव है और वैसे ही सुरापान बुरा है तो वेद में सोमपान क्यों लिखा है और महाराज, मैंने तो जो बकरे खाए वह जगदंबा के सामने बलि देकर खाए, अपने हेतु कभी हत्या नहीं की और न अपने राजा साहब की भाँति मृगया की। दुहाई, ब्राह्मण व्यर्थ पीसा जाता है। और महाराज, मैं अपनी गवाही के हेतु बाबू राजेंद्रलाल के दोनों लेख देता हूँ, उन्होंने वाक्य और दलीलों से सिद्ध कर दिया है कि मांस की कौन कहे गोमांस खाना और मद्य पीना कोई दोष नहीं, आगे के हिंदू सब खाते-पीते थे। आप चाहिए एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल मँगा के देख लीजिए।

यम०—बस चुप, दुष्ट! जगदंबा कहता है और फिर उसी के सामने उसी जगत् के एक बकरे को अर्थात् उसके पुत्र ही को बलि देता है। अरे दुष्ट, अपनी अंबा कह, जगदंबा क्यों कहता है, क्या बकरा जगत् के बाहर है? चांडाल सिंह को बलि नहीं देता—"अजापुत्रं बलिं दद्याद्दैवोदुर्बलघातकः" [१] कोई है? इसको सूचीमुख नामक नरक में डालो। दुष्ट कहीं का वेद-पुराण का नाम लेता है। मांस-मदिरा खाना-पीना है तो यों ही खाने में किसने रोका है धर्म को बीच में क्यों डालता है, बाँधो!

२ दूत—जो आज्ञा महाराज। (बाँधकर एक ओर खड़ा करता है।

यम०—(मंत्री से) बोल बे, तू अपने अपराधों का क्या उत्तर देता है?

मंत्री—(आप ही आप) मैं क्या उत्तर दूँ, यहाँ तो सब बात बेरंग है। इन भयावनी मूर्तियों को देखकर प्राण तो सूखे जाते हैं उत्तर क्या दूँ। हाय-हाय, इनके ऐसे बड़े-बड़े दाँत है कि मुझे तो एक ही कवर कर जायँगे।

यम०—बोल जल्दी।

३ दूत—(एक कोड़ा मारकर) बोलता है कि नहीं।

मंत्री—(हाथ जोड़कर) महाराज, अभी सोचकर उत्तर देता हूँ। (कुछ सोचकर, चित्रगुप्त से) आप मुझे एक बेर राज्य पर भेज दीजिए, मैंने जितना धन बड़ी-बड़ी कठिनाई और बड़े-बड़े अधर्म से एकत्र किया है सब आप को भेंट करूँगा और मैं निरपराधी कुटुंबी हूँ मुझे छोड़ दीजिए।

चित्र०—(क्रोध से) अरे दुष्ट, यह भी क्या मृत्युलोक की कचहरी है कि तू हमें घूस देता है और क्या हम लोग वहाँ के न्यायकर्त्ताओं की भाँति जंगल से पकड़ कर आए है कि तुम दुष्टों के व्यवहार नहीं जानते। जहाँ तू आया है और जो गति तेरी है वही घूस लेनेवालों की भी होगी।

---

१. बकरा ही की बलि देते हैं, दैव भी दुर्बल को कष्टकर है।

यम०—(क्रोध से) क्या यह दुष्ट द्रव्य दिखाता है? भला रे दुष्ट! कोई है इसको पकड़कर कुंभीपाक में डाला।

३ दूत—जो आज्ञा महाराज। (पकड़कर खींचता है)

यम०—अब आप बोलिए बाबाजी, आप अपने पापों का क्या उत्तर देते हैं?

गंडकी०—मैं क्या उत्तर दूँगा। पाप-पुण्य जो करता है ईश्वर करता है, इसमें मनुष्य का क्या दोष है।

ईश्वरः सर्व भूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्व्वभूतानि यत्रारूढ़ानि मायया॥[1]

मैं तो आज तक सर्वदा अच्छा ही करता रहा।

यम०—कोई है? लगें कोड़े दुष्ट को, अब ईश्वर फल भी भुगतेगा। हाय-हाय, ये दुष्ट दूसरों की स्त्रियों को माँ और बेटी कहते है और लंबा-लंबा टीका लगाकर लोगों को ठगते हैं।

४ दूत—महाराज यह किस नरक में जायगा! (कोड़े मारता है।)

गंडको०—हाय-हाय दुहाई, अरे कंठी-टीका कुछ काम न आया। अरे कोई नहीं है जो इस समय बचावे।

यम०—यह दुष्ट रौरव नरक में जायगा जहाँ इसको ऐसे ही अनेक धर्मवंचक मिलेंगे। ले जाओ सबको।

(चारो दूत चारो को पकड़कर घसीटते और मारते हैं और चारों चिल्लाते हैं)

चारों—अरे "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।"[2]
हाय रे "अग्निष्टोमे पशुमालभेत्।"[3]
अरे बाप रे "सौत्रामण्यां सुरा पिबेत्॥"[4]

---

१. हे अर्जुन सब प्राणियों के हृदय मे ईश्वर है। माया से सब जीव यंत्र पर आरूढ के समान घूमते हैं।
२. वेदानुकूल हिंसा हिंसा नहीं होती।
३. अग्निष्टोम यज्ञ में पशु-बलि दे।
४. सौत्रामणि यज्ञ मे मदिरा पिए।

भैया रे "श्रोत्रं ते शुंधामि।"[1]

(यही कहकर चिल्लाते हैं और दूत लोग उनको घसीटकर मारते-मारते ले जाते हैं)

यम०—(शैव और वैष्णव से) आप लोगों की अकृत्रिम भक्ति से ईश्वर ने आप को कैलास और वैकुंठ वास की आज्ञा दी है सो आप लोग जाइए और अपने सुकृत का फल भोगिए। आप लोगों ने इन धर्मवंचकों की दशा तो देखी ही है, देखिए पापियों की यह गति होती है और आप से सुकृतियों को ईश्वर प्रसन्न होकर सामीप्य मुक्ति देता है सो लीजिए, आप लोगों को परम पद मिला। बधाई है, कहिए इससे भी विशेष कोई आपका हित हो तो मैं पूर्ण करूँ।

शै० और वै०—(हाथ जोड़कर) भगवन् इससे बढ़कर और हम लोगों का क्या हित होगा। तथापि यह नाटकाचार्य्य भरतऋषि का वाक्य सफल हो।

निज स्वारथ को धरम दूर या जग सों होई।
ईश्वर पद मैं भक्ति करैं छल बिनु सब कोई॥
खल के विष-बैनन सो मत सज्जन दुख पावैं।
छुटै राजकर मेघ समय पै जल बरसावैं॥
कजरी ठुमरिन सो मोड़ि मुख सत कविता सब कोइ कहै।
यह कवि बानी बुध-बदन में रवि ससि लौं प्रगटित रहै॥

(सब जाते हैं)

(जवनिका गिरती है)

---

१. तुम्हारे कान पवित्र करता हूं।

धनंजय-विजय

व्यायोग

संवत् १९३०

सन् १८७३ ई० में हरिश्चंद्र मैगजीन में
सन् १८७४ ई० में मेडिकल हॉल प्रेस से प्रथम
बार और सन् १८८३ ई० तक पंचम
संस्करण निकला

प्यारे !

निश्चय इस ग्रंथ से तुम बड़े प्रसन्न होगे; क्योंकि अच्छे लोग अपनी कीर्त्ति से बढ़कर अपने जन को कीर्त्ति से संतुष्ट होते है। इस हेतु इस होली के आरंभ के त्योहार माघी-पूर्णिमा में हे धनंजय और निधनजय के मित्र! यह धनंजय-विजय तुम्हें समर्पित है, स्वीकार करो।

तुम्हारा

ह—

विदित हो कि यह जिस पुस्तक से अनुवाद किया गया है वह संवत् १५२७ की लिखी है और इसी से बहुत प्रामाणिक है, इससे इसके सब पाठ उसी के अनुसार रखे हैं।

धनंजय-विजय

व्यायोग

हरेर्लीलावराहस्य, दंष्ट्रादण्डः स पातु वः।
हेमाद्रिकलशा यत्र, धात्री छत्रश्रियं दधौ॥

(सूत्रधार आता है)

सू०—(चारों ओर देखकर) वाह! वाह! प्रातःकाल की कैसी शोभा है!

(भैरव)

भोर भयो लखि काम-मातु श्रीरुकमिनि महलन जागीं।
बिकसे कमल, उदय भयो रवि को, चकई अति अनुरागीं॥
हंस-हंसिनी पंख हिलावत, सोइ पटह सुखदाई।
आँगन धाइ धाइ कै भँवरी, गावत केलि बधाई!

(आगे देखकर) अहा शरद ऋतु कैसी सुहावनी है!

(भैरव वा ठुमरी)

सब कों सुखदाई अति मन भाई शरद् सुहाई आई।
कूजत हस कोकिला, फूले कमल सरनि सुखदाई॥
सूखे पंक, हरे भए तरुवर, दुरे मेघ, मग भूले।
अमल इंदु तारे भए, सरिता-कूल कास-तरु फूले॥
निर्मल जल भयो, दिसा स्वच्छ भईं, सो लखि अति अनुरागे।
जानि परत हरि शरद विलोकत रतिश्रम आलस जागे॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) यह चिट्ठी लिए कौन आता है?

(एक मनुष्य चिट्ठी लाकर देता है, सूत्रधार खोलकर पढ़ता है)

"परम प्रसिद्ध श्रीमहाराज जयदेवजी—

दान देन मैं, समर मैं, जिन न लही कहुँ हारि।
केवल जग में विमुख किय, जाहि पराई नारि।

जाके जिय में तूल सो, तुच्छ होय निरधार ॥
खीझे अरि को प्रबल दल, रीझे कनक पहार ।

वह प्रसन्न होकर रंगमंडन नामक नट को आज्ञा करते है ।

अलसाने कछु सुरत-श्रम, अरुन अधखुले नैन ।
जगजीवन जागे लखहु, दैन रमा चित चैन ॥
शरद देखि जब जग भयो, चहुँ दिसि महा उछाह ।
तौ हमहूँ को चाहिए- मगल करन सचाह ॥

इससे तुम वीर रस का कोई अद्भुत रूपक खेलकर मेरे गदाधर इत्यादि साथियों को प्रसन्न करो ।" ऐसा कौन सा रूपक है ? (स्मरण करके) अरे जाना ।

कवि मुनि के सब सिसुन को धारि धाय सी प्रीति ।
सिखवत आप सरस्वती नित बहु विधि की नीति ॥
ताही कुल में प्रगट भे नारायन गुनधाम ।
लह्यो जीति बहु वादिगन जिन वादीश्वर नाम ॥
अभय दियो जिन जगत को धारि जोग-सन्यास ।
पै भय इक रवि को रही मडल भेदन त्रास ॥
तिनके सुत सब गुन भरे कविवर काचन नाम ।
जाकी रसना मनु सकल विद्यागन की धाम ॥

तो उस कवि का बनाया धनंजय-विजय खेलें । (नेपथ्य की ओर देखकर) यहाँ कोई है ?

(पारिपार्श्वक आता है)

पा०—कौन नियोग है कहिए ?

सू०—धनंजय-विजय के खेलने में कुशल नटवर्ग को बुलाओ ।

पा०—जो आज्ञा । [जाता है

सू०—(पश्चिम की ओर देखकर)

सत्य प्रतिज्ञा करन को छिप्यौ निसा अज्ञात ।
तेजपुंज अरजुन सोई रवि सो कढ़त लखात ॥

(विराट के अमात्य के साथ अर्जुन आता है)

अ०—(उत्साह से) दैव अनुकूल जान पड़ता है क्योंकि—

जो औषध खोजत रहैं मिलै सु पगतलि आइ।
बिना परिश्रम तिमि मिल्यौ कुरुपति आपुहि धाइ॥

सू०—(हर्ष से देखकर) अरे यह शामलक तो अर्जुन का भेस लेकर आ पहुँचा, तो अब मैं और पात्रों को भी चलकर बनाऊँ। [जाता है

इति प्रस्तावना।

अ०—(हर्ष से)

गोरक्षन, रिपु-मान-बध, नृप विराट को हेत।
समर हेत इक बहुत सब भाग मिल्यौ यों खेत॥

और भी

वहै मनोरथ फल सुफल, वहै महोत्सव हेत।
जो मानी निज रिपुन सो अपुनो बदलो लेत॥

अमा०—देव यह आपके योग्य संग्राम-भूमि नहीं है।

जिन निवात-कवचन वध्यौ, कालकेय दिय दाहि।
शिव तोष्यौ रनभूमि जिन, ये कौरव कहँ ताहि॥

अ०—वाह सुयोधन! वाह क्यों न होय।

लह्यौ बाहुबल जीति कै जो तुव पुरुखन राज।
सो तुम जूआ खेलि कै जीत्यौ सहित समाज॥
अब भीलन की भाँति इमि छिपिकै चोरत गाय।
कुल-गुरु-ससि, तुव नीचपन, लखि कै रह्यौ लजाय॥

अमा०—देव!

जदपि चरित कुरुनाथ के ससि-सिर देत झुकाय।
तऊ रावरो विमल जस राखत ताहि उचाय॥

अ०—(कुछ सोचकर) कुमार नगर के पास धरे हुए शस्त्रों को लेने रथ पर बैठकर गया है, सो अब तक क्यों नहीं आया?

(उत्तर कुमार आता है)

कु०—देव, आपकी आज्ञानुसार सब कुछ प्रस्तुत है, अब आप रथ पर विराजिए।

अ०—(शस्त्र बाँधकर रथ पर चढ़ना नाट्य करता है)

अमा०—(विस्मय से अर्जुन को देखकर)

रनभूषन भूषित सुतन, गतदूषन सब गात।
सरद सूर सम घन-रहित सूर प्रचंड लखात॥

(नायक से)

दच्छिन खुर महि मरदि हय गरजहिं मेघ-समान।
उड़ि रथ-धुज आगे बढ़हिं तुव बस विजय-निसान॥

अ०—अमात्य! अब हम लोग गऊ छुड़ाने जाते हैं। आप नगर में जाकर गोहरण से व्याकुल नगरवासियों को धीरज दीजिए।

अमा०—महाराज जो आज्ञा। [जाता है

अ०—(कुमार से) देखो, गऊ दूर न निकल जाने पावैं, घोड़ों को कसके हाँको।

कु०—(रथ हाँकना नाट्य करता है)

अ०—(रथ का वेग देखकर)

लीकहु नहिं लखि परत चक्र की, ऐसे धावत।
दूर रहत तरु-वृंद छनक मैं आगे आवत॥
जदपि वायु-बल पाइ धूरि आगे गति पावत।
पै हय, निज-खुर-वेग पीछहीं मारि गिरावत॥
खुर-मरदित महि चूमहिं मनहु धाइ चलहिं जब बेगि गति।
मनु होड़ जीत-हित चरन सों आगेहि मुख बढ़ि जात अति॥

(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे अरे अहीरो! सोच मत करो, क्योंकि—

जब लौं बछरा करुना करि महि तृन नहिं खैहैं।
जब लौं जननी बाट देखिकै नहिं डकरैहैं॥
जब लौ पय पीयन हित वे नहिं व्याकुल ह्वैहैं।
ताके पहिलेहि गाय, जीतिकै हम लै ऐहैं॥

(नेपथ्य में) बड़ी कृपा है

कु०—महाराज! अब ले लिया है कौरवों की सेना को, क्योंकि—

हय खुर-रज सो नभ छयो वह आगे दरसात।
मनु प्राचीन कपोत गल सांद्र सुरुचि सरसात॥
करिवर मद-धारा तिया रमत रसिक जो पौन।
सोइ 'केलिमद गंध लै, करत इतैही गौन॥

अ०—वह देखो कौरवों की सेना दिखा रही है।

चपल चवँर चहुँ ओर चलहिं सित छत्र फिराहीं।
उड़हिं गीधगन गगन जहँ भाले चमकाहीं॥
घोर संख के शब्द भरत बन मृगन डरावति।
यह देखौ कुरुसैन सामने धावति आवति॥

(बाँह की ओर देखकर उत्साह से)

बन-बन धावत सदा धूर धूसर जो सोहीं।
पंचाली-गल-मिलन हेतु अब लौ ललचौहीं॥
जो जुवती-जन-बाहु-बलय मिलि नाहिं लजाहीं।
रिपुगन! ठाढ़े रहौ सोई मम भुज फरकाहीं॥

(नेपथ्य में)

फेरत धनु टंकारि दरप शिव-सम दरसावत।
साहस को मनु रूप काल-सम दुसह लखावत॥
जय लच्मी सम वीर धनुष धरि रोष बढ़ावत।
को यह जो कुरुपतिहि गिनत नहि इतही आवत॥

(दोनो कान लगाकर सुनते हैं)

कु०—महाराज! यह किसके बड़े गंभीर वचन हैं?

अ०—हमारे प्रथम गुरु कृपाचार्य के।

(फिर नेपथ्य में)

शिव-तोषन खांडव-दहन सोई पाडवनाथ।
धनु खींचत घट्टा पड़े दूजे काके हाथ॥
छूटि गए सब शस्त्र तबौ धीरज उर धारे।
बाहु-मात्र अवशेष दुगुन हिय क्रोध पसारे॥
जाहि देखि निज कपट भूलि ह्वै प्रगट पुरारी।
साहस पै बहु रीझि रहे आपुनपौ हारी॥

अरे यह निश्चय अर्जुन ही है, क्योंकि—

सागर परम गँभीर नध्यो गोपद-सम छिन मैं।
सीता-विरह मिटावन की अद्भुत मति जिन मै॥
जारी जिन तृन फूस हूस सी लंका सारी।
रावन-गरब मिटाइ हने निसिचर-बल भारी॥
श्रीराम-प्रान-सम, बीर-वर, भक्तराज-सुग्रीव-प्रिय।
सोइ वायुतनय धुज बैठि कै गरजि डरावत शत्रु-हिय॥

(दोनो सुनते हैं)

कु०—आयुष्मान्,

भरी बीर रस सो कहत चतुर गूढ़े अति बात।
पच्छपात सुत सो करत को यह तुम पैं तात॥

अ०—कुमार! यह तो ठीक ही है, पुत्र सा पक्षपात करता है, यह क्या कहते हो! मै आचार्य्य का तो पुत्र ही हूँ।

(नेपथ्य में)

करन! गहौ धनु वेग, जाहु कृप! आगे धाई।
द्रोन! अस्त्र भृगुनाथ-लहे सब रहौ चढ़ाई॥
अश्वत्थामा! काज सबै कुरुपति को साधहु।
दुरमुख! दुस्सासन! विकर्ण! निज व्यूहन बाँधहु॥
गंगासुत शांतनु-तनय वर भीष्म क्रोध सो धनु गहत।
लखि शिव-शिक्षित रिपु सामुहें तानि बान छाँड़ो चहत॥

अ०—(आनंद से) अहा! यह कुरुराज अपनी सैन्य को बढ़ावा दे रहा है।

कु०—देव! मैं कौरव योधाओं का स्वरूप और बल जानना चाहता हूँ।

अ०—देखो इसके ध्वजा के सर्प के चिह्न ही से इसकी टेढ़ाई प्रगट होती है।

चद्र वश को प्रथम कलह-अंकुर एहि मानो।
जाके चित सौजन्य भाव नहि नेकु लखानो॥

विष जल अगिन अनेक भाँति हमको दुख दीनो ।
सो यह आवत ढीठ लखौ कुरुपति मतिहीनो ॥

कु०—और यह उसके दाहिनी ओर कौन है ?

अ०—(आश्चर्य से)

जिन हिडब-अरि रिसि भरे लखत लाज-भय खोय ।
कृष्णा-पट खींच्यौ निलज यह दुस्सासन सोय ॥

कु०—अब इससे बढ़कर और क्या साहस होगा ?

अ०—इधर देखो (हाथ जोड़कर प्रणाम करके)

कचन-वेदी बैठि बड़ोपन प्रगट दिखावत ।
सूरज को प्रतिबिंब जाहि मिलि जात तनावत ॥
अस्त्र उपनिषद भेद जानि भय दूर भजावत ।
कौरव-कुल-गुरु पूज्य द्रौन आचारज आवत ॥

कु०—यह तो बड़े महानुभाव से जान पड़ते है ।

अ०—इधर देखो ।

सिर पै बाँकी जटा-जूट-मंडित, छबि धारी ।
अस्त्र-रूप मनु आप, दूसरो दुसह पुरारी ॥
सत्रुन को नित अजय मित्र को पूरनकामा ।
गुरु-सुत मेरो मित्र लखौ यह अश्वत्थामा ॥

कु०—हाँ और बताइए ।

अ०—धनुर्वेद को सार जिन घट भरि पूरि प्रताप ।
कनक-कलस धरि धुज धरचौ, सो कृप कुरु-गुरु आप ॥

कु०—और यह कुरुराज के सामने लड़ाई के हेतु फेंट कसे कौन खड़ा है ?

अ०—(क्रोध से)

सब कुरुगन को अनय-बीज अनुचित अभिमानी ।
भृगुपति छलि लहि अस्त्र वृथा गरजत अधखानी ॥
सूत-सुअन बिनु बात दरप अपनो प्रगटावत ।
इद्रशक्ति लहि गर्व-भरो रन का इत आवत ॥

कु०—(हँसकर) इनका सब प्रभाव घोष-यात्रा में प्रगट हो चुका है। (दूसरी ओर दिखाकर) यह किसका ध्वज है ?

अ०—(प्रणाम करके)

परतिय जिन कबहूँ न लखी निज ब्रतहि दृढ़ाई।
श्वेत केस मिस सो कीरति मनु तन लपटाई॥
परशुराम को तोष भयो जा सर के त्यागे।
तौन पितामह भीष्म लखौ यह आवत आगे॥

सूत ! घोड़ों को बढ़ाओ।

(नेपथ्य में)

समर बिलोकन को जुरे, चढ़ि बिमान सुर धाइ।
निज-बल बाहु-विचित्रता, अरजुन देहु दिखाइ॥

(इन्द्र, विद्याधर और प्रतिहारी आते हैं)

इंद्र—(आश्चर्य से)

बातहु सों झगरैं बली तौ निबलन भय होय।
तो यह दारुन युद्ध लखि, क्यों न डरैं जिय खोय॥
एक रथी इक ओर उत बली रथी समुदाय।
तौहू सुत तू धन्य अरि इकलो देत भजाय॥

कु०—(आगे देखकर) देव, कौरव-राज यह चले आते है।

अ०—तो सब मनोरथ पूरे हुए।

(रथ पर बैठा दुर्योधन आता है)

दु०—(अर्जुन को देखकर क्रोध से)

बहु दुख सहि बनबास करि, जीवन सों अकुलाय।
मरन-हेतु आयो इतै इकलो गरब बढाय॥

अ०—(हँसकर)

कालकेय बधि कै, निवात-कवचन कहँ मारयौ।
इकलो खाडव दाहि उमापति जुद्ध प्रचारयौ॥
इकले ही बल कृष्ण लखत भगिनी हरि छीनी।
अरजुन की रन नाहिं नई इकली गति लीनी॥

दु०— अब हँसने का समय नहीं हैं, क्योंकि अंधाधुंध घोर संग्राम का समय है।

अ०—(हँसकर)

दूर रहौ कुरुनाथ नाहिं यह छल जूआ इत।
पापीगन मिलि द्रौपदि को दासी कीनी जित॥
यह रन-जूआ जहाँ बान-पासे हम डारैं।
रिपुगन सिर की गोंट जीति अपुने बल मारैं॥

दु०—(क्रोध से)

चूड़ी पहिरन सों गयो, तेरो सर-अभ्यास।
नर्त्तनसाला जाव किन, इत पौरुष परकास॥

कु०—(मुँह चिढ़ाकर) आर्य! यह आप ठीक कहते हैं कि इनका बहुत दिन से धनुष चलाने का अभ्यास छूट गया है।

जब बन मैं गंधर्व-गनन तुम को कसि बाँध्यौ।
तब करि अग्रज-नेह गरजि जिन तहँ सर साध्यौ॥
लीन्हें तुम्हैं छुड़ाइ जीति सुरगन छिन माहीं।
तब तुम सर-अभ्यास लख्यो बिहवल ह्वै नाहीं॥

विद्या०—देव! यह बालक बड़ा ढीठा है।

इं०—क्यों न हो! राजा का लड़का है।

दु०—सूत! ब्राह्मणों की भाँति इस कोरी बकवाद से फल क्या है? यह पृथ्वी ऊँची-नीची है इससे तुम अब समान पृथ्वी पर रथ ले चलो।

अ०—जो कुरुराज की इच्छा। (दोनों रथ जाते हैं)

विद्या०—(अर्जुन का रथ देख कर) देव!

तुव सुत-रथ-हय-खुर बढी, समय-धूरि नभ जौन।
अरि अरनी मथन अगिनि-धूम-लेख सी तौन॥

इं०—क्यों न हो तुम महाकवि हो।

विद्या०—देव! देखिए अर्जुन के पास पहुँचते ही कौरवों में कैस

कोलाहल धड़ भया, देखिए—

हय हिनहिनात अनेक गज सर खाइ घोर चिकारहीं।
बहु बजहिं बाजे मारु धरु धुनि दपटि बीर उचारहीं॥
टंकार धनु की होत घंटा बजहिं सर सचारहीं।
सुनि सबद रन को बरन पति सुरबधू तन सिंगारहीं॥

प्रति०—देव! केवल कोलाहल ही नहीं हुआ वरन् आपके पुत्र के उधर जाते ही सब लोग लड़ने को भी एक संग उठ दौड़े। देव! देखिए, अर्जुन ने कान तक खींच-खींच-कर जो बान चलाए हैं, उनसे कौरव-सेना में किसी के अंग-भंग हो गए हैं, किसी के धनुष दो टुकड़े हो गए हैं, किसी के सिर कट गए हैं, किसी की आँखें फूट गई हैं, किसी की भुजा टूट गई है, किसी की छाती घायल हो रही है।

इंद्र—(हर्ष से) वाह बेटा! अब ले लिया है।

विद्या०—देव! देखिए देखिए।

गज-जूथ सोई घन-घटा मद-धार-धारा सरत जे।
तरवार-चमकनि बीजु की दमकनि, गरज बाजन बजे॥
गोली चले जुगनू सोई, बकबृन्द ध्वज बहु सोहई।
कातर बियोगिन दुखद रन की भूमि पावस नभ भई॥
तुव-सुत-सर सहि, मद-गलित, दंत केतकी खोय।
धावत गज, जिनके लखें, हथिनी को भ्रम होय॥

इंद्र—(संतोष से)

हर-सिच्छित सर-रीति जिन काहूकेय दिय दाहि।
जो जदुनाथ सनाथ कह कौरव जीतन ताहि॥

प्रति०—महाराज देखें।

कटे कुंड सुंडन के रुंड मैं लगाय तुंड,
झुंड मुंड पान करैं लोहू भूत चेटी हैं।
घोड़न चबाइ, चरबीन सो अघाय, मेटी
भूख सब मरे मुरदान मैं समेटी हैं॥

लाल अंग कीने सीस हाथत में लीने अस्थि,
भूखन नवीने आँत जिन पै लपेटी हैं।
हरष बढ़ाय आँगुरिन को नचाय पियैं,
सोनित-पियासी सी पिसाचन की बेटी हैं॥

विद्या—देव! देखिए—

हिलन धुजा सिर ससि चमक मिलिकै व्यूह लखात।
तुव सुत-सर लगि घूमि जंब गज-घन मंडल खात॥

इंद्र—(आनंद से देखता है)

प्रति०—देव, देखिए! देखिए! आपके पुत्र के धनुष से छूटे हुए बानों से मनुष्य और हाथियों के अंग कटने से जो लहू की धारा निकलती है उसे पी-पीकर यह जोगिनिएँ आपके पुत्र ही की जीत मनाती हैं।

इंद्र—तो जय ही है, क्योंकि इनकी असीस सच्ची है।

विद्या०—(देखकर) देव! अब तो बड़ा ही घोर युद्ध हो रहा है। देखिए—

बिरचि नली गजमुंड की काटि काटि भट सीस।
रुधिर पान करि जोगिनी विजयहि देहिं असीस॥

टूटि गई दोउ भौंह स्वेद सों तिलक मिटाए।
नयन पसारे लाल क्रोध सों ओठ चबाए॥
कटे कुंडलन मुकुट बिना श्रीहत दरसाए।
वायु वेग बस केस मूछ दाढ़ी फहराए॥

तुव तनय-बान लगि बैरि-सिर एहि बिधि सों नभ में फिरत।
सिन सग काक अरु कंक बहु रंक भए धावत गिरत॥

(बड़े आश्चर्य्य से इधर-उधर देखकर) देव! देखिए—

सीस कटे भट सोहहीं नैन जुगल बल लाल।
बरहिं तिनहिं नाचहिं हँसहिं गावहिं नभ सुरबाल॥

इंद्र—(हर्ष से) मैं क्या-क्या देखूँ? मेरा जी तो बावला हो रहा है।

इत लाखन कुरु सँग लरत इकलौ कुंतीनंद।
उत बीरन कों बरन कों लरहिं अप्सराबृंद॥

विद्या०—ठीक है (दूसरी ओर देखकर) देव ! इधर देखिए—

लपटि दपटि चहुँ दिसन बाग बन जीव जरावत ।
ज्वाला माला लोल लहर धुज सी फहरावत ॥
परम भयानक प्रगट प्रलय सम समय लखावत ।
गंगा-सुत कृत अगिन-अस्त्र उमग्यो ही आवत ॥

प्रति०—देव ! मुझे तो इस कड़ी आँच से डर लगती है ।

विद्या०—भद्र ! व्यर्थ क्यों डरता है, भला अर्जुन के आगे यह क्या है ? देख—

अर्जुन ने यह वरुन अस्त्र जो बेगि चलायो ।
तासों नभ में घोर घटा को मंडल छायो ॥
उमड़ि उमड़ि करि गरज बीजुरी चमकि डरायो ।
मुसलधार जल बरसि छिनक मैं ताप बुझायो ॥

इंद्र—बालक बड़ा ही प्रतापी है ।

प्रति०—देव ! राधेय ने यह भुजंगास्त्र छोड़ा है, देखिए अपने मुखों से आग सा विष उगलते हुए, अपने सिर के मणियों से चमकते हुए इंद्रधनुष से पृथ्वी को व्याकुल करते हुए, देखने ही से वृक्षों को जलाते हुए, ये कैसे-कैसे डरावने साँप निकले चले आते हैं ।

विद्या०—दुष्ट मनोरथ सरिस लखैं लखि दुखदाई ।
टेढ़े जिमि खल-चित्त भयानक रहत सदाई ॥
बमत बदन विष निंदक सो मुख कारिख लाए ।
अहिगन नभ मैं लखहु धाइ कै चहुँ दिस छाए ॥

इंद्र—क्या खांडव वन का बैर लेने आते हैं ?

विद्या०—आप शोच क्यों करते हैं; देखिए, अर्जुन ने गारुड़ास्त्र छोड़ा है ।

निज कुल गुरु तुव पुत्र सारथिहि तोष बढ़ावत ।
झपटि दपटि गहि अहिन टूक करि नास मिलावत ॥
बादर से उड़ि खींचि खींचि दोउ पंख हिलावत ।
गरुड़न को घन गगन छयो अहि हियो डरावत ॥

इंद्र—(हर्ष से) हाँ तब।

प्रति०—देखिए, यह दुर्योधन के वाक्य से पीड़ित होकर द्रोणाचार्य ने आपके पुत्र पर वारुणास्त्र छोड़ा है।

विद्या०—(देखकर) वैनायक-अस्त्र चल चुका, देखिए—

रँगे गंड सिंदूर सों, घहरत घंटा घोर।
निज मद सों सींचत धरनि, गरजि चिकारहिं जोर॥
सूँड़ फिरावत सीकरन धावत भरे उमंग।
छावत आवत घन सरिस मरदत मनुज मतंग॥

इंद्र—तब, तब।

विद्या०—तब अर्जुन ने नरसिंहास्त्र छोड़ा है, देखिए—

गरजि गरजि जिन छिन मैं गर्भिनि गर्भ गिरायो।
काल सरिस मुख खोलि दाँत बाहर प्रगटायो॥
मारि थपेड़न गंड सुंड को माँस चबायो।
उदर फारि चिक्कारि रुधिर पौसरा चलायो॥
करि नैन अगिनि सम मोछ फहराइ पोंछ टेढ़ो करत।
गल-केसर लहरावत चल्यौ क्रोधि सिंह-दल दल दलत॥

इंद्र—तो अब जय होने में थोड़ी ही देर है।

विद्या०—देव! कहिए कि कुछ भी देर नहीं है।

गंगा-सुत के बधि तुरग, द्रोन-सूत हति खेत।
करन-रथहिं करि खंड बहु, कुप कहँ कियो अचेत॥
और भजाई सैन सब, द्रोनसुवन-धनु काट।
तुव सुत जोहत अब खड़ो, दुरजोधन को बाट॥

प्रति०—दुर्योधन का तो बुरा हुआ।

विद्या—नहीं।

व्याकुल तुव सुत-बान सों विमुख भयो रन-काज।
मुकुट गिरन-सों क्रोध करि फिरयो फेर कुरुराज॥

(नेपथ्य में)

सुन-सुन कर्ण के मित्र!

सभा माँहि लखि द्रौपदिहिं क्रोध अतिहि जिय लेत ॥
अग्रज परतिज्ञा करी तुव उरु तोड़न हेत ॥
ताही सों तोहि नहिं बध्यो, न तरु अबै कुरु-ईस ।
जा सर सों तोरयो मुकुट तासों हरतो सीस ॥

प्रति०—देव अपने पुत्र का वचन सुना ?

इंद्र—(विस्मय से)

दैव भए अनुकूल तें सब ही करत सहाय ।
भीम-प्रतिज्ञा सो बच्यो अनायास कुरुराय ॥

विद्या०—देव ! दुर्योधन के मुकुट गिरने से सब कौरवों ने क्रोधित होकर अर्जुन को चारों ओर से घेर लिया है ।

इंद्र—तो अब क्या होगा ?

विद्या०—देव अब आपके पुत्र ने प्रस्वापनास्त्र चलाया है ।

नाक बोलावत, धनु किए तकिया, मूँदे नैन ।
सब अचेत सोए, भई मुरदा सी कुरु-सैन ॥

इंद्र—युद्ध से थके वीरों को सोना योग्य ही है । हाँ फिर—

विद्या०—एक पितामह छोड़ि कै सबको नाँगो कीन ।
बाँधि अँधेरी आँख मैं, मूँड़ि तिलक सिर दीन ॥
अब जागे भागे लखौ रह्यौ न कोऊ खेत ।
गोधन लै तुव सुत अबै ग्वालन देखौ देत ॥
शत्रु जीति निज मित्र को काज साधि सानद ।
पुरजन सों पूजित लखौ पुर प्रविसत तुव नंद ॥

इंद्र—जो देखना था वह देखा ।

(रथ पर बैठे अर्जुन और कुमार आते हैं)

अ०—(कुमार से) कुमार !

जो मो कहँ आनँद भयो करि कौरव बिनु सेस ।
तुव तन को बिनु घाव लखि तासो मोद बिसेस ॥

कु०—जब आप सा रक्षक हो तो यह कौन बड़ी बात है ।

इंद्र—(आनंद से) जो देखना था वह देख चुके ।

(विद्याधर और प्रतिहारी समेत जाता है)

अ०—(संतोष से) कुमार !

करी बसन बिनु द्रौपदी इन सब सभा बुलाय ।
सो हम इनको वस्त्र हरि बदलो लीन्ह चुकाय ॥

कु०—आपने सब बहुत ठीक ही किया क्योंकि—

बरु रन मैं मरनो भलो पाछे सब सुख सींव ।
निज अरि सों अपमान हिय खटकत जब लौं जीव ॥

अ०—(आगे देखकर) अरे अपने भाइयों और राजा विराट समेत आर्य धर्मराज इधर ही आते हैं ।

(तीनों भाई समेत धर्मराज और विराट आते हैं)

धर्म—मत्स्यराज ! देखिए—

धूर धूसरित अलक सब मुख श्रमकन झलकात ।
असम समर करि थकित पै, जय सोभा प्रगटात ॥

विरा०—सत्य है ।

द्विज सोहत विद्या पढ़ें, छत्री रन जय पाय ।
लच्मी सोहत दान सों, तिमि कुलबधू लजाय ॥

अ०—(घबड़ाकर) अरे क्या भैया आ गए ? (रथ से उतरकर दंडवत् करता है)

सब—(आनंद से एक ही साथ) कल्याण हो—जीते रहो ।

धर्म०—

इकले सिव रिपुपुर दह्यो, निसिचर मारे राम ।
तुम इकले जीत्यो कुरुन, नहिं अब चौथे नाम ॥

अ०—(सिर झुकाकर हाथ जोड़कर) यह केवल आपकी कृपा है ।

विरा०—(नेपथ्य की ओर हाथ से दिखाकर) राजपुत्र ! देखो ।

मिलि बछरन सों धेनु सब श्रवहिं दूध की धार ।
तुव उज्वल कीरति मनहुँ फैलत नगर मँझार ॥

और,

खींच्यो कृष्णा-केस जो सभा माँहि कुरुराज।
सो तुम मुकुट गिराइ कै बदलो लीन्हो आज॥

भीम०—(सुनकर क्रोध से) राजन्! अभी बदला नहीं चुका, क्योंकि—

तोरि गदा सो हृदय दुष्ट दुस्सासन केरो।
तासो ताजो सद्य रुधिर करि पान घनेरो॥
ताही कर सो कृष्णा को बेनी बँधवाई।
भीमसेन ही सो बदलो लैहै चुकवाई॥

धर्म०—बेटा, तुम्हारे आगे यह क्या बड़ी बात है।

सौगंधिक तोर्‌यौ छबक, कियो हिडंबहि घात।
हत्यौ बकासुर जिन सहज, तेहि केती यह बात॥

भीम०—(विनय से) महाराज सुनिए, अब हम क्षमा नहीं कर सकते।

धर्म०—बेटा, क्षमा के दिन गए, युद्ध के दिन आए, अब इतना मत घबड़ाओ।

विरा०—(युधिष्ठिर से)

तुव सरूप जाने बिना लियो अनेकन काज।
जोग अजोग अनेक बिधि सो छमिए महराज॥

अ०—राजन्! यह उपकार ही हुआ, अपकार कभी नहीं हुआ। क्योंकि—

जो अजोग करते न हम सेवा है तुव दास।
तो कोउ बिधि छिपतौ न यह मम अज्ञात निवास॥

विरा०—(अर्जुन से) राजपुत्र!

सात चरनहू संग चले मित्र भए हम दोय।
तासों माँगत उत्तरा पुत्रबधू तुव होय॥

अ०—आपकी जो इच्छा। क्योंकि—

आपु आवती लच्छमी को मूरख नहिं लेत।
सोऊ बिन माँगे मिलै तो केवल हरि हेत॥

विरा०—और भी मैं आपका कुछ प्रिय कर सकता हूँ ?

अ०—अब इससे बढ़ कर क्या होगा ?

शत्रु सुजोधन सो लही करन सहित रन जीत ।
गाय फेरि लाए सबै पायो तुम सो मीत ॥
लही बधू सुत-हित भयो सुख अज्ञात निवास ।
तौ अब का नहिं हम लह्यो जाकी राखैं आस ॥

तौ भी यह भरतवाक्य सत्य हो—

राजवर्ग मद छोड़ि निपुन विद्या में होई ।
आलस मूरखतादि तजैं भारत[1] सब कोई ॥
पंडितगन पर कृति लखि कै मति दोष लगावैं ।
छुटै राज-कर, मेघ समै पै जल बरसावैं ॥
कजरी ठुमिरन सों मोरि मुख सत कविता सब कोउ कहै ।
हिय भोगवती सम गुप्त हरि प्रेम धार नितही बहै[2] ॥

और भी

"सौजन्याभृतसिन्धवः परहितप्रारब्ध वीरव्रताः
वाचालाः परवर्णने निजगुणालापे च मौनव्रताः ।
आपत्स्वप्यविलुप्तधैर्य्यनिचया सम्पत्स्वनुत्सेकिनो
मा भूवन् खलवक्त्रनिर्गतविषम्लानाननाः सज्जनाः"[3] ॥

विरा०—तथास्तु ।

(सब जाते हैं)

---

१ पाठा० श्री हरिपद मैं भक्ति करें छल बिनु ।

२ पाठा० यह कविबानी बुध बदन मैं रवि ससि लौं प्रगटित रहै ।

३ सौजन्य रूपी अमृत के समुद्र, दूसरे की भलाई में दृढ़व्रती, दूसरे की प्रशंसा में बकवादी पर अपनी प्रशंसा करने में मौनी बाबा, कष्ट में धैर्य के समूह को न छोड़ने वाले और सम्पत्ति काल में नम्र जो सज्जन हैं, वे दुष्टों के मुख से निकले विष भरी बातों से उदास मुख न हों ।

मुद्राराक्षस

नाटक

संवत् १९३२

बालबोधिनी सन् १८७५–७७
में क्रमशः प्रकाशित

परमश्रद्धास्पद

श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद बहादुर, सी० एस० आई०

के

चरण-कमलों में

केवल उन्हीं के उत्साहदानसे

उनके

वात्सल्यभाजन छात्र-द्वारा बना हुआ

यह ग्रंथ

सादर समर्पित हुआ।

पूर्व कथा

पूर्व काल में भारतवर्ष में मगधराज एक बड़ा भारी जनस्थान था। जरासंध आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुवंशी राजा यहाँ बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इस देश की राजधानी पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी। इन लोगों ने अपना प्रताप और शौर्य इतना बढ़ाया था कि आज तक इनका नाम भूमंडल पर प्रसिद्ध है। किंतु कालचक्र बड़ा प्रबल है कि किसी को भी एक अवस्था में रहने नहीं देता। अंत में नंदवंश* ने पौरवों को निकालकर वहाँ अपनी जयपताका उड़ाई। वरंच सारे भारतवर्ष में अपना प्रबल प्रताप विस्तारित कर दिया।

इतिहास ग्रंथों में लिखित है कि एक सौ अड़तीस बरस नंदवंश ने मगध देश का राज्य किया। इसी वंश में महानंद का जन्म हुआ। यह बड़ा प्रसिद्ध और अत्यंत प्रतापशाली राजा हुआ। जब जगद्विजयी सिकंदर (अलक्षेंद्र) ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी तब असंख्य हाथी, बीस हजार सवार और दो लाख पैदल लेकर महानंद ने उसके विरुद्ध प्रयाण किया था†। सिद्धांत यह कि भारतवर्ष में उस समय महानंद सा प्रतापी और कोई राजा न था।

महानंद के दो मंत्री थे। मुख्य का नाम शकटार था और दूसरे का राक्षस था। शकटार शूद्र और राक्षस‡ ब्राह्मण था। ये दोनों अत्यंत

---

* नंदवंश सम्मिलित क्षत्रियों का वंश था। ये लोग शुद्ध क्षत्री नहीं थे।

† सिकंदर के कान्यकुब्ज से आगे न बढ़ने से महानंद से उससे मुकाबिला नहीं हुआ।

‡ बृहत्कथा में राक्षस मंत्री का नाम कहीं नहीं है, केवल वररुचि के एक सच्चे राक्षस से मैत्री की कथा यों लिखी है—एक बड़ा प्रचंड राक्षस पाटलिपुत्र में फिरा करता था। वह एक रात्रि वररुचि से मिला और पूछा कि "इस नगर में कौन स्त्री सुंदर है?" वररुचि ने उत्तर दिया—"जो जिसको रुचे वही सुंदर है।" इस पर प्रसन्न होकर राक्षस ने उससे मित्रता की और कहा कि हम सब बात में तुम्हारी सहायता करेंगे और फिर सदा राजकाज में ध्यान में प्रत्यक्ष होकर राक्षस वररुचि की सहायता करता।

बुद्धिमान् और महाप्रतिभासंपन्न थे। केवल भेद इतना था कि राक्षस धीर और गंभीर था, उसके विरुद्ध शकटार अत्यन्त उद्धतस्वभाव था, यहाँ तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी-कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता। महानंद भी अत्यन्त उग्रस्वभाव, असहनशील और क्रोधी था, जिसका परिणाम यह हुआ कि महानंद ने अंत को शकटार को क्रोधांध होकर बड़े निबिड़ बन्दीखाने में कैद किया और सपरिवार उसके भोजन को केवल दो सेर सत्तू देता था†।

शकटार ने बहुत दिन तक महामात्य का अधिकार भोगा था, इससे यह अनादर उसके पक्ष में अत्यंत दुखदाई हुआ। नित्य सत्तू का बरतन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नंदवंश को जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह सत्तू खाय। मंत्री के इस वाक्य से दुखित होकर उसके परिवार का कोई भी सत्तू न खाता। अंत में कारागार की पीड़ा से एक-एक करके उसके परिवार के सब लोग मर गए।

---

† बृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है। वररुचि, व्याड़ि और इंद्रदत्त तीनों को गुरुदक्षिणा देने के हेतु करोड़ो रुपए के सोने की आवश्यकता हुई। तब इन लोगों ने सलाह की कि नंद (सत्यनद) राजा के पास चलकर उससे सोना लें। उन दिनो राजा का डेरा अयोध्या में था, ये तीनों ब्राह्मण वहाँ गए, किंतु सयोग से उन्हीं दिनो राजा मर गया। तब आपस में सलाह करके इंद्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड़कर राजा के शरीर में चला गया, जिससे राजा फिर जी उठा। तभी से उसका नाम योगानंद हुआ। योगानंद ने वररुचि को करोड़ रुपए देने की आज्ञा की। शकटार बड़ा बुद्धिमान् था; उसने सोचा कि राजा का मर कर जाना और एक बिरगी एक अपरिचित को करोड़ रुपया देना इसमें हो न हो कोई भेद है। ऐसा न हो कि अपना काम करके फिर राजा का शरीर छोड़कर यह चला जाय, यह सोचकर शकटार ने राज्य भर में जितने मुरदे मिले उनको जलवा दिया, उसी में इंद्रदत्त का भी शरीर जल गया। जब व्याड़ि ने यह वृत्तांत योगानंद से कहा तो यह सुनकर वह पहिले तो दुखी हुआ पर फिर वररुचि को अपना मंत्री बनाया। अंत में शकटार की उग्रता से संतप्त होकर उसको अँधेरे कुएँ में कैद किया। बृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल नाम लिखा है।

एक तो अपमान का दुःख, दूसरे कुटुंब का नाश, इन दोनों कारणों से शकटार अत्यंत तनछीन मनमलीन दीन-हीन हो गया। किंतु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किए और थोड़े-बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रखा। रात दिन इसी सोच में रहता कि किस उपाय से वह अपना बदला ले सकेगा।

कहते हैं कि राजा महानंद एक दिन हाथ-मुँह धोकर हँसते-हँसते जनाने में आ रहे थे। विचक्षणा नाम की एक दासी, जो राजा के मुँह लगने के कारण कुछ धृष्ट हो गई थी, राजा को हँसता देखकर हँस पड़ी। राजा उसकी ढिठाई से बहुत चिढ़े और उससे पूछा—तू क्यों हँसी? उसने उत्तर दिया—"जिस बात पर महाराज हँसे उसी पर मैं भी हँसी।" महानंद इस बात पर और भी चिढ़ा और कहा कि अभी बतला मैं क्यों हँसा, नहीं तो तुझको प्राणदंड होगा। दासी से और कुछ उपाय न बन पड़ा और उसने घबड़ाकर इसके उत्तर देने की एक महीने की मुहलत चाही। राजा ने कहा—आज से ठीक एक महीने के भीतर जो उत्तर न देगी तो कभी तेरे प्राण न बचेंगे।

विचक्षणा के प्राण उस समय तो बच गए परंतु महीने के जितने दिन बीतते थे, मारे चिंता के वह मरी जाती थी। कुछ सोच-विचार कर वह एक दिन कुछ खाने-पीने की सामग्री लेकर शकटार के पास गई और रो-रोकर अपनी सब विपत्ति कहने लगी। मंत्री ने कुछ देर तक सोचकर उस अवसर की सब घटना पूछी और हँसकर कहा—"मैं जान गया राजा क्यों हँसे थे। कुल्ला करने के समय पानी के छोटे छोटों पर राजा को वटबीज की याद आई, और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े बड़ के वृक्ष इन्हीं छोटे बीजों के अंतर्गत हैं। किंतु भूमि पर पड़ते ही वह जल के छींटे नाश हो गए। राजा अपनी इसी भावना को याद करके हँसते थे।" विचक्षणा ने हाथ जोड़कर कहा—"यदि आप के अनुमान से मेरे प्राण की रक्षा होगी तो मैं जिस तरह से होगा आपको कैदखाने से छुड़ाऊँगी और जन्म भर आपकी दासी होकर रहूँगी।"

राजा ने विचक्षणा से एक दिन फिर हँसने का कारण पूछा, तो विचक्षणा ने शकटार से जैसा सुना था कह सुनाया। राजा ने चमत्कृत

होकर पूछा—"सच बता, तुझसे यह भेद किसने कहा।" दासी ने शकटार का सब वृत्त कहा और राजा को शकटार की बुद्धि की प्रशंसा करते देख अवसर पाकर उसके मुक्त होने की प्रार्थना भी की। राजा ने शकटार को बंदी से छुड़ाकर राक्षस के नीचे मंत्री बनाकर रखा।

ऐसे अवसर पर राजा लोग बहुत चूक जाते हैं। पहले तो किसी की अत्यंत प्रतिष्ठा बढ़ानी ही नीतिविरुद्ध है। यदि संयोग से बढ़ जाय तो उसकी बहुत सी बातों को तरह देकर टालना चाहिए, और जो कदाचित् बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य का राजा अनादर करे तो उसकी जड़ काटकर छोड़े, फिर उसका कभी विश्वास न करे। प्रायः अमीर लोग पहले तो मुसाहिब या कारिंदों को बेतरह सिर चढ़ाते हैं, और फिर छोटी-छोटी बातों पर उनकी प्रतिष्ठा हीन कर देते हैं। इसी से ऐसे लोग राजाओं के प्राण के गाहक हो जाते हैं और अंत में नंद की भाँति उनका सर्वनाश होता है।

शकटार यद्यपि बंदीखाने से छूटा और छोटा मंत्री भी हुआ, किंतु अपनी अप्रतिष्ठा और परिवार के नाश का शोक उसके चित्त में सदा पहिले ही सा जागता रहा। रात-दिन वह यही सोचता कि किस उपाय से ऐसे अव्यवस्थित-चित्त उद्धत राजा का नाश करके अपना बदला लें। एक दिन वह घोड़े पर हवा खाने जाता था। नगर के बाहर एक स्थान पर देखता है कि एक काला सा ब्राह्मण अपनी कुटी के सामने मार्ग की कुशा उखाड़-उखाड़ कर उसकी जड़ में मठा डालता जाता है। पसीने से लथपथ है, परंतु कुछ भी शरीर की ओर ध्यान नहीं देता। चारों ओर कुशा के बड़े-बड़े ढेर लगे हुए हैं। शकटार ने आश्चर्य से ब्राह्मण से इस श्रम का कारण पूछा। उसने कहा—"मेरा नाम विष्णुगुप्त चाणक्य है। मैं ब्रह्मचर्य में नीति, वैद्यक, ज्योतिष, रसायन आदि संसार की उपयोगी सब विद्या पढ़कर विवाह की इच्छा से नगर की ओर आया था, किंतु कुश गड़ जाने से मेरे मनोरथ में विघ्न हुआ, इससे जब तक इन बाधक कुशाओं का सर्वनाश न कर लूँगा और काम न करूँगा। मठा इस वास्ते इनकी जड़ में देता हूँ जिससे पृथ्वी के भीतर इनका मूल भी भस्म हो जाय।"

शकटार के जी में यह बात आई कि ऐसा पक्का ब्राह्मण जो किसी प्रकार राजा से क्रुद्ध हो जाय तो उसका जड़ से नाश करके छोड़े।

यह सोचकर उसने चाणक्य से कहा कि जो आप नगर में चलकर पाठशाला स्थापित करें तो मैं अपने को बड़ा अनुगृहीत समझूँ। मैं इसके बदले बेलदार लगाकर यहाँ की सब कुशाओं को खुदवा डालूँगा। चाणक्य इस पर सम्मत हुआ और उसने नगर में आकर एक पाठशाला स्थापित की। बहुत से विद्यार्थी लोग पढ़ने आने लगे और पाठशाला बड़े धूमधाम से चल निकली।

अब शकटार इस सोच में हुआ कि चाणक्य से राजा से किस चाल से बिगाड़ हो। एक दिन राजा के घर में श्राद्ध था। उस अवसर को शकटार अपने मनोरथ सिद्ध होने का अच्छा समय सोचकर चाणक्य को श्राद्ध का न्योता देकर अपने साथ ले आया और श्राद्ध के आसन पर बिठला कर चला गया, क्योंकि वह जानता था कि चाणक्य का रंग काला, आँखें लाल और दाँत काले होने के कारण नंद उसको आसन पर से उठा देगा, जिससे चाणक्य अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसका सर्वनाश करेगा।

और ठीक ऐसा ही हुआ—जब राक्षस के साथ नंद श्राद्धशाला में आया और एक अनिमंत्रित ब्राह्मण को आसन पर बैठा हुआ और श्राद्ध के अयोग्य देखा तो चिढ़कर आज्ञा दी कि इसको बाल पकड़ कर यहाँ से निकाल दो। इस अपमान से ठोकर खाए हुए सर्प की भाँति अत्यन्त क्रोधित होकर शिखा खोलकर चाणक्य ने सब के सामने प्रतीज्ञा की कि जब तक इस दुष्ट राजा का सत्यानाश न कर लूँगा तब तक शिखा न बाधूँगा। यह प्रतिज्ञा करके बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया।

शकटार अवसर पाकर चाणक्य को मार्ग में से अपने घर ले आया और राजा की अनेक निंदा करके उसका क्रोध और भी बढ़ाया और अपनी सब दुर्दशा कहकर नंद के नाश में सहायता करने की प्रतिज्ञा की। चाणक्य ने कहा कि जब तक हम राजा के घर का भीतरी हाल न जानें कोई उपाय नहीं सोच सकते। शकटार ने इस विषय में विचक्षणा की सहायता देने का वृत्तांत कहा और रात को एकांत में बुलाकर चाणक्य के सामने उससे सब बात का करार ले लिया।

महानंद को नौ पुत्र थे। आठ विवाहिता रानी से और एक चंद्रगुप्त मुरा नाम की नाइन स्त्री से। इसीसे चंद्रगुप्त को मौर्य और

वृषल भी कहते हैं। चंद्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान था इसीसे और आठो भाई इससे भीतरी द्वेष रखते थे। चंद्रगुप्त की बुद्धिमानी की बहुत सी कहानियाँ हैं। कहते हैं कि एक बेर रूम के बादशाह ने महानंद के पास एक कृत्रिम सिंह लोहे की जाली के पिंजड़े में बंद करके भेजा और कहला दिया कि पिंजड़ा टूटने न पावे और सिंह इसमें से निकल जाय। महानंद और उसके आठ औरस पुत्रों ने इसको बहुत कुछ सोचा, परंतु बुद्धि ने कुछ काम न किया। चंद्रगुप्त ने विचारा कि यह सिंह अवश्य किसी ऐसे पदार्थ का बना होगा जो या तो पानी से या आग से गल जाय, यह सोचकर पहले उसने उस पिंजड़े को पानी के कुंड में रखा और जब वह पानी से न गला तो उस पिंजड़े के चारों तरफ आग जलवाई, जिसकी गर्मी से वह सिंह जो लाह और राल का बना था गल गया। एक बेर ऐसे ही किसी बादशाह ने एक अँगीठी में दहकती हुई आग *, एक बोरा सरसों और एक मीठा फल महा-

---

*दहकती आग की कथा—"जरासंधवधमहाकाव्य" (सर्ग ६ पद ६—१२) में भी है कि जरासंध ने उग्रसेन के पास अँगीठी भेजी थी। शायद उसी से यह कथा निकाली गई हो।

सवैया—रूप की रूपनिधान अनूप अँगीठी नई गढ़ि मोल मँगाई।
ता मधि पावकपुंज धरयो गिरिधारन जामें प्रभा अधिकाई॥
तेज सों ताके ललाई भई रज मैं मिलि आसु सबै रजताई।
मानो प्रबाल की थाल बनाय के लाल की रास बिसाल लगाई॥ १॥

ढाँकि कै पावक दूत के हाथ दै बात कही इहि भाँति बुझाय कै।
भैम धुआल सभा महँ सनमुख राखि कै यों कहियो सिर नाय कै॥
याहि पठायो जरासुत नै अवलोकहु नीकें अधीरज लाय कै।
पुत्र खपाय कै नातिन पाय कै जीहो जै पाय कै कौन उपाय कै॥ २॥

दोहा—सुनत चार तिहि हाथ लै, गयो भैम दरबार।
बासव ऐसे कैक सब, जहँ बैठे सरदार॥ ३॥

अड़िल्ल—जाय जरासुत-दूत भैमपति-पद परयौ।
देखि जराऊ जगह हिये सभ्रम भरयौ॥
जगत जरावन-द्रव्यपात्र आगे धरयौ।
सोच जरा है अभय हाल बरनन करयौ॥ ४॥

नंद के पास अपने दूत के द्वारा भेज दिया। राजा की सभा का कोई भी मनुष्य इसका आशय न समझ सका; किंतु चंद्रगुप्त ने सोचकर कहा कि अँगीठी यह दिखलाने को भेजी है कि मेरा क्रोध अग्नि है और सरसों यह सूचना कराती है कि मेरी सेना असंख्य है और फल भेजने का आशय यह है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है। इनके उत्तर में चंद्रगुप्त ने एक घड़ा जल और एक पिंजड़े में थोड़े से तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा, जिसका आशय यह था कि तुम्हारी सेना कितनी भी असंख्य क्यों न हो हमारे वीर उसको भक्षण करने में समर्थ हैं और तुम्हारा क्रोध हमारी नीति से सहज ही बुझाया जा सकता है और हमारी मित्रता सदा अमूल्य और एक रस है। ऐसे ही तीन पुतलीवाली कहानी भी इसी के साथ प्रसिद्ध है। इसी बुद्धिमानी के कारण चंद्रगुप्त से उसके भाई लोग बुरा मानते थे; और महानंद भी अपने औरस पुत्रों का पक्ष करके इससे कुढ़ता था। यह यद्यपि शूद्रा के गर्भ से था, परंतु ज्येष्ठ होने के कारण अपने को राज का भागी समझता था; और इसी से इसका राज-परिवार से पूर्ण वैमनस्य था। चाणक्य और शकटार ने इसी से निश्चय किया कि हम लोग चन्द्रगुप्त को राज का लोभ देकर अपनी ओर मिला लें और नंदों का नाश करके इसी को राजा बनावें।

यह सब सलाह पक्की हो जाने के पीछे चाणक्य तो अपनी पुरानी कुटी में चला गया और शकटार ने चन्द्रगुप्त और विचक्षणा को तब तक सिखा-पढ़ा कर पक्का करके अपनी ओर फोड़ लिया। चाणक्य ने कुटी में जाकर हलाहल विष मिले हुए कुछ ऐसे पकवान तैयार किये जो परीक्षा करने में न पकड़े जायँ, किन्तु खाते ही प्राण नाश हो

सुनि बिहँसे जदुबीर जीत की चाय, सों।
हँसि बोले गोविंद कहहु यह राय सों॥
उचित ससुरपन कीन क्षत्रकुल-न्याय सों।
चही दमाद सहाय सुता की हाय सों॥ ५॥

सोरठा—इमि कहि दूत गहि चाय, आप आपु सिखि मैं दियो।
तुरतहि गयो बुझाय, ज्ञान पाय मन भ्रांत जिमि॥ ६॥
बिदा कियो नृप दूत, उर मैं सर को अंक करि।
निरखि, बृहद्रथ-पूत, सबन सहित कोप्यो अतिहि॥ ७॥

जाय। विचक्षणा ने किसी प्रकार से महानंद को पुत्रों समेत यह पकवान खिला दिया, जिससे बेचारे सब के सब एक साथ परमधाम का सिधारे *।

---

* भारतवर्ष की कथाओं में लिखा है कि चाणक्य ने अभिचार से मारण का प्रयोग करके इन सभों को मार डाला। विचक्षणा ने उस अभिचार का निर्माल्य किसी प्रकार इन लोगों के अंग में छुला दिया था। किंतु वर्तमान काल के विद्वान् लोग सोचते हैं कि उस समय निर्माल्य में मंत्र का बल नहीं था, चाणक्य ने कुछ औषधि ऐसे विषमिश्रित बनाए थे कि जिनके भोजन वा स्पर्श से मनुष्य का सद्यः नाश हो जाय। भट्ट सोमदेव के कथा सरित्सागर के पाटलपुत्रक के चौथे तरंग में लिखा है—योगानंद को ऊँची अवस्था में नये प्रकार की कामवासना उत्पन्न हुई। वररुचि ने यह सोचकर कि राजा को तो भोगविलास से छुट्टी ही नहीं है, इससे राजकाज का काम शकटार से निकाला जाय तो अच्छी तरह से चले। यह विचार कर और राजा से पूछकर शकटार को अंधे कुएँ से निकाल कर वररुचि ने मंत्रीपद पर नियत किया। एक दिन शिकार खेलने में गंगा में राजा ने अपनी पाँचों उँगली की परछाईं वररुचि को दिखलाई। वररुचि ने अपनी दो उँगलियों को परछाईं ऊपर से दिखाई, जिससे राजा के हाथ की परछाईं छिप गई। राजा ने इन संज्ञाओं का कारण पूछा। वररुचि ने कहा—आपका यह आशय था कि पाँच मनुष्य मिल कर सब कार्य साध सकते हैं। मैंने यह कहा कि जो दो चित्त एक हो जायँ तो पाँच का बल व्यर्थ है। इस बात पर राजा ने वररुचि की बड़ी स्तुति की। एक दिन राजा ने अपनी रानी को एक ब्राह्मण से खिड़की में से बात करते देखकर उस ब्राह्मण को मारने की आज्ञा की, किंतु अनेक कारणों से वह बच गया। वररुचि ने कहा कि आप के सब महल की यही दशा है। अनेक स्त्री-वेषधारी पुरुष महल में रहते हैं और उन सबों को पकड़ कर दिखला दिया। इसी से उस ब्राह्मण के प्राण बचे। एक दिन योगानंद की रानी के एक चित्र में, जो महल में लगा हुआ था, वररुचि ने जाँघ में तिल बना दिया। योगानन्द को गुप्त स्थान में वररुचि के तिल बनाने से उस पर भी संदेह हुआ और शकटार को आज्ञा दी कि तुम वररुचि को आज ही रात को मार डालो। शकटार ने उसको अपने घर में छिपा रखा और किसी और को उसके बदले मार कर उसका मारना प्रकट किया। एक बेर राजा का पुत्र हिरण्यगुप्त जंगल में शिकार खेलने गया था, वहाँ रात को सिंह के भय से एक पेड़ पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर एक भालू

चन्द्रगुप्त इस समय चाणक्य के साथ था। शकटार अपने दुःख और पापों से संतप्त होकर निविड़ बन में चला गया और अनशन करके प्राण त्याग किए। कोई-कोई इतिहास-लेखक कहते हैं कि चाणक्य ने अपने हाथ से शस्त्र द्वारा नंद का वध किया और फिर क्रम से उसके पुत्रों को भी मारा, किंतु इस विषय का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। चाहे जिस प्रकार से हो चाणक्य ने नंदों का नाश किया, किंतु केवल पुत्र सहित राजा के मारने ही से वह चंद्रगुप्त को राजसिंहासन पर न बैठ सका, इससे अपने अंतरंग मित्र जीवसिद्धि को क्षपणक के वेष में राक्षस के पास छोड़कर आप राजा लोगों से सहायता लेने की इच्छा से विदेश निकला। अंत में अफगानिस्तान वा उसके उत्तर ओर के निवासी पर्वतक नामक लोभ-परतंत्र एक राजा से मिलकर और उसको जीतने के पीछे मगध राज्य का आधा भाग देने के नियम पर उसको पटने पर चढ़ा लाया। पर्वतक के भाई का नाम वैरोधक *

था, किंतु इसने उसको अभय दिया। इन दोनों में यह बात ठहरी कि आधी रात तक कुँवर सोवें भालू पहरा दे, फिर भालू सोवे कुँवर पहरा दे। भालू ने अपना मित्रधर्म्म निर्बाहा और सिंह के बहकाने पर भी कुँवर की रक्षा की। किंतु अपनी पारी में कुँवर ने सिंह के बहकाने से भालू को ढकेलना चाहा, जिस पर उसने जागकर मित्रता के कारण कुँवर को मारा तो नहीं किंतु कान में मूत दिया जिससे कुँअर गूँगा और बहिरा हो गया। राजा को बेटे की इस दुर्दशा पर बड़ा सोच हुआ और कहा कि वररुचि जीता होता तो इस समय उपाय सोचता। शकटार ने यह अवसर समझकर राजा से कहा कि वररुचि जीता है और लाकर राजा के सामने खड़ा कर दिया। वररुचि ने कहा—कुँवर ने मित्रद्रोह किया है उसी का यह फल है। यह वृत्त कहकर उसको उपाय से अच्छा किया। राजा ने पूछा—तुमने यह सब वृत्तांत किस तरह जाना? वररुचि ने कहा—योगबल से जैसे रानी का तिल। (ठीक यही कहानी राजा भोज, उसकी रानी भानुमती और उसके पुत्र और कालिदास की भी प्रसिद्ध है) यह सब कह कर और उदास होकर वररुचि जंगल में चला गया। वररुचि से शकटार ने राजा को मारने को कहा था, किंतु वह धर्मिष्ठ था इससे सम्मत न हुआ। वररुचि के चले जाने पर शकटार ने अवसर पाकर चाणक्य द्वारा कृत्या से नंद को मारा।

* लिखी पुस्तकों में यह नाम विरोधक, वैरोधक, वैरोचक इत्यादि कई चाल से लिखा है।

और पुत्र का मलयकेतु था। और भी पाँच म्लेच्छ राजाओं को पर्वतक अपनी सहायता को लाया था। इधर, राक्षस मंत्री राजा के मरने से दुखी होकर उसके भाई सर्वार्थसिद्धि को सिंहासन पर बैठाकर राजकाज चलाने लगा। चाणक्य ने पर्वतक की सेना लेकर कुसुमपुर को चारों ओर से घेर लिया। पंद्रह दिन तक घोरतर युद्ध हुआ। राक्षस की सेना और नागरिक लोग लड़ते-लड़ते शिथिल हो गये; इसी समय में गुप्त रीति से जीवसिद्धि के बहकाने से राजा सर्वार्थसिद्धि वैरागी होकर बन में चला गया। इस कुसमय में राजा के चले जाने से राक्षस और भी उदास हुआ। चंदनदास नामक एक बड़े धनी जौहरी के घर में अपने कुटुंब को छोड़कर और शकटदास कायस्थ तथा अनेक राजनीति जाननेवाले विश्वासपात्र मित्रों को, और कई आवश्यक काम सौंपकर राजा सर्वार्थसिद्धि के फेर लाने को आप तपोवन की ओर गया।

चाणक्य ने जीवसिद्धि-द्वारा यह सब सुनकर राक्षस के पहुँचने के पहले ही अपने मनुष्यों से राजा सर्वार्थसिद्धि को मरवा डाला। राक्षस जब तपोवन में पहुँचा और सर्वार्थसिद्धि को मरा देखा तो अत्यंत उदास होकर वहीं रहने लगा। यद्यपि सर्वार्थसिद्धि के मार डालने से चाणक्य की नंदकुल के नाश की प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी, किंतु उसने सोचा कि जब तक राक्षस चंद्रगुप्त का मंत्री न होगा तब तक राज्य स्थिर न होगा। वरंच बड़े विनय से तपोवन में राक्षस के पास मंत्रित्व स्वीकार करने का संदेसा भेजा, परंतु प्रभुभक्त राक्षस ने उसको स्वीकार नहीं किया।

तपोवन में कई दिन रहकर राक्षस ने यह सोचा कि जब तक पर्वतक को हम न फोड़ेंगे, काम न चलेगा। यह सोच-कर वह पर्वतक के राज्य में गया और वहाँ उसके बूढ़े मंत्री से कहा कि चाणक्य बड़ा दगाबाज है, वह आधा राज कभी न देगा। आप राजा को लिखिए, वह मुझसे मिले तो मैं सब राज्य उनको दूँ। मंत्री ने पत्रद्वारा पर्वतक को यह सब वृत्त और राक्षस की नीतिकुशलता लिख भेजा और यह भी लिखा कि मैं अत्यंत वृद्ध हूँ, आगे से मंत्री का काम राक्षस को दीजिए। पाटलिपुत्र विजय होने पर भी चाणक्य आधा राज्य देने में विलंब करता है, यह देखकर सहज लोभी पर्वतक ने मंत्री की बात

मान ली और पत्रद्वारा राक्षस को गुप्त रीति से अपना मुख्य अमात्य बनाकर इधर ऊपर के चित्त से चाणक्य से मिला रहा।

जीवसिद्धि के द्वारा चाणक्य ने राक्षस का सब हाल जान-कर अत्यंत सावधानतापूर्वक चलना आरंभ किया। अनेक भाषा जानने वाले बहुत से धूर्त पुरुषों को वेष बदल-बदलकर भेद लेने को चारों ओर नियुक्त किया। चंद्रगुप्त को राक्षस का कोई गुप्तचर धोखे से किसी प्रकार की हानि न पहुँचावे इसका भी पक्का प्रबंध किया और पर्वतक की विश्वासघातकता का बदला लेने का दृढ़ संकल्प से, परंतु अत्यंत गुप्त रूप से, उपाय सोचने लगा।

राक्षस ने केवल पर्वतक की सहायता से राज के मिलने की आशा छोड़कर कुलूत*, मलय, काश्मीर, सिंधु और पारस इन पाँच देशों के राजा से सहायता ली। जब इन पाँचों देश के राजाओं ने बड़े आदर से राक्षस को सहायता देना स्वीकार किया तो वह तपोवन के निकट फिर से लौट आया और वहाँ से चंद्रगुप्त के मारने को एक विषकन्या† भेजी और अपना विश्वासपात्र समझ कर जीवसिद्धि को उसके साथ कर दिया। चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब बात जान कर और पर्वतक की धूर्तता और विश्वासघातकता से क्रुद्ध कर प्रकट में इस उपहार को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया और लाने वाले को बहुत सा पुरस्कार देकर बिदा किया। साँझ होने के पीछे धूर्ताधिराज चाणक्य ने इस कन्या को पर्वतक के पास भेज दिया और इंद्रियलोलुप पर्वतक उसी रात को उस कन्या के संग से मर गया। इधर चाणक्य ने यह सोचा कि मलयकेतु यहाँ रहेगा तो उसको राज्य का हिस्सा देना पड़ेगा, इससे किसी तरह

---

* कुलूत देश किलात वा कुल्लू देश।

† विषकन्या शास्त्रों में दो प्रकार की लिखी है। एक थोड़े से ऐसे बुरे योग हैं कि उस लग्न में उस प्रकार के ग्रहों के समय जो कन्या उत्पन्न हो उसके साथ जिसका विवाह हो वा जो उसका साथ करे वह साथ ही वा शीघ्र ही मर जाता है। दूसरे प्रकार की विषकन्या वैद्यक रीति से बनाई जाती थी। छोटेपन से वरन गर्भ से कन्या को दूध में वा भोजन में थोड़ा-थोड़ा विष देते-देते बड़ी होने पर उसका शरीर ऐसा विषमय हो जाता था कि जो उसका अंग-संग करता वह मर जाता।

इसको यहाँ से भगावें तो काम चले। इस कार्य के हेतु भागुरायण नामक एक प्रतिष्ठित विश्वासपात्र पुरुष को मलयकेतु के पास सिखा-पढ़ा कर भेज दिया। उसने पिछली रात को मलयकेतु से जाकर उसका बड़ा हितू बनकर उससे कहा कि आज चाणक्य ने विश्वास-घातकता करके आपके पिता को विषकन्या के प्रयोग से मार डाला और अवसर पाकर आपको भी मार डालेगा। मलयकेतु बेचारा इस बात के सुनते ही सन्न हो गया और पिता के शयनागार में जाकर देखा तो पर्वतक को बिछौने पर मरा हुआ पाया। इस भयानक दृश्य के देखते ही मुग्ध मलयकेतु के प्राण सूख गए और वह भागुरायण की सलाह से उस रात को छिपकर वहाँ से भाग कर अपने राज्य की ओर चला गया। इधर चाणक्य के सिखाए भद्रभट इत्यादि चंद्रगुप्त के कई बड़े बड़े अधिकारी प्रगट में राजद्रोही बनकर मलयकेतु और भागुरायण के साथ ही भाग गए।

राक्षस ने मलयकेतु से पर्वतक के मारे जाने का समाचार सुनकर अत्यंत सोच किया और बड़े आग्रह और सावधानी से चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्टसाधन में प्रवृत्त हुआ।

चाणक्य ने कुसुमपुर में दूसरे दिन यह प्रसिद्ध कर दिया कि पर्वतक और चंद्रगुप्त दोनों समान बंधु थे, इससे राक्षस ने विषकन्या भेजकर पर्वतक को मार डाला और नगर के लोगों के चित्त पर, जिनको कि यह सब गुप्त अनुसंधि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया।

इसके पीछे चाणक्य और राक्षस के परस्पर नीति की जो चोटें चलती हैं, उसी का इस नाटक में वर्णन है।

महाकवि विशाखदत्त का बनाया

मुद्राराक्षस

स्थान—रंगभूमि

रंगशाला में नांदी-मंगलपाठ

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥

'कौन है सीस पै' ? 'चंद्रकला', 'कहा याको है नाम यही त्रिपुरारी' ?
'हाँ यही नाम है, भूल गई किमि जानत हू तुम प्रान-पियारी' ॥
'नारिहि पूछत चद्रहि नाहिं', 'कहै विजया जदि चंद्र लबारी'।
यों गिरिजै छलि गंग छिपावत ईस हरौ सब पीर तुम्हारी ॥
पाद-प्रहार सों जोइ पताल नं भूमि सबै तनुं-बोझ के मारे।
हाथ नचाइबे सो नभ मैं इत के उत टूटि परै नहिं तारे ॥
देखनं सों जरि जाहिं न लोक न खोलत नैनं कृपा उर धारे।
यों थल के बिनु कष्ट सो नाचत शर्व हरौं दुख सर्व तुम्हारे ॥

---

* संस्कृत का मंगलाचरण—

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्नु नामैतदस्याः
नामैवास्यास्तदेतत्; परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः।
नारीं पृच्छामि नेन्दु ; कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु-
र्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः ॥ १ ॥

और भी

पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवनेरुच्छ्रितः स्वैरपातैः
संकोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयता सर्व्वलोकातिगानाम्।
दृष्टि लक्ष्येषु नोग्रज्वलनकणमुचं बध्नतो दाहभीते
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्तम् ॥ २ ॥

नांदी-पाठ के अनंतर *

सूत्रधार—बस ! बहुत मत बढ़ाओ, सुनो, आज मुझे सभासदों की आज्ञा है कि सामंत वटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र विशाखदत्त कवि का बनाया मुद्राराक्षस नाटक खेलो। सच है, जो सभा काव्य के गुण और दोष को सब भाँति समझती है, उसके सामने खेलने में मेरा भी चित्त संतुष्ट होता है।

उपजैं अछे खेत में, मूरखहू के धान।
सघन होन मैं धान के, चहिय न गुनी किसान॥

तो अब मैं घर से सुघर घरनी को बुलाकर कुछ गाने-बजाने का ढंग जमाऊँ। (घूमकर) यही मेरा घर है, चलूँ। (आगे बढ़कर) अहा ! आज तो मेरे घर में कोई उत्सव जान पड़ता है, क्योंकि घरवाले सब अपने-अपने काम में चूर हो रहे हैं।

अर्थ

'यह आपके सिर पर कौन बड़भागिनी है ?' 'शशिकला' है। 'क्या इसका यही नाम है ?' 'हाँ, यही तो, तुम तो जानती हो फिर क्यों भूल गई ?' 'अजी हम स्त्री को पूछती हैं, चंद्रमा को नहीं पूछतीं', 'अच्छा चंद्र की बात का विश्वास न हो तो अपनी सखी विजया से पूछ लो।' योंही बात बनाकर गंगाजी को छिपाकर देवी पार्वती को ठगने की इच्छा करने वाले महादेवजी का छल तुम लोगों की रक्षा करै।

दूसरा

पृथ्वी झुकने के डर से इच्छानुसार पैर का बोझ नहीं दे सकते, ऊपर के लोकों के इधर-उधर हो जाने के भय से हाथ भी यथेच्छ नहीं फेंक सकते, और उसके अग्निकण से जल जायँगे इसी ध्यान से किसी की ओर भर दृष्टि देख भी नहीं सकते, इससे अधार के संकोच से महादेव जी का कष्ट से नृत्य करना तुम्हारी रक्षा करै।

* नाटकों में पहले मंगलाचरण करके तब खेल आरंभ करते हैं। इस मंगलाचरण को नाटकशास्त्र में नांदी कहते हैं। किसी का मत है कि नांदी पहले ब्राह्मण पढ़ता है, कोई कहता है सूत्रधार ही और किसी का मत है कि परदे के भीतर से नांदी पढ़ी या गाई जाय।

पीसत कोऊ सुगंध कोऊ जल भरि कै लावत।
कोऊ बैठि कै रंग रंग की माल बनावत॥
कहुँ तिय-गन हुँकार सहित अति स्रवन सोहावत।
होत मुशल को शब्द सुखद जिय को सुनि भावत॥

जो हो घर से स्त्री को बुलाकर पूछ लेता हूँ (नेपथ्य की ओर)

री गुनवारी सब उपाय की जाननवारी।
घर की राखनवारी सब कुछ साधनवारी॥
मो गृह नीति सरूप काज सब करन सँवारी।
बेगि आउरी नटी बिलंब न करु सुनि प्यारी॥

(नटी आती है)

नटी—आर्य्यपुत्र* ! मैं आई, अनुग्रहपूर्वक कुछ आज्ञा दीजिए।

सूत्र०—प्यारी, आज्ञा पीछे दी जायगी, पहिले यह बता कि आज ब्राह्मणों का न्यौता करके तुमने इस कुटुंब के लोगों पर क्यों अनुग्रह किया है ? या आपही से आज अतिथि लोगों ने कृपा किया है कि ऐसे धूम से रसोई चढ़ रही है ?

नटी—आर्य्य ! मैंने ब्राह्मणों को न्यौता दिया है।

सूत्र०—क्यों ? किस निमित्त से ?

नटी—चंद्रग्रहण लगने वाला है।

सूत्र०—कौन कहता है ?

नटी—नगर के लोगों के मुँह सुना है।

सूत्र०—प्यारी, मैंने ज्योतिःशास्त्र के चौंसठों† अंगों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो, रसोई तो होने दो ‡ पर आज तो गहन है यह तो किसी ने तुझे धोखा ही दिया है क्योंकि—

चंद्र बिंब पूर न भए क्रूर केतु§ हठ दाप¶।

---

* संस्कृत मुहाविरे में पति को स्त्रियाँ आर्य्यपुत्र कहकर पुकारती हैं।

† होरा मुहूर्त्त जातक ताजक रमल इत्यादि।

‡ अर्थात् ग्रहण का योग तो कदापि नहीं है। खैर रसोई हो।

§ केतु अर्थात् राक्षस मंत्री। राक्षस मंत्री ब्राह्मण था और केवल नाम उसका राक्षस था किंतु गुण उसमें देवताओं के थे।

¶ इस श्लोक का यथार्थ तात्पर्य्य जानने को काशी संस्कृत विद्यालय

बल सों करिहै ग्रास कह—

(नेपथ्य में)

हैं ! मेरे जीते चंद्र को कौन बल से ग्रस सकता है ?

सूत्र०— जेहि बुध रच्छत आप ॥

के अध्यक्ष जगद्विख्यात पंडितवर बापूदेव शास्त्री को मैंने पत्र लिखा। क्योंकि टीकाकारों ने "चन्द्रमा पूर्ण होने पर" यही अर्थ किया है और इस अर्थ से मेरा जी नहीं भरा। कारण यह कि पूर्ण चन्द्र में तो ग्रहण लगता ही है, इसमें विशेष क्या हुआ ? शास्त्रीजी ने जो उत्तर दिया है वह यहाँ प्रकाशित होता है।

श्रीयुत बाबू साहिब को बापूदेव का कोटिशः आशीर्वाद, आपने प्रश्न लिख भेजे उनका संक्षेप से उत्तर लिखता हूँ।

१ सूर्य्य के अस्त हो जाने पर जो रात्रि में अंधकार होता है यही पृथ्वी की छाया है और पृथ्वी गोलाकार है और सूर्य्य से छोटी है इसलिये उसकी छाया सूच्याकार शंकु के आकार की होती है और यह आकाश में चन्द्र के भ्रमणमार्ग को लाँघ के बहुत दूर तक सदा सूर्य्य से छ राशि के अंतर पर रहती है और पूर्णिमा के अंत में चन्द्रमा भी सूर्य्य से छ राशि के अंतर पर रहता है। इसलिए जिस पूर्णिमा में चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में आ जाता है अर्थात् पृथ्वी की छाया चन्द्रमा के बिम्ब पर पड़ती है तभी वह चन्द्र का ग्रहण कहलाता है और छाया जो चन्द्रबिंब पर देख पड़ती हैं वही ग्रास कहलाता है। और राहु नामक एक दैत्य प्रसिद्ध है वह चन्द्रग्रहणकाल में पृथ्वी की छाया में प्रवेश करके चन्द्र की ओर प्रजा को पीड़ा करता है, इसी कारण से लोक में राहुकृत ग्रहण कहलाता है और उस काल में स्नान, दान, जप, होम इत्यादि करने से वह राहुकृत पीड़ा दूर होती है और बहुत पुण्य होता है।

२ पूर्णिमा में चन्द्रग्रहण होने का कारण ऊपर लिखा ही है और पूर्णिमा में चन्द्रबिंब भी संपूर्ण उज्ज्वल होता है तभी चन्द्रग्रहण होता है।

३ जब कि पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण होता है, इससे पूर्णिमा में चन्द्रमा का और बुध का योग कभी नहीं होता (क्योंकि बुध सर्वदा सूर्य्य के पास रहता है और पूर्णिमा के दिन सूर्य्य चन्द्रमा से छ राशि के अंतर पर रहता है, इसलिये बुध भी उस दिन चन्द्र से दूर ही रहता है)। यों बुध के योग में

नटी—आर्य्य ! यह पृथ्वी ही पर से चंद्रमा को कौन बचाना चाहता ?

सूत्र०—प्यारी, मैंने भी नहीं लखा, देखो, अब फिर से वही पढ़ता हूँ और अब जब वह फिर बोलैगा तो मैं उसकी बोली से पहिचान लूँगा कि कौन है।

चन्द्रग्रहण कभी नहीं हो सकता। इति शिवम् संवत् १९३७ ज्येष्ठ शुक्ल १५ मंगल दिने, मगलं मंगले भूयात्।

शास्त्रीजी से एक दिन मुझे इस विषय में फिर वार्त्ता हुई। शास्त्रीजी को मैंने मुद्राराक्षस की पुस्तक भी दिखलाई। इस पर शास्त्रीजी ने कहा कि मुझको ऐसा मालूम होता है कि यदि उस दिन उपराग का संभव होगा तो सूर्यग्रहण का क्योंकि बुधयोग अमावस्या के पास होता भी है। पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि राहु चन्द्रमा का ग्रास करता है और केतु सूर्य्य का, और इस श्लोक में केतु का नाम भी है। इससे भी संभव होता है कि सूर्य्य-उपराग रहा हो। तो चाणक्य का कहना भी ठीक हुआ कि केतु हठपूर्वक क्यों चन्द्र को ग्रसा चाहता है अर्थात् एक तो चन्द्रग्रहण का दिन नहीं, दूसरे केतु का चन्द्रमा ग्रास का विषय नहीं क्योंकि नंद-वीर्य्यजात होने से चन्द्रगुप्त राक्षस का वध्य नहीं है। इस अवस्था में 'चद्रम् असंपूर्णमंडलं' चन्द्रमा का अधूरा मंडल यह अर्थ करना पड़ेगा। तब छंद में 'चंद बिंब पूरनं भए' के स्थान पर 'बिना चन्द्र पूरन भए' पढ़ना चाहिए।

बुध का बिंब प्राचीन भास्कराचार्य्य के मतानुसार छ कला, पंद्रह विकला के लगभग है। परंतु नवीनों के मत से केवल दश विकला परम है।

परंतु इसमें कुछ संदेह नहीं कि यह ग्रह बहुत छोटा है क्योंकि प्राचीनों को इसका ज्ञान बहुत कठिनता से हुआ है, इसी लिये इसका नाम ही बुध, ज्ञ, इत्यादि हो गया। यह पृथ्वी से ६८९३७७ इतने योजन की दूरी पर मध्यम मान से रहता है और सदा सूर्य्य के अनुचर के समान सूर्य्य के पास ही रहता है, एक पाद अर्थात् तीन राशि भी सूर्य्य से आगे नहीं जाता। विश्वसन ने केतु शब्द से मलयकेतु का ग्रहण किया है। इसमें भी एक प्रकार का अलंकार अच्छा रहता है।

चमत्कृत-बुद्धिसंपन्न पंडित सुधाकरजी ने इस विषय में जो लिखा है वह विचित्र ही है। वह भी प्रकाश किया जाता है—

करत अधिक अँधेयार वह, मिलि मिलि करि हरिचंद।
द्विजराजहु विकसित करत, धनि धनि यह हरिचंद॥

('अहो चंद्र पूर न भए' फिर से पढ़ता है)

(नेपथ्य में)

हैं ! मेरे जीते चंद्र को कौन बल से ग्रस सकता हैं ?

सूत्र०—(सुनकर) जाना ।

अरे अहै कौटिल्य

नटी—(डर नाट्य करती है)

श्री बाबू साहब को हमारे अनेक आशीर्वाद,

महाशय !

चद्रग्रहण का संभव भूछाया के कारण प्रति पूर्णिमा के अंत में होता है और उस समय में केतु और सूर्य्य साथ रहते हैं। परंतु केतु और सूर्य्य का योग यदि नियत संख्या के अर्थात् पाँच राशि सोलह अंश से लेकर छ राशि चौदह अंश के वा ग्यारह राशि सोलह अंश से लेकर बारह राशि चौदह अंश के भीतर होता है तब ग्रहण होता है और यदि योग नियत संख्या के बाहर पड़ जाता है तब ग्रहण नहीं होता। इसलिये सूर्य्य केतु के योग ही के कारण से प्रत्येक पूर्णिमा में ग्रहण नहीं होता,। तब

क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम् ।
अभिभवितुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः ॥

इस श्लोक का यथार्थ अर्थ यह है कि क्रूरग्रह सूर्य्य केतु के साथ चन्द्रमा के पूर्ण मंडल को न्यून करने की इच्छा करता है परंतु हे बुध ! योग जो है वही बल से उस चन्द्रमा की रक्षा करता है। यहाँ बुध शब्द पंडित के अर्थ में संबोधन है, ग्रहवाची कदापि नहीं है। बुध शब्द को ग्रहार्थ मे ले जाने से जो-जो अर्थ होते हैं वे सब बनौआ हैं। इति

स० १९३७ वैशाख शुक्ल ५

ऊँचे ह्वै गुरु बुध कवी मिलि लरि होत विरूप ।
करत समागम सबहि सों यह द्विजराज अनूप ॥

आपका
पं० सुधाकर

सूत्र०— दुष्ट टेढ़ी मतिवारो ।
नंदवंश जिन सहजहि निज क्रोधानल ज़ारो ॥
चंद्रग्रहण को नाम सुनत निज नृप को मानी ।
इतही आवत चंद्रगुप्त पैं कछु भय जानी ॥

तो अब चलो हम लोग चलें ।

(दोनो जाते हैं)

प्रथम अंक

स्थान—चाणक्य का घर

(अपनी खुली शिखा को हाथ से फटकारता हुआ चाणक्य आता है)

चाणक्य—बता ! कौन है जो मेरे जीते चंद्रगुप्त को बल से ग्रसना चाहता है ?

सदा दंति के कुंभ को जो विदारै ।
ललाई नए चंद सी जौन धारै ॥
जँभाई समै काल सो जौन बाढ़ै ।
भलो सिंह को दाँत सो कौन काढ़ै ?

और भी

कालसर्पिणी नंद-कुल, क्रोध धूम सी जौन ।
अबहूँ बाँधन देत नहिं, अहो शिखा मम कौन ?
दहन नंदकुल-बन सहज, अति प्रज्वलित प्रताप ।
को मम क्रोधानल-पतँग, भयो चहत अब पाप ॥

शारंगरव ! शारंगरव !!

(शिष्य आता है)

शिष्य—गुरुजी ! क्या आज्ञा है ?

चाणक्य—बेटा ! मैं बैठना चाहता हूँ ।

शिष्य—महाराज ! इस दालान में बेंत की चटाई पहिले ही से बिछी है, आप विराजिए ।

चाणक्य—बेटा ! केवल कार्य्य मे तत्परता मुझे व्याकुल करती है, न कि और उपाध्यायों के तुल्य शिष्यजन से दुःशीलता[1] । (बैठकर आप ही आप) क्या सब लोग यह बात जान गए

---

१ अर्थात् कुछ तुम लोगो पर दुष्टता से नही, अपने काम की, घबराहट से बिछी हुई चटाई नहीं देखी ।

कि मेरे नंदवंश[1] के नाश से क्रुद्ध होकर राक्षस पितावध से दुखी मलयकेतु[2] से मिलकर यवनराज की सहायता लेकर चंद्रगुप्त पर चढ़ाई किया चाहता है। (कुछ सोचकर) क्या हुआ, जब मैं नंदवंश-वध की बड़ी प्रतिज्ञारूपी नदी से पार उतर चुका, तब यह बात प्रकाश होने ही से क्या मैं इसको न पूरा कर सकूँगा? क्योंकि—

"दिसि सरिस रिपु-रमनी बदन-शशि शोक कारिख लाय कै।
लै नीति-पवनहि सचिव-बिटपन छार डारि जराय कै॥
बिनु पुर निवासी पच्छिगन नृप बसमूल नसाय कै।
भो शांत मम क्रोधाग्नि यह कछु दहन हित नहिं पाय कै[3]॥

और भी

"जिन जनन ने अति सोच सो नृप-भय प्रगट धिक्क नहिं कह्यो।
पै मम अनादर को अतेहि वह सोच जिय जिनके रह्यो[4]॥
ते लखहि आसन सो गिरायो नंद सहित समाज को।
जिमि शिखर ते वनराज क्रोध गिरावई गजराज कों।

सो यद्यपि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हूँ, तौ भी चंद्रगुप्त के हेतु शस्त्र अब भी धारण करता हूँ। देखो मैंने—

नव नंदन कौं मूल सहित खोद्यो छन भर में।
चन्द्रगुप्त मैं श्री राखी नलिनी जिमि सर में।
क्रोध प्रीति सो एक नासि कै एक बसायो।
शत्रु मित्र को प्रकट सबन फल ल दिखलायो॥

अथवा जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नंदों के मारने ही से क्या और चन्द्रगुप्त को राज्य मिलने से ही क्या? (कुछ सोचकर) अहा! राक्षस की नंदवंश में कैसी दृढ़ भक्ति है! जब तक नंदवंश का कोई भी जीता रहेगा तब तक वह

---

१ नदवंश अर्थात् नव नद—एक नद और उसके आठ पुत्र।

२ पर्वतेश्वर राजा का पुत्र।

३ अग्नि बिना आधार नहीं जलती।

४ नंद ने कुरूप होने के कारण चाणक्य को अपने श्राद्ध से निकाल दिया था।

कभी शूद्र का मंत्री बनना स्वीकार न करेगा, इससे उसके पकड़ने में हम लोगों को निरुद्यम रहना अच्छा नहीं। यही समझकर तो नंदवंश का सर्वार्थसिद्धि बिचारा तपोवन में चला गया तौ भी हमने मार डाला। देखो, राक्षस मलयकेतु को मिलाकर हमारे बिगाड़ने में यत्न करता ही जाता है। (आकाश में देखकर) वाह राक्षस मंत्री वाह! क्यों न हो! वाह मंत्रियों में बृहस्पति के समान वाह! तू धन्य है, क्योंकि—

जब लौं रहै सुख राज को तब लौ सबै सेवा करैं।
पुनि राज बिगडे कौन स्वामी? तनिक नहिं चित में धरैं॥
जे बिपतिहूँ में पालि पूरब प्रीति काज सँवारहीं।
ते धन्य नर तुम सारिखे दुरलभ अहैं संसय नहीं॥

इसी से तो हम लोग इतना यत्न करके तुम्हें मिलाया चाहते हैं कि तुम अनुग्रह करके चंद्रगुप्त के मंत्री बनो, क्योंकि—

मूरख कातर स्वामिभक्त कछु काम न आवै।
पंडित हू बिन भक्ति काज कछु नाहि बनावै॥
निज स्वारथ की प्रीति करैं ते सब जिमि नारी।
बुद्धि भक्ति दोउ होय तबै सेवक सुखकारी॥

सो मैं भी इस विषय में कुछ सोता नहीं हूँ, यथाशक्ति उसी के मिलाने का यत्न करता रहता हूँ। देखो, पर्वतक को चाणक्य ने मारा यह अपवाद न होगा, क्योंकि सब जानते हैं कि चंद्रगुप्त और पर्वतक मेरे मित्र हैं तो मैं पर्वतक को मारकर चंद्रगुप्त का पक्ष निर्बल कर दूँगा ऐसी शंका कोई न करेगा, सब यही कहेंगे कि राक्षस ने विषकन्या-प्रयोग करके चाणक्य के मित्र पर्वतक को मार डाला। पर एकांत में राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया है कि तेरे पिता को मैंने नहीं मारा, चाणक्य ही ने मारा। इससे मलयकेतु मुझसे बिगड़ रहा है। जो हो, यदि यह राक्षस लड़ाई करने को उद्यत होगा तो भी पकड़ जायगा। पर जो हम मलयकेतु को पकड़ेंगे तो लोग निश्चय कर लेंगे कि अवश्य चाणक्य ही ने अपने मित्र इसके पिता को मारा और अब मित्रपुत्र अर्थात् मलयकेतु को मारना चाहता

है। और भी, अनेक देश की भाषा, पहिरावा, चाल-व्यवहार जाननेवाले अनेक वेषधारी बहुत से दूत मैंने इसी हेतु चारों ओर भेज रखे हैं कि वे भेद लेते रहें कि कौन हम लोगों से शत्रुता रखता है, कौन मित्र है। और कुसुमपुर-निवासी नंद के मंत्री और संबंधियों के ठीक-ठीक वृत्तांत का अन्वेषण हो रहा है, वैसे ही भद्रभटादिकों को बड़े-बड़े पद देकर चंद्रगुप्त के पास रख दिया है और भक्ति की परीक्षा लेकर बहुत से अप्रमादी पुरुष भी शत्रु से रक्षा करने को नियत कर दिए हैं। वैसे ही मेरा सहपाठी मित्र विष्णुशर्म्मा नामक ब्राह्मण जो शुक्रनीति और चौसठों कला से ज्योतिषशास्त्र में बड़ा प्रवीण है, उसे मैंने पहले ही योगी बनाकर नंदवध की प्रतिज्ञा के अनंतर ही कुसुमपुर में भेज दिया है, वह वहाँ नंद के मंत्रियों से मित्रता करके, विशेष करके राक्षस का अपने पर बड़ा विश्वास बढ़ाकर सब काम सिद्ध करेगा, इससे मेरा सब काम बन गया है परन्तु चन्द्रगुप्त सब राज्य का भार मेरे ही ऊपर रखकर सुख करता है। सच है, जो अपने बल बिना और अनेक दुःखों के भोगे बिना राज्य मिलता है वही सुख देता है। क्योंकि—

अपने बल सो लावहीं जद्यपि मारि सिकार।
तदपि सुखी नहिं होत हैं, राजा-सिंह-कुमार॥

(* यम का चित्र हाथ मे लिए योगी का वेष धारण किए दूत आता है)

दूत—अरे, और देव को काम नहिं, जम को करो प्रनाम।
जो दूजन के भक्त को, प्रान हरत परिनाम॥

और

उलटे ते हू बनत है, काज किए अति हेत।
जो जम जी सबको हरत, सोई जीविका देत॥

तो इस घर में चलकर जमपट दिखाकर गावें। (घूमता है)

शिष्य—रावलजी! ड्योढ़ी के भीतर न जाना।

---

* उस काल में एक चाल के फकीर जम का चित्र दिखलाकर संसार की अनित्यता के गीत गाकर भीख माँगते थे।

दूत—अरे ब्राह्मण ! यह किसका घर है ?

शिष्य—हम लोगों के परम प्रसिद्ध गुरु चाणक्यजी का।

दूत—(हँसकर) अरे ब्राह्मण, तब तो यह मेरे गुरुभाई ही का घर है; मुझे भीतर जाने दे, मैं उसको धर्मोपदेश करूँगा।

शिष्य—(क्रोध से) छिः मूर्ख ! क्या तू गुरुजी से भी धर्म्म विशेष जानता है ?

दूत—अरे ब्राह्मण ! क्रोध मत कर, सभी सब कुछ नहीं जानते, कुछ तेरा गुरु जानता है, कुछ मेरे से लोग जानते है।

शिष्य—(क्रोध से) मूर्ख ! क्या तेरे कहने से गुरुजी की सर्वज्ञता उड़ जायगी ?

दूत—भला ब्राह्मण ! जो तेरा गुरु सब जानता है तो बतलावे कि चंद्र किसको नहीं अच्छा लगता ?

शिष्य—मूर्ख ! इसको जानने से गुरु को क्या काम ?

दूत—यही तो कहता हूँ कि यह तेरा गुरु ही समझेगा कि इसके जानने से क्या होता है ? तू तो सूधा मनुष्य है, तू केवल इतना ही जानता है कि कमल को चंद्र प्यारा नहीं है। देख—

जदपि होत सुन्दर कमल, उलटो तदपि सुभाव।
जो नित पूरन चद सो, करत बिरोध बनाव॥

चाणक्य—(सुनकर आप ही आप) अहा ! "मैं चंद्रगुप्त के बैरियों को जानता हूँ" यह कोई गूढ़ वचन से कहता है।

शिष्य—चल मूर्ख ! क्या बेठिकाने की बकवाद कर रहा है।

दूत—अरे ब्राह्मण ! यह सब ठिकाने की बातें होंगी।

शिष्य—कैसे होंगी ?

दूत—जो कोई सुननेवाला और समझनेवाला होय।

चाणक्य—रावलजी ! बेखटके चले आइए, यहाँ आप को सुनने और समझने वाले मिलेंगे।

दूत—आया। (आगे बढ़कर) जय हो महाराज की।

चाणक्य—(देखकर आप ही आप) कामों की भीड़ से यह नहीं

निश्चय होता कि निपुणक को किस बात के जानने के लिये भेजा था। अरे जाना, इसे लोगों के जी का भेद लेने को भेजा था। (प्रकाश) आओ, आओ कहो, अच्छे हो? बैठो।

दूत—जो आज्ञा। (भूमि में बैठता है)

चाणक्य—कहो, जिस काम को गये थे उसका क्या किया? चंद्रगुप्त को लोग चाहते है कि नहीं?

दूत—महाराज! आपने पहले ही से ऐसा प्रबंध किया है कि कोई चंद्रगुप्त से बिरोध न करे; इस हेतु सारी प्रजा महाराज चंद्रगुप्त में अनुरक्त है, पर राक्षस मंत्री के दृढ़ मित्र तीन ऐसे है जो चंद्रगुप्त की वृद्धि नहीं सह सकते।

चाणक्य—(क्रोध से) अरे! कह, कौन अपना जीवन नहीं सह सकते, उनके नाम तू जानता है?

दूत—जो नाम न जानता तो आप के सामने क्योंकर निवेदन करता?

चाणक्य—मैं सुना चाहता हूँ कि उनके क्या नाम हैं?

दूत—महाराज सुनिए। पहिले तो शत्रु का पक्षपात करनेवाला क्षपणक है।

चाणक्य—(हर्ष से आप ही आप) हमारे शत्रुओं का पक्षपाती क्षपणक है? (प्रकाश उसका नाम क्या है?

दूत—जीवसिद्धि नाम है।

चाणक्य—तूने कैसे जाना कि क्षपणक मेरे शत्रुओं का पक्षपाती है?

दूत—क्योंकि उसने राक्षस मंत्री के कहने से देव पर्वतेश्वर पर विष-कन्या का प्रयोग किया।

चाणक्य—(आप ही आप) जीवसिद्धि तो हमारा गुप्त दूत है। (प्रकाश) हाँ, और कौन है?

दूत—महाराज! दूसरा राक्षस मंत्री का प्यारा सखा शकटदास कायथ है।

चाणक्य—(हँसकर आप ही आप) कायथ कोई बड़ी बात नहीं है तो भी क्षुद्र शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, इसी हेतु तो मैंने सिद्धार्थक को उसका मित्र बनाकर उसके पास रखा है।

(प्रकाश) हाँ, तीसरा कौन है ?

दूत—(हँसकर) तीसरा तो राक्षस मंत्री का मानों हृदय ही पुष्पपुर-वासी चंदनदास नामक वह बड़ा जौहरी है जिसके घर में मंत्री राक्षस अपना कुटुंब छोड़ गया है।

चाणक्य—(आप ही आप) अरे ! यह उसका बड़ा अंतरंग मित्र होगा ; क्योंकि पूरे विश्वास बिना राक्षस अपना कुटुंब यों न छोड़ जाता। (प्रकाश) भला, तूने यह कैसे जाना कि राक्षस मंत्री वहाँ अपना कुटुंब छोड़ गया है ?

दूत—महाराज ! इस 'मोहर' की अँगूठी से आपको विश्वास होगा। (अँगूठी देता है)।

चाणक्य—(अँगूठी लेकर और उसमें राक्षस का नाम बाँचकर प्रसन्न होकर आप ही आप) अहा ! मैं समझता हूँ कि राक्षस ही मेरे हाथ लगा। (प्रकाश) भला, तुमने यह अँगूठी कैसे पाई ? मुझसे सब वृत्तांत तो कहो।

दूत—सुनिए, जब मुझे आपने नगर के लोगों का भेद लेने भेजा तब मैंने यह सोचा कि बिना भेस बदले मैं दूसरे के घर में न घुसने पाऊँगा, इससे मैं जोगी का भेस करके जमराज का चित्र हाथ में लिए फिरता-फिरता चंदनदास जौहरी के घर में चला गया और वहाँ चित्र फैलाकर गीत गाने लगा।

चाणक्य—हाँ, तब ?

दूत—तब महाराज ! कौतुक देखने को एक पाँच बरस का बड़ा सुंदर बालक एक परदे के आड़ से बाहर निकला। उस समय परदे के भीतर स्त्रियों में बड़ा कलकल हुआ कि "लड़का कहाँ गया।" इतने में एक स्त्री ने द्वार के बाहर मुख निकालकर देखा और लड़के को झट पकड़ ले गई, पर पुरुष को उँगली से स्त्री की उँगली पतली होती है, इससे द्वार ही पर यह अँगूठी गिर पड़ी, और मैं उस पर राक्षस मंत्री का नाम देखकर आपके पास उठा लाया।

चाणक्य—वाह-वाह ! क्यों न हो। अच्छा जाओ, मैंने सब सुन लिया ! तुम्हें इसका फल शीघ्र ही मिलेगा।

दूत—जो आज्ञा। [जाता है

चाणक्य—शारंगरव ! शारंगरव !!

शिष्य—(आकर) आज्ञा, गुरुजी।

चाणक्य—बेटा ! कलम, दावात, कागज तो लाओ।

शिष्य—जो आज्ञा। (बाहर जाकर ले आता है) गुरुजी ! ले आया।

चाणक्य—(लेकर आप ही आप) क्या लिखूँ ? इसी पत्र से राक्षस को जीतना है।

(प्रतिहारी आती है)

प्रतिहारी—जय हो, महाराज की जय हो !

चाणक्य—(हर्ष से आप ही आप) वाह-वाह ! कैसा सगुन हुआ कि कार्य्यारंभ ही में जय शब्द सुनाई पड़ा। (प्रकाश) कहो, शोणोत्तरा, क्यों आई हो ?

प्रति०—महाराज ! राजा चंद्रगुप्त ने प्रणाम कहा है और पूछा है कि मैं पर्वतेश्वर की क्रिया किया चाहता हूँ इससे आपकी आज्ञा हो तो उनके पहिरे आभरणों को पंडित ब्राह्मणों को दूँ।

चाणक्य—(हर्ष से आप ही आप) वाह चंद्रगुप्त वाह, क्यों न हो; मेरे जी की बात सोचकर संदेशा कहला भेजा है। (प्रकाश) शोणोत्तरा ! चंद्रगुप्त से कहो कि "वाह ! बेटा वाह ! क्यों न हो, बहुत अच्छा विचार किया ! तुम व्यवहार में बड़े ही चतुर हो, इससे जो सोचा है सो करो, पर पर्वतेश्वर के पहिरे हुए आभरण गुणवान ब्राह्मणों को देने चाहिएँ, इससे ब्राह्मण मैं चुन के भेजूँगा।"

प्रति०—जो आज्ञा महाराज ! [जाती है

चाणक्य—शारंगरव ! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से कहो कि जाकर चंद्रगुप्त से आभरण लेकर मुझसे मिलें।

शिष्य—जो आज्ञा। [जाता है

चाणक्य—(आप ही आप) पीछे तो यह लिखें पर पहिले क्या लिखें। (सोचकर) अहा ! दूतों के मुख से ज्ञात हुआ है कि

उस म्लेच्छराज-सेना में से प्रधान पाँच राजा परम भक्ति से राक्षस की सेवा करते हैं।

प्रथम चित्रवर्मा कुलूत को राजा भारी।
मलयदेशपति सिंहनाद दूजो बलधारी॥
तीजो पुसकरनयन अहै कश्मीर देश को।
सिंधुसेन पुनि सिंधु-नृपति अति उग्र भेष कों॥

मेधाक्ष पाँचवो प्रबल अति, बहु हय-जुत पारस-नृपति।
अब चित्रगुप्त इन नाम को मेटहिं हम जब लिखहिं हतिः॥

(कुछ सोचकर) अथवा न लिखूँ, अभी सब बात योंही रहे। (प्रकाश) शारंगरव! शारंगरव!

शिष्य—(आकर) आज्ञा गुरुजी!

चाणक्य—बेटा! वैदिक लोग कितना भी अच्छा लिखें तो भी उनके अक्षर अच्छे नहीं होते; इससे सिद्धार्थक से कहो (कान में कहकर) कि वह शकटदास के पास जाकर यह सब बात यों लिखवा कर और "किसी का लिखा कुछ कोई आप ही बाँचे" यह सरनामे पर नाम बिना लिखवाकर हमारे पास आवे और शकटदास से यह न कहे कि चाणक्य ने लिखवाया है।

शिष्य—जो आज्ञा। [जाता है

चाणक्य—(आप ही आप) अहा! मलयकेतु को तो जीत लिया।

(चिट्ठी लेकर सिद्धार्थक आता है)

सिद्धा०—जय हो महाराज की, जय हो, महाराज! यह शकटदास के हाथ का लेख है।

चाणक्य—(लेकर देखता है) वाह कैसे सुंदर अक्षर हैं! (पढ़कर) बेटा, इस पर यह मोहर कर दो।

सिद्धा०—जो आज्ञा। (मोहर करके) महाराज, इस पर मोहर हो गई, अब और कहिए क्या आज्ञा है।

---

* अर्थात् अब जब हम इनका नाम लिखते हैं तो निश्चय ये सब मरेंगे। इससे अब चित्रगुप्त अपने खाते से इनका नाम काट दें, न ये जीते रहेंगे न चित्रगुप्त को लेखा रखना पड़ेगा।

चाणक्य—बेटा ! हम तुम्हें एक अपने निज के काम में भेजा चाहते हैं।

सिद्धा०—(हर्ष से) महाराज, यह तो आपकी कृपा है। कहिए, यह दास आपके कौन काम आ सकता है।

चाणक्य—सुनो, पहिले जहाँ सूली दी जाती है वहाँ जाकर फाँसी देनेवालों को दाहिनी आँख दबाकर समझा देना * और जब वे तेरी बात समझकर डर से इधर-उधर भाग जायँ तब तुम शकटदास को लेकर राक्षस मंत्री के पास चले जाना। वह अपने मित्र के प्राण बचाने से तुम पर बड़ा प्रसन्न होगा और तुम्हें पारितोषिक देगा, तुम उसको लेकर कुछ दिनों तक राक्षस ही के पास रहना और जब और भी लोग पहुंच जायँ तब यह काम करना। (कान में समाचार कहता है।)

सिद्धा०—जो आज्ञा महाराज।

चाणक्य—शारंगरव ! शारंगरव !!

शिष्य—(आकर) आज्ञा गुरुजी !

चाणक्य—कालपाशिक और दंडपाशिक से यह कह दो कि चंद्रगुप्त आज्ञा करता है कि जीवसिद्ध क्षपणक ने राक्षस के कहने से विषकन्या का प्रयोग करके पर्वतेश्वर को मार डाला, यही दोष प्रसिद्ध करके अपमानपूर्वक उसको नगर से निकाल दें।

शिष्य—जो आज्ञा। (घूमता है)

चाणक्य—बेटा ! ठहर—सुन, और वह जो शकटदास कायस्थ है वह राक्षस के कहने से नित्य हम लोगों की बुराई करता है। यही दोष प्रगट करके उसको सूली दे दें और उसके कुटुंब को कारागार में भेज दें।

शिष्य—जो आज्ञा महाराज। [जाता है

चाणक्य—(चिंता करके आप ही आप) हा ! क्या किसी भाँति यह दुरात्मा राक्षस पकड़ा जायगा ?

---

* चाण्डालों को पहले से समझा दिया था कि जो आदमी दाहिनी आँख दबावे उसको हमारा मनुष्य समझकर तुम लोग झटपट हट जाना।

सिद्धा०—महाराज ! लिया ।

चाणक्य—(हर्ष से आप ही आप) अहा ! क्या राक्षस को ले लिया ? (प्रकाश) कहो, क्या पाया ?

सिद्धा०—महाराज ! आपने जो संदेश कहा, वह मैंने भली भाँति समझ लिया, अब काम पूरा करने जाता हूँ ।

चाणक्य—(मोहर और पत्र देकर) सिद्धार्थक ! जा तेरा काम सिद्ध हो ।

सिद्धा०—जो आज्ञा । (प्रणाम करके जाता है)

शिष्य—(आकर) गुरुजी, कालपाशिक, दंडपाशिक आपसे निवेदन करते हैं कि महाराज चंद्रगुप्त की आज्ञा पूर्ण करने जाते हैं ।

चाणक्य—अच्छा, बेटा ! मैं चंदनदास जौहरी को देखा चाहता हूँ ।

शिष्य—जो आज्ञा । (बाहर जाकर चंदनदास को लेकर आता है) इधर आइए सेठजी !

चंदन०—(आप ही आप) यह चाणक्य ऐसा निर्दय है कि यह जो एकाएक किसी को बुलावे तो लोग बिना अपराध भी इससे डरते हैं, फिर कहाँ मैं इसका नित्य का अपराधी, इसी से मैंने धनसेनादिक तीन महाजनों से कह दिया कि दुष्ट चाणक्य जो मेरा घर लूट ले तो आश्चर्य्य नहीं, इससे स्वामी राक्षस का कुटुंब और कहीं ले जाओ, मेरी जो गति होनी है वह हो ।

शिष्य—इधर आइए साहजी !

चंदन०—आया । (दोनों घूमते हैं)

चाणक्य—(देखकर) आइए साहजी ! कहिए, अच्छे तो हैं ? बैठिए, यह आसन है ।

चंदन०—(प्रणाम करके) महाराज ! आप नहीं जानते कि अनुचित सत्कार अनादर से भी विशेष दुःख का कारण होता है, इससे मैं पृथ्वी ही पर बैठूँगा ।

चाणक्य—वाह ! आप ऐसा न कहिए, आपको तो हम लोगों के साथ यह व्यवहार उचित ही है; इससे आप आसन ही पर बैठिए ।

चंदन०—(आप ही आप) कोई बात तो इस दुष्ट ने जानी। (प्रकाश) जो आज्ञा। (बैठता है)

चाणक्य—कहिए साहजी ! चंदनदास जी ! आपको व्यापार में लाभ तो होता है न ?

चंदन०—महाराज, क्यों नहीं, आपकी कृपा से सब बनज-व्यापार अच्छी भाँति चलता है।

चाणक्य—कहिए साहजी ! पुराने राजाओं के गुण, चंद्रगुप्त के दोषों को देखकर, कभी लोगों को स्मरण आते हैं ?

चंदन०—(कान पर हाथ रखकर) राम ! राम ! शरद ऋतु के पूर्ण चंद्रमा की भाँति शोभित चंद्रगुप्त को देखकर कौन नहीं प्रसन्न होता ?

चाणक्य—जो प्रजा ऐसी प्रसन्न है तो राजा भी प्रजा से कुछ अपना भला चाहते हैं।

चंदन०—महाराज ! जो आज्ञा। मुझसे कौन और कितनी वस्तु चाहते हैं ?

चाणक्य—सुनिए साहजी ! यह नंद का राज* नहीं है, चंद्रगुप्त का राज्य है, धन से प्रसन्न होनेवाला तो वह लालची नंद ही था, चंद्रगुप्त तो तुम्हारे ही भले से प्रसन्न होता है।

चंदन०—(हर्ष से) महाराज, यह तो आपकी कृपा है।

चाणक्य—पर यह तो मुझसे पूछिए कि वह भला किस प्रकार से होगा ?

चंदन०—कृपा करके कहिए।

चाणक्य—सौ बात की एक बात यह है कि राजा के विरुद्ध कामों को छोड़ो।

चंदन०—महाराज वह कौन अभागा है जिसे आप राज-विरोधी समझते हैं ?

चाणक्य—उनमें पहिले तो तुम्हीं हो।

---

* यहाँ तुच्छता प्रगट करने के लिये 'राज्य' का अपभ्रंश "राज" लिखा गया है।

चंदन०—(कान पर हाथ रखकर) राम ! राम ! राम ! भला तिनके से और अग्नि से कैसा विरोध ?

चाणक्य—विरोध यही है कि तुमने राजा के शत्रु राक्षस मंत्री का कुटुंब अब तक घर में रख छोड़ा है।

चंदन०—महाराज ! यह किसी दुष्ट ने आपसे झूठ कह दिया है।

चाणक्य—सेठजी ! डरो मत। राजा के भय से पुराने राजा के सेवक लोग अपने मित्रों के पास बिना चाहे भी कुटुंब छोड़कर भाग जाते हैं, इससे इसके छिपाने ही में दोष होगा।

चंदन०—महाराज ! ठीक है। पहिले मेरे घर पर राक्षस मंत्री का कुटुंब था।

चाणक्य—पहिले तो कहा कि किसी ने झूठ कहा है। अब कहते हो था, यह गबड़े की बात कैसी ?

चंदन०—महाराज ! इतना ही मुझसे बातों में फेर पड़ गया।

चाणक्य—सुनो, चंद्रगुप्त के राज्य में छल का विचार नहीं होता, इससे राक्षस का कुटुंब दो, तो तुम सच्चे हो जाओगे।

चंदन०—महाराज ! मैं कहता हूँ न, पहिले राक्षस का कुटुंब था।

चाणक्य—तो अब कहाँ गया ?

चंदन०—न जाने कहाँ गया।

चाणक्य—(हँसकर) सुनो सेठ जी ! तुम क्या नहीं जानते कि साँप तो सिर पर बूटी पहाड़ पर। और जैसा चाणक्य ने नंद को ...(इतना कह कर लाज से चुप रह जाता है।)

चंदन०—(आप ही आप)

प्रिया दूर घन गरजहीं, अहो दुःख अति घोर।
औषधि दूर हिमाद्रि पै, सिर पै सर्प कठोर॥

चाणक्य—चंद्रगुप्त को अब राक्षस मंत्री राज पर से उठा देगा यह आशा छोड़ो, क्योंकि देखो—

नृप नंद जीवत नीतिबल सो मति रही जिनकी भली।
ते "वक्रनासादिक" सचिव नहिं थिर सके करि, नसि चली॥

सो श्री सिमिट अब आय लिपटी चंद्रगुप्त नरेस सों।
तेहि दूर को करि सकै ? चाँदनि छुटत कहुँ राकेस सों ? ॥

और भी

"सदा दंति के कुंभ को" इत्यादि फिर से पढ़ता है।

चंदन०— (आप ही आप) अब तुमको सब कहना फबता है ॥

(नेपथ्य में) हटो हटो—

चाणक्य—शारंगरव ! यह क्या कोलाहल है देखो तो ?

शिष्य—जो आज्ञा (बाहर जाकर फिर आकर) महाराज, राजा चंद्रगुप्त की आज्ञा से राजद्वेषी जीवसिद्धि क्षपणक निरादर-पूर्वक नगर से निकाला जाता है।

चाणक्य—क्षपणक ! हा ! हा ! अथवा राजविरोध का फल भोगै। सुनो चंदनदास ! देखो, राजा अपने द्वेषियों को कैसा कड़ा दंड देता है। मैं तुम्हारे भले की कहता हूँ, सुनो, और राक्षस का कुटुंब देकर जन्म भर राजा की कृपा से सुख भोगो।

चंदन—महाराज ! मेरे घर राक्षस मंत्री का कुटुंब नहीं है।

(नेपथ्य मे कलकल होता है)

चाणक्य—शारंगरव ! देख तो यह क्या कलकल होता है ?

शिष्य—जो आज्ञा। (बाहर जाकर फिर आता है) महाराज ! राजा की आज्ञा से राजद्वेषी शकटदास कायस्थ को सूली देने ले जाते हैं।

चाणक्य—राजविरोध का फल भोगे। देखो, सेठजी ! राजा अपने विरोधियों को कैसा कड़ा दंड देता है, इससे राक्षस का कुटुंब छिपाना वह कभी न सहेगा; इसी से उसका कुटुंब देकर तुमको अपना प्राण और कुटुंब बचाना हो तो बचाओ।

चंदन—महाराज ! क्या आप मुझे डर दिखाते हैं ! मेरे यहाँ अमात्य राक्षस का कुटुंब हई नहीं है, पर जो होता तो भी मैं न देता।

चाणक्य—क्या चंदनदास ! तुमने यही निश्चय किया है ?

चंदन०—हाँ ! मैंने यही दृढ़ निश्चय किया है।

चाणक्य—(आप ही आप) वाह चंदनदास ! वाह ! क्यों न हो !

दूजे के हित प्रान दै, करै धर्म प्रतिपाल।
को ऐसो शिवि के बिना, दूजो है या काल॥

(प्रकाश) क्या चंदनदास, तुमने यही निश्चय किया है ?

चंदनदास०—हाँ ! हाँ ! मैंने यही निश्चय किया है।

चाणक्य—(क्रोध से) दुरात्मा दुष्ट बनिया ! देख राजकोप का कैसा फल पाता है।

चंदन०—(बाँह फैलाकर) मैं प्रस्तुत हूँ, आप जो चाहिए अभी दंड दीजिए।

चाणक्य—(क्रोध से) शारंगरव ! कालपाशिक, दंडपाशिक से मेरी आज्ञा कहो कि अभी इस दुष्ट बनिये को दंड दें। नहीं, ठहरो, दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि इसके घर का सारा धन ले लें और इसको कुटुंब-समेत पकड़ कर बाँध रखें, तब तक मैं चंद्रगुप्त से कहूँ, वह आप ही इसके सर्वस्व और प्राण के हरण की आज्ञा देगा।

शिष्य—जो आज्ञा महाराज। सेठजी इधर आइए।

चंदन०—लीजिए महाराज ! यह मैं चला। (उठकर चलता है, आप ही आप) अहा ! मैं धन्य हूँ कि मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते है, अपने हेतु तो सभी मरते है।

(दोनों बाहर जाते हैं)

चाणक्य—(हर्ष से) अब ले लिया है राक्षस को, क्योंकि

जिमि इन तृन सम प्रान तजि कियो मित्र को त्रान।
तिमि सोहू निज मित्र अरु कुल रखिहै दै प्रान॥

(नेपथ्य में कलकल)

चाणक्य—शारंगरव !

शिष्य—(आकर) आज्ञा गुरुजी !

चाणक्य—देख तो यह कैसी भीड़ है।

शिष्य—(बाहर जाकर फिर आश्चर्य से आकर) महाराज ! शकटदास को सूली पर से उतार कर सिद्धार्थक लेकर भाग गया।

चाणक्य—(आप ही आप) वाह सिद्धार्थक। काम का आरंभ तो किया। (प्रकाश) हैं क्या ले गया? (क्रोध से) बेटा! दौड़कर भागुरायण से कहो कि उसको पकड़े।

शिष्य—(बाहर जाकर आता है, विषाद से) गुरुजी! भागुरायण तो पहिले ही से कहीं भाग गया है।

चाणक्य—(आप ही आप) निज काज साधने के लिये जाय। (क्रोध से प्रकाश) भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुराज, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा से कहो कि दुष्ट भागुरायण को पकड़ें।

शिष्य—जो आज्ञा। (बाहर जाकर फिर आकर विषाद से) महाराज! बड़े दुःख की बात है कि सब बेड़े का बेड़ा हलचल हो रहा है। भद्रभट इत्यादि तो सब पिछली ही रात भाग गए।

चाणक्य—(आप ही आप) सब काम सिद्ध करें। (प्रकाश) बेटा, सोच मत करो।

जे बात कछु जिय धारि भागे, भले सुख सो भागहीं।
जे रहे तेहू जाहिं, तिनको सोच मोहि जिय कछु नहीं॥
सत सैन हू सो अधिक साधिनि काज की जेहि जग कहै।
सो नंदकुल की खननहारी बुद्धि नित मो मैं रहै॥

(उठकर और आकाश की ओर देखकर) अभी भद्रभटादिकों को पकड़ता हूँ। (आप ही आप) राक्षस! अब मुझसे भाग के कहाँ जायगा, देख—

एकाकी मदगलित गज, जिमि नर लावहि बाँधि।
चंद्रगुप्त के काज मैं तिमि तोहि धरिहौं साधि॥

(सब जाते हैं—जवनिका गिरती है)

द्वितीय अंक

स्थान—राजपथ

(मदारी आता है)

मदारी—अललललललल, नाग लाए साँप लाए !

तत्र युक्ति सब जानहीं, मडल रचहिं बिचार ।
मत्र रक्षही ते करहिं, अहि नृप को उपकार ॥

(* आकाश में देखकर) महाराज ! क्या कहा ? 'तू कौन है ?' महाराज ! मैं जीर्णविष नाम सँपेरा हूँ । (फिर आकाश की ओर देखकर) क्या कहा कि 'मैं भी साँप का मंत्र जानता हूँ खेलूँगा ?' तो आप काम क्या करते हैं, यह तो कहिए ? (फिर आकाश की ओर देखकर) क्या कहा—'मैं राजसेवक हूँ ?' तो आप तो साँप के साथ खेलते ही हैं । (फिर ऊपर देखकर) क्या कहा 'कैसे ?' मंत्र और जड़ी बिन मदारी और आँकुस बिन मतवाले हाथी का हाथीवान, वैसे ही नए अधिकार के संग्राम-विजयी राजा के सेवक—ये तीनों अवश्य नष्ट होते हैं । (ऊपर देखकर) यह देखते-देखते कहाँ चला गया ? (फिर ऊपर देखकर) क्या महाराज ! पूछते हो कि 'इन पिटारियों में क्या है ?' इन पिटारियों में मेरी जीविका के सर्प हैं । (फिर ऊपर देखकर) क्या कहा कि 'मैं देखूँगा ?' वाह-वाह महाराज ! देखिए-देखिए, मेरी बोहनी हुई, कहिये इसी स्थान पर खोलूँ ? परंतु यह स्थान अच्छा नहीं है; यदि आपको देखने की इच्छा हो तो आप इस स्थान में आइए मैं दिखाऊँ । (फिर आकाश की ओर देखकर) क्या कहा कि 'यह स्वामी राक्षस मंत्री का घर है, इसमें मैं घुसने न पाऊँगा,' तो आप

---

* 'आकाश में देखकर' या 'ऊपर देखकर' का आशय यह है कि मानो दूसरे से बात करता है ।

जायँ, महाराज ! मैं तो अपनी जीविका के प्रभाव से सभी के घर जाता-आता हूँ। अरे क्या वह गया ? (चारों ओर देखकर) अहा, बड़े आश्चर्य की बात है, जब मैं चाणक्य की रक्षा में चंद्रगुप्त को देखता हूँ तब समझता हूँ कि चंद्रगुप्त ही राज्य करेगा, पर जब राक्षस की रक्षा में मलयकेतु को देखता हूँ तब चंद्रगुप्त का राज गया सा दिखाई देता है, क्योंकि—

चाणक्य ने लै जदपि बाँधी बुद्धिरूपी डोर सो।
करि अचल लक्ष्मी मौर्यकुल में नीति के निज जोर सो।
पै तदपि राक्षस चातुरी करि हाथ में ताकों करै।
गहि ताहि खींचत आपुनी दिसि मोहि यह जानी परै।

सो इन दोनों परम नीतिचतुर मंत्रियों के विरोध में नंदकुल की लक्ष्मी संशय में पड़ी है।

दोऊ सचिव-विरोध सों, जिमि बन जुग गजराय।
हथिनी सी लक्ष्मी बिचल, इत उत झोंका खाय॥

तो चलूँ, अब मंत्री राक्षस से मिलूँ।

(जवनिका उठती है और आसन पर बैठा राक्षस और पास प्रियंवदक नामक सेवक दिखाई देते हैं)

राक्षस—(ऊपर देखकर, आँखों में आँसू भरकर) हा ! बड़े कष्ट की बात है—

गुन-नीति-बल सों जीति अरि जिमि आपु जादवपन हयो।
तिमि नंद का यह बिपुल कुल बिधि बाम सों सब नसि गयो॥
एहि सोच में मोहि दिवस अरु निसि नित्य जागत बीतहीं।
यह लखौ चित्र बिचित्र मेरे भाग के बिनु भीतहीं॥

अथवा

बिनु भक्ति भूले, बिनहिं स्वारथ हेतु हम यह पन लियो।
बिनु प्रान के भय, बिनु प्रतिष्ठा-लाभ सब अब लौं कियो॥
सब छोड़ि कै परदासता एहि हेत नित प्रति हम करैं।
जो स्वर्ग में हूँ स्वामि मम निज शत्रु हत लखि सुख भरैं॥

(आकाश की ओर देखकर दुःख से) हा ! भगवती लक्ष्मी ! तू बड़ी अगुणज्ञा है क्योंकि—

निज तुच्छ सुख के हेतु तजि गुनरासि नंद नृपाल कों।
अब शूद्र में अनुरक्त है लपटी सुधा मनु ब्याल कों॥
ज्यों मत्त गज के मरत मद की धार ता साथहिं नसै।
त्यों नंद के साथहि नसी किन? निलज, अजहूँ जग बसै॥

अरे पापिन!

का जग मे कुलवंत नृप जीवत रह्यौ न कोय।
जो तू लपटी शूद्र सों नीच-गामिनी होय?

अथवा

वारबधू जन कों अहै सहजहिं चपल सुभाव।
तजि कुलीन गुनियन करहिं ओछे जन सों चाव॥

तो हम भी अब तेरा आधार ही नाश किए देते हैं। (कुछ सोचकर) हम मित्रवर चंदनदास के घर अपना कुटुंब छोड़कर बाहर चले आए सो अच्छा ही किया। क्योंकि एक तो अभी कुसुमपुर को चाणक्य घेरा नहीं चाहता, दूसरे यहाँ के निवासी महाराज नंद में अनुरक्त हैं, इससे हमारे सब उद्योगों में सहायक होते हैं। वहाँ भी विषादिक से चंद्रगुप्त के नाश करने को और सब प्रकार से शत्रु का दाँव घात व्यर्थ करने को बहुत सा धन देकर शकटदास को छोड़ ही दिया है। प्रतिक्षण शत्रुओं का भेद लेने को और उनका उद्योग नाश करने को भी जीवसिद्धि इत्यादि सुहृद् नियुक्त ही हैं। सो अब तो—

विषवृक्ष-अहिसुत-सिंहपोत-समान जा दुखरास को।
नृपनंद निज सुत जानि पाल्यौ सकुल निज अघु-नास को॥
ता चंद्रगुप्तहि बुद्धि-सर मम तुरत मारि, गिराइहै।
जो दुष्ट दैव न कवच बनिकै असह आड़ै आइहै॥

(कंचुकी आता है)

कंचुकी—(आप ही आप)

नृपनंद काम-समान चानक-नीति-जर जरजर भयो।
पुनि धर्म-सम नृप चंद्र तिन तन पुरहु क्रम सो बढ़ि लियो॥
अवकास लहि तेहि लोभ राक्षस जदपि जीतन जाइहै।
पै सिथिल बल मे नाहिं कोऊ बिधिहु सों जय पाइहै॥

(देखकर) मंत्री राक्षस है। (आगे बढ़कर) मंत्री ! आपका कल्याण हो।

राक्षस—जाजलक ! प्रणाम करता हूँ। अरे प्रियंवदक ! आसन ला।

प्रियंवदक—(आसन लाकर) यह आसन है, आप बैठें।

कंचुकी—(बैठकर) मंत्री, कुमार मलयकेतु ने आपको यह कहा है कि "आपने बहुत दिनों से अपने शरीर का सब शृङ्गार छोड़ दिया है इससे मुझे बड़ा दुःख होता है। यद्यपि आपको अपने स्वामी के गुण नहीं भूलते और उनके वियोग के दुःख में यह सब कुछ नहीं अच्छा लगता तथापि मेरे कहने से आप इनको पहिरें।" (आभरण दिखाता है) मंत्री ! आभरण कुमार ने अपने अंग से उतार कर भेजे हैं, आप इन्हें धारण करें।

राक्षस—जाजलक ! कुमार से कह दो कि तुम्हारे गुणों के आगे मैं स्वामी के गुण भूल गया। पर—

इन दुष्ट बैरिन सों दुखी निज अंग नाहिं सँवारिहौं।
भूषन बसन सिंगार तब लौं हौं न तन कछु धारिहौं॥
जब लौं न सब रिपु नासि, पाटलिपुत्र फेर बसाइहौं।
हे कुँवर ! तुमको राज दै, सिर अचल छत्र फिराइहौं॥

कंचुकी—अमात्य ! आप जो न करो सो थोड़ा है, यह बात कौन कठिन है ? पर कुमार की यह पहिली बिनती तो मानने ही के योग्य है।

राक्षस—मुझे तो जैसी कुमार की आज्ञा माननीय है वैसी ही तुम्हारी भी, इससे मुझे कुमार की आज्ञा मानने में कोई विचार नहीं है।

कंचुकी—(आभूषण पहिराता) कल्याण हो महाराज ! मेरा काम पूरा हुआ।

राक्षस—मैं प्रणाम करता हूँ।

कंचुकी—मुझको जो आज्ञा हुई थी सो मैंने पूरी की। [जाता है]

राक्षस—प्रियंवदक ! देख तो मेरे मिलने को द्वार पर कौन खड़ा है।

प्रियं०—जो आज्ञा। (आगे बढ़कर सँपेरे के पास आकर) आप कौन हैं ?

सँपेरा—मैं जीर्णविष नामक सँपेरा हूँ और राक्षस मंत्री के सामने मैं साँप खेलना चाहता हूँ। मेरी यही जीविका है।

प्रियं०—तो ठहरो, हम अमात्य से निवेदन कर लें। (राक्षस के पास जाकर) महाराज ! एक सँपेरा है, वह आपको अपना करतब दिखलाया चाहता है।

राक्षस—(बाईं आँख का फड़कना दिखाकर, आप ही आप) हैं, आज पहिले ही साँप दिखाई पड़े। (प्रकाश) प्रियंवदक ! मेरा साँप देखने को जी नहीं चाहता सो इसे कुछ देकर बिदा कर।

प्रियं०—जो आज्ञा। (सँपेरे के पास जाकर) लो, मंत्री तुम्हारा कौतुक बिना देखे ही तुम्हें यह देते हैं, जाओ।

सँपेरा—मेरी ओर से यह बिनती करो कि मैं केवल सँपेरा ही नहीं हूँ किंतु भाषा का कवि भी हूँ, इससे जो मंत्रीजी मेरी कविता मेरे मुख से न सुना चाहें तो यह पत्रही दे दो पढ़ लें। (एक पत्र देता है)

प्रियं०—(पत्र लेकर राक्षस के पास आकर) महाराज ! वह सँपेरा कहता है कि मैं केवल सँपेरा ही नहीं हूँ, भाषा का कवि भी हूँ। इससे जो मंत्रीजी मेरी कविता मेरे मुख से सुनना न चाहें तो यह पत्र ही दे दो, पढ़ लें। (पत्र देता है)

राक्षस—(पत्र पढ़ता है)

सकल कुसुम-रस पान करि मधुप रसिक-सिरताज।
जो मधु त्यागत ताहि लै होत सबै जगकाज॥

(आप ही आप) अरे !!—"मैं कुसुमपुर का वृत्तांत जाननेवाला आपका दूत हूँ" इस दोहे से यह ध्वनि निकलती है। अह ! मैं तो कामों से ऐसा घबड़ा रहा हूँ कि अपने भेजे भेदिया लोगों को भी भूल गया। अब स्मरण आया। यह तो सँपेरा बना हुआ विराधगुप्त कुसुमपुर से आया है। (प्रकाश) प्रियंवदक ! इसको बुलाओ यह सुकवि है, मैं भी इसकी कविता सुना चाहता हूँ।

प्रियं०—जो आज्ञा। (सँपेरे के पास जाकर) चलिए, मंत्रीजी आपको बुलाते हैं।

सँपेरा—(मंत्री के सामने जाकर और देखकर आपही आप) अरे यही मंत्री राक्षस है ! अहा !—

लै बाम बाहु-लताहि राखत कंठ-सौं खसि खसि परै ।
तिमि धरे दच्छिन बाहु कोहू गोद में बिच लै गिरै ॥
जा बुद्धि के डर होइ सकित नृप हृदय कुच नहिं धरै ।
अजहूँ न लच्मी चंद्रगुप्तहि गाढ़ आलिंगन करै ॥

(प्रकाश) मंत्री की जय हो ।

राक्षस—(देखकर) अरे विराध—(संकोच से बात उड़ाकर) प्रियंवदक ! मैं जब तक सर्पों से अपना जी बहलाता हूँ तब तक सबको लेकर तू बाहर ठहर ।

प्रियं०—जो आज्ञा ।

(बाहर जाता है)

राक्षस—मित्र विराधगुप्त ! इस आसन पर बैठो ।

विराधगुप्त—जो आज्ञा । (बैठता है)

राक्षस—(खेद-सहित निहारकर) हा ! महाराज नंद के आश्रित लोगों की यह अवस्था ! (रोता है)

विराध०—आप कुछ सोच न करें, भगवान की कृपा से शीघ्र ही वही अवस्था होगी ।

राक्षस—मित्र विराधगुप्त ! कहो, कुसुमपुर का वृत्तांत कहो ।

विराध०—महाराज ! कुसुमपुर का वृत्तांत बहुत लंबा-चौड़ा है, जिससे जहाँ से आज्ञा हो वहाँ से कहूँ ।

राक्षस—मित्र ! चंद्रगुप्त के नगर-प्रवेश के पीछे मेरे भेजे हुए विष देनेवाले लोगों ने क्या-क्या किया यह सुना चाहता हूँ ।

विराध०—सुनिए—शक, यवन, किरात, कांबोज, पारस, वाह्लीकादिक देश के चाणक्य के मित्र राजों की सहायता से, चंद्रगुप्त और पर्वतेश्वर के बलरूपी समुद्र से कुसुमपुर चारों ओर से घिर गया है ।

राक्षस—(कृपाण खींचकर क्रोध से) हैं ! मेरे जीते कौन कुसुमपुर घेर सकता है ? प्रवीरक ! प्रवीरक !

चढौ लै सबै धाइ घेरौ अटा कौं।
धरौ द्वार पै कुंजरैं ज्यों घटा कौं॥
कहौ जोधनै मृत्यु को जीति धावैं।
चलैं संग मैं छाँड़ि कै कीर्ति पावैं॥

विराध०—महाराज! इतनी शीघ्रता न कीजिए, मेरी बात सुन लीजिए।

राक्षस—कौन बात सुनूँ? अब मैंने जान लिया कि इसी का समय आ गया है। (शस्त्र छोड़कर आँखों में आँसू भरकर) हा! देव नंद! राक्षस को तुम्हारी कृपा कैसे भूलेगी?

हैं जहँ झुंड खड़े गज मेघ के अज्ञा करौ तहाँ राक्षस! जायकै।
त्यों ये तुरग अनेकन हैं, तिनहूँ के प्रबंधहि राखौ बनायकै॥
पैदल ये सब तेरे भरोसे हैं, काज करौ तिनको चित लायकै।
यों कहि एक हमैं तुम मानत हे, निज काज हजार बनाय।
हाँ फिर?

विराध०—तब चारों ओर से कुसुमनगर घेर लिया और नगरवासी बिचारे भीतर ही भीतर घिरे-घिरे घबड़ा गए। उनकी उदासी देखकर सुरंग के मार्ग से सर्व्वार्थसिद्धि तपोवन में चला गया और स्वामी के विरह से आपके सब लोग शिथिल हो गए। तब अपने जयकी डौंड़ी सब नगर में शत्रु लोगों ने फिरवा दी, और आपके भेजे हुए लोग सुरंग में इधर-उधर छिप गए, और जिस विषकन्या को आपने चद्रगुप्त के नाश-हेतु भेजा था उससे तपस्वी पर्वतेश्वर मारा गया।

राक्षस—अहा मित्र! देखो, कैसा आश्चर्य हुआ—

जो विषमयी नृप-चंद्र-वध-हित नारि राखी लाय कै।
तासो हत्यो पर्वत उलटि चाणक्य बुद्धि उपाय कै॥
जिमि करन-शक्ति अमोघ अर्जुन-हेतु धरी छिपाय कै।
पै कृष्ण के मत सो घटोत्कच पै परी घहराय कै॥

विराध०—महाराज! समय की सब उलटी गति है—क्या कीजिएगा?

राक्षस—हाँ! तब क्या हुआ?

विराध०—तब पिता का वध सुनकर कुमार मलयकेतु नगर से निकलकर चले गए और पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक पर उन लोगों ने

अपना विश्वास जमा लिया। तब उस दुष्ट चाणक्य ने चंद्रगुप्त का प्रवेश-मुहूर्त्त प्रसिद्ध करके नगर के सब बढ़ई और लोहारों को बुलाकर एकत्र किया और उनसे कहा कि महाराज के नद-भवन में गृहप्रवेश का मुहूर्त्त ज्योतिषियों ने आज ही आधी रात का दिया है, इससे बाहर से भीतर तक सब द्वारों को जाँच लो। तब उससे बढ़ई-लोहारों ने कहा कि 'महाराज ! चंद्रगुप्त का गृह-प्रवेश जानकर दारुवर्म ने प्रवेश द्वार तो पहले ही सोने की तोरनों से शोभित कर रखा है, भीतर में द्वारों को हम लोग ठीक करते हैं।' यह सुनकर चाणक्य ने कहा कि बिना कहे ही दारुवर्म ने बड़ा काम किया इससे उसको चतुराई का पारितोषिक शीघ्र ही मिलेगा।

राक्षस—(आश्चर्य से) चाणक्य प्रसन्न हो यह कैसी बात है ? इससे दारुवर्म का यत्न या तो उलटा होगा या निष्फल होगा, क्योंकि इसने बुद्धि-मोह से या राजभक्ति से बिना समय ही चाणक्य के जी में अनेक संदेह और विकल्प उत्पन्न कराए। हाँ फिर ?

विराध०—फिर उस दुष्ट चाणक्य ने बुलाकर सब को सहेज दिया कि आज आधी रात को प्रवेश होगा, और उसी समय पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक और चंद्रगुप्त को एक आसन पर बिठाकर पृथ्वी का आधा-आधा भाग कर दिया।

राक्षस—क्या पर्वतेश्वर के भाई वैरोधक को आधा राज मिला, यह पहले ही उसने सुना दिया ?

विराध०—हाँ, तो इससे क्या हुआ ?

राक्षस—(आप ही आप) निश्चय यह ब्राह्मण बड़ा धूर्त है, कि उसने उस सीधे तपस्वी से इधर-उधर की चार बात बनाकर पर्वतेश्वर के मारने के अपयश-निवारण के हेतु यह उपाय सोचा। (प्रकाश) अच्छा कहो—तब ?

विराध०— तब यह तो उसने पहले ही प्रकाश कर दिया था कि आज रात को गृह-प्रवेश होगा, फिर उसने वैरोधक को अभिषेक कराया और बड़े-बड़े बहुमूल्य स्वच्छ मोतियों का उसको कवच पहिराया और अनेक रत्नों से जड़ा सुंदर मुकुट उसके सिर पर

रखा और गले में अनेक सुगंध के फूलों की माला पहिराई, जिससे वह एक ऐसे बड़े राजा की भाँति हो गया कि जिन लोगों ने उसे सर्वदा देखा है वे भी न पहिचान सकें। फिर उस दुष्ट चाणक्य की आज्ञा से लोगों ने चंद्रगुप्त की चंद्रलेखा नाम की हथिनी पर बिठाकर बहुत से मनुष्य साथ करके बड़ी शीघ्रता से नंद-मंदिर में उसका प्रवेश कराया। जब वैरोधक मंदिर में घुसने लगा तब आपका भेजा दारुवर्म बढ़ई उसको चन्द्रगुप्त समझकर उसके ऊपर गिराने को अपनी कल की बनी तोरन लेकर सावधान हो बैठा। इसके पीछे चंद्रगुप्त के अनुयायी राजा सब बाहर खड़े रह गए और जिस बर्बर को आपने चंद्रगुप्त के मारने के हेतु भेजा था वह भी अपनी सोने की छड़ी की गुप्ती जिसमें एक छोटी कृपाण थी लेकर वहाँ खड़ा हो गया।

राक्षस—दोनों ने बेठिकाने काम किया। हाँ फिर ?

विराध०—तब उस हथिनी को मारकर बढ़ाया और उसके दौड़ चलने से कल की तोरण का लक्ष, जो चंद्रगुप्त के धोखे वैरोधक पर किया गया था, चूक गया और वहाँ बर्बर जो चंद्रगुप्त का आसरा देखता था, वह बेचारा उसी कल की तोरन से मारा गया। जब दारुवर्म्मा ने देखा कि लक्ष तो चूक गए, अब मारे जायहींगे तब उसने उस कल के लोहे की कील से उस ऊँचे तोरन के स्थान ही पर से चंद्रगुप्त के धोखे तपस्वी वैरोधक को हथिनी ही पर मार डाला।

राक्षस—हाय ! दोनों बात कैसे दुःख की हुई कि चंद्रगुप्त तो काल से बच गया और दोनों बिचारे बर्बर और वैरोधक मारे गए। (आप ही आप) दैव ने इन दोनों को नहीं मारा हम लोगों को मारा !! (प्रकाश) और वह दारुवर्म्म बढ़ई क्या हुआ ?

विराध०—उसको वैरोधक के साथ के मनुष्यों ने मार डाला।

राक्षस—हाय ! बड़ा दुःख हुआ ! हाय प्यारे दारुवर्म्म का हम लोगों से वियोग हो गया। अच्छा ! उस वैद्य अभयदत्त ने क्या किया ?

विराध०—महाराज ! सब कुछ किया।

राक्षस—(हर्ष से) क्या चंद्रगुप्त मारा गया ?

विराध०—दैव ने न मरने दिया।

राक्षस—(शोक-से) तो क्यों फूलकर कहते हो कि सब कुछ किया ?

विराध०—उसने औषधि में विष मिलाकर चंद्रगुप्त को दिया, पर चाणक्य ने उसको देख लिया और सोने के बरतन में रखकर उसका रंग पलटा जानकर चंद्रगुप्त से कह दिया कि इस औषधि में विष मिला है, इसको न पीना।

राक्षस—अरे वह ब्राह्मण बड़ा ही दुष्ट है। हाँ, तो वह वैद्य क्या हुआ ?

विराध०—उस वैद्य को वही औषधि पिलाकर मार डाला।

राक्षस—(शोक से) हाय हाय ! बड़ा गुणी मारा गया। भला शयन-घर के प्रबंध करनेवाले प्रमोदक ने क्या किया ?

विराध०—उसने सब चौका लगाया।

राक्षस—(घबड़ा कर) क्यों ?

विराध०—उस मूर्ख को जो आपके यहाँ से व्यय को धन मिला सो उससे उसने अपना बड़ा ठाट-बाट फैलाया। यह देखते ही चाणक्य चौकन्ना हो गया और उससे अनेक प्रश्न किए, जब उसने उन प्रश्नों के उत्तर अंडबंड दिए तो उस पर पूरा संदेह करके दुष्ट चाणक्य ने उसको बुरी चाल से मार डाला।

राक्षस—हा ! क्या दैव ने यहाँ भी उलटा हमीं लोगों को मारा ! भला वह चंद्रगुप्त को सोते समय मारने के हेतु जो राजभवन में वीभत्सकादिक वीर सुरंग में छिपा रखे थे उनका क्या हुआ ?

विराध०—महाराज ! कुछ न पूछिए।

राक्षस—(घबड़ाकर) क्यों-क्यों ! क्या चाणक्य ने जान लिया ?

विराध०—नहीं तो क्या ?

राक्षस—कैसे ?

विराध०—महाराज !' चंद्रगुप्त के सोने जाने के पहले ही वह दुष्ट चाणक्य उस घर में गया और उसको चारों ओर से देखा तो भीतर की एक दरार से चिउँटियाँ चावल के कने लाती हैं। यह देखकर उस दुष्ट ने निश्चय कर लिया कि इस घर के भीतर

मनुष्य छिपे हैं। बस, यह निश्चय कर उसने घर में आग लगवा दिया और धूआँ से घबड़ाकर निकल तो सके ही नहीं, इस से वे वीभत्सकादिक वहीं भीतर ही जलकर राख हो गए।

राक्षस—(सोच से) मित्र ! देख, चंद्रगुप्त का भाग्य कि सब के सब मर गए। (चिंता सहित) अहा ! सखा ! देख दुष्ट चंद्रगुप्त का भाग्य !

कन्या जो विष की गई ताहि हतन के काज।
तासो मारयौ पर्वतक जाको आधो राज ॥
सबै नसे कलबल सहित जे पठए बध हेत।
उलटी मेरी नीति सब मौर्यहि को फल देत ॥

विराध०—महाराज ! तब भी उद्योग नहीं छोड़ना चाहिए—

प्रारंभ ही नहिं विघ्न के भय अधम जन उद्यम सजैं।
पुनि करहिं तौ कोउ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजैं ॥
धरि खात विघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम ते टरैं।
जे पुरुष उत्तम अंत में ते सिद्ध सब कारज करैं ॥

और भी—

का सेसहि नहिं भार पै धरती देत न डारि।
कहा दिवसमनि नहिं थकत पै नहिं रुकत विचारि ॥
सज्जन ताको हित करत जेहि किय अंगीकार।
यहै नेम सुकृत को निज जिय करहु विचार ॥

राक्षस—मित्र ! यह क्या तू नहीं जानता कि मैं प्रारब्ध के भरोसे नहीं हूँ ? हाँ, फिर।

विराध०—तब से दुष्ट चाणक्य चंद्रगुप्त की रक्षा में चौकन्ना रहता है और इधर-उधर के अनेक उपाय सोचा करता है और पहिचान-पहिचान के नंद के मित्रों को पकड़ता है।

राक्षस—(घबड़ाकर) हाँ ! कहो तो, मित्र ! उसने किसे-किसे पकड़ा है ?

विराध०—सबसे पहले तो जीवसिद्धि क्षपणक को निरादर करके नगर से निकाल दिया।

राक्षस—(आप ही आप) भला, इतने तक तो कुछ चिंता नहीं, क्योंकि वह योगी है उसका घर बिना जी न घबड़ायगा। (प्रकाश) मित्र ! उस पर अपराध क्या ठहराया ?

विराध०—कि इसी दुष्ट ने राक्षस की भेजी विषकन्या से पर्वतेश्वर को मार डाला।

राक्षस—(आप ही आप) वाह रे कौटिल्य वाह ! क्यों न हो ?

निज कलंक हम पै धरचौ, हत्यौ अर्द्ध बँटवार।
नीतिबीज तुव एक ही फल उपजवत हजार॥

(प्रकाश) हाँ, फिर

विराध०—फिर चंद्रगुप्त के नाश को इसने दारुवर्म्मादिक नियत किए थे यह दोष लगाकर शकटदास को शूली दे दी।

राक्षस—(दुःख से) हा मित्र शकटदास ! तुम्हारी बड़ी अयोग्य मृत्यु हुई। अथवा स्वामी के हेतु तुम्हारे प्राण गए। इससे कुछ सोच नहीं है, सोच हमीं लोगों का है कि स्वामी के मरने पर भी जीना चाहते हैं !

विराध०—मंत्री ! ऐसा न सोचिए, आप स्वामी का काम कीजिए।

राक्षस—मित्र !

केवल है यह सोक, जीव लोभ अब लौं बचे।
स्वामि गयो परलोक, पै कृतघ्न इतही रहे॥

विराध०—महाराज ! ऐसा नहीं। ('केवल है यह' ऊपर का छंद फिर से पढ़ता है) *

राक्षस—मित्र ! कहो, और भी सैकड़ों मित्रों का नाश सुनने को ये पापी कान उपस्थित हैं।

विराध०—यह सब सुनकर चंदनदास ने बड़े कष्ट से आपके कुटुंब को छिपाया।

राक्षस—मित्र ! उस दुष्ट चाणक्य के तो चंदनदास ने विरुद्ध ही किया।

---

* अर्थात् जो लोग जीवलोभ से बचे हैं, वे कृतघ्न हैं, आप तो स्वामी के कार्य्य-साधन को जीते हैं, आप क्यों कृतघ्न हैं।

विराध०—तो मित्र का बिगाड़ करना तो अनुचित ही था।

राक्षस—हाँ, फिर क्या हुआ ?

विराध०—तब चाणक्य ने आपके कुटुंब को चंदनदास से बहुत माँगा पर उसने नहीं दिया, इस पर उस दुष्ट ब्राह्मण ने—

राक्षस—(घबड़ाकर) क्या चंदनदास को मार डाला।

विराध०—नहीं, मारा तो नहीं, पर स्त्री-पुत्र धन-समेत बाँधकर बंदीघर में भेज दिया।

राक्षस—तो क्या ऐसे सुखी होकर कहते हो कि बंधन में भेज दिया ? अरे ! यह कहो कि मंत्री राक्षस को कुटुंब-सहित बाँध रक्खा है।

(प्रियंबदक आता है)

प्रियंबदक—जय-जय महाराज ! बाहर शकटदास खड़े हैं।

राक्षस—(आश्चर्य से) सच ही !

प्रियं०—महाराज ! आपके सेवक कभी मिथ्या बोलते हैं ?

राक्षस—मित्र विराधगुप्त ! यह क्या ?

विराध०—महाराज ! होनहार जो बचाया चाहे तो कौन मार सकता है ?

राक्षस—प्रियंबदक ! अरे जो सच ही कहता है तो उनको झटपट लाता क्यों नहीं ?

प्रियं०—जो आज्ञा। [जाता है

(सिद्धार्थक के संग शकटदास आता है)

शकटदास—(देखकर आप ही आप)

वह सूली गड़ी जो बड़ी दृढ़ कै,
सोइ चंद्र को राज थिरयो प्रन तें।
लपटी वह फाँस की डोर सोई,
मनु श्री लपटी वृषलै मन ते॥
बजी डौंड़ी निरादर की नृप नंद के,
सोऊ लख्यो इन आँखन तें।

नहिं जानि परै इतनोहू भए,
केहि हेतु न प्रान कढ़े तन तें ॥

(राक्षस को देखकर) यह मंत्री राक्षस बैठे हैं। अहा !

नंद गए हू नहिं तजत प्रभुसेवा को स्वाद।
भूमि बैठि प्रगटत मनहुँ स्वामिभक्त-मरजाद ॥

(पास जाकर) मंत्री की जय हो।

राक्षस—(देखकर आनंद से) मित्र शकटदास ! आओ, मुझसे मिल लो, क्योंकि तुम दुष्ट चाणक्य के हाथ से बच के आए हो।

शकट—(मिलता है)

राक्षस—(मिलकर) यहाँ बैठो।

शकट०—जो आज्ञा। (बैठता है)

राक्षस—मित्र शकटदास ! कहो तो यह आनंद की बात कैसे हुई ?

शकट०—(सिद्धार्थक को दिखाकर) इस प्यारे सिद्धार्थक ने सूली देने वाले लोगों को हटाकर मुझको बचाया।

राक्षस—(आनंद से) वाह सिद्धार्थक ! तुमने काम तो अमूल्य किया है, पर भला ! तब भी यह जो कुछ है सो लो। (अपने अंग से आभरण उतारकर देता है)

सिद्धा०—(लेकर आप ही आप) चाणक्य के कहने से मैं सब करूँगा। (पैर पर गिरके प्रकाश) महाराज ! यहाँ मैं पहिले-पहल आया हूँ, इससे मुझे यहाँ कोई नहीं जानता कि मैं उसके पास इन भूषणों को छोड़ जाऊँ। इससे आप इसी अँगूठी से इस पर मोहर करके अपने ही पास रखें; मुझे जब काम होगा ले जाऊँगा।

राक्षस—क्या हुआ ? अच्छा शकटदास ! जो यह कहता है वह करो।

शकट०—जो आज्ञा। (मोहर पर राक्षस का नाम देखकर धीरे से) मित्र ! यह तो तुम्हारे नाम की मोहर है।

राक्षस—(देखकर बड़े सोच से आप ही आप) हाय-हाय इसको तो जब मैं नगर से निकला था तो ब्राह्मणी ने मेरे स्मरणार्थ ले

लिया था, यह इसके हाथ कैसे लगी ? (प्रकाश) सिद्धार्थक ! तुमने यह कैसे पाई ?

सिद्धा०—महाराज ! कुसुमपुर में जो चंदनदास जौहरी हैं उनके द्वार पर पड़ी पाई।

राक्षस—तो ठीक है।

सिद्धा०—महाराज ! ठीक क्या है ?

राक्षस—यही कि ऐसे धनिकों के घर बिना यह वस्तु और कहाँ मिले ?

शकट०—मित्र ! यह मंत्रीजी के नाम की मोहर है, इससे तुम इसको मंत्री को दे दो, तो इसके बदले तुम्हें बहुत पुरस्कार मिलेगा।

सिद्धा०—महाराज ! मेरे ऐसे भाग्य कहाँ कि आप इसे लें। (मोहर देता है)

राक्षस—मित्र शकटदास ! इसी मुद्रा से सब काम किया करो।

शकट०—जो आज्ञा।

सिद्धा०—महाराज ! मैं कुछ बिनती करूँ ?

राक्षस—हाँ हाँ ! अवश्य करो।

सिद्धा०—यह तो आप जानते ही हैं कि उस दुष्ट चाणक्य की बुराई करके फिर मैं पटने में घुस नहीं सकता, इससे कुछ दिन आप ही के चरणों की सेवा किया चाहता हूँ।

राक्षस—बहुत अच्छी बात है। हम लोग तो ऐसा चाहते ही थे, अच्छा है, यहीं रहो।

सिद्धार्थक—(हाथ जोड़कर) बड़ी कृपा हुई।

राक्षस—मित्र शटकदास ! ले जाओ, इसको उतारो और सब भोजनादिक का ठीक करो।

शकट०—जो आज्ञा।

(सिद्धार्थक को लेकर जाता है)

राक्षस—मित्र विराधगुप्त ! अब तुम कुसुमपुर का वृत्तांत जो छूट गया था सो कहो। वहाँ के निवासियों को मेरी बातें अच्छी लगती हैं कि नहीं ?

विराध०—बहुत अच्छी लगती हैं, वरन वे सब तो आप ही के अनुयायी हैं।

राक्षस—ऐसा क्यों ?

विराध०—इसका कारण यह है कि मलयकेतु के निकलने के पीछे चाणक्य को चंद्रगुप्त ने कुछ चिढ़ा दिया और चाणक्य ने भी उसकी बात न सहकर चंद्रगुप्त की आज्ञा भंग करके उसको दुःखी कर रखा है, यह मैं भली-भाँति जानता हूँ।

राक्षस—(हर्ष से) मित्र विराधगुप्त! तो तुम इसी सँपेरे के भेस से फिर कुसुमपुर जाओ और वहाँ मेरा मित्र स्तनकलस नामक कवि है उससे कह दो कि चाणक्य के आज्ञाभंगादिकों के कवित्त बना-बनाकर चंद्रगुप्त को बढ़ावा देता रहे और जो कुछ काम हो जाय वह करभक से कहला भेजे।

विराध०—जो आज्ञा। [जाता है

(प्रियंवदक आता है)

प्रियं०—जय हो महाराज! शकटदास कहते हैं कि ये तीन आभूषण बिकते हैं, इन्हें आप देखें।

राक्षस—(देखकर) अहा यह तो बड़े मूल्य के गहने हैं। अच्छा शकटदास से कह दो कि दाम चुकाकर ले लें।

प्रियं०—जो आज्ञा। [जाता है

राक्षस—तो अब हम भी चलकर करभक को कुसुमपुर भेजें। (उठता है) अहा! क्या उस मृतक चाणक्य से चंद्रगुप्त से बिगाड़ हो जायगा ? क्यों नहीं ? क्योंकि सब कामों को सिद्ध ही देखता हूँ।

चंद्रगुप्त निज तेज बल करत सबन को राज।
तेहि समझत चाणक्य यह मेरो दियो समाज॥
अपनो अपनो करि चुके काज रह्यो कछु जौन।
अब जौ आपुस में लड़ैं तौ बड़ अचरज कौन॥

[जाता है

—:०:—

तृतीय अंक

स्थान—राजभवन की अटारी

(कचुकी आता है)

कंचुकी—हे रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सों ।
सो मिटे इंद्रीगन सहित ह्वै सिथिल अतिही छोभ सो ॥
मानत कह्यो कोउ नाहिं सब अंग अंग ढीले ह्वै गए ।
बौहू न तृष्णे ! क्यौं तजत तू मोहि बूढोहू भए ॥

(आकाश की ओर देखकर) अरे ! अरे ! सुगांगप्रासाद के लोगो ! सुनो । महाराज चंद्रगुप्त ने तुम लोगों को यह आज्ञा दी है कि 'कौमुदी-महोत्सव के होने से परम शोभित कुसुमपुर को मै देखना चाहता हूँ' इससे उस अटारी को बिछौने इत्यादि से सज रखो, देर क्यों करते हो ! (आकाश की ओर देखकर) क्या कहा ? कि क्या महाराज चंद्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी-महोत्सव अब की न होगा ? दुर दइमारो ! क्या मरने को लगे हो ? शीघ्रता करो ।

सवैया

बहु फूल की माल लपेट कै खंभन धूप सुगध सो ताहि धुपाइए ।
तापैं चहूँ दिस चंद छपा से सुसोभित चौंर घने लटकाइए ॥
भार से चारु सिंहासन के मुरछा में धरा परी धेनु सी पाइए ।
छींटि कै तापैं गुलाब मिल्यौ जल चदन ताकहँ जाइ जगाइए ॥

(आकाश की ओर देखकर) क्या कहते हो कि 'हम लोग अपने काम में लग रहे हैं ?' अच्छा-अच्छा झटपट सब सिद्ध करो । देखो ! वह महाराज चंद्रगुप्त आ पहुँचे ।

बहु दिन श्रम करि नद नृप बह्यो राज-भुर जौन ।
बालेपन ही में लियौ चद्र सीस निज तौन ॥
डिगत न नेकहु विषम पथ दृढ़ प्रतिज्ञ दृढ़ गात ।
गिरन चहत सम्हरत बहुरि नेकु न जिय घबरात ॥

(नेपथ्य में—इधर महाराज इधर। राजा और प्रतिहारी आते हैं)

राजा—(आप ही आप) राज उसी का नाम है जिसमें अपनी आज्ञा चले, दूसरे के भरोसे राज करना भी एक बोझा ढोना है। क्योंकि—

जो दूजे को हित करै तो खोवै निज काज।
जो खोयो निज काज तौ कौन बात को राज॥
दूजे ही को हित करै तौ वह परबस मूढ़।
कठपुतरी सो स्वाद कछु पावै कबहुँ न कूढ़॥

और राज्य पाकर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी को सम्हालना बहुत कठिन है। क्योंकि—

क्रूर सदा भाखत पियहि चंचल सहज सुभाव।
नर गुन औगुन नहिं लखति सज्जन खल सम भाव॥
डरति सूर सों भीरु कहँ गिनति न कछु रति-हीन।
बारनारि अरु लच्छमी कहो कौन बस कीन?॥

यद्यपि गुरु ने कहा है कि तू झूठी कलह करके स्वतंत्र होकर अपना प्रबंध आप कर ले, पर यह तो बड़ा पाप सा है। अथवा गुरुजी के उपदेश पर चलने से हम लोग तो सदा ही स्वतंत्र हैं।

जब लौं बिगारै काज नहिं तब लौं न गुरु कछु तेहि कहै।
पै शिष्य जाइ कुराह तौ गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै॥
तासों सदा गुरु-वाक्य-वश हम नित्य पर-आधीन हैं।
निर्लोभ गुरु से सत जन ही जगत में स्वाधीन हैं॥

(प्रकाश) अजी वैहीनर! "सुगांगप्रासाद" का मार्ग दिखाओ।

कंचुकी—इधर आइए, महाराज, इधर।

(राजा आगे बढ़ता है)

कंचुकी—महाराज! सुगांगप्रासाद की यही सीढ़ी है।

राजा—(ऊपर चढ़कर) अहा! शरद ऋतु की शोभा से सब दिशाएँ कैसी सुंदर हो रही हैं!

सरद बिमल ऋतु सोहई निरमल नील अकास।
निसानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास॥

चारु चमेली बन रही महमह महँकि सुबास।
नदी तीर फूले लखौ सेत सेत बहु कास॥
कमल कुमोदिनि सरन में फूले सोभा देत।
भौंर वृंद जापै लखौ गूँजि गूँजि रस लेत॥
बसन चाँदनी, चंद मुख, उडुगन मोती माल।
कास फूल मधु हास, यह सरद किधौ नव बाल॥

(चारों ओर देखकर) कचुकी! यह क्या? नगर में "चंद्रिकोत्सव" कहीं नहीं मालूम पड़ता; क्या तूने सब लोगों से ताकीद करके नहीं कहा था कि उत्सव हो?

कंचुकी—महाराज सबसे ताकीद कर दी थी।

राजा—तो फिर क्यों नहीं हुआ? क्या लोगों ने हमारी आज्ञा नहीं मानी?

कंचुकी—(कान पर हाथ रखकर) राम राम! भला नगर क्या, इस पृथ्वी में ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञा न माने?

राजा—तो फिर चंद्रिकोत्सव क्यों नहीं हुआ? देख न—

गज रथ बाजि सजे नहीं, बँधी न बंदनवार।
तने बितान न कहुँ नगर, रंजित कहूँ न द्वार॥
नर नारी डोलत न कहुँ फूल माल गल डार।
नृत्य बाद धुनि गीत नहिं सुनियत श्रवन मँझार॥

कंचुकी—महाराज! ठीक है, ऐसा ही है।

राजा—क्यों ऐसा ही है?

कंचुकी—महाराज योंही है।

राजा—स्पष्ट क्यों नहीं कहता?

कंचुकी—महाराज! चंद्रिकोत्सव बंद किया गया है।

राजा—(क्रोध से) किसने बंद किया है?

कंचुकी—(हाथ जोड़कर) महाराज! यह मैं नहीं कह सकता।

राजा—कहीं आर्य चाणक्य ने तो नहीं बन्द किया?

कंचुकी—महाराज! और किसको अपने प्राणों से शत्रुता करनी थी?

राजा—(अत्यंत क्रोध से) अच्छा, अब हम बैठेंगे।

कंचुकी—महाराज ! यह सिंहासन है, बिराजिए।

राजा—(बैठकर क्रोध से) अच्छा, कंचुकी ! आर्य चाणक्य से कह कि "महाराज आप को देखा चाहते हैं।"

कंचुकी—जो आज्ञा। [बाहर जाता है

(एक ओर परदा उठता है और चाणक्य बैठा हुआ दिखाई पड़ता है)

चाणक्य—(आप ही आप) दुष्ट राक्षस हमारी बराबरी करता है, वह जानता है कि—

जिमि हम नृप-अपमान सो महा क्रोध उर धारि।
करी प्रतिज्ञा नंद नृप नासन को निरधारि॥
सो नृप नंदहि पुत्र सह नासि करी हम पूर्ण।
चंद्रगुप्त राजा कियो करि राक्षस-मद चूर्ण॥
तिमि सोऊ मोहि नीति-बल छलन चहत हति चंद।
पै मो आछत यह जतन वृथा तासु अति मंद॥

(ऊपर देखकर क्रोध से) अरे राक्षस ! छोड़-छोड़ यह व्यर्थ का श्रम; देख—

जिमि नृप नंदहि मारि कै वृषलहि दीनों राज।
आइ नगर चाणक्य किय दुष्ट सर्प सों काज॥
तिमि सोऊ नृप चंद्र को चाहत करन बिगार।
निज लघु मति लाँघ्यौ चहत मो बल-बुद्धि-पहार॥

(आकाश की ओर देखकर) अरे राक्षस ! मेरा पीछा छोड़। क्योंकि—

राज काज मंत्री चतुर करत बिना अभिमान।
जैसो तुव नृप नंद हो चंद्र न तौन समान॥
तुम कछु नहिं चाणक्य जो साधौ कठिनहु काज।
तासों हम सों बैर करि नहिं सरिहै तुव राज॥

अथवा इसमें तो मुझे कुछ सोचना ही न चाहिए। क्योंकि—

मम भागुरायन आदि भृत्यन मलय राख्यौ घेरि कै।
तिमि गए सिद्धारथक ऐहैं तेउ काज निबेरि कै॥

अब लखहु करि छल कलह नृप सो भेद बुद्धि उपाइ कै।
पर्बत जनन सो हम बिगारत राक्षसहिं उलटाइ कै॥

कंचुकी—हा! सेवा बड़ी कठिन होती है।

नृप सो सचिव सो सब मुसाहेब-गनन सों डरते रहौ।
पुनि बिटहु जे अति पास के तिनकौं क्यौं करतो रहौ॥
मुख लखत बीतत दिवस निसि भय रहत सकित प्रान है।
निज उदर-पूरन हेतु सेवा श्वान-वृत्ति समान है॥

(चारो ओर घूमकर देखकर)

अहा! यही आर्य्य चाणक्य का घर है तो चलूँ। (कुछ आगे बढ़कर और देखकर) अहाहा! यह राजाधिराज श्रीमंत्रीजी के घर की संपत्ति है। जो—

कहुँ परे गोमय शुष्क, कहुँ सिल परी सोभा दै रही।
कहुँ तिल, कहूँ जव-रासि लागी बटुन जो भिक्षा लही॥
कहुँ कुस परे कहुँ समिध सूखत भार सो ताके नयो।
यह लखौ छप्पर महा जरजर होइ कैसो झुकि गयो॥

महाराज चंद्रगुप्त के भाग्य से ऐसा मंत्री मिला है—

बिन गुनहूँ के नृपन को धन हित गुरुजन धाई।
सूखो मुख करि झूठहीं बहु गुन कहहि बनाइ॥
पै जिनको तृष्णा नहीं ते न लबार समान।
तिनसो तृन सम धनिक जन पावत कबहुँ न मान॥

(देखकर डर से) अरे आर्य चाणक्य यहाँ बैठे हैं, जिन्होंने—

लोक धरषि चंद्रहि कियो राजा नंद गिराइ।
होत प्रात रवि के कढ़त जिमि ससि तेज नसाइ॥

(प्रगट दंडवत करके) जय हो! आर्य की जय हो!!

चाणक्य—(देखकर) कौन है वैहीनर! क्यों आया है?

कंचुकी—आर्य! अनेक राजगणों के मुकुट-माणिक्य से सर्वदा जिनके पदतल लाल रहते हैं उन महाराज चंद्रगुप्त ने आपके चरणों में दंडवत् करके निवेदन किया है कि "यदि आपके किसी कार्य में विघ्न न पड़े तो मैं आप का दर्शन किया चाहता हूँ।"

चाणक्य—वैहीनर ! क्या वृषल मुझे देखा चाहता है ? क्या मैंने कौमुदी-महोत्सव का प्रतिषेध कर दिया है यह वृषल नहीं जानता ?

कंचुकी—आर्य, क्यों नहीं।

चाणक्य—(क्रोध से) हैं ? किसने कहा बोल तो ?

कंचुकी—(भय से) महाराज प्रसन्न हों, जब सुगांगप्रासाद की अटारी पर गए थे तो देखकर महाराज ने आप ही ज़ान लिया कि कौमुदी-महोत्सव अब की नहीं हुआ।

चाणक्य—अरे ठहर, मैंने जाना यह तुम्हीं लोगों ने वृषल का जी मेरी ओर से फेरकर उसे चिढ़ा दिया है, और क्या।

(कचुकी भय से नीचा मुँह करके चुप रह जाता है)

चाणक्य—अरे राज के कारबारियों का चाणक्य के ऊपर बड़ा ही विद्वेष पक्षपात है। अच्छा, वृषल कहाँ है ? बता।

कंचुकी—(डरता हुआ) आर्य ! सुगांगप्रासाद की अटारी पर से महाराज ने मुझे आपके चरणों में भेजा है।

चाणक्य—(उठकर) कंचुकी ! सुगांगप्रासाद का मार्ग बता।

कंचुकी—इधर, महाराज। (दोनों घूमते है)

कंचुकी—महाराज ! यह सुगांगप्रासाद की सीढ़ियाँ हैं, चढ़ें।

(दोनो सुगागप्रासाद पर चढते हैं और चाणक्य के घर का परदा गिरके छिप जाता है)

चाणक्य—(चढ़कर और चंद्रगुप्त को देखकर प्रसन्नता से आप ही आप) अहा ! वृषल सिंहासन पर बैठा है—

हीन नंद सो रहित नृप चद्र करत जेहि भोग।
परम होत संतोष लखि आसन राजा जोग॥

(पास जाकर) जय हो वृषल की !

चंद्रगुप्त—(उठकर और पैरो पर गिरकर) आर्य्य ! चंद्रगुप्त दंडवत् करता है।

चाणक्य—(हाथ पकड़कर उठाकर) उठो बेटा ! उठो।

जहँ लौं हिमालय के सिखर सुरधुनी-कन सीतल रहै।
जहँ लौं विविध मणिखंड-मडित समुद दच्छिन दिसि बहै॥
तहँ लौं सबै नृप आइ भय सों तोहि सीस झुकावहीं।
तिनके मुकुट-मणि रँगे तुव पद निरखि हम सुख पावहीं॥

चंद्र०—आर्य्य! आपकी कृपा से ऐसा ही हो रहा है। बैठिए।

(दोनो यथास्थान बैठते हैं)

चाणक्य—वृषल! कहो, मुझे क्यों बुलाया है?

चंद्रगुप्त—आर्य के दर्शन से कृतार्थ होने को।

चाणक्य—(हँसकर) भया, बहुत शिष्टाचार हुआ, अब बताओ क्यों बुलाया है? क्योंकि राजा लोग किसी को बेकाम नहीं बुलाते।

चंद्र०—आर्य्य! आपने कौमुदी-महोत्सव के न होने में क्या फल सोचा है?

चाणक्य—(हँसकर) तो यही उलाहना देने को बुलाया है न?

चंद्र०—उलाहना देने को कभी नहीं।

चाणक्य—तो क्यों?

चंद्र०—पूछने को।

चाणक्य—जब पूछना ही है तब तुमको इससे क्या? शिष्य को सर्वदा गुरु की रुचि पर चलना चाहिए।

चंद्र०—इसमें कोई संदेह नहीं पर आपकी रुचि बिना प्रयोजन नहीं प्रवृत्त होती, इससे पूछा।

चाणक्य—ठीक है, तुमने मेरा आशय जान लिया, बिना प्रयोजन के चाणक्य की रुचि किसी ओर कभी फिरती ही नहीं।

चंद्र०—इसी से तो सुनने बिना मेरा जी अकुलाता है।

चाणक्य—सुनो, अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे हैं—एक राजा के भरोसे, दूसरा मंत्री के भरोसे, तीसरा राजा और मंत्री दोनों के भरोसे; सो तुम्हारा राज तो केवल सचिव के भरोसे है, फिर इन बातों के पूछने से क्या? व्यर्थ मुँह दुखाना है, यह सब हम लोगों के भरोसे है, हम लोग जानें।

(राजा क्रोध से मुँह फेर लेता है, नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं)

(राग विहाग)

प्रथम वै०—अहो यह शरद शंभु ह्वै आई।

कास-फूल फूले चहुँ दिसि तें सोइ मनु भस्म लगाई॥
चद उदित सोइ सीस अभूषन सोभा लगति सुहाई।
तासों रंजित घन-पटली सोइ मनु गज-खाल बनाई॥
फूले कुसुम मुडमाला सोइ सोहत अति धवलाई।
राजहंस सोभा सोइ मानों हास विभव दरसाई॥
अहो यह शरद शंभु बनि आई

(राग कलिंगड़ा)

हरौ हरि-नैन तुम्हारी बाधा।
सरद-अत लखि सेस अक तें जगे जगत-सुभ साधा॥
कछु कछु खुले मुँदे कछु सोभित आलस भरि अनियारे।
अरुन कमल से मद के माते थिर भे जदपि ढरारे॥
सेस सीस मनि चमक-चकौंधन तनिकहुँ नहिं सकुचाहीं।
नींद भरे श्रम जगे चुभत जे नित कमला-उर माहीं॥
हरौ हरि-नैन तुम्हारी बाधा।

दूसरा वै०—(कड़खे की चाल में)

अहो, जिनको बिधि सब जीव सो बढ़ि दीनो जग काज।
अरे, दान-सलिल-वारे सदा जे जीतहिं गजराज॥
अहो, झुक्यो न जिनको मान ते नृपवर जग सिरताज।
अरे, सहहिं न आज्ञा-भग जिमि दतपात मृगराज॥
अरे, केवल बहु गहिना पहिरि राजा होइ न कोय।
अहो, जाकी नहिं आज्ञा टरै सो नृप तुम सम होय॥

चाणक्य—(सुनकर आप ही आप) भला पहिले ने तो देवता रूप शरद के वर्णन में आशीर्वाद दिया, पर इस दूसरे ने क्या कहा ? (कुछ सोच कर) अरे जाना, यह सब राक्षस की करतूत है। अरे दुष्ट राक्षस ! क्या तू नहीं जानता कि अभी चाणक्य सो नहीं गया है ?

चद्र०—अजी वैहीनर ! इन दोनों गानेवालों को लाख-लाख मोहर दिलवा दो।

वैहीनर—जो आज्ञा महाराज। (उठकर जाना चाहता है)

चाणक्य—वैहीनर, ठहर अभी मत जा। वृषल, कुपात्र को इतना क्यों देते हो ?

चन्द्र०—आप मुझे सब बातों में यों ही रोक दिया करते हैं, तब यह मेरा राज्य क्या है वरन उलटा बंधन है।

चाणक्य—वृषल ! जो राजा आप असमर्थ होते हैं उनमें इतना ही तो दोष है, इससे जो ऐसी इच्छा हो तो तुम अपने राज का प्रबंध आप कर लो।

चंद्र०—बहुत अच्छा, आज से मैंने सब काम सम्हाला।

चाणक्य—इससे अच्छी और क्या बात है, तो मैं भी अपने अधिकार पर सावधान हूँ।

चंद्र०—जब यही है तो पहिले मैं पूछता हूँ कि कौमुदी महोत्सव का निषेध क्यों किया गया ?

चाणक्य—मै भी यही पूछता हूँ कि उसके होने का प्रयोजन क्या था ?

चंद्र०—पहिले तो मेरी आज्ञा का पालन।

चाणक्य—मैंने भी आप की आज्ञा के अपालन के हेतु ही कौमुदी-महोत्सव का प्रतिषेध किया, क्योंकि—

आइ चारहू सिधु के छोरहु के भूपाल।
जो शासन सिर पैं धरैं जिमि फूलन की माल॥
तोहि हम जौ कछु टारहीं सोउ तुव हित उपदेस।
जासो तुमरो विनय गुन जग मै बढ़ै नरेस॥

चंद्र०—और जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूँ।

चाणक्य—वह भी कहता हूँ।

चंद्र०—कहिए।

चाणक्य—शोणोत्तरे ! अचलदत्त कायस्थ से कहो कि तुम्हारे पास जो भद्रभट इत्यादिकों का लेखपत्र है वह माँगा है।

प्रतिहारी—जो आज्ञा। (बाहर से पत्र लाकर देती है)

चाणक्य—वृषल, सुनो !

चंद्र०—मैं उधर ही कान लगाए हूँ।

चाणक्य—(पढ़ता है) स्वस्ति परम प्रसिद्ध नाम महाराज श्री चंद्रगुप्त देव के साथी जो अब उनको छोड़ कर कुमार मलयकेतु के आश्रित हुए हैं उनका यह प्रतिज्ञापत्र है। पहिला गजाध्यक्ष भद्रभट, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त, महाप्रतिहार चंद्रभानु का भानजा हिंगुरात, महाराज के नातेदार महाराज बलगुप्त, महाराज के लड़कपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबलदत्त का छोटा भाई भागुरायण, मालवा के राजा का पुत्र रोहिताक्ष और क्षत्रियों में सबसे प्रधान विजयवर्म्मा (आप ही आप) ये हम सब लोग यहाँ महाराज का काम सावधानी से साधते हैं (प्रकाश) यही इस पत्र में लिखा है। सुना ?

चंद्र०—आर्य्य, मै इन सबों के उदास होने का कारण सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य—वृषल ! सुनो—वे जो गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष थे वे रात-दिन मद्य, स्त्री और जुआ में डूबकर अपने काम से निरे बेसुध रहते थे। इससे मैंने उनसे अधिकार लेकर केवल निर्वाह के योग्य जीविका कर दी थी, इससे उदास होकर कुमार मलयकेतु के पास चले गए और वहाँ अपना-अपना कार्य्य सुनाकर फिर उसी पद पर नियुक्त हुए है, और हिंगुरात और बलगुप्त ऐसे लालची है कि कितना भी दिया पर अंत में मारे लालच के कुमार मलयकेतु के पास इस लोभ से जा रहे कि यहीं बहुत मिलेगा, और जो आपका लड़कपन का सेवक राजसेन था उसने आपकी थोड़ी ही कृपा से हाथी, घोड़ा, घर और धन सब पाया, पर इस भय से भागकर मलयकेतु के पास चला गया कि सब धन छिन न जाय, और वह जो सिंहबलदत्त सेनापति का छोटा भाई भागुरायण है उससे पर्व्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उसने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि "जैसे विश्वासघात करके चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हें भी मार डालेगा, इससे यहाँ से भाग चलो", ऐसे ही बहकाकर कुमार मलयकेतु को भगा दिया और जब आप के वैरी चंदनदासादिकों को दंड हुआ तब मारे डर के मलयकेतु के पास जा रहा। उसने भी यह समझ कर कि इसने मेरे प्राण बचाए और मेरे पिता का परि-

चित भी है उसको कृतज्ञता से अपना अंतरंगी मंत्री बनाया है, और वे जो रोहिताक्ष और विजयवर्मा थे वे ऐसे अभिमानी थे कि जब आप उनके नातेदारों का आदर करते थे तब वह कुढ़ते थे, इसी से वे भी मलयकेतु के पास चले गए, बस, यही उन लोगों की उदासी का कारण है।

चंद्र०—आर्य्य ! जब इन सबके भागने का उद्यम जानते ही थे तो क्यों न रोक रखा ?

चाणक्य—ऐसा कर नहीं सके।

चंद्र०—क्या आप इसमें असमर्थ हो गए वा कुछ उसमें भी प्रयोजन था ?

चाणक्य—असमर्थ कैसे हो सकते हैं ? उसमें भी कुछ प्रयोजन ही था।

चंद्र०—आर्य ! वह प्रयोजन मैं सुनना चाहता हूँ।

चाणक्य—सुनो और भूल मत जाओ।

चद्र०—आर्य ! मैं सुनता हुई हूँ, भूलूँगा भी नहीं; कहिए।

चाणक्य—अब जो लोग उदास हो गए हैं या बिगड़ गए हैं उनके दो ही उपाय हैं. या तो फिर से उन पर अनुग्रह करें या उनको दंड दें और भद्रभट, पुरुषदत्त से जो अधिकार ले लिया गया है तो अब उन पर अनुग्रह यही है कि फिर उनको उनका अधिकार दिया जाय; और यह हो नहीं सकता, क्योंकि उनको मृगया, मद्यपानादिक का जो व्यसन है इससे इस योग्य नहीं है कि हाथी, घोड़ों को सम्हालें और सब सेना की जड़ हाथी घोड़े ही है। वैसे ही हिंगुरात, बलगुप्त को कौन प्रसन्न कर सकता है, क्योंकि उनको सब राज्य पाने से भी संतोष न होगा, और राजसेन और भागुरायण तो धन और प्राण के डर से भागे है; ये तो प्रसन्न होई नहीं सकते, और रोहिताक्ष, विजयवर्म्मा का तो कुछ पूछना ही नहीं है, क्योंकि वे तो और नातेदारों के मान से जलते है और उनका कितना भी मान करो, उन्हें थोड़ा ही दिखलाता है ; तो इनका क्या उपाय है। यह तो अनुग्रह का वर्णन हुआ, अब दंड का सुनिए। यदि हम इन सबों को प्रधान पद पाकर के जो बहुत दिनों से नन्दकुल के सर्वदा शुभाकांक्षी और साथी रहे दंड देकर दुखी करें तो नंदकुल के साथियों का

हम पर से विश्वास उठ जाय, इससे छोड़ ही देना योग्य समझा, सो इन्हीं सब हमारे भृत्यों को पक्षपाती बनाकर राक्षस के उपदेश से म्लेच्छराज की बड़ी सहायता पाकर और अपने पिता के वध से क्रोधित होकर पर्वतक का पुत्र कुमार मलयकेतु हम लोगों से लड़ने को उद्यत हो रहा है, सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है उत्सव का समय नहीं। इससे गढ़ के संस्कार के समय कौमुदी-महोत्सव क्या होगा, यही सोच कर उसका प्रतिषेध कर दिया।

चंद्र०—आर्य ! मुझे अभी इसमें बहुत कुछ पूछना है।

चाणक्य—भली भाँति पूछो, क्योंकि मुझे भी बहुत कुछ कहना है।

चंद्र०—यह पूछता हूँ—

चाणक्य—हाँ ! मैं भी कहता हूँ।

चंद्र०—यह कि हम लोगों के सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु है; उसे आपने भागते समय क्यों नहीं पकड़ा ?

चाणक्य—वृषल ! मलयकेतु के भागने के समय भी दो ही उपाय थे—या तो मेल करते या दंड देते। जो मेल करते तो आधा राज देना पड़ता और जो दंड देते तो फिर यह हम लोगों की कृतघ्नता सब पर प्रसिद्ध हो जाती कि इन्हीं लोगों ने पर्वतक को भी मरवा डाला और जो आधा राज देकर अब मेल कर लें तो उस विचारे पर्वतक के मारने का पाप ही पाप लगे। इससे मलयकेतु को भागते समय छोड़ दिया।

चंद्र०—और भला राक्षस इसी नगर में रहता था, उसका भी आपने कुछ न किया इसका क्या उत्तर है।

चाणक्य—सुनो, राक्षस अपने स्वामी की स्थिर भक्ति से और यहाँ बहुत दिन रहने से यहाँ के लोगों का और नंद के सब साथियों का विश्वासपात्र हो रहा है और उसका स्वभाव सब लोग जान गए है। उसमें बुद्धि और पौरुष भी है, वैसे ही उसके सहायक भी हैं और कोषबल भी है, इससे जो वह यहाँ रहे तो भीतर के सब लोगों को फोड़कर उपद्रव करे और जो यहाँ से दूर रहे तो वह ऊपरी जोड़ तोड़ लगावे पर उनके मिटाने में इतनी कठि-

नाई न हो। इससे उसके जाने के समय उपेक्षा कर दी गई।

चंद्र०—तो जब वह यहाँ था तभी उसको वश में क्यों नहीं कर लिया?

चाणक्य—वश क्या कर लें, अनेक उपायों से तो वह छातो में गड़े काँटे की भाँति निकालकर दूर किया गया है! उसे दूर करने में और कुछ प्रयोजन ही था।

चंद्र०—तो बल से क्यों नहीं पकड़ रखा?

चाणक्य—वह राक्षस ऐसा नहीं है. उस पर जो बल किया जाता तो या तो वह आप मारा जाता या तुम्हारी सेना का नाश कर देता।

और—

हम खोवैं इक महत नर जो वह पावै नास।
जो वह नासै सैन तुव तौहू जिय अति त्रास॥
तासो कल बल करि बहुत अपने बस करि वाहि।
जिमि गज पकरैं सुघर तिमि बाँधैंगे हम ताहि॥

चंद्र०—मैं आप की बात तो नहीं काट सकता, पर इससे तो मंत्री राक्षस ही बढ़-चढ़ के जान पड़ता है।

चाणक्य—(क्रोध से) 'आप नहीं' इतना क्यों छोड़ दिया? ऐसा कभी नहीं है। उसने क्या किया है कहो तो?

चंद्र—जो आप न जानते हों तो सुनिए कि वह महात्मा—

जदपि आपु जीती पुरी तदपि धारि कुशलात।
जब लौं जिय चाह्यौ रह्यौ धारि सीस पै लात॥
डौंड़ी फेरन के समय निज बल जय प्रगटाय।
मेरो दल के लोग कों दीनो तुरत हराय॥
मोहे परिजन रीति सो जाके सब बिनु त्रास।
जो मो पैं निज लोकहू आनहिँ नहिँ विश्वास॥

चाणक्य—(हँसकर) वृषल! राक्षस ने यह सब किया?

चंद्र०—हाँ! हाँ! अमात्य राक्षस ने यह सब किया।

चाणक्य—तो हमने जाना, जिस तरह नंद का नाश करके तुम राजा हुए वैसे ही अब मलयकेतु राजा होगा।

चंद्र०—आर्य ! यह उपालंभ आपको नहीं शोभा देता; करनेवाला सब दूसरा है।

चाणक्य—रे कृतघ्न !

अतिहि क्रोध करि खोलिकै सिखा प्रतिज्ञा कीन।
सो सब देखत भुव करी नव नृप नंद विहीन।
घिरी स्वान अरु गीध सों भय उपजावनिहारि।
जारि नंदहू नहिं भई सांत मसान दवारि॥

चंद्र०—यह सब किसी दूसरे ने किया।

चाणक्य—किसने ?

चंद्र०—नन्दकुल के द्वेषी दैव ने।

चाणक्य—दैव तो मूर्ख लोग मानते हैं।

चंद्र०—और विद्वान् लोग भी यद्वा तद्वा करते हैं।

चाणक्य—(क्रोध नाट्य करके) अरे वृषल ! क्या नौकरों की तरह मुझ पर आज्ञा चलाता है ?

खुली सिखाहूँ बाँधिबे चंचल मे पुनि हाथ।

(क्रोध से पैर पृथ्वी पर पटक कर)

घोर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ॥
नंद नसे सों निरुज ह्वै तू फूल्यौ गरवाय।
सो अभिमान मिटाइहौं तुरतहिं तोहि गिराय॥

चंद्र०—(घबड़ाकर) अरे ! क्या आर्य को सचमुच क्रोध आ गया !

फर फर फरकत अधर पुट, भए नयन जुग लाल।
चढ़ी जाति भौंहैं कुटिल, स्वाँस तजत जिमि व्याल॥
मनहुँ अचानक रुद्रदृग खुल्यौ त्रितिय दिखरात।

(आवेग सहित)

धरनी धारयौ बिनु धँसे हा हा किमि पदघात॥

चाणक्य—(नकली क्रोध रोककर) तो वृषल ! इस कोरी बकवाद से क्या लाभ है ! जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दे। (शस्त्र फेंककर और उठकर—आप ही आप) ह ह ह !

राक्षस ! यही तुमने चाणक्य को जीतने का उपाय किया।

तुम जानौ चाणक्य सों नृप चंदहि लरवाय।
सहजहि लैहैं राज हम निज बल बुद्धि उपाय॥
सो हम तुमही कहँ छलन कियो क्रोध परकास।
तुमरोई करिहै उलटि यह तुव भेद बिनास॥

(क्रोध प्रकट करता हुआ चला जाता है)

चंद्र०—आर्य वैहीनर ! "चाणक्य का अनादर करके आज से चंद्रगुप्त सब काम-काज आप ही सम्हालेंगे," यह लोगों से कह दो।

कंचुकी—(आप ही आप) अरे ! आज महाराज ने चाणक्य के पहले आर्य शब्द नहीं कहा ! क्यों ? क्या सचमुच अधिकार छीन लिया ? वा इसमें महाराज का क्या दोष है !

सचिव-दोष सो होत हैं नृपहु बुरे ततकाल।
हाथीवान प्रमाद सों गज कहवावत ब्याल॥

चंद्र०—क्यों जी ? क्या सोच रहे हो ?

कंचुकी—यही कि महाराज को महाराज शब्द अब यथार्थ शोभा देता है

चंद्र०—(आप ही आप) इन्हीं लोगों के धोखा खाने से आर्य्य का काम होगा। (प्रगट) शोणोत्तरे ! इस सूखी कलह से हमारा सिर दुखने लगा, इससे शयनगृह का मार्ग दिखलाओ।

प्रतिहारी—इधर आवें, महाराज, इधर आवें।

चंद्र०—(उठकर चलता हुआ आप ही आप)

गुरु आयसु छल सो कलह करिहू जीय डराय।
किमि नर गुरुजन सो लरहि, यहै सोच जिय हाय॥

(सब जाते हैं—जवनिका गिरती है)

—०*०—

चतुर्थ अंक

स्थान—मंत्री राक्षस के घर के बाहर का प्रांत।

(करभक घबड़ाया हुआ आता है)

करभक—अहाहा हा ! अहाहा हा !

अतिसय दुरगम ठाम मै सत जोजन सो दूर।
कौन जात है धाइ बिनु प्रभु निदेस भरपूर॥

अब राक्षस मंत्री के घर चलूँ। (थका सा घूमकर) अरे कोई चौकीदार है ! स्वामी राक्षस मंत्री से जाकर कहो कि 'करभक काम पूरा करके पटने से दौड़ा आता है।'

(दौवारिक आता है)

दौवारिक—अजी ! चिल्लाओ मत, स्वामी राक्षस मंत्री को राजकाज सोचते-सोचते सिर में ऐसी बिथा हो गई है कि अब तक सोने के बिछौने से नहीं उठे, इससे एक घड़ी भर ठहरो, अवसर मिलता है तो मैं निवेदन किए देता हूँ।

(परदा उठता है और सोने के बिछौने पर चिंता में भरा राक्षस और शकटदास दिखाई पड़ते हैं)

राक्षस—(आप ही आप)

कारज उलटो होत हैं कुटिल नीति के जोर।
का कीजै सोचत यही जागि होय है भोर॥

और भी

आरभ पहिले सोचि रचना वेश की करि लावहीं।
इक बात में गर्भित बहुत फल गूढ़ भेद दिखावहीं॥
कारन अकारन सोचि फैली क्रियन को सकुचावहीं।
जे करहि नाटक बहुत दुख हम सरिस तेऊ पावहीं॥

और भी वह दुष्ट ब्राह्मण चाणक्य—

दौवा०—(प्रवेश कर) जय जय।

राक्षस—किसी भाँति मिलाया या पकड़ा जा सकता है !

दौवा०—अमात्य—

राक्षस—(बाएँ नेत्र के फड़कने का अपशकुन देखकर आप ही आप) 'ब्राह्मण चाणक्य जय जय' और 'पकड़ा जा सकता है अमात्य' यह उलटी बात हुई और उसी समय असगुन भी हुआ। तो भी क्या हुआ, उद्यम नहीं छोड़ेंगे। (प्रकाश) भद्र ! क्या कहता है ?

दौवा०—अमात्य ! पटने से करभक आया है सो आपसे मिला चाहता है।

राक्षस—अभी लाओ।

दौवा०—जो आज्ञा। (करभक के पास जाकर, उसको संग ले आकर) भद्र ! मंत्रीजी वह बैठे हैं, उधर जाओ।

[जाता है

कर०—(मंत्री को देखकर) जय हो, जय हो।

राक्षस—अजी करभक ! आओ-आओ, अच्छे हो ?—बैठो।

कर०—जो आज्ञा। (पृथ्वी पर बैठ जाता है)

राक्षस—(आप ही आप) अरे ! मैंने इसको किस काम का भेद लेने को भेजा था यह भूला जाता है। (चिंता करता है)

(बेंत हाथ में लेकर एक पुरुष आता है)

पुरुष—हटे रहना, बचे रहना—अजी दूर रहो—दूर रहो, क्या नहीं देखते ?

नृप द्विजादि जिन नरन को मगल रूप प्रकास।
ते न नीच मुखहू लखहिं, कैसो पास निवास ॥*

(आकाश की ओर देखकर) अजी क्या कहा, कि क्यों हटाते हो ? अमात्य राक्षस के सिर में पीड़ा सुनकर कुमार मलयकेतु उनको देखने को इधर ही आते हैं।

[जाता है

---

* प्राचीन काल में आचार्य, राजा आदि नीचों को नहीं देखते थे।

(भागुरायण और कंचुकी के साथ मलयकेतु आता है)

मलयकेतु—(लंबी साँस लेकर—आप ही आप) हा ! देखो पिता को मरे आज दस महीने हुए और व्यर्थ वीरता का अभिमान करके अब तक हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया, वरन तर्पण करना भी छोड़ दिया। यों क्या हुआ, मैंने तो पहिले यही प्रतिज्ञा की है कि

कर वलय उर ताड़त गिरे, आँचरहु की सुधि नहिं परी।
मिलि करहिं आरतनाद हाहा, अलक खुलि रज सो भरी॥
जो शोक सों भइ मातुगन की दशा सो उलटायहैं।
करि रिपु जुवतिगन की सोई गति पितहिं तृप्त करायहैं॥

और भी—

रन मरि पितु ढिग जात हम बीरन की गति पाय।
कै माता दृग-जल धरत रिपु-जुवती मुख लाय॥

(प्रकाश) अजी जाजले ! सब राजा लोगों से कहो कि "मैं बिना कहे सुने राक्षस मंत्री के पास अकेला जाकर उनको प्रसन्न करूँगा, इससे वे सब लोग उधर ही ठहरें।"

कंचुकी—जो आज्ञा ! (घूमते-घूमते नेपथ्य की ओर देखकर) अजी राजा लोग ! सुनो, कुमार की आज्ञा है कि मेरे साथ कोई न चले (देखकर आनन्द से) महाराज कुमार ! आप देखिए। आप की आज्ञा सुनते ही सब राजा रुक गए—

अति चपल जे रथ चलत, ते सुनि चित्र से तुरतहि भए।
जे खुरन खोदत नभ-पथहि, ते बाजिगन झुकि रुकि गए॥
जे रहे धावत, ठिठकि ते गज मूक घंटा सह सधे।
मरजाद तुव नहिं तजहिं नृपगण जलधि से मानहुँ बँधे॥

मलय०—अजी जाजले ! तुम भी सब लोगों को लेकर जाओ, एक केवल भागुरायण मेरे संग रहे।

कंचुकी—जो आज्ञा। [सबको लेकर जाता है

मलय०—मित्र भागुरायण ! जब मैं यहाँ आता था तो भद्रभट प्रभृति लोगों ने मुझसे निवेदन किया कि "हम राक्षस मन्त्री के द्वारा

कुमार के पास नहीं रहा चाहते, कुमार के सेनापति शिखरसेन के द्वारा रहेंगे। दुष्ट मंत्री ही के डर तो चन्द्रगुप्त को छोड़कर यहाँ सब बात का सुबीता जानकर कुमार का आश्रय लिया है।" सो उन लोगों की बात का मैंने आशय नहीं समझा।

भागु०—कुमार! यह तो ठीक ही है, क्योंकि अपने कल्याण के हेतु सब लोग स्वामी का आश्रय हित और प्रिय के द्वारा करते हैं।

मलय०—मित्र भागुरायण! तो फिर राक्षस मन्त्री तो हम लोगों का परम प्रिय और बड़ा हित है।

भागु०—ठीक हैं, पर बात यह है कि अमात्य राक्षस का बैर चाणक्य से है, कुछ चन्द्रगुप्त से नहीं है, इससे तो चाणक्य की बातों से रूठकर चन्द्रगुप्त उससे मंत्री का काम ले ले और नन्दकुल की भक्ति से "यह नन्द ही के वंश का है" यह सोचकर राक्षस चन्द्रगुप्त से मिल जाय और चन्द्रगुप्त भी अपने बड़े लोगों का पुरान मंत्री समझकर उसको मिला ले, तो ऐसा न हो कि कुमार हम लोगों पर भी विश्वास न करें।

मलय०—ठीक है, मित्र भागुरायण! राक्षस मंत्री का घर कहाँ है?

भागु०—इधर, कुमार, इधर। (दोनों घूमते हैं) कुमार! यही राक्षस मंत्री का घर है—चलिए।

मलय०—चलें। [दोनों भीतर जाते हैं

राक्षस—अहा! स्मरण आया। (प्रकाश) कहो जी! तुमने कुसुमपुर में स्तनकलस वैतालिक को देखा था?

कर०—क्यों नहीं?

मलय०—मित्र भागुरायण! जब तक कुसुमपुर की बातें हों तब तक हम लोग इधर ही ठहरकर सुनें कि क्या बात होती है; क्योंकि—

भेद न कछु जामैं खुलै याही भय सब ठौर।
नृप सो मंत्रीजन कहहिं बात और की और॥

भागु०—जो आज्ञा। (दोनों ठहर जाते हैं)

राक्षस—क्यों जी! वह काम सिद्ध हुआ?

कर०—अमात्य की कृपा से सब काम सिद्ध हो हैं।

मलय०—मित्र भागुरायण! वह कौन-सा काम है?

भागु०—कुमार मंत्री के जो को बातें बड़ी गुप्त हैं। कौन जाने? इससे देखिए अभी सुन लेते हैं कि क्या कहते हैं।

राक्षस—अजी, भली भाँति कहो।

कर०—सुनिए, जिस समय आप ने आज्ञा दिया कि करभक, तुम जाकर वैतालिक स्तनकलस से कह दो कि जब-जब चाणक्य चंद्रगुप्त की आज्ञा भंग करे तब-तब तुम ऐसे श्लोक पढ़ो जिससे उसका जी और फिर जाय।

राक्षस—हाँ, तब?

कर०—तब मैंने पटने में जाकर स्तनकलस से आपका संदेसा कह दिया।

राक्षस—तब?

कर०—इसके पीछे नंदकुल के विनाश से दुःखी लोगों का जी बहलाने के हेतु चंद्रगुप्त ने कुसुमपुर में कौमुदीमहोत्सव होने की डौंड़ी पिटा दी और उसको बहुत दिन से बिछुड़े हुए मित्रों के मिलाप की भाँति पुर के निवासियों ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक स्नेह से मान लिया।

राक्षस—(आँसू भरकर) हा देव नंद!

जदपि उदित कुमुदन संहित पाइ चाँदनी चंद।
तदपि न तुम बिन लसत हे नृपससि! जगदानंद॥

हाँ, फिर क्या हुआ?

कर०—तब चाणक्य दुष्ट ने सब लोगों के नेत्र के परमानंददायक उस उत्सव को रोक दिया और उसी समय स्तनकलस ने ऐसे-ऐसे श्लोक पढ़े कि राजा का भी मन फिर जाय।

राक्षस—कैसे श्लोक थे।

कर०—('जिनको बिधि सब' पढ़ता है)

राक्षस—वाह मित्र स्तनकलस, वाह क्यों न हो! अच्छे समय में भेदबीज बोया है, फल अवश्य होगा। क्योंकि—

नृप रूठे अचरज कहा, सकल लोग जा संग।
छोटे हू मानैं बुरो परे रंग में भंग॥

मलय०—ठीक है। ('नृप रूठे' यह दोहा फिर पढ़ता है)।

राक्षस—हाँ, फिर क्या हुआ?

कर०—तब आज्ञा भंग से रुष्ट होकर चंद्रगुप्त ने आपकी बड़ी प्रशंसा की और दुष्ट चाणक्य से अधिकार ले लिया।

मलय०—मित्र भागुरायण! देखो प्रशंसा करके राक्षस में चंद्रगुप्त ने अपनी भक्ति दिखाई।

भागु०—गुण-प्रशंसा से बढ़कर चाणक्य का अधिकार लेने से।

राक्षस—क्यों जी, एक कौमुदीमहोत्सव के निषेध ही से चाणक्य चंद्रगुप्त में बिगाड़ हुआ कि कोई और कारण भी है?

मलय०—क्यों मित्र भागुरायण! अब और बैर में यह क्या फल निकालेंगे?

भागु०—यह फल निकाला है कि चाणक्य बड़ा बुद्धिमान् है, वह व्यर्थ चंद्रगुप्त को क्रोधित न करावेगा और चंद्रगुप्त भी उसकी बात जानता है, वह भी बिना बात चाणक्य का ऐसा अपमान न करेगा, इससे उन लोगों में बहुत झगड़े से जो बिगाड़ होगा तो पक्का होगा।

कर०—आर्य्य! और भी कई कारण हैं।

राक्षस—कौन?

कर०—कि जब पहिले यहाँ से राक्षस और कुमार मलयकेतु भागे तब उसने क्यों नहीं पकड़ा?

राक्षस—(हर्ष से) मित्र शकटदास! अब तो चंद्रगुप्त हाथ में आ जायगा।

शकट०—अब चंदनदास छूटेगा, और आप कुटुंब से मिलेंगे, वैसे ही जीवसिद्धि इत्यादि लोग क्लेश से छूटेंगे।

भागु०—(आप ही आप) हाँ, अवश्य जीवसिद्धि का क्लेश छूटा।

मलय०—मित्र भागुरायण! अब मेरे हाथ चंद्रगुप्त आवेगा, इसमें

इनका क्या अभिप्राय है ?

भागु०—और क्या होगा ? यही होगा कि यह चाणक्य से छूटे चंद्रगुप्त के उद्धार का समय देखते हैं।

राक्षस—अजी, अब अधिकार छिन जाने पर वह ब्राह्मण कहाँ है ?

कर० - अभी तो पटने ही में है।

राक्षस—(घबड़ाकर) हैं ! अभी वहीं है ? तपोवन नहीं चला गया ? या फिर कोई प्रतिज्ञा नहीं की ?

कर०—अब तपोवन जायगा—ऐसा सुनते हैं।

राक्षस—(घबड़ाकर) शकटदास, यह बात तो काम की नहीं,

देव नंद को नहिं सह्यौ जिन भोजन अपमान।
सो निज कृत नृप चंद की बात न सहिहै जान॥

मलय०—मित्र भागुरायण ! चाणक्य के तपोवन जाने वा फिर प्रतिज्ञा करने में कौन कार्य्य सिद्धि निकाली है।

भागु०—कुमार ! यह तो कोई कठिन बात नहीं है, इसका आशय तो स्पष्ट ही है कि चंद्रगुप्त से जितनी दूर चाणक्य रहेगा उतनी ही कार्य्यसिद्धि होगी।

शकट०—अमात्य ! आप व्यर्थ सोच न करें, क्योंकि देखें

सबहिं भाँति अधिकार लहि अभिमानी नृप चंद।
नहिं सहिहै अपमान अब राजा होइ स्वच्छंद॥
तिमि चाणक्यहु पाइ दुख एक प्रतिज्ञा पूरि।
अब दूजो करिहै न कछु निज उद्यम मद चूरि॥

राक्षस—ऐसा ही होगा। मित्र शकटदास ! जाकर करभक को डेरा इत्यादि दो।

शकट०—जो आज्ञा।

(करभक को लेकर जाता है)

राक्षस—इस समय कुमार से मिलने की इच्छा है।

मलय०—(आगे बढ़कर) मैं आप ही आपसे मिलने को आया हूँ।

राक्षस—(आसन से उठकर) अरे कुमार! आप ही आ गए! आइए, इस आसन पर बैठिए।

मलय०—मैं बैठता हूँ आप विराजिए।

(दोनो बैठते हैं)

मलय०—इस समय सिर की पीड़ा कैसी है?

राक्षस—जब तक कुमार के बदले महाराज कहकर आपको नहीं पुकार सकते तब तक यह पीड़ा कैसे छूटेगी।

मलय०—आपने जो प्रतिज्ञा की है तो सब कुछ होईगा। परंतु सब सेना सामंत के होते भी अब आप किस बात का आसरा देखते हैं?

राक्षस—किसी बात का नहीं, अब चढ़ाई कीजिए।

मलय०—अमात्य! क्या इस समय शत्रु किसी संकट में है?

राक्षस—बड़े।

मलय०—किस संकट में?

राक्षस—मंत्री-संकट में।

मलय०—मंत्री-संकट तो कोई संकट नहीं है।

राक्षस—और किसी राजा को न हो तो न हो, चंद्रगुप्त को तो अवश्य है।

मलय०—आर्य! मेरी जान में चंद्रगुप्त को और भी नहीं है।

राक्षस—आपने कैसे जाना कि चंद्रगुप्त को मंत्री-संकट संकट नहीं है?

मलय०—क्योंकि चंद्रगुप्त के लोग तो चाणक्य के कारण उससे उदास रहते हैं, जब चाणक्य ही न रहेगा तब उसके सब कामों को लोग और भी संतोष से करेंगे।

राक्षस—कुमार, ऐसा नहीं है, क्योंकि वहाँ दो प्रकार के लोग हैं—एक चंद्रगुप्त के साथी, दूसरे नंदकुल के मित्र, उनमें जो चंद्रगुप्त के साथी हैं उनको चाणक्य ही से दुःख था; नंदकुल के मित्रों को कुछ दुःख नहीं है, क्योंकि वह लोग तो यही सोचते है कि इसी कृतघ्न चंद्रगुप्त ने राज के लोभ से अपने पितृकुल का नाश किया है, पर क्या करें उनका कोई आश्रय नहीं है इससे चंद्रगुप्त

के आसरे पड़े हैं। जिस दिन आपको शत्रु के नाश में और अपने पक्ष के उद्धार में समर्थ देखेंगे उसी दिन चंद्रगुप्त को छोड़कर आपसे मिल जायँगे, इसके उदाहरण हमी लोग हैं।

मलय०—आर्य! चंद्रगुप्त पर चढ़ाई करने का एक यही कारण है कि कोई और भी है?

राक्षस—और बहुत क्या होंगे एक यही बड़ा भारी है।

मलय०—क्यों आर्य! यही क्यों प्रधान है? क्या चंद्रगुप्त और मंत्रियों से या आप अपना काम करने में असमर्थ हैं?

राक्षस—निरा असमर्थ है।

मलय०—क्यों?

राक्षस—यों कि जो आप राज्य सँभालते हैं या जिनका राज राजा और मंत्री दोनों करते हैं वह राजा ऐसे हों तो हों; परंतु चंद्रगुप्त तो कदापि ऐसा नहीं है। चंद्रगुप्त एक तो दुरात्मा है, दूसरे वह तो सचिव ही के भरोसे सब काम करता है, इससे वह कुछ व्यवहार जानता ही नहीं, तो फिर वह सब काम कैसे कर सकता है? क्योंकि—

लक्ष्मी करत निवास अति प्रबल सचिव नृप पाय।
पै निज बाल-सुभाव सों इकहिं तजत अकुलाय॥

और भी—

जो नृप बालक सो रहत सदा सचिव के गोद।
बिन कछु जग देखे सुने सो नहिं पावत मोद॥

मलय०—(आप ही आप) तो हम अच्छे हैं कि सचिव के अधिकार में नहीं। (प्रकाश) अमात्य! यद्यपि यह ठीक है तथापि जहाँ शत्रु के अनेक छिद्र हैं तहाँ एक इसी सिद्धि से सब काम न निकलेगा।

राक्षस—कुमार के सब काम इसी से सिद्ध होंगे। देखिए,

चाणक्य को अधिकार छूट्यौ चद्रे हैं राजा नए।
पुर नद में अनुरक्त तुम निज बल सहित चढ़ते भए॥

जब आप हम—(कहकर लज्जा से कुछ ठहर जाता है)

तुव बस सकल उद्यम सहित रन मति करी।
वह कौन सी नृप! बात जो नहिं सिद्धि ह्वै है ता घरी॥

मलय०—अमात्य! जो अब आप ऐसा लड़ाई का समय देखते हैं तो देर करके क्यों बैठे हैं? देखिए—

इनको ऊँचो सीस है, वाको उच्च करार।
श्याम दोऊ, वह जल स्रवत, ये गंडन मधु-धार॥
उतै भँवर को शब्द, इत भँवर करत गुंजार।
निज सम तेहि लखि नासिहैं, दंतन तोरि कछार॥
सीस सोन सिंदूर सो ते मतंग बल दाप।
सोन सहज ही सोखिहैं निश्चय जानहु आप॥

और भी—

गरजि गरजि गंभीर रव, बरसि बरसि मधु-धार।
सत्रु-नगर गज घेरिहैं, घन जिमि विवध पहार॥

(शस्त्र उठाकर भागुरायण के साथ जाता है)

राक्षस—कोई है?

(प्रियंवदक आता है)

प्रियंवदक—आज्ञा।

राक्षस—देख तो द्वार पर कौन भिक्षुक खड़ा है?

प्रियं०—जो आज्ञा। (बाहर जाकर फिर आता है) अमात्य! एक क्षपणक भिक्षुक।

राक्षस—(असगुन जानकर आप ही आप) पहिले ही क्षपणक का दर्शन हुआ।

प्रियं०—जीवसिद्धि है।

राक्षस—अच्छा बोलाकर ले आ।

प्रियं०—जो आज्ञा। [जाता है

(क्षपणक आता है)

क्षपणक—पहिले कटु परिणाम मधु, औषध-सम उपदेस।
मोह व्याधि के वैद्य गुरु, तिनको सुनहु निदेस॥

(पास जाकर) उपासक! धर्म लाभ हो!

राक्षस—ज्योतिषीजी, बताओ, अब हम लोग प्रस्थान किस दिन करें?

क्षप०—(कुछ सोचकर) उपासक! मुहूर्त्त तो देखा। आज भद्रा तो पहर पहिले ही छूट गई है और तिथि भी संपूर्णचंद्रा पौर्णमासी है। आप लोगों को उत्तर से दक्षिण जाना है और नक्षत्र भी दक्षिण ही है।

अथए सूरहि, चंद के उदए गमन प्रशस्त।
पाइ लगन बुध केतु तौ उदयो हू भो अस्त॥[1]

राक्षस—अजी, पहिले तो तिथि ही नहीं शुद्ध है।

क्षप०—उपासक!

एक गुनी तिथि होत है, त्यौं चौगुन नक्षत्र।
लगन होत चौंतिस गुनो, यह भाखत सब पत्र॥
लगन होत है शुभ लगन छोड़ि क्रूर ग्रह एक।
जाहु चंद बल देखि कै पावहु लाभ अनेक॥[2]

---

१ भद्रा छूट गई अर्थात् कल्याण को तो आप ने जब चद्रगुप्त का पक्ष छोड़ा तभी छोड़ा और संपूर्ण-चंद्रा पौर्णमासी है अर्थात् चद्रगुप्त का प्रताप पूर्ण व्याप्त है। उत्तर नाम, प्राचीन पक्ष छोड़कर दक्षिण अर्थात् यम की दिशा को जाना है। नक्षत्र दक्षिण है अर्थात् आपका वाम (विरुद्ध पक्ष) नक्षत्र और आपका दक्षिण पक्ष (मलयकेतु) नक्षत्र (बिना क्षत्र के) है। अथए इत्यादि तुम जो सूर हो उसकी बुद्धि के अस्त के समय और चद्रगुप्त के उदय के समय जाना अच्छा है अर्थात् चाणक्य की ऐसे समय में जय होगी। लग्न अर्थात् कारण भाव में बुध चाणक्य पड़ा है इससे केतु अर्थात् मलयकेतु का उदय भी है तौ भी अस्त ही होगा। अर्थात् इस युद्ध में चंद्रगुप्त जीतेगा और मलयकेतु हारेगा। सूर अथए—इस पद से जीवसिद्धि ने अमंगल भी किया। आश्विन पूर्णिमा तिथि, भरणी नक्षत्र, गुरुवार, मेष के चंद्रमा मीन लग्न में उसने यात्रा बतलाई। इसमें भरणी नक्षत्र, गुरुवार, पूर्णिमा तिथि यह सब दक्षिण की यात्रा में निषिद्ध हैं। फिर सूर्य्य मृत है, चद्र जीवित है यह भी बुरा है। लग्न में मीन का बुध पड़ने से नीच का होने से बुरा है। यात्रा में नक्षत्र दक्षिण होने ही से बुरा है।

२ अर्थात् मलयकेतु का साथ छोड़ दो तो तुम्हारा भला हो। वास्तव में

राक्षस—अजी, तुम और जोतिषियों से जाकर झगड़ो।

क्षप०—आप ही झगड़िए, मैं जाता हूँ।

राक्षस—क्या आप रूस तो नहीं गए ?

क्षप०—नहीं, तुमसे जोतिषी नहीं रूसा है।

राक्षस—तो कौन रूसा है ?

क्षप०—(आप ही आप) भगवान्, कि तुम अपना पक्ष छोड़कर शत्रु का पक्ष ले बैठे हो। [जाता है

राक्षस—प्रियंवदक ! देख तो कौन समय है।

प्रियं—जो आज्ञा। (बाहर से हो आता है) आर्य ! सूर्य्यास्त होता है।

राक्षस—(आसन से उठकर और देखकर) अहा ! भगवान् सूर्य्य अस्ताचल को चले—

जब सूरज उदयो प्रबल, तेज धारि आकाश।
तब उपवन तरुवर सबै छायाजुत भे पास॥
दूर परे ते तरु सबै अस्त भए रवि-ताप।
जिमि धन-बिन स्वामिहि तजै भृत्य स्वारथी आप॥

(दोनो जाते हैं)

चाणक्य के मित्र होने से जीवसिद्ध ने साइत भी उलटी दी। ज्योतिष के अनुसार अत्यंत क्रूर वेला, क्रूर ग्रहवेध में युद्ध आरंभ होना चाहिए। उसके विरुद्ध सौम्य समय में युद्ध यात्रा कही, जिसका फल पराजय है।

पंचम अंक

(हाथ में मोहर और गहिने की पेटी और पत्र लेकर सिद्धार्थक आता है)

सिद्धार्थक—अहाहा!

देशकाल के कलश में सिंची बुद्धि-जल जौन
लता-नीति चाणक्य की बहु फल दैहे तौन॥

अमात्य राक्षस की मोहर का, आर्य्य चाणक्य का लिखा हुआ यह लेख और मोहर की हुई यह आभूषण की पेटिका लेकर मैं पटने जाता हूँ। (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे! यह क्या क्षपणक आता है? हाय हाय! यह तो बुरा असगुन हुआ। तो मैं सूरज को देखकर इसका दोष छुड़ा लूँ।

(क्षपणक आता है)

क्षप०—नमो नमो अर्हत को, जो निज बुद्धि प्रताप।
लोकोत्तर की सिद्धि सब करत हस्तगत आप॥

सिद्धा०—भदंत! प्रणाम।

क्षप०—उपासक! धर्म लाभ हो। (भली भाँति देखकर) आज तो समुद्र पार होने का बड़ा भारी उद्योग कर रखा है।

सिद्धा०—भदंत तुमने कैसे जाना?

क्षप०—इसमें छिपी कौन बात है? जैसे समुद्र में नाव पर सब के आगे मार्ग दिखलाने वाला माँझी रहता है, वैसे ही तेरे हाथ में यह लखौटा है।

सिद्धा०—अजी भदंत! भला यह तुमने ठीक जाना कि मैं परदेश जाता हूँ, पर यह कहो कि आज दिन कैसा है?

क्षप०—(हँसकर) वाह श्रावक वाह! तुम मूँड़ मुँड़ाकर भी नक्षत्र पूछते हो?

सिद्धा०—भला अभी क्या बिगड़ा है? कहते क्यों नहीं? दिन अच्छा होगा जायँगे, न अच्छा होगा न जाएँगे।

क्षप०—चाहे दिन अच्छा हो या न अच्छा हो, मलयकेतु के कटक से बिना मोहर लिए कोई जाने नहीं पाता।

सिद्धा०—यह नियम कब से हुआ ?

क्षप०—सुनो, पहिले तो कुछ भी रोक-टोक नहीं थी, पर जब से कुसुमपुर के पास आए हैं तब से यह नियम हुआ है कि बिना मोहर के न कोई जाय न आवे। इससे जो तुम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो जाओ नहीं तो चुप बैठ रहो, क्योंकि पीछे से तुम्हें हाथ-पैर न बँधवाना पड़े।

सिद्धा०—क्या यह तुम नहीं जानते कि हम राक्षस के अंतरंग खेलाड़ी मित्र हैं ? हमें कौन रोक सकता है ?

क्षप०—चाहे राक्षस के मित्र हो चाहे पिशाच के, बिना मोहर के कभी न जाने पाओगे।

सिद्धा०—भदंत ! क्रोध मत करो, कहो कि काम सिद्ध हो।

क्षप०—जाओ, काम सिद्ध होगा, हम भी पटने जाने के हेतु भागुरायण से मोहर लेने जाते हैं।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक

(भागुरायण और सेवक आते हैं)

भागु०—(आप ही आप) चाणक्य की नीति भी बड़ी विचित्र है।

कहूँ विरल, कहुँ सघन, कहुँ विफल, कहूँ फलवान।
कहुँ कृस, कहुँ अति थूल, कछु भेद परत नहिं जान॥
कहूँ गुप्त अति ही रहत, कबहूँ प्रगट लखात।
कठिन नीति चाणक्य की, भेद न जान्यो जात॥

(प्रगट) भासुरक ! मलयकेतु से मुझे क्षण भर भी दूर रहने में दुःख होता है इससे बिछौना बिछा तो बैठें।

सेवक—जो आज्ञा। बिछौना बिछा है, विराजिए।

भागु०—(आसन पर बैठकर) भासुरक ! बाहर कोई मुझसे मिलने आवे तो आने देना।

सेवक—जो आज्ञा। [जाता है

भागु०—(आप ही आप करुणा से) राम राम! मलयकेतु तो मुझसे इतना प्रेम करता है, मैं उसका बिगाड़ किस तरह करूँगा?

अथवा—

जस-कुल तजि, अपमान सहि, धन-हित परबस होय।
जिन बेच्यो निज प्रान तन, सबै संकत करि सोय॥

(आगे आगे मलयकेतु और पीछे प्रतिहारी आते हैं)

मलय०—(आप ही आप) क्या करें राक्षस का चित्त मेरी ओर से कैसा है यह सोचते हैं तो अनेक प्रकार के विकल्प उठते हैं, कुछ निर्णय नहीं होता।

नंदवंश को जानिकै ताहि चंद्र की चाह।
कै अपनायो जानि निज मेरो करत निबाह॥
को हित अनहित तासु को यह नहिं जान्यो जात।
तासो जिय संदेह अति, भेद न कछू लखात॥

(प्रगट) विजये! भागुरायण कहाँ हैं देख तो?

प्रति०—महाराज! भागुरायण वह बैठे हुए आपकी सेना के जानेवाले लोगों को राह-खर्च और परवाना बाँट रहे हैं।

मलय०—विजये! तुम दबे पाँव से उधर से आओ, मैं पीछे से जाकर मित्र भागुरायण की आँखें बंद करता हूँ।

प्रति०—जो आज्ञा।

(दोनों दबे पाँव से चलते हैं और भासुरक आता है)

भासुरक—(भागुरायण से) बाहर क्षपणक आया है, उसको परवाना चाहिए।

भागु०—अच्छा, यहाँ भेज दो।

भासु०—जो आज्ञा। [जाता है

(क्षपणक आता है)

क्षप०—श्रावक को धर्म लाभ हो!

भागु०—(छल से उसकी ओर देखकर) यह तो राक्षस का मित्र

जीवसिद्धि है। (प्रगट) भदंत ! तुम नगर में राक्षस के किसी काम से जाते होगे।

क्षप०—(कान पर हाथ रखकर) छी-छी ! हमसे राक्षसें वा पिशाच से क्या काम ?

भागु०—आज तुमसे और मित्र से कुछ प्रेम-कलह हुआ है, पर यह तो बताओ कि राक्षस ने तुम्हारा कौन अपराध किया है ?

क्षप०—राक्षस ने कुछ अपराध नहीं किया है, अपराधी तो हम हैं।

भागु०—ह ह ह ह ! भदंत ! तुम्हारे इस कहने से तो मुझको सुनने की और भी उत्कंठा होती है।

मलय०—(आप ही आप) मुझको भी।

भागु०—तो भदंत ! कहते क्यों नहीं ?

क्षप०—तुम सुनके क्या करोगे ?

भागु०—तो जाने दो, हमें कुछ आग्रह नहीं है, गुप्त हो तो मत कहो।

क्षप०—नहीं उपासक ! गुप्त ऐसा नहीं है, पर वह बहुत बुरी बात है।

भागु०—तो जाओ, हम तुमको परवाना न देंगे।

क्षप०—(आप ही आप की भाँति) जो यह इतना आग्रह करता है तो कह दें। (प्रगट) श्रावक ! निरुपाय होकर कहना पड़ा। सुनो। मैं पहिले कुसुमपुर में रहता था, तब संयोग से मुझसे राक्षस से मित्रता हो गई, फिर उस दुष्ट राक्षस ने चुपचाप मेरे द्वारा विषकन्या का प्रयोग कराके बिचारे पर्वतेश्वर को मार डाला।

मलय०—(आँखों में पानी भर के) हाय-हाय ! राक्षस ने हमारे पिता को मारा, चाणक्य ने नहीं मारा। हा !

भागु०—हाँ, तो फिर क्या हुआ ?

क्षप०—फिर मुझे राक्षस का मित्र जानकर उस दुष्ट चाणक्य ने मुझको नगर से निकाल दिया; तब मैं राक्षस के यहाँ आया, पर राक्षस ऐसा जालिया है कि अब मुझको ऐसा काम करने को कहता है जिससे मेरा प्राण जाय।

भागु०—भदंत ! हम तो यह समझते हैं कि पहिले जो आधा राज

देने को कहा था, वह न देने को चाणक्य ही ने यह दुष्ट कर्म किया, राक्षस ने नहीं किया।

क्षप०—(कान पर हाथ रखकर) कभी नहीं, चाणक्य तो विष-कन्या का नाम भी नहीं जानता; यह घोर कर्म्म उस दुर्बुद्धि राक्षस ही ने किया है।

भागु०—हाय-हाय ! बड़े कष्ट की बात है। लो, मुहर तो तुमको देते हैं, पर कुमार को भी यह बात सुना दो।

मलय०—(आगे बढ़कर)

सुन्यो मित्र, श्रुति-भेद-कर शत्रु कियो जो हाल।
पिता-मरन को मोहि दुख दुगुन भयो एहि काल॥

क्षप०—(आप ही आप) मलयकेतु दुष्ट ने यह बात सुन ली तो मेरा काम हो गया। [जाता है

मलय०—(दाँत पीसकर ऊपर देखकर) अरे राक्षस !

जिन तोपै विश्वास करि सौंप्यो सब धन धाम।
ताहि मारि दुख दै सबन सॉचो किय निज नाम॥

भागु०—(आप ही आप) आर्य चाणक्य की आज्ञा है कि "अमात्य राक्षस के प्राण की सर्वथा रक्षा करना" इससे अब बात फेरें। (प्रकाश) कुमार ! इतना आवेग मत कीजिए। आप आसन पर बैठिए तो मैं कुछ निवेदन करूँ।

मलय०—मित्र, क्या कहते हो ? कहो। (बैठ जाता है)

भागु०—कुमार ! बात यह है कि अर्थशास्त्रवालों की मित्रता और शत्रुता अर्थ ही के अनुसार होती है, साधारण लोगों की भाँति इच्छानुसार नहीं होती। उस समय सर्वार्थसिद्धि को राक्षस राजा बनाया चाहता था तब देव पर्वतेश्वर ही उस कार्य में कंटक थे तो उस कार्य की सिद्धि के हेतु यदि राक्षस ने ऐसा किया तो कुछ दोष नहीं। आप देखिए—

मित्र शत्रु ह्वै जात हैं, शत्रु करहिं अति नेह।
अर्थ-नीति-बस लोग सब बदलहि मानहुँ देह॥

इससे राक्षस को ऐसी अवस्था में दोष नहीं देना चाहिए। और

जब तक नंदराज्य न मिले तब तक उस पर प्रकट स्नेह ही रखना नीतिसिद्ध है; राज मिलने पर कुमार जो चाहेंगे करेंगे।

मलय०—मित्र! ऐसा ही होगा। तुमने बहुत ठीक सोचा है। इस समय इसके वध करने से प्रजागण उदास हो जायँगे और ऐसा होने से जय में भी संदेह होगा।

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य—कुमार की जय हो! कुमार के कटकद्वार के रक्षाधिकारी दीर्घचक्षु ने निवेदन किया है कि "मुद्रा लिए बिना एक पुरुष कुछ पत्र-सहित बाहर जाता हुआ पकड़ा गया है सो उसको एक बेर आप देख लें।"

भागु०—अच्छा, उसको ले आओ।

पुरुष—जो आज्ञा।

(जाता है और हाथ बँधे हुए सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धा०—(आप ही आप)

गुन पै रिझवति दोस सों दूर बचावति जौन।
स्वामि-भक्ति जननी सरिस, प्रनमत नित हम तौन॥

पुरुष—(हाथ जोड़कर) कुमार! यही मनुष्य है।

भागु०—(अच्छी तरह देखकर) यह क्या बाहर का मनुष्य है या यहीं किसी का नौकर है?

सिद्धा०—मैं अमात्य राक्षस का पासवर्ती सेवक हूँ।

भागु०—तो तुम क्यों मुद्रा लिए बिना कटक के बाहर जाते थे?

सिद्धा०—आर्य! काम की जल्दी से।

भागु०—ऐसा कौन काम है जिसके आगे राजाज्ञा का भी कुछ मोल नहीं गिना?

(सिद्धार्थक भागुरायण के हाथ में लेख देता है)

भागु०—(लेख लेकर देखकर) कुमार! इस लेख पर अमात्य राक्षस की मुहर है।

मलय०—ऐसी तरह से खोलकर दो कि मुहर न टूटे।

(भागुरायण पत्र खोलकर मलयकेतु को देता है)

मलय०—(पढ़ता है) स्वस्ति। यथा स्थान में कहीं से कोई किसी पुरुष-विशेष को कहता है। हमारे विपक्ष को निराकरण करके सच्चे मनुष्य ने सचाई दिखलाई। अब हमारे पहले के रखे हुए हमारे हितकारी मित्रों को भी जो-जो देने को कहा था वह देकर प्रसन्न करना। यह लोग प्रसन्न होंगे तो अपना आश्रय छूट जाने पर सब भाँति अपने उपकारी की सेवा करेंगे। सच्चे लोग कहीं नहीं भूलते तो भी हम स्मरण कराते हैं। इनमें से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते हैं और कोई राज चाइते हैं। हमको सत्यवादी ने जो तीन अलंकार भेजे सो मिले। हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना। और जबानी हमारे अत्यंत प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुन लेना।*

मलय०—मित्र भागुरायण! इस लेख का आशय क्या है?

भागु०—भद्र सिद्धार्थक! यह लेख किसका है?

सिद्धा०—आर्य! मैं नहीं जानता।

भागु०—धूर्त! लेख लेकर जाता है और यह नहीं जानता कि किसने लिखा है, और सन्देसा किससे कहेगा?

सिद्धा०—(डरते हुए की भाँति) आपसे।

भागु०—क्यों रे! हमसे?

सिद्धा०—आपने पकड़ लिया। हम कुछ नहीं जानते कि क्या बात है।

भागु०—(क्रोध से) अब जानेगा। भद्र भासुरक! इसको बाहर ले जाकर जब तक यह सब कुछ न बतलावे तब तक खूब मारो।

पुरुष—जो आज्ञा (सिद्धार्थक को बाहर लेकर जाता है और हाथ में एक पेटी लिए फिर आता है) आर्य! उसको मारने के समय उसके बगल में से यह मुहर की हुई पेटी गिर पड़ी।

---

* यह वही लेख है जिसका चाणक्य ने शकटदास से धोखा देकर लिखवाया था और अपने हाथ से राक्षस की मुहर उस पर करके सिद्धार्थक को दिया था।

भागु०—(देखकर) कुमार ! इस पर भी राक्षस की मुहर है।

मलय०—यही लेख अशून्य करने को होगी। इसकी भी मुहर बचाकर हमको दिखलाओ।

(भागुरायण पेटी खोलकर दिखलाता है)

मलय०—अरे ! यह तो वही सब आभरण हैं जो हमने राक्षस को भेजे थे। निश्चय यह चंद्रगुप्त को लिखा है।

भागु०—कुमार ! अभी सब संशय मिट जाता है। भासुरक ! उसको और मारो।

पुरुष—जो आज्ञा। (बाहर जाकर फिर आता है) आर्य ! हमने उसको बहुत मारा है। अब कहता है कि अब हम कुमार से सब कह देंगे।

मलय०—अच्छा, ले आओ।

पुरुष—जो कुमार की आज्ञा। (बाहर जाकर सिद्धार्थक को लेकर आता है)

सिद्धा०—(मलयकेतु के पैरों पर गिरकर) कुमार ! हमको अभय-दान दीजिए।

मलय०—भद्र ! उठो, शरणागत जन यहाँ सदा अभय हैं। तुम इसका वृत्तांत कहो।

सिद्धा०—(उठकर) सुनिए। मुझको अमात्य राक्षस ने यह पत्र देकर चंद्रगुप्त के पास भेजा था।

मलय०—जबानी क्या कहने को कहा था वह कहो।

सिद्धा०—कुमार ! मुझको अमात्य राक्षस ने यह कहने को कहा था कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्म्मा, मलयाधिपति सिंहनाद, कश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष, सिंधु-महाराज सिंधुसेन और पारसीक-पालक मेघाक्ष इन पाँच राजाओं से आपसे पूर्व में संधि हो चुकी है। इसमें पहिले तीन तो मलयकेतु का राज चाहते हैं और बाकी दो खजाना और हाथी चाहते हैं। जिस तरह महाराज ने चाणक्य को उखाड़कर मुझको प्रसन्न किया उसी तरह इन लोगों को प्रसन्न करना चाहिए। यही राजसंदेश है।

मलय०—(आप ही आप) क्या चित्रवर्म्मादिक भी हमारे द्रोही हैं ? तभी राक्षस में उन लोगों की ऐसी प्रीति है। (प्रकाश) विजये ! हम अमात्य राक्षस को देखा चाहते हैं।

प्रति०—जो आज्ञा। [जाती है

(एक परदा हटता है और राक्षस आसन पर बैठा हुआ चिंता की मुद्रा में एक पुरुष के साथ दिखाई पड़ता है)

राक्षस—(आप ही आप) चंद्रगुप्त की ओर के बहुत लोग हमारी सेना में भरती हो रहे हैं इससे हमारा मन शुद्ध नहीं है। क्योंकि—

रहत साध्य तें अन्वित अरु विलसत निज पच्छहिं।
सोई साधन साधक जो नहिं छुअत बिपच्छहिं॥
जा पुनि आपु असिद्ध सपच्छ बिपच्छहु में सम।
कछु कहुँ नहिं निज पच्छ माँहि जाको है संगम॥
नरपति ऐसे साधनन को अनुचित अंगीकार करि।
सब भाँति पराजित होत हैं बादी लौं बहु विधि बिगरि॥

वा जो लोग चंद्रगुप्त से उदास हो गए हैं वही लोग इधर मिले हैं, मैं व्यर्थ सोच करता हूँ। (प्रगट) प्रियंवदक ! कुमार के अनुयायी राजा लोगों से हमारी ओर से कह दो कि अब कुसुमपुर दिन-दिन पास आता जाता है, इससे सब लोग अपनी सेना अलग-अलग करके जो जहाँ नियुक्त हों वहाँ सावधानी से रहें।

आगे खस अरु मगध चलैं जयध्वजहिं उड़ाए।
यवन और गंधार रहे मधि सैन जमाए॥
चेदि - हून - सकराज लोग पीछे सों धावहिं।
कौलूतादिक नृपति कुमारहि घेरे आवहिं॥

प्रियं०—अमात्य की जो आज्ञा। [जाता है

(*प्रतिहारी आती है*)

प्रति०—अमात्य की जय हो। कुमार अमात्य को देखना चाहते हैं।

राक्षस—भद्र ! क्षण भर ठहरो। बाहर कौन है ?

(एक मनुष्य आता है)

मनुष्य—अमात्य ! क्या आज्ञा है ?

राक्षस—भद्र ! शकटदास से कहो कि जब से कुमार ने हमको आभरण पहराया है तब से उनके सामने नंगे अंग जाना हमको उचित नहीं है। इससे जो तीन आभरण मोल लिए हैं उनमें से एक भेज दें।

मनुष्य—जो अमात्य की आज्ञा। (बाहर जाता है और आभरण लेकर आता है) अमात्य ! अलंकार लीजिए।

राक्षस—(अलंकार धारण करके) भद्रे ! राजकुल में जाने का मार्ग बतलाओ।

प्रति०—इधर से आइए।

राक्षस—अधिकार ऐसी बुरी वस्तु है कि निर्दोष मनुष्य का भी जी डरा करता है।

सेवक प्रभु सो डरत सदाहीं। पराधीन सपने सुख नाहीं॥
जे ऊँचे पद के अधिकारी। तिनको मनहीं मन भय भारी॥
सबहीं द्वेष बड़न सों करहीं। अनुछिन काननस्वामि को भरहीं॥

जिमि जे जनमे ते मरे, मिले अवसि बिलगाहिं।
तिमि जे अति ऊँचे चढ़ें, गिरिहैं ससय नाहिं॥

प्रति०—(आगे बढ़ कर) अमात्य ! कुमार यह बिराजते हैं, आप जाइए।

राक्षस०—अरे, कुमार यह बैठे है।

लखत चरन की ओर हू, तऊ न देखत ताहि।
अचल दृष्टि इक ओर ही, रही बुद्धि अवगाहि॥
कर पै धारि कपोल निज लसत झुको अवनीस।
दुसह काज के भार सों मनहुँ नमित भो सीस॥

(आगे बढ़कर) कुमार की जय हो !

मलय०—आर्य ! प्रणाम करता हूँ। आसन पर बिराजिए।

(राक्षस बैठता है)

मलय०—आर्य ! बहुत दिनों से हम लोगों ने आपको नहीं देखा।

राक्षस—कुमार ! सेना को आगे बढ़ाने के प्रबंध में फँसने के कारण हमको यह उपालंभ सुनना पड़ा।

मलय०—अमात्य ! सेना के प्रयाण का आपने क्या प्रबंध किया है ? मैं भी सुनना चाहता हूँ।

राक्षस—कुमार ! आपके अनुयायी राजा लोगों को यह आज्ञा दी है। ('आगे खस अरु मगध' इत्यादि छंद पढ़ता है)

मलय०—(आप ही आप) हाँ, जाना ; जो हमारा नाश करने के हेतु चंद्रगुप्त से मिले हैं वही हमको घेरे रहेंगे। (प्रकाश) आर्य, अब कुसुमपुर से कोई आता है या वहाँ जाता है कि नहीं ?

राक्षस—अब यहाँ किसी के आने जाने से क्या प्रयोजन। पाँच-छः दिन में हम लोग ही वहाँ पहुँचेंगे।

मलय०—(आप ही आप) अभी सब खुल जाता है। (प्रगट) जो यही बात है तो इस मनुष्य को चिट्ठी लेकर आपने कुसुमपुर क्यों भेजा था ?

राक्षस—(देखकर) अरे ! सिद्धार्थक है ? भद्र ! यह क्या ?

सिद्धा०—(भय और लज्जा नाट्य करके) अमात्य ! हमको क्षमा कीजिए। अमात्य ! हमारा कुछ भी दोष नहीं है, मार खाते-खाते हम आपका रहस्य छिपा न सके।

राक्षस—भद्र ! वह कौन सा रहस्य है यह हमको नहीं समझ पड़ता।

सिद्धा०—निवेदन करते हैं, मार खाने से। (इतना ही कह लज्जा से नीचा मुँह कर लेता है)

मलय०—भागुरायण ! स्वामी के सामने लज्जा और भय से यह कुछ न कह सकेगा, इससे तुम सब बात आर्य से कहो।

भागु०—कुमार की जो आज्ञा। अमात्य ! यह कहता है कि अमात्य राक्षस ने हमको चिट्ठी देकर और संदेश कह कर चंद्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस—भद्र सिद्धार्थक ! क्या यह सत्य है ?

सिद्धा०—(लज्जा नाट्य करके) बहुत मार खाने के डर से मैंने कह दिया।

राक्षस—कुमार ! यह झूठ है, मार खाने से लोग क्या नहीं कह देते ?

मलय०—भागुरायण ! चिट्ठी दिखला दो और संदेशा वह अपने मुँह से कहेगा।

(भागुरायण चिट्ठी खोलकर 'स्वस्ति कहीं से कोई किसी को' इत्यादि पढ़ता है)

राक्षस—कुमार ! कुमार ! यह सब शत्रु का प्रयोग है।

मलय०—लेख अशून्य करने को आर्य ने जो आभरण भेजे हैं वह शत्रु कैसे भेजेगा ? (आभरण दिखलाता है)।

राक्षस—कुमार ! यह मैंने किसी को नहीं भेजा। कुमार ने यह मुझको दिया और मैंने प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को दिया।

भागु०—आमात्य ! क्या ऐसे उत्तम आभरणों का, विशेष कर क्या अपने अंग से उतारकर कुमार की दी हुई वस्तु का यह पात्र है ?

मलय०—और संदेश भी बड़े प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुनना, यह आर्य ने लिखा है।

राक्षस—कैसा सन्देश और कैसी चिट्ठी ? यह हमारा कुछ नहीं है !

मलय०—तो मुहर किसकी है ?

राक्षस—धूर्त लोग कपटमुद्रा भी बना लेते हैं।

भागु०—कुमार ! अमात्य सच कहते हैं ! सिद्धार्थक, यह चिट्ठी किसकी लिखी है ?

(सिद्धार्थक राक्षस का मुँह देखकर चुप रह जाता है)

भागु०—चुप मत रहो ! जी कड़ा करके कहो।

सिद्धा०—आर्य ! शकटदास ने।

राक्षस—शकटदास ने लिखा तो मानों मैंने ही लिखा।

मलय०—विजये ! शकटदास को हम देखा चाहते हैं।

भागु०—(आपही आप) आर्य चाणक्य के लोग बिना निश्चय समझे हुए कोई बात नहीं करते। जो शकटदास आकर यह चिट्ठी किस प्रकार लिखी गई है यह सब वृत्तांत कह देगा तो मलयकेतु फिर बहक जायगा। (प्रकाश) कुमार ! शकटदास, अमात्य राक्षस के सामने लिखा होगा तो भी न स्वीकार करेंगे; इससे

उनका कोई और लेख मँगाकर अक्षर मिला लिए जायँ।

मलय०—विजये! ऐसा ही करो।

भागु०—और मुहर भी आवे।

मलय०—हाँ, वह भी।

कंचुकी—जो आज्ञा। (बाहर जाती है और पत्र और मुहर लेकर आती है) कुमार! यह शकटदास का लेख और मुहर है।

मलय०—(देखकर और अक्षर और मुहर की मिलान करके) आर्य! अक्षर तो मिलते हैं।

राक्षस—(आप ही आप) अक्षर निःसंदेह मिलते हैं, किंतु शकटदास हमारा मित्र है, इस हिसाब से नहीं मिलते। तो क्या शकटदास ही ने लिखा, अथवा—

पुत्र-दार की याद करि स्वामि-भक्ति तजि देत।
छोड़ि अचल जस कों करत चल धन सों जन हेत॥

या इसमें संदेह ही क्या है?

मुद्रा ताके हाथ में, सिद्धार्थक हू मित्र।
ताही के कर को लिख्यौ, पत्रहु साधन चित्र॥
मिलि कै शत्रुन सों करन भेद भूलि निज धर्म।
स्वामि-विमुख शकटहि कियो, निश्चय यह खल कर्म॥

मलय०—आर्य! श्रीमान् ने तीन आभरण भेजे सो मिले, यह जो आपने लिखा है सो उसी में का एक आभरण यह भी है? (राक्षस के पहने हुए आभरण को देखकर आप ही आप) क्या यह पिता के पहने हुए आभरण हैं? (प्रकाश) आर्य, यह आभरण आपने कहाँ से पाये?

राक्षस—जौहरी से मोल लिया था।

मलय०—विजये! तुम इन आभरणों को पहचानती हौ?

प्रति०—(देख कर आँसू भर के) कुमार! हम सुगृहीत नामधेय महाराज पर्वतेश्वर के पहिरने के आभरणों को न पहचानेंगी?

मलय०—(आँखों में आँसू भर के)

भूषण-प्रिये ! भूषण सबै, कुल-भूषण ! तुव अंग ।
तुव मुख ढिग इमि सोहतो, जिमि ससि तारन-संग ॥

राक्षस—(आप ही आप) ये पर्वतेश्वर के पहने हुए आभरण हैं ? (प्रकाश) जाना, यह भी निश्चय चाणक्य के भेजे हुए जौहरियों ने ही बेंचा है ।

मलय०—आर्य ! पिता के पहने हुए आभरण और फिर चंद्रगुप्त के हाथ पड़े हुए जौहरी बेंचे, यह कभी हो नहीं सकता । अथवा हो सकता है—

अधिक लाभ के लोभ सो, क्रूर ! त्यागि सब नेह ।
बदले इन आभरन के तुम बेंच्यौ मम देह ॥

राक्षस—(आप ही आप) अरे ! यह दाँव तो पूरा बैठ गया ।

मम लेख नहिं यह किमि कहैं मुद्रा छपी जब हाथ की ।
विश्वास होत न सकट तजिहै प्रीति कबहूँ साथ की ॥
पुनि बेंचिहै नृप चद भूषण कौन यह पतियाइहै ।
तासों भलो अब मौन रहनो कथन तें पति जाइहै ॥

मलय०—आर्य ! हम यह पूछते हैं ।

राक्षस—जो आर्य हो उससे पूछो; हम अब पापकारी अनार्य हो गए हैं ।

मलय०—स्वामि-पुत्र तुव मौर्य, हम मित्र-पुत्र सह हेत ।
पैहौ उत वाको दियो, इत तुम हमको देत ॥
सचिवहु मे उत दास ही, इत तुम स्वामी आप ।
कौन अधिक फिर लोभ जो, तुम कीन्हो यह पाप ॥

राक्षस—(आँखों में आँसू भर के) कुमार ! इसका निर्णय तो आप ही ने कर दिया—

स्वामि-पुत्र मम मौर्य्य, तुम मित्र-पुत्र सह हेत ।
पैहैं उत वाको दियो, इत हम तुमकों देत ॥
सचिवहु मे उत दास हीं, इत हम स्वामी आप ।
कौन अधिक फिर लोभ जो, हम कीन्हों यह पाप ॥

मलय०—(चिट्ठी, पेटी इत्यादि दिखला कर) यह सब क्या है ?

राक्षस—(आँखों में आँसू भर के) यह सब चाणक्य ने नहीं किया, दैव ने किया।

निज प्रभु सो करि नेह जे भृत्य समर्पत देह।
तिन सों अपने सुत सरिस सदा निबाहत नेह॥
ते गुणगाहक नृप सबै जिन मारे छन माहि।
ताही बिधि को दोस यह औरन को कछु नाहिं॥

मलय०—(क्रोधपूर्वक) अनार्य! अब तक छल किए जाते हो कि यह सब दैव ने किया।

विषकन्या दै पितु हत्यौ प्रथम प्रीति उपजाय।
अब रिपु सो मिलि हम सबन बधन चहत ललचाय॥

राक्षस—(दुःख से आप ही आप) हा! यह और जले पर नमक है। (प्रगट कानों पर हाथ रखकर) नारायण! देव पर्वतेश्वर का कोई अपराध हमने नहीं किया।

मलय०—फिर पिता को किसने मारा?

राक्षस—यह दैव से पूछो।

मलय०—दैव से पूछें, जीवसिद्धि क्षपणक से न पूछें?

राक्षस—(आप ही आप) क्या जीविसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है! हाय! शत्रु ने हमारे हृदय पर भी अधिकार कर लिया?

मलय०—(क्रोध से) भासुरक, शिखरसेन सेनापति से कहो कि राक्षस से मिलकर चंद्रगुप्त को प्रसन्न करने को पाँच राजे जो हमारा बुरा चाहते हैं, उनमें कौलूत चित्रवर्मा, मलयाधिपति सिंहनाद और कश्मीराधीश पुष्कराक्ष ये तीन हमारी भूमि की कामना रखते हैं, सो इनको भूमि ही में गाड़ दे; और सिंधुराज सुषेण और पारसीकपति मेघाक्ष हमारी हाथी की सेना चाहते है सो इनको हाथी ही के पैर के नीचे पिसवा दे।

पुरुष—जो कुमार की आज्ञा। [जाता है

मलय०—राक्षस! हम मलयकेतु हैं, कुछ तुम-से विश्वासघाती राक्षस नहीं हैं। इससे तुम जाकर अच्छी तरह चंद्रगुप्त का आश्रय करो।

चंद्रगुप्त - चाणक्य सो मिलिए सुख सों आप।
हम तीनहुँ को नासिहैं जिमि त्रिवर्ग कहँ पाप॥

भागु०—कुमार! व्यर्थ अब कालक्षेप मत कीजिए। कुसुमपुर घेरने को हमारी सेना चढ़ चुकी है।

उड़िकै तियगन गंड जुगल कहँ मलिन बनावति।
अलिकुल से कल अलकन निज कन धवल छवावति॥
चपल तुरग-खुर-घात उठी घन घुमडि नवीनी।
सत्रु-सीस पैं धूरि परै गजमद सों भीनी॥

(अपने भृत्यो के साथ मलयकेतु जाता है)

राक्षस—(घबड़ाकर) हाय! हाय! चित्रवर्मादिक साधु सब व्यर्थ मारे गए। हाय! राक्षस की सब चेष्टा शत्रु के नहीं, मित्रों ही के नाश करने को होती है। अब हम मंदभाग्य क्या करें?

जाहिं तपोवन, पै न मन शांत होत सह क्रोध।
प्रान देहिं रिपु के जियत यह नारिन को बोध॥
खींचि खड्गकर पतँग सम जाहिं अनल-अरि-पास।
पै या साहस होइहै चंदनदास विनास॥

(सोचता हुआ जाता है)

—: ० :—

षष्ठ अंक

स्थान—नगर से बाहर सड़क

(कपड़ा, गहिना पहिने हुए सिद्धार्थक आता है)

सिद्धार्थक—

जलद-नील-तन जयति जय, केशव केशी-काल।
जयति सुजन-जन-दृष्टि-ससि, चंद्रगुप्त नरपाल॥
जयति आर्य चाणक्य की नीति सहज बल-भौन।
बिनही साजे सैन नित, जीतत अरि-कुल जौन॥

चलो, आज पुराने मित्र समिद्धार्थक से भेंट करें। (घूमकर) अरे! मित्र समिद्धार्थक आप ही इधर आता है।

(समिद्धार्थक आता है)

समिद्धार्थक—

मिटत ताप नहिं पान सो, होत उछाह बिनास।
बिना मीत के सुख सबै औरहु करत उदास॥

सुना है कि मलयकेतु के कटक से मित्र सिद्धार्थक आ गया है। उसी को खोजने को हम भी निकले हैं कि मिले तो बड़ा आनन्द हो। (आगे बढ़कर) अहा! सिद्धार्थक तो यही हैं। कहो मित्र! अच्छे तो हो?

सिद्धा०—अहा! मित्र समिद्धार्थक आप ही आ गए। (बढ़कर) कहो मित्र! क्षेम कुशल तो है?

(दोनों गले से मिलते हैं)

समि०—भला! यहाँ कुशल कहाँ कि तुम्हारे ऐसा मित्र बहुत दिन पीछे घर भी आया तो बिना मिले फिर चला गया!

सिद्धा०—मित्र! क्षमा करो। मुझको देखते ही आर्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि इस प्रिय वृत्तांत को अभी चंद्रमा सदृश प्रकाशित

शोभावाले परम प्रिय महाराज प्रियदर्शन से जाकर कहो। मैं उसी समय महाराज के पास चला गया और उनसे निवेदन करके यह सब पुरस्कार पाकर तुमसे मिलने को तुम्हारे घर अभी जाता ही था।

समि०—मित्र! जो सुनने के योग्य हो तो महाराज प्रियदर्शन से जो प्रिय वृत्तांत कहा है वह हम भी सुनें।

सिद्धा०—मित्र! तुमसे भी कोई बात छिपी है! सुनो। आर्य चाणक्य की नीति से मोहित मति होकर उस नष्ट मलयकेतु ने राक्षस को दूर कर दिया और चित्रवर्मादिक पाँचों प्रबल राजों को मरवा डाला। यह देखते ही और सब राजे अपने प्राण और राज्य का संशय समझकर उसको छोड़कर सेना-सहित अपने-अपने देश चले गए। जब शत्रु ऐसी निर्बल अवस्था में हुआ, तो भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुरात, बलगुप्त, राजसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष, विजयवर्मा इत्यादि लोगों ने मलयकेतु को कैद कर लिया।

समि०—मित्र! लोग तो यह जानते हैं कि भद्रभट इत्यादि लोग महाराज चंद्रश्री को छोड़कर मलयकेतु से मिल गए, तो क्या कुकवियों के नाटक की भाँति इसके मुख में और तथा निवर्हण में और बात है?

सिद्धा०—वयस्य! सुनो, जैसे दैव की गति नहीं जानी जाती वैसे ही आर्य चाणक्य की जिस नीति की भी गति नहीं जानी जाती उसको नमस्कार है।

समि०—हाँ! कहो, तब क्या हुआ?

सिद्धा०—तब इधर से सब सामग्री लेकर आर्य चाणक्य बाहर निकले और विपक्ष के शेष राजाओं को निःशेष करके बर्बर लोगों की सब सामग्री लूट ली।

समि०—तो वह सब अब कहाँ हैं?

सिद्धा०—वह देखो।

स्रवत गंडमद गरब गज, नदत मेघ अनुहार।
चाबुक भय चितवत चपल, खड़े अस्व बहु द्वार॥

समि०—अच्छा, यह सब जाने दो। यह कहो कि सब लोगों के सामने इतना अनादर पाकर फिर भी आर्य चाणक्य उसी मंत्री के काम को क्यों करते हैं ?

सिद्धा०—मित्र ! तुम अब तक निरे सीधे साधे बने हो। अरे, अमात्य राक्षस भी आर्य चाणक्य की जिन चालों को नहीं समझ सकते उनको हम-तुम क्या समझेंगे !

समि०—वयस्य ! अमात्य राक्षस अब कहाँ हैं ?

सिद्धा०—उस प्रलय कोलाहल के बढ़ने के समय मलयकेतु की सेना से निकलकर उंदुर नामक चर के साथ कुसुमपुर ही की ओर वह आते हैं, यह आर्य चाणक्य को समाचार मिला है।

समि०—मित्र ! नंदराज्य के फिर स्थापन की प्रतिज्ञा करके स्वनाम-तुल्य-पराक्रम अमात्य राक्षस, उस काम को पूरा किए बिना फिर कैसे कुसुमपुर आते हैं ?

सिद्धा०—हम सोचते हैं कि चंदनदास के स्नेह से।

समि०—ठीक है, चंदनदास के स्नेह ही से। किंतु तुम सोचते हो कि चंदनदास के प्राण बचेंगे ?

सिद्धा०—कहाँ उस दीन के प्राण बचेंगे ? हमीं दोनों को वधस्थान में ले जाकर उसको मारना पड़ेगा।

समि०—(क्रोध से) क्या आर्य चाणक्य के पास कोई घातक नहीं है कि ऐसा नीच काम हम लोग करें ?

सिद्धा०—मित्र ! ऐसा कौन है जिसको इस जीवलोक में रहना हो और वह आर्य चाणक्य की आज्ञा न माने ? चलो, हम लोग चांडाल का वेष बनाकर चन्दनदास को वधस्थल में ले चलें।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रवेशक

स्थान—बाहरीप्रांत में प्राचीन बारी

(फाँसी हाथ में लिए हुए एक पुरुष आता है)

पुरुष— षट गुन सुदृढ गुथी मुख फाँसी।
जय उपाय परिपाटी गाँसी॥
रिपु-बंधन मै पटु प्रति पोरी।
जय चाणक्य-नीति की डोरी॥

आर्य चाणक्य के चर उंदुर ने इसी स्थान में मुझको अमात्य राक्षस से मिलने को कहा है। (देखकर) यह अमात्य राक्षस सब अंग छिपाए हुए आते हैं। तब तक इस पुरानी बारी में छिपकर हम देखें कि यह कहाँ ठहरते हैं। (छिपकर बैठता है)

(सब अंग छिपाए हुए राक्षस आता है)

राक्षस—(आँखों में आँसू भर के) हाय! बड़े कष्ट की बात है।

आश्रय बिनसें और पैं जिमि कुलटा तिय जाय।
तजि तिमि नंदहि चञ्चला चंद्रहि लपटी धाय॥
देखा देखी प्रजहु सब कीनो ता अनुगौन।
तजि कै निज नृप-नेह सब कियो कुसुमपुर भौन॥
होइ बिफल उद्योग मैं, तजि कै कारज-भार।
आप्त मित्रहू थकि रहे, सिर बिनु जिमि अहि छार॥
तजि कै निज पति भुवन-पति सुकुल-जात नृप नंद।
श्री वृषली गइ वृषल ढिग सील त्यागि करि छंद॥
जाइ तहाँ थिर ह्वै रही निज गुन सहज बिसारि।
बस न चलत जब बाम बिधि सब कछु देत बिगारि॥
नंद मरे सैलेश्वरहि देन चह्यौ हम राज।
सोऊ बिनसे तब कियो ता सुत हित सो साज॥
बिगरयौ तौन प्रबंध हू, मिट्यौ मनोरथ-मूल।
दोस कहा चाणक्य को दैवहि भो प्रतिकूल॥

वाह रे म्लेच्छ मलयकेतु की मूर्खता! जिसने इतना नहीं समझा कि—

मरे स्वामिहू नहि तज्यौ जिन निज-नृप-अनुराग।
लोभ छाँड़ि दै प्रान जिन करी सत्रु सो लाग॥
सोई राक्षस शत्रु सो मिलिहै यह अंधेर।
इतनो सूझ्यौ वाहि नहि दई दैव मति फेर॥

सो अब भी शत्रु के हाथ में पड़के राक्षस नाश हो जायगा, पर चंद्रगुप्त से संधि न करेगा। लोग झूठा कहें, यह अपयश हो, पर शत्रु की बात कौन सहेगा ? (चारों ओर देखकर) हा ! इसी प्रांत में देव नंद रथ पर चढ़कर फिरने आते थे।

इतहि देव अभ्यास हित सर तजि धनु सधानि।
रचत रहे भुव चित्र सम रथ सुचक्र परिखानि॥
जहँ नृपगन सकित रहे इत उत थमे लखात।
सोई भुव ऊजर भई दृगन लखी नहिं जात॥

हाय ! यह मंदभाग्य अब कहाँ जाय ? (चारों ओर देखकर) चलो, इस पुरानी बारी में कुछ देर ठहरकर मित्र चंदनदास का कुछ समाचार लें। (घूमकर आप ही आप) अहा ! पुरुष के भाग्य की उन्नति-अवनति की भी क्या-क्या गति होती है कोई नहीं जानता।

जिमि नव ससि कहँ सब लखत निज-निज करहि उठाय।
तिमि पुरजन हम को रहे लखत अनंद बढाय॥
चाहत हे नृपगन सबै जासु कृपा-दृग-कोर।
सो हम इत संकित चलत मानहुँ कोऊ चोर॥

वा जिसके प्रसाद से यह सब था, जब वही नहीं है तो यह होहीगा। (देखकर) यह पुराना उद्यान कैसा भयानक हो रहा है।

नसे बिपुल नृप-कुल-सरिस बड़े बड़े गृह-जाल।
मित्र-नास सों साधुजन-हिय सम सूखे ताल॥
तरुवर भे फलहीन जिमि बिधि बिगरे सब नीति।
तृन सों लोपी भूमि जिमि मति लहि मूढ़ कुरीति॥
तीछन परसु-प्रहार सो कटे तरोवर-गात।
रोअत मिलि पिंडूक सँग ताके घाव लखात॥
दुखी जानि निज मित्र कहँ अहि मनु लेत उसास।
निज केंचुल मिस धरत हैं, फाहा तरु-ब्रन पास॥
तरुगन को सूख्यौ हियो, छिदे कीट सों गात।
दुखी पत्र-फल-छाँह बिनु, मनु मसान सब जात॥

तो तब तक हम इस सिला पर, जो भाग्यहीनों को सुलभ है, लेटें। (बैठकर और कान देकर सुनकर) अरे ! यह शख डंके से मिला हुआ नांदी शब्द कहाँ हो रहा है ?

अति ही तीखन होन सों फोरत स्रोता-कान।
जब न समायो घरन मैं तब इत कियो पयान॥
सख पटह धुनि सो मिल्यौ भारी मंगल-नाद।
निकस्यौ मनहु दिगंत की दूरी देखन स्वाद॥

(कुछ सोचकर) हाँ, जाना। यह मलयकेतु के पकड़े जाने पर राजकुल (रुककर) मौर्यकुल को आनंद देने को हो रहा है। (आखों में आँसू भर कर) हाय बड़े दुःख की बात है।

मेरे बिनु अब जीति दल शत्रु पाइ बल घोर।
मोहि सुनावन हेतु ही कीन्हों शब्द कठोर॥

पुरुष—अब तो यह बैठे हैं तो अब आर्य चाणक्य की आज्ञा पूरी करें। (राक्षस की ओर न देखकर अपने गले में फाँसी लगाना चाहता है)

राक्षस—(देखकर आप ही आप) अरे यह फाँसी क्यों लगाता है ? निश्चय कोई हमारा सा दुखिया है। जो हो, पूछें तो सही। (प्रकाश) भद्र, यह क्या करते हो ?

पुरुष—(रोकर) मित्रों के दुःख से दुखी होकर हमारे ऐसे मंदभाग्यों का जो कर्त्तव्य है।

राक्षस—(आप ही आप) पहले ही कहा था, कोई हमारा सा दुखिया है। (प्रकाश) भद्र, जो अति गुप्त वा किसी विशेष कार्य की बात न हो तो हमसे कहो कि तुम क्यों प्राण त्याग करते हो ?

पुरुष—आर्य ! न तो गुप्त ही है न कोई बड़े काम की बात है; परंतु मित्र के दुःख से मैं अब क्षण भर भी ठहर नहीं सकता।

राक्षस—(आप ही आप दुःख से) मित्र की विपत्ति में हम पराए लोगों की भाँति उदासीन होकर जो देर करते हैं मानो उसमें शीघ्रता करने की यह अपना दुःख कहने के बहाने शिक्षा देता

है। (प्रकाश) भद्र ! जो रहस्य नहीं है तो हम सुना चाहते हैं कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है ?

पुरुष- आपको इसमें बड़ा ही हठ है तो कहना पड़ा। इस नगर में जिष्णुदास नामक एक महाजन है।

राक्षस—(आप ही आप) वह तो चंदनदास का बड़ा मित्र है।

पुरुष—वह हमारा प्यारा मित्र है।

राक्षस—(आप ही आप) कहता है कि वह हमारा प्यारा मित्र है। इस अति निकट संबंध से इसको चंदनदास का वृत्तांत ज्ञात होगा।

पुरुष—(रोकर) सो दीन जनों को सब धन देकर वह अब अग्निप्रवेश करने जाता है। यह सुनकर हम यहाँ आए हैं कि इस दुःख-वार्ता सुनने के पूर्व ही अपने प्राण दे दें।

राक्षस—भद्र ! तुम्हारे मित्र के अग्निप्रवेश का कारण क्या है ?

कै तेहि रोग असाध्य भयो
कोऊ जाको न औषध नाहिं निदान है ?

पुरुष—नहीं आर्य !

राक्षस—कै विष अग्निहु सों बढ़ि कै
नृप कोप महा फाँसि त्यागत प्रान है ?

पुरुष—राम-राम ! चंद्रगुप्त के राज्य में लोगों को प्राणहिंसा का भय कहाँ ?

राक्षस—कै कोउ सुंदरी पै जिय देत
लग्यो हिय माँहि वियोग को बान है ?

पुरुष—राम-राम ! महाजन लोगों की यह चाल नहीं, विशेष करके साधु जिष्णुदास की।

राक्षस—तौ कहुँ मित्रहि को दुख वाहू के
नास को हेतु तुम्हारे समान है ?

पुरुष—हाँ, आर्य।

राक्षस—(घबड़ाकर आप ही आप) अरे, इसके मित्र का प्रिय मित्र तो चंदनदास ही है और यह कहता है सुहृदविनाश ही उसके विनाश का हेतु है इससे मित्र के स्नेह से मेरा चित्त बहुत ही

घबड़ाता है। (प्रकाश) भद्र! तुम्हारे मित्र का चरित्र हम सविस्तर सुना चाहते हैं।

पुरुष—आर्य! अब मैं किसी प्रकार से मरने में विलंब नहीं कर सकता।

राक्षस—यह वृत्तांत तो अवश्य सुनने के योग्य है, इससे कहो।

पुरुष—क्या करें? आप ऐसा हठ करते हैं तो सुनिए।

राक्षस—हाँ! जी लगाकर सुनते हैं, कहो।

पुरुष—आपने सुना ही होगा कि इस नगर में प्रसिद्ध जौहरी सेठ चंदनदास हैं।

राक्षस—(दुःख से आप ही आप) दैव ने हमारे विनाश का द्वार अब खोल दिया। हृदय! स्थिर हो, अभी न जाने क्या-क्या कष्ट तुमको सुनना होगा। (प्रकाश) भद्र! हमने भी सुना है कि वह साधु अत्यंत मित्रवत्सल है।

पुरुष—वह जिष्णुदास के अत्यंत मित्र हैं।

राक्षस—(आप ही आप) यह सब हृदय के हेतु शोक का वज्रपात है। (प्रकाश) हाँ, आगे।

पुरुष—सो जिष्णुदास ने मित्र की भाँति चंद्रगुप्त से बहुत विनय किया।

राक्षस—क्या-क्या?

पुरुष—कि देव! हमारे घर में जो कुछ कुटुंबपालन का द्रव्य है आप सब ले लें, पर हमारे मित्र चंदनदास को छोड़ दें।

राक्षस—(आप ही आप) वाह जिष्णुदास! तुम धन्य हो! तुमने मित्रस्नेह का निर्वाह किया।

जा धन के हित नारि तजैं पति पूत तजैं पितु सीलहि खोई।
भाई सों भाई लरैं रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई॥
ता धन को बनिया ह्वै गिन्यौ न दियो दुख मीत सो आरत होई।
स्वारथ अर्थ तुम्हारोई है तुमरे सम और न या जग कोई॥

(प्रकाश) इस बात पर मौर्य ने क्या कहा?

पुरुष—आर्य! इस पर चंद्रगुप्त ने उससे कहा कि 'जिष्णुदास! हमने धन के हेतु चंदनदास को नहीं दंड दिया है। इसने अमात्य

राक्षस का कुटुंब अपने घर में छिपाया था, और बहुत माँगने पर भी न दिया, अब भी जो यह दे-दे तो छूट जाय, नहीं तो इसको प्राणदण्ड होगा। तभी हमारा क्रोध शांत होगा और दूसरे लोगों को भी इससे डर होगा'—यह कह उसको वधस्थान में भेज दिया। जिष्णुदास ने कहा कि "हम कान से अपने मित्र का अमंगल सुनने के पहिले मर जायँ तो अच्छी बात है" और अग्नि में प्रवेश करने को वन में चले गए। हमने भी इसी हेतु कि उनका मरण न सुनें यह निश्चय किया कि फाँसी लगाकर मर जायँ और इसी हेतु यहाँ आए हैं।

राक्षस—(घबड़ाकर) अभी चंदनदास को मारा तो नहीं ?

पुरुष—आर्य ! अभी नहीं मारा है, बारंबार अब भी उनसे अमात्य राक्षस का कुटुंब माँगते हैं और वह मित्रवत्सलता से नहीं देते, इसी में इतना विलंब हुआ।

राक्षस—(सहर्ष आप ही आप) वाह मित्र चंदनदास ! वाह ! धन्य ! धन्य !!

मित्र-परोच्छहुँ मैं कियो सरनागत-प्रतिपाल।
निरमल जस सिबि सो लियो तुम या काल कराल॥

(प्रकाश) भद्र ! तुम शीघ्र जाकर जिष्णुदास को जलने से रोको ; हम जाकर अभी चंदनदास को छुड़ाते हैं।

पुरुष—आर्य ! आप किस उपाय से चंदनदास को छुड़ाइएगा ?

राक्षस—(खड्ग मियान से खींचकर) इन दुःखों में एकांत मित्र निष्कृप कृपाण से।

समर साध तन पुलकित नित साथी मम कर को।
रन महँ बारहिं बार परिछ्यौ जिन बल पर को॥
बिगत जलद नभ नील खड्ग यह रोस बढ़ावत।
मीत-कष्ट सों दुखिहु मोहिं रनहित उमगावत॥

पुरुष—सेठ चंदनदास के प्राण बचाने का उपाय मैंने सुना किंतु ऐसे टेढ़े समय में इसका परिणाम क्या होगा, यह मैं नहीं कह सकता। (राक्षस को देखकर पैर पर गिरता है) आर्य ! क्या

सुगृहीत-नामधेय अमात्य राक्षस आप ही हैं ? यह मेरा संदेह आप दूर कीजिए।

राक्षस—भद्र ! भर्तृकुल-विनाश से दुखी और मित्र के नाश का कारण यथार्थ-नामा अनार्य राक्षस मैं ही हूँ।

पुरुष—(फिर पैर पर गिरता है) धन्य हैं ! बड़ा ही आनंद हुआ। आपने हमको आज कृतकृत्य किया।

राक्षस—भद्र ! उठो। देर करने की कोई आवश्यकता नहीं। जिष्णु-दास से कहो कि राक्षस चंदनदास को अभी छुड़ाता है।

(खड्ग खींचे हुए, 'समरसाध' इत्यादि पढ़ता हुआ इधर-उधर टहलता है)

पुरुष—(पैर पर गिरकर) अमात्यचरण ! प्रसन्न हों। मैं यह विनती करता हूँ कि चंद्रगुप्त दुष्ट ने पहले शकटदास के वध की आज्ञा दी थी फिर न जानें कौन शकटदास को छुड़ाकर उसको कहीं परदेश में भगा ले गया। आर्य शकटदास के वध में धोखा खाने से चंद्रगुप्त ने क्रोध करके प्रमादी समझकर उन वधिकों ही को मार डाला। तब से वधिक जो किसी को वधस्थान में ले जाते है और मार्ग में किसी को शस्त्र खींचे हुए देखते हैं तो छुड़ा ले जाने के भय से अपराधी को बीच ही में तुरंत मार डालते हैं। इससे शस्त्र खींचे हुए आपके वहाँ जाने से चंदनदास की मृत्यु मे और भी शीघ्रता होगी। [जाता है

राक्षस—(आप ही आप) उस चाणक्य बटु का नीतिमार्ग कुछ समझ नहीं पड़ता क्योंकि—

सकट बच्यौ जो ता कहँ तो क्यो घातक-घात।
जाल भयो का खेल में कछु समझ्यौ नहिं जात॥

(सोचकर) नहिं शस्त्र को यह काल यासो मीत-जीवन जाइहै।
जौ नीति सोचैं या समय तो व्यर्थ समय नसाइहै॥
चुप रहनहू नहिं जोग जब मम हित बिपति चदन पर्‍यौ।
तासो बचावन प्रियहि अब हम देह निज बिक्रय करयौं॥

(तलवार फेंककर जाता है)

सप्तम अंक

स्थान—सूली देने का मसान

(पहिला चांडाल आता है)

चांडाल—हटो लोगो हटो, दूर हो भाइयो, दूर हो। जो अपना प्राण, धन और कुल बचाना हो तो दूर हो। राजा का विरोध यत्नपूर्वक छोड़ो।

करि कै पथ्य-विरोध इक रोगी त्यागत प्रान।
पै विरोध नृप सों किए नसत सकुल नर जान॥

जो न मानो तो इस राजा के विरोधी को देखो जो स्त्री-पुत्र समेत यहाँ सूली देने को लाया जाता है। (ऊपर देखकर) क्या कहा कि 'इस चदनदास के छूटने का कुछ उपाय भी है?' भला इस बेचारे के छूटने का कौन उपाय है। पर हाँ, जो यह मंत्री राक्षस का कुटुंब दे दे तो छूट जाय। (फिर ऊपर देखकर) क्या कहा कि 'यह शरणागतवत्सल प्राण देगा पर यह बुरा कर्म न करेगा।' तो फिर इसकी बुरी गति होगी क्योंकि बचने का तो वही एक उपाय है।

(कधे पर सूली रखे मृत्यु का कपड़ा पहने चदनदास, उनकी स्त्री और पुत्र, और दूसरा चाडाल आते हैं)

स्त्री—हाय हाय! जो हम लोग नित्य अपनी बात बिगड़ने के डर से फूँक-फूँककर पैर रखते थे उन्हीं हम लोगों की चोरों की भाँति मृत्यु होती है। काल देवता को नमस्कार है, जिसको मित्र उदासीन सभी एक से हैं, क्योंकि—

छोड़ि मांस-मख मरन-भय जियहिं खाइ तृन घास।
तिन गरीब मृग को करहि निरदय ब्याधा नास॥

(चारों ओर देखकर)

अरे भाई जिष्णुदास ! मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते ? हाय ! ऐसे समय में कौन ठहर सकता है।

चंदन०—(आँसू भरकर) हाय ! यह मेरे सब मित्र बिचारे कुछ नहीं कर सकते, केवल रोते हैं और अपने को अकर्मण्य समझ शोक से सूखा-सूखा मुँह किए आँसू-भरी आँखों से एकटक मेरी ही ओर देखते चले आते हैं।

दोनों चांडाल—अजी चंदनदास ! अब तुम फाँसी के स्थान पर आ चुके इससे कुटुंब को बिदा करो।

चंदन०—(स्त्री से) अब तुम पुत्र को लेकर जाओ, क्योंकि आगे तुम्हारे जाने की भूमि नहीं है।

स्त्री—ऐसे समय में तो हम लोगों को बिदा करना उचित ही है, क्योंकि आप परलोक जाते हैं, कुछ परदेश नहीं जाते। (रोती है)

चंदन०—सुनो, मैं कुछ अपने दोष से नहीं मारा जाता, एक मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, तो इस हर्ष के स्थान पर क्या रोती है ?

स्त्री—नाथ ! जो यह बात है तो कुटुंब को क्यों बिदा करते हो ?

चंदन०—तो फिर तुम क्या कहती हो ?

स्त्री—(आँसू भरकर) नाथ ! कृपा करके मुझे भी साथ ले चलो।

चंदन०—हा ! यह तुम कैसी बात कहती हो ? अरे ! तुम इस बालक का मुँह देखो और इसकी रक्षा करो, क्योंकि यह बिचारा कुछ भी लोकव्यवहार नहीं जानता। यह किसका मुँह देख के जीएगा ?

स्त्री—इसकी रक्षा कुलदेवी करेंगी। बेटा ! अब पिता फिर न मिलेंगे इससे मिलकर प्रणाम कर ले।

बालक—(पैरों पर गिरके) पिता ! मैं आपके बिना क्या करूँगा ?

चंदन०—बेटा, जहाँ चाणक्य न हो वहाँ बसना।

दोनों चांडाल—(सूली खड़ी करके) अजी चंदनदास ! देखो, सूली खड़ी हुई अब सावधान हो जाओ।

स्त्री—(रोकर) लोगो, बचाओ ! अरे ! कोई बचाओ !

चंदन०—भाइयो, तनिक ठहरो। (स्त्री से) अरे! अब तुम रो-रोकर क्या नंदों को स्वर्ग से बुला लोगी? अब वे लोग यहाँ नहीं हैं जो स्त्रियों पर सर्वदा दया रखते थे।

१ चांडाल—अरे वेणुवेत्रक! पकड़ इस चंदनदास को, घरवाले आप ही रो-पीटकर चले जायँगे।

२ चांडाल—अच्छा वज्रलोमक, मैं पकड़ता हूँ।

चंदन०—भाइयो! तनिक ठहरो, मैं अपने लड़के से तो मिल लूँ। (लड़के को गले लगाकर और माथा सूँघकर) बेटा! मरना तो था ही पर एक मित्र के हेतु मरते हैं इससे सोच मत कर।

पुत्र—पिता, क्या हमारे कुल के लोग ऐसा ही करते आए हैं? (पैर पर गिर पड़ता है)।

२ चांडाल—पकड़ रे वज्रलोमक! (दोनों चंदनदास को पकड़ते हैं)

स्त्री—लोगो! बचाओ रे, बचाओ!

(वेग से राक्षस आता है)

राक्षस—डरो मत, डरो मत। सुनो सुनो, घातको! चंदनदास को मत मारना, क्योंकि—

नसत स्वामिकुल जिन लख्यौ निज चख शत्रु-समान।
मित्रदुःख हू मै धरयौ निलज होइ जिन प्रान॥
तुम सों हारि बिगारि सब कढ़ी न जाकी साँस।
ता राक्षस के कंठ मै डारहु यह जमफाँस॥

चंदन०—(देखकर आँखों में आँसू भरकर) अमात्य, यह क्या करते हो?

राक्षस—मित्र, तुम्हारे सच्चरित्र का एक छोटा सा अनुकरण।

चंदन०—अमात्य, मेरा किया तो सब निष्फल हो गया, पर आपने ऐसे समय यह साहस अनुचित किया।

राक्षस—मित्र चंदनदास! उलाहना मत दो, सभी स्वार्थी हैं। (चांडाल से) अजी! तुम उस दुष्ट चाणक्य से कहो।

दोनों चांडाल—क्या कहें?

राक्षस—

जिन कलिं मैं हू मित्र-हित तृन-सम छोड़े प्रान।
जाके जस-रबि सामुहे सिवि-जस दीप समान॥
जाको अति निर्मल चरित, दया आदि नित जानि।
बौद्धहु सब लज्जित भए, परम शुद्ध जेहि मानि॥
ता पूजा के पात्र कों मारत तू धरि पाप।
जाके हित सो शत्रु तुव आयो इत मै आप॥

१ चांडाल—अरे वेणुवेत्रक! तू चंदनदास को पकड़कर इस मसान के पेड़ की छाया में बैठ, तब से मंत्री चाणक्य को मैं समाचार दूँ कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

२ चांडाल—अच्छा रे वज्रलोमक! (चंदनदास, स्त्री, बालक और सूली को लेकर जाता है)

१ चांडाल—(राक्षस को लेकर घूमकर) अरे! यहाँ पर कौन है? नंदकुल-सेनासंचय के चूर्ण करनेवाले वज्र से, वैसे ही मौर्य्यकुल में लक्ष्मी और धर्म्म स्थापना करनेवाले, आर्य्य चाणक्य से कहो—

राक्षस—(आप ही आप) हाय! यह भी राक्षस को सुनना लिखा था!

१ चांडाल—कि आप की नीति ने जिसकी बुद्धि को घेर लिया है, वह अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

(परदे मे सब शरीर छिपाए केवल मुँह खोले चाणक्य आता है)

चाणक्य—अरे कहो, कहो।

किन जिन बसननि मैं धरी कठिन अगिनि की ज्वाल?
रोकी किन गति वायु की डोरिन ही के जाल?
किन गजपति मर्द्दन प्रबल सिंह पींजरा दीन?
किन केवल निज बाहु-बल पार समुद्रहि कीन?

१ चांडाल—परमनीतिनिपुण आप ही ने तो।

चाणक्य—अजी! ऐसा मत कहो, वरन् "नंदकुलद्वेषी दैव ने" यह कहो।

राक्षस—(देखकर आप ही आप) अरे! क्या यही दुरात्मा वा महात्मा कौटिल्य है?

सागर जिमि बहु रत्नमय तिमि सब गुन की खानि।
तोष होत नहि देखि गुन बैरी हू निज जानि॥

चाणक्य—(देखकर) अरे! यही अमात्य राक्षस हैं?

जिस महात्मा ने—

बहु दुख सों सोचत सदा जागत रैन बिहाय।
मेरी मति अरु चंद्र की सैनहि दई थकाय॥

(परदे से बाहर निकलकर) अजी अजी अमात्य राक्षस! मैं विष्णुगुप्त आपको दंडवत् करता हूँ। (पैर छूता है)

राक्षस—(आप ही आप) अब मुझे अमात्य कहना तो केवल मुँह चिढ़ाना है। (प्रगट) अजी विष्णुगुप्त! मैं चांडालों से छू गया हूँ इससे मुझे मत छूओ।

चाणक्य—अमात्य राक्षस! वह श्वपाक नहीं है, वह आपका जाना-सुना सिद्धार्थक नामा राजपुरुष है; और दूसरा भी समिद्धार्थक नामा राजपुरुष ही है; और इन्हीं दोनों द्वारा विश्वास उत्पन्न करके उस दिन शकटदास को धोखा देकर मैंने वह पत्र लिखवाया था।

राक्षस—(आप ही आप) अहा! बहुत अच्छा हुआ कि मेरा शकट-दास पर से संदेह दूर हो गया।

चाणक्य—बहुत कहाँ तक कहूँ—

वे सब भद्रभटादि, वह सिद्धार्थक, वह लेख।
वह भदंत, वह भूषनहु, वह नट, आरत भेख॥
वह दुख चन्दनदास को, जो कछु दियो दिखाय।
सो सब मम (लज्जा से कुछ सकुचकर)
सो सब राजा चंद्र को तुम सो मिलन उपाय॥

देखिये, यह राजा भी आपसे मिलने आप ही आते हैं।

राक्षस—(आप ही आप) अब क्या करें? (प्रगट) हाँ! मैं देख रहा हूँ।

(सेवकों के संग राजा आता है)

राजा—(आप ही आप) गुरुजी ने बिना युद्ध ही दुर्जय शत्रु का कुल जीत लिया इसमें कोई संदेह नहीं। मैं तो बड़ा लज्जित हो रहा हूँ, क्योंकि—

है बिनु काम लजाय करि नीचो मुख भरि सोक।
सोवत सदा निषंग में मम बानन के थोक॥
सोवहिं धनुष उतारि हम जदपि सकहिं जग जीति।
जा गुरु के जागत सदा नीति-निपुण गत-भीति॥

(चाणक्य के पास जाकर) आर्य! चंद्रगुप्त प्रणाम करता है।

चाणक्य—वृषल! अब सब असीस सच्ची हुई, इससे इन पूज्य अमात्य राक्षस को नमस्कार करो, यह तुम्हारे पिता के सब मंत्रियों में मुख्य हैं।

राक्षस—(आप ही आप) लगाया न इसने संबंध—

राजा—(राक्षस के पास जाकर) आर्य! चंद्रगुप्त प्रणाम करता है।

राक्षस—(देखकर आप ही आप) अहा! यही चंद्रगुप्त है!

होनहार जाको उदय बालपने ही जोइ।
राज लह्यौ जिन बाल गज जूथाधिप सम होइ॥

(प्रगट) महाराज! जय हो।

राजा—आर्य!

तुमरे आछत बहुरि गुरु जागत नीति-प्रवीन।
कहहु कहा या जगत मे जाहि न जय हम कीन॥

राक्षस—(आप ही आप) देखो, यह चाणक्य का सिखाया-पढ़ाया मुझसे कैसी सेवकों की सी बात करता है! नहीं-नहीं, यह आप ही विनीत है। अहा! देखो, चंद्रगुप्त पर डाह के बदले उलटा अनुराग होता है। चाणक्य सब स्थान पर यशस्वी है, क्योंकि—

पाइ स्वामि सतपात्र जो मत्रो मूरख होइ।
तौहू पावै लाभ जस, इत तौ पडित दोइ॥
मूरख स्वामी लहि गिरै चतुर सचिव हू हारि।
नदी तीर-तरु जिमि नसत जीरन ह्वै लहि बारि॥

चाणक्य—क्यों अमात्य राक्षस ! आप क्या चंदनदास के प्राण बचाया चाहते हैं ?

राक्षस—इसमें क्या संदेह है ?

चाणक्य—पर अमात्य ! आप शस्त्र ग्रहण नहीं करते, इससे संदेह होता है कि आपने अभी राजा पर अनुग्रह नहीं किया, इससे जो सच ही चंदनदास के प्राण बचाया चाहते हों तो यह शस्त्र लीजिए।

राक्षस—सुनो विष्णुगुप्त ! ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि हम उस योग्य नहीं; विशेष करके जब तक तुम शस्त्र ग्रहण किए हो तब तक हमारे शस्त्र ग्रहण करने का क्या काम है ?

चाणक्य—भला अमात्य ! आपने यह कहाँ से निकाला कि हम योग्य हैं और आप अयोग्य हैं ? क्योंकि देखिए—

रहत लगामहिं कसे अश्व की पीठ न छोड़त।
खान पान असनान भोग तजि मुख नहिं मोड़त॥
छूटे सब सुख-साज नींद नहिं आवत नयनन।
निसि दिन चौकत रहत वीर सब भय धरि निज मन॥
वह हौदन सों सब छन कस्यो नृप-गजगन अवरेखिए।
रिपुदर्प-दूर-कर अति प्रबल निज महात्मबल देखिए॥

वा इन बातों से क्या ! आपके शस्त्र ग्रहण किए बिना तो चंदनदास बचता भी नहीं।

राक्षस—(आप ही आप)

नंद-नेह छूट्यौ नहीं दास भए अरि साथ।
ते तरु कैसे काटिहैं जे पाले निज हाथ॥
कैसे करिहैं मित्र पै हम निज कर सो घात।
अहो भाग्य गति अति प्रबल मोहिं कछु जानि न जात॥

(प्रकाश) अच्छा विष्णुगुप्त ! मँगाओ खड्ग "नमस्सर्व्वकार्य्य-प्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय" देखो, मैं उपस्थित हूँ।

चाणक्य—(राक्षस को खड्ग देकर हर्ष से) राजन् वृषल ! बधाई है, बधाई है ! अब अमात्य राक्षस ने तुम पर अनुग्रह किया। अब तुम्हारी दिन-दिन बढ़ती ही है।

राजा—यह सब आपकी कृपा का फल है।

(पुरुष आता है)

पुरुष—जय हो महाराज की, जय हो। महाराज! भद्रभटभागुरायणादिक मलयकेतु को हाथ-पैर बाँधकर लाए हैं और द्वार पर खड़े हैं। इसमें महाराज की क्या आज्ञा होती है?

चाणक्य—हाँ, सुना। अजी! अमात्य राक्षस से निवेदन करो, अब सब काम वही करेंगे।

राक्षस—(आप ही आप) कैसे अपने वश में करके मुझी से कहलाता है। क्या करें? (प्रकाश) महाराज, चंद्रगुप्त! यह तो आप जानते हैं कि हम लोगों का मलयकेतु का कुछ दिन तक संबंध रहा है। इससे उसका प्राण तो बचाना ही चाहिए।

(राजा चाणक्य का मुँह देखता है)

चाणक्य—महाराज! अमात्य राक्षस की पहिली बात तो सर्वथा माननी ही चाहिए। (पुरुष से) अजी! तुम भद्रभटादिकों से कह दो कि "अमात्य राक्षस के कहने से महाराज चंद्रगुप्त मलयकेतु को उसके पिता का राज्य देते हैं" इससे तुम लोग संग जाकर उसको राज पर बिठा आओ।

पुरुष—जो आज्ञा।

चाणक्य—अजी अभी ठहरो, सुनो! दुर्गपाल विजयपाल से यह कह दो कि अमात्य राक्षस के शस्त्र ग्रहण से प्रसन्न होकर महाराज चंद्रगुप्त यह आज्ञा करते हैं कि "चंदनदास को सब नगरों का जगत्सेठ कर दो।"

पुरुष—जो आज्ञा। [जाता है

चाणक्य—चंद्रगुप्त! अब और मैं क्या तुम्हारा प्रिय करूँ?

राजा—इससे बढ़कर और क्या भला होगा?

मैत्री राक्षस सों भई, मिल्यो अकंटक राज।
नंद नसे सब अब कहा यासों बढ़ि सुख-साज॥

चाणक्य—(प्रतिहारी से) विजये! दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि "अमात्य राक्षस के मेल से प्रसन्न होकर महाराज चंद्रगुप्त

आज्ञा करते है कि हाथी, घोड़ों को छोड़कर और सब बँधुओं का बंधन छोड़ दो" वा जब अमात्य राक्षस मंत्री हुए तब अब हाथी-घोड़ों का क्या सोच है ? इससे--

छोड़ौ सब गज तुरग अब कछु मत राखौ बाँधि।
केवल हम बाँधत सिखा निज परतिज्ञा साधि॥

(शिखा बाँधता है)

प्रतिहारी--जो आज्ञा। [जाती है

चाणक्य—अमात्य राक्षस ! मैं इससे बढ़कर और कुछ भी आपका प्रिय कर सकता हूँ ?

राक्षस—इससे बढ़कर और हमारा क्या प्रिय होगा ? पर जो इतने पर भी संतोष न हो तो यह आशीर्वाद सत्य हो—

"वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपां
यस्य प्राग्दन्तकोटिम्प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री।
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवर राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीम्पार्थिवश्चंद्रगुप्तः॥"[1]

(सब जाते हैं)

---

१. महाबली वाराह शरीरधारी स्वय श्रीविष्णु, जिनके दंष्ट्राग्र पर प्रलय में निमग्ना पृथ्वी ठहरी हुई थी, तथा बड़े भाई का अनुयायी ऐश्वर्यशाली राजा चद्रगुप्त बहुत दिनो तक पृथ्वी की रक्षा करता रहे, जिस राजमूर्ति की दोनों दृढ़ भुजाओं में म्लेच्छों से उत्पीड़ित होकर वह आश्रय पा रही है।

उपसंहार—(क)

इस नाटक में आदि, अंत तथा अंकों के विश्रामस्थल में रंगशाला में ये गीत गाने चाहिएँ। यथा—

सबके पूर्व मंगलाचरण में।

(ध्रुवपद चौताला)

जय जय जगदीश राम, श्याम-धाम पूर्ण-काम,
आनँदघन ब्रह्म विष्णु, सत्-चित-सुखकारी।
कस - रावनादि - काल सतत - प्रनत-भक्त-पाल,
सोभित - गल - मुक्तमाल, दीनतापहारी॥
प्रेमभरन पापहरन, असरन - जन - सरन-चरन,
सुखहि - करन दुखहि - दरन, बृंदावनचारी।
रमावास जगनिवास, राम रमन समनत्रास,
विनवत 'हरिचंद' दास, जयजय गिरिधारी॥

(प्रस्तावना के अंत में प्रथम अंक के आरम्भ में। चाल लखनऊ की ठुमरी "शाहजादे आलम तेरे लिये" इस चाल की)

जिनके हितकारक पंडित हैं तिनकों कहा सघुन को डर है।
समुझैं जग मैं सब नीतिन्ह जो तिन्हैं दुर्ग बिदेस मनो घर है।
जिन मित्रता राखी है लायक सों तिनकों तिनकाहू महा सर है।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौं तिनकी जय ही सब ही थर है॥

(पहले अंक की समाप्ति और दूसरे अंक के प्रारंभ में)

जग मैं घर की फूट बुरी।
घर के फूटहि सों बिनसाई सुबरन लंकपुरी॥
फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो।
जाको घाटो या भारत मैं अबलौं नहिं पुजयो॥
फूटहि सों जयचंद बुलायो जवनन भारत धाम।
जाको फल अबलौं भोगत सब आरज होइ गुलाम॥

फूटहि सौं नव नंद बिनासे गयो मगध को राज।
चंद्रगुप्त को नासन चाह्यौ आपु नसे सह साज॥
जो जग मैं धन मान और बल अपुनो राखन होय।
तो अपुने घर मैं भूलेहू फूट करौ मति कोय॥

(दूसरे अंक की समाप्ति और तीसरे अंक के आरंभ में)

जग मैं तेई चतुर कहावैं।
जे सब बिधि अपने कारज को नीकी भाँति बनावैं॥
पढ़्यौ लिख्यौ किन होइ जु पै नहिं कारज साधन जानै।
ताही को मूरख या जग मैं सब कोऊ अनुमानै॥
छल मैं पातक होत जदपि यह शास्त्रन मैं बहु गायो।
पै अरि सों छल किए दोष नहिं मुनियन यहै बतायो॥

(तीसरे अंक की समाप्ति और चौथे अक के आरंभ में)

ठुमरी

तिनको न कछू कबहूँ बिगरै, गुरु लोगन को कहनो जे करैं।
जिनको गुरु पंथ दिखावत हैं ते कुपथ पैं भूलि न पाँव धरैं॥
जिनको गुरु रच्छत आप रहैं ते बिगारे न बैरिन के बिगरैं।
गुरु को उपदेस सुनौ सब ही, जग कारज जासों सबै सँभरैं॥

(चौथे अंक की समाप्ति और पाँचवें अंक के आरंभ में)

परबी

करि मूरख मित्र मिताई, फिर पछितैहौ रे भाई।
अंत दगा खैहौ सिर धुनिहौ रहिहौ सबै गँवाई॥
मूरख जो कछु हितहु करै तो तामैं अत बुराई।
उलटो उलटो काज करत सब दै है अत नसाई॥
लाख करौ हित मूरख-सो पै ताहि न कछु समुझाई।
अंत बुराई सिर पैं ऐहै रहि जैहो मुंह बाई॥
फिर पछितैहौ रे भाई॥

(पाँचवें अंक की समाप्ति और छठे अक के आरंभ में)

काफी ताल होली का

छलियन सों रहो सावधान नहिं तो पछताओगे।
इनकी बातन मैं फँसि रहिहौ सबहि गँवाओगे॥

स्वारथ लोभी जन सो आखिर दगा उठाओगे।
तब सुख पैहौ जब साँचन सो नेह बढ़ाओगे॥
छलियन सों०॥

(छठे अंक की समाप्ति और सातवें अंक के आरंभ में)

['जिनके मन में सिय राम बसें' इस धुन की]

जग सूरज चंद टरैं तो टरैं पै न सज्जन-नेहु कबौं बिचलै।
धन संपति सर्बस गेह नसौ नहिं प्रेम की मेड़ सों एड़ टलै॥
सतवादिन को तिनका सम प्रान रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै।
निज मीत की प्रीत प्रतीत रहौ इक और सबै जग जाउ भलै॥

(अंत में गाने को)

[बिहाग—श्लोक के अर्थ के अनुसार]

हरौ हरि-रूप सबै जग-बाधा।
जा सरूप सों धरनि उधारी निज जन कारज साधा॥
जिमि तव दाढ़ अग्र लै राखी महि हति असुर गिरायो।
कनक-दृष्टि म्लेच्छन हूँ तिमि किन अब लौं मारि नसायो॥
आरज राज रूप तुम तासो माँगत यह बरदाना।
प्रजा कुमुदगन चंद्र नृपति को करहु सकुल कल्याना॥

[बिहाग ठुमरी]

पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीओ सदा विक्टोरिया रानी।
सूरज चंद प्रकास कर जब लौं रहै सात हू सिंधु में पानी॥
राज करौ सुख सों तब लौं निज पुत्र औ पौत्र समेत सयानी।
पालौ प्रजागन को सुख सों जग कीरति-गान करैं गुन गानी॥

[कलिंगड़ा]

लहौ सुख सब बिधि भारतवासी।
विद्या कला जगत की सीखौ तजि आलस की फाँसी॥
अपनो देस धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्ति निज दासी।
उद्यम करिकै होहु एकमति निज बल बुद्धि प्रकासी॥
पंचपीर की भगति छोड़ि कै ह्वै हरिचरन उपासी।
जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुनरासी॥

उपसंहार—(ख)

इस नाटक के विषय में विलसन साहिब लिखते हैं कि यह नाटक और नाटकों से अति विचित्र है, क्योंकि इसमें संपूर्ण राजनीति के व्यवहारों का वर्णन है। चंद्रगुप्त (जो यूनानी लोगों का सैंद्रोकोत्तस Sandrocottus है) और पाटलिपुत्र (जो यूरप की पालीबोत्तरा Palibothra है) के वर्णन का ऐतिहासिक नाटक होने के कारण यह विशेष दृष्टि देने के योग्य है।

इस नाटक का कवि विशाखदत्त, महाराज पृथु का पुत्र और सामंत वटेश्वरदत्त का पौत्र था। इस लिखने से अनुमान होता है कि दिल्ली के अंतिम हिंदूराजा पृथ्वीराज चौहान ही का पुत्र विशाखदत्त है, क्योंकि अंतिम श्लोक से विदेशी शत्रु की जय की ध्वनि पाई जाती है, भेद इतना ही है कि रायसे में पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर और दादा का आनंद लिखा है। मैं यह अनुमान करता हूँ कि सामन्त वटेश्वर इतने बड़े नाम को कोई शीघ्रता में या लघु करके कहे तो सोमेश्वर हो सकता है और संभव है कि चंद ने भाषा में सामंत वटेश्वर को ही सोमेश्वर लिखा हो।

मेजर विल्फर्ड ने मुद्राराक्षस के कवि का नाम गोदावरी-तीर-निवासी अनंत लिखा है, किंतु यह केवल भ्रममात्र है। जितनी प्राचीन पुस्तकें उत्तर वा दक्षिण में मिलीं, किसी में अनंत का नाम नहीं मिला है।

इस नाटक पर वटेश्वर मैथिल पंडित की एक टीका भी है। कहते हैं कि गुहसेन नामक किसी अपर पंडित की भी एक टीका है, किंतु देखने में नहीं आई। महाराज तंजौर के पुस्तकालय में व्यासराज यज्वा की एक टीका और है।

चंद्रगुप्त * की कथा विष्णुपुराण, भागवत आदि पुराणों में और

* प्रियदर्शी, प्रियदर्शन, चंद्र, चंद्रगुप्त, श्रीचंद्र, चंद्रश्री, मौर्य यह सब चंद्रगुप्त के नाम हैं; और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रोमिल वा द्रोहिण, अशुल, कौटिल्य यह सब चाणक्य के नाम हैं।

बृहत्कथा में वर्णित है। कहते हैं कि विकटपल्ली के राजा चंद्रदास का उपाख्यान लोगों ने इन्हीं कथाओं से निकाल लिया है।

महानंद अथवा महापद्मनंद भी शूद्रा के गर्भ से था, और कहते हैं कि चंद्रगुप्त इसकी एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था। यह पूर्व-पीठिका में लिख आए हैं कि इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय में यहाँ कुछ लिखना अवश्य हुआ। सूर्यवंशी सुदर्शन‡ राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व में इस नगर को बसाया। कहते हैं कि कन्या को वंध्यापन के दुःख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसाकर उसका नाम पाटलिपुत्र रख दिया था। वायुपुराण में "जरासंध के पूर्वपुरुष वसु राजा ने बिहार प्रांत का राज्य संस्थापन किया" यह लिखा है। कोई कहते हैं कि "वेदों में जिस वसु के यज्ञों का वर्णन है वही राज्यगिरि राज्य का संस्थापक है।" जो लोग चरणाद्रि को राज्य-गृह का पर्वत बतलाते है उनको केवल भ्रम हैं। इस राज्य का आरंभ चाहे जिस तरह हुआ हो पर जरासंध ही के समय से यह प्रख्यात हुआ। मार्टिन साहब ने जरासंध ही के विषय में एक अपूर्व कथा लिखी है। वह कहते हैं कि जरासंध दो पहाड़ियों पर दो पैर रखकर द्वारका में जब स्त्रियाँ नहाती थीं तो ऊँचा होकर उनको घूरता था। इसी अपराध पर श्रीकृष्ण ने उसको मरवा डाला।

मगध शब्द मग से बना है। कहते हैं कि "श्रीकृष्ण के पुत्र सांब ने शाकद्वीप से मग जाति के ब्राह्मणों को अनुष्ठान करने को बुलाया था और वे जिस देश में बसे उसकी मगध संज्ञा हुई।" जिन अंगरेज विद्वानों ने 'मगध देश' शब्द को मद्ध (मध्यदेश) का अपभ्रंश माना है उन्हें शुद्ध भ्रम हो गया है जैसा कि मेजर विल्फर्ड पालीबोत्रा को राजमहल के पास गंगा और कोसी के संगम पर बतलाते और पटने का शुद्ध नाम पद्मावती कहते हैं। यों तो पाली इस नाम के कई शहर हिंदुस्तान में प्रसिद्ध हैं किंतु पालीबोत्रा पाटलिपुत्र ही है। सोन के किनारे मावलीपुर एक स्थान है जिसका शुद्ध नाम महाबलीपुर है। महाबली नंद का नामांतर भी है, इसी से और वहाँ प्राचीन चिह्न

† सुदर्शन, सहस्रबाहु अर्जुन का भी नामांतर था, किसी किसी ने भ्रम से पाटली को शूद्रक की कन्या लिखा है।

मिलने से कोई-कोई शंका करते हैं कि बलीपुर वा बलीपुत्र का पाली-बोत्रा अपभ्रंश है, किंतु यह भी भ्रम ही है। राजाओं के नाम से अनेक ग्राम बसते हैं इसमें कोई हानि नहीं, किन्तु इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र ही थी।

कुछ विद्वान् का मत है कि मग लोग मिश्र से आए और यहाँ आकर Isiris और Osiris नामक देव और देवी की पूजा प्रचलित की। यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अपभ्रंश बोध होते हैं। किसी पुराण में "महाराज दशरथ ने शाक-द्वीपियों को बुलाया" यह लिखा है। इस देश में पहले कोल और चेरु (चोल) लोग बहुत रहते थे। शुनक और अजक इस वंश मे प्रसिद्ध हुए। कहते हैं कि ब्राह्मणों ने लड़कर इन दोनों को निकाल दिया। इसी इतिहास से भुँइहार जाति का भी सूत्रपात होता है और जरासंध के यज्ञ से भुइँहारों की उत्पत्ति-वाली किवदंती इसका पोषण करती है। बहुत दिन तक ये युद्धप्रिय ब्राह्मण यहाँ राज्य करते रहे। किंतु एक जैन पंडित 'जो ८०० वर्ष ईसा-मसीह के पूर्व हुआ है' लिखता है कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीतकर निकाल दिया। कहते हैं कि बिहार के पास बारागंज में इसके किले का चिह्न भी है। यूनानी विद्वानों और वायु पुराण के मत से उदयाश्व ने मगधराज संस्थापन किया। इसका समय ५५० ई० पू० बतलाते हैं और चंद्रगुप्त को इससे तेरहवाँ राजा मानते हैं। यूनानी लोगों ने सोन का नाम Erannobaos (इरन्नोबा-ओस) लिखा है, यह शब्द हिरण्यवाह का अपभ्रंश है। हिरण्यवाह, स्वर्णनद और शोण का अपभ्रंश सोन है। मेगास्थनीज अपने लेख में पटने के नगर को ८० स्टेडिया (आठ मील) लंबा और १५ चौड़ा लिखता है, जिससे स्पष्ट होता है कि पटना पूर्वकाल ही से लंबा नगर है*। उसने उस समय नगर के चारों ओर ३० फुट गहरी खाई, फिर

* जिस पटने का वर्णन उस काल के यूनानियो ने उस समय इस धूम से किया है उसकी वर्त्तमान स्थिति यह है। पटने का जिला २४° ५८′ से ५२° ४२′ लैटि० और ८४° ४४′ से ८६° ०५′ लौंगि० पृथ्वी २१०१ मील समचतु-ष्कोण १५५९६३८ मनुष्य-संख्या। पटने की सीमा उत्तर गगा, पश्चिम सोन, पूर्व मुँगेर का जिला और दक्षिण गया का जिला। नगर की बस्ती अब सवा तीन लाख मनुष्य और बावन हजार घर हैं। साढ़े आठ लाख मन के लगभग

ऊँची दीवार और उसमें ५७० बुर्ज और ६४ फाटक लिखे हैं। यूनानी लोग जो इस देश को (Prassi) प्रास्सि कहते हैं वह पलाशी का अपभ्रंश बोध होता है, क्योंकि जैनग्रंथों में उस भूमि के पलाशवृक्ष से आच्छादित होने का वर्णन दिया गया है।

जैन और बौद्धों से इस देश से और भी अनेक संबंध हैं। मसीह के छः सौ बरस पहले बुद्ध पहले पहल राजगृह ही में उदास होकर चले गए थे। उस समय इस देश की बड़ी समृद्धि लिखी है और राजा का नाम बिंबिसार लिखा है। (जैन लोग अपने बीसवें तीर्थंकर सुव्रत स्वामी का राजगृह मे कल्याणक भी मानते हैं)। बिंबिसार ने राजधानी के पास ही इनके रहने को कलद नामक बिहार भी बना दिया था। फिर अजातशत्रु और अशोक के समय में भी बहुत से स्तूप बने। बौद्धों के बड़े-बड़े धर्मसमाज इस देश मे हुए। उस काल में हिंदू लोग इस बौद्ध धर्म के अत्यंत विद्वेषी थे। क्या आश्चर्य है कि बुद्धों के द्वेष ही से मगध देश को इन लोगों ने अपवित्र ठहराया हो और गौतम की निंदा ही के हेतु अहल्या की कथा बनाई हो।

भारत-नक्षत्र नक्षत्री राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहास-तिमिरनाशक के तीसरे भाग में इस समय और देश के विषय में जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते हैं। इससे बहुत सी बातें उस समय की स्पष्ट हो जायँगी।

प्रसिद्ध यात्री हिआनसाँग सन् ६२७ ई० में जब भारतवर्ष में आया था तब मगध देश हर्षवर्द्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार में था। किंतु दूसरे इतिहास-लेखक सन् २०० से ४०० तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओं को मगध का राजा बतलाते हैं और अंधवंश का भी राज्य-चिह्न संभलपुर में दिखलाते हैं।

बाहर से प्रति वर्ष यहाँ माल आता और पाँच लाख मन के लगभग जाता है। हिंदुओं में छः जातियाँ यहाँ विशेष हैं। यथा एक लाख अस्सी हजार ग्वाला, एक लाख सत्तर हजार कुनबी, एक लाख सत्रह हजार भुइँहार, पचासी हजार चमार, अस्सी हजार कोइरी और आठ हजार राज त। अब दो लाख के आसपास मुसलमान पटने के जिले में बसते हैं।

सन् १२९२ ई० में पहले इस देश मे मुसलमानों का राज्य हुआ। उस समय पटना बनारस के बंदावत राजपूत राजा इंद्रदमन के अधिकार में था। सन् १२२५ में अलतिमश ने गयासुद्दीन को मगध प्रांत का स्वतंत्र सूबेदार नियत किया। इसके थोड़े ही काल पीछे फिर हिंदू लोग स्वतंत्र हो गए। फिर मुसलमानों ने लड़कर अधिकार किया सही, किंतु झगड़ा नित्य होता रहा, यहाँ तक कि सन् १३९३ में हिंदू लोग स्वतंत्र रूप में फिर यहाँ के राजा हो गए और तीसरे महमूद की बड़ी भारी हार हुई। यह दो सौ बरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय था। इस समय मे गया के उद्धार के हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश को छोड़कर लड़ने आए*। ये और पंजाब से लेकर

---

* गया के भूगोल में पंडित शिवनारायण त्रिवेदी भी लिखते हैं—"औरंगाबाद से तीन कोस अग्निकोण पर देव बड़ी भारी बस्ती है। यहाँ श्रीभगवान् सूर्य्यनारायण का बड़ा भारी संगीन पश्चिम रुख का मंदिर है। यह मंदिर देखने से बहुत प्राचीन जान पड़ता है। यहाँ कातिक और चैत की छठको बड़ा मेला लगता है। दूर दूर के लोग यहाँ आते और अपने लड़को के मुंडन-छेदन आदि की मनौती उतारते हैं। मंदिर से थोड़ी दूर दक्खिन बाजार के पूरब ओर सूर्य्यकुंड का तालाब है। इस तालाब से सटा हुआ और एक कच्चा तालाब है। उसमें कमल बहुत फूलते हैं। देव राजधानी है। यहाँ के राजा महाराजा उदयपुर के घराने के मड़ियार राजपूत है। इस घराने के लोग सिपाहगरी के काम में बहुत प्रसिद्ध होते आये हैं। यहाँ के महाराज श्रीजयप्रकाशसिंह के० सी० एस० आई० बड़े शूर सुशील और उदार मनुष्य थे। यहाँ से दो कोस दक्खिन कंचनपुर में राजा साहिब का बाग और मकान देखने लायक बना है। देव से तीन कोस पूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है, उसके पास पहाड़ के ऊपर देव के सूर्य्यमंदिर के ढङ्ग का एक महादेव का मंदिर है। पहाड़ के नीचे एक टूटा गढ़ भी देख पड़ता है। जान पड़ता है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहाँ ही रहते थे, पीछे देव में बसे। देव और उमगा दोनो इन्हीं की राजधानी थी, इससे दोनों नाम साथ ही बोले जाते हैं (देवमूँगा)। तिल-सक्रान्ति को उमगा में बड़ा मेला लगता है।" इससे स्पष्ट हुआ कि उदयपुर से जो राणा लोग आए उन्हीं के खानदान में देव के राजपूत हैं। और बिहारदर्पण से भी यह बात पाई जाती है कि मड़ियार लोग मेवाड़ से आए हैं।

गुजरात दक्षिण तक के हिंदू मगध देश में जाकर प्राणत्याग करना बड़ा पुण्य समझते थे। प्रजापाल नामक एक राजा ने सन् १४०० के लगभग बीस बरस मगध देश को स्वतंत्र रखा। किंतु आर्य्यमत्सरी दैव ने यह स्वतंत्रता स्थिर नहीं रखी और पुण्यधाम गया फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। सन् १४७८ तक यह प्रदेश जौनपुर के बादशाह के अधिकार में रहा। फिर बहलूलवश ने इसको जीत लिया था, किंतु १४९१ में हुसेनशाह ने फिर जीत लिया। इसके पीछे बंगाल के पठानों से और जौनपुर वालों से कई लड़ाई हुईं और सन् १४९४ में दोनों राज्य में एक सुलहनामा हो गया। इसके पीछे सूर लोगों का अधिकार हुआ और शेरशाह ने बिहार छोड़कर पटने को राजधानी किया। सूरों के पीछे क्रमान्वय से (१५७५ ई०) यह देश मुग़लों के अधीन हुआ और अंत में जरासंध और चंद्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य वेश और आर्य नाम परित्याग करके औरंगजेब के पोते अजीमशाह के नाम पर अपना नाम अजीमाबाद प्रसिद्ध किया। (१६६७ ई०) बंगाले के सूबेदारों में सबसे पहले सिराजुद्दौला ने अपने को स्वतंत्र समझा था किंतु १७५७ की पलासी की लड़ाई में मीर जाफर अंगरेजों के बल से बिहार, बंगाला और उड़ीसा का अधिनायक हुआ। किंतु अंत में जगद्विजयी अँगरेजों ने सन् १७६३ में पूर्व में पटना पर अधिकार करके दूसरे बरस बकसर की प्रसिद्ध लड़ाई जीतकर स्वतंत्र रूप से सिंहचिह्न की ध्वजा की छाया के नीचे इस देश के प्रांत मात्र को हिंदोस्तान के मानचित्र में लाल रंग से स्थापित कर दिया।

जस्टिन (Justin) कहता है—(१) संद्रकुत्तम महापराक्रमी था। असंख्य सैन्य संग्रह करके विरुद्ध लोगों का इसने सामना किया था। डियोडोरस सिक्यूलस (Dbodorus Siculus) कहता है—(२) प्राच्य देश के राजा जंद्रमा के पास २०००० अश्व, २०००० पदाति, २००० रथ और ४००० हाथी थे। यद्यपि यह Xandramas शब्द चंद्रमा का अपभ्रंश है, किंतु कई भ्रांत यूनानियों ने नंद को भी इसी नाम से लिखा है। क्विंतस करशिअस (Quintus Curtius)

(१) Justin His. Phellipp. Lib- XV Chap. IV.

(२) Deodorus Siculus XVII. 93.

लिखता है—(३) चंद्रमा के क्षौरकार पिता ने पहले मगधराज को फिर उसके पुत्रों को नाश करके रानी के गर्भ में अपने उत्पन्न किए हुए पुत्र को गद्दी पर बैठाया। स्ट्राबो (Strabo) कहता है—(४) सेल्यूकस ने मेगास्थनीज को संद्रकुत्तस के निकट भेजा और अपना भारतवर्षीय समस्त राज्य देकर उससे संधि कर ली। ओरियन Orriun लिखता है—(५) मेगास्थनीज अनेक बार सन्द्रकुत्तम की सभा में गया था। (६) प्लूटार्क (Plutarch) ने चंद्रगुप्त को दो लक्ष सेना का नायक लिखा है। इन सब लेखों को पौराणिक वर्णनों से मिलाने से यद्यपि सिद्ध होता है कि सिकंदरकृत पुरु-पराजय के पीछे मगधराज मंत्री द्वारा निहत हुए और उनके लड़के भी उसी गति को पहुँचे और उसके पीछे चंद्रगुप्त राजा हुआ; किंतु बहुत से यूनानी लेखकों ने चंद्रगुप्त को पट्टरानी के गर्भ में क्षौरकार से उत्पन्न लिखकर व्यर्थ अपन को भ्रम में डाला है। चंद्रगुप्त क्षत्रियवीर्य से दासी में उत्पन्न था यह सर्व साधारण का सिद्धांत है। (७) इस क्रम से ३२७ ई० पू० में नंद का मरण और ३१४ ई० पू० में चंद्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है। पारस देश की कुमारी के गर्भ से सिल्यूकस को जो एक अति सुंदर कन्या हुई थी वही चंद्रगुप्त को दी गई। ३०२ ई० पू० में यह संधि और विवाह हुआ, इसी कारण अनेक यवनसेना चंद्रगुप्त के पास रहती थी। २९२ ई० पू० में चंद्रगुप्त २४ बरस राज्य करके मरा।

चंद्रगुप्त के इस मगधराज्य को आइनेअकबरी में मकता लिखा है। डिग्विग्नेस (Deguignes) कहता है कि चीनी मगध देश को मकियात कहते है। केंफर (Kemfer) लिखता है कि जापानी लोग उसको मगत् कफ कहते हैं। (कफ शब्द जापानी में देशवाची है)। प्राचीन फारसी लेखकों ने इस देश का नाम मावाद वा मुवाद लिखा

---

(३) Quintus Curtius IX. 2-

(४) Strabo XV. 2. 9.

(५) Orriun Indica X. 5.

(६) Plutarch Vita Alexanbri O. 62.

(७) टाड आदि कई लोगो का अनुमान है कि मोरी वश के चौहान जो बापाराव के पूर्व चित्तौर के राजा थे वे भी मौर्य्य थे। क्या चंद्रगुप्त चौहान था ? या ये मोरा सब शूद्र थे ?

ह। मगधराज्य में अनुगांग प्रदेश मिलने ही से तिब्बतवाले इस देश को अनुखेक वा अनोनखेक कहते हैं; और तातारवाले इस देश को एनाकाक लिखते हैं।

सिसली डिउडोरस ने लिखा है कि मगधराजधानी पालीपुत्र भारतवर्षीय हक्यूलस (हरिकुल) देवता-द्वारा स्थापित हुई। सिसरो ने हक्यूलस (हरिकुल) देवता का नामांतर बेलस (बलः) लिखा है। बल शब्द बलदेवजी का बोध करता है और इन्हीं का नामान्तर बली भी है। कहते हैं कि निज पुत्र अंगद निमित्त बलदेवजी ने यह पुरी निर्माण की, इसी से बलीपुत्रपुरी इसका नाम हुआ। इसी से पालीपुत्र और फिर पाटलीपुत्र हो गया। पाली भाषा, पाली धर्म, पाली देश इत्यादि शब्द भी इसी से निकले हैं। कहते हैं कि बाणासुर के बसाए हुए जहाँ तीन पुर थे उन्हीं को जीतकर बलदेवजी ने अपने पुत्रों के हेतु पुर निर्माण किए। यह तीनों नगर महाबलीपुर इस नाम से एक मद्रास हाते में, एक विदर्भदे श में (मुजफ्फरपुर वर्त्तमान नाम) और एक (राजमहल वर्त्तमान नाम) बंगदेश में है। कोई-कोई बालेश्वर, मैसूर, पुरनियाँ प्रभृति को भी बाणासुर की राजधानी बतलाते है। यहाँ एक बात बड़ी विचित्र प्रकट होती है। बाणासुर भी बलीपुत्र है। क्या आश्चर्य है कि पहले उसी के नाम से बलीपुत्र शब्द निकला हो। कोई नंद ही का नामांतर महाबली कहते है और कहते हैं कि पूर्व में गंगाजी के किनारे नंद ने केवल एक महल बनाया था, उसके चारों ओर लोग धीरे-धीरे बसने लगे और फिर यह पत्तन (पटना) हो गया। कोई महाबली के पितामह उदसी, उदासी, उदय, श्रीउदयसिह (?) ने ४५० ई० पू० इसको बसाया मानते हैं। कोई पाटली देवी के कारण पाटलिपुत्र मानते हैं

विष्णुपुराण और भागवत में महापद्म के बड़े लड़के का नाम सुमाल्य लिखा है। बृहत्कथा में लिखते है कि शकटाल ने इंद्रदत्त का शरीर जला दिया इससे योगानंद (अर्थात् नंद के शरीर में इंद्रदत्त की आत्मा) फिर राजा हुआ। ब्याड़ि जाने के समय शकटाल को नाश करने का मंत्र दे गया था। वररुचि मंत्री हुआ किंतु योगानंद ने मदमत्त होकर उसको नाश करना चाहा इससे वह शकटाल के घर में छिपा। उसकी स्त्री उपकोशा पति को मृत समझकर सती हो गई।

योगानंद के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था, किंतु फिर तपोवन में चला गया। फिर शकटाल के कौशल से चाणक्य नंद के नाश का कारण हुआ। उसी समय शकटाल ने हिरण्यगुप्त जो कि योगानन्द का पुत्र था उसको मार कर चंद्रगुप्त को जो कि असली नंद का पुत्र था, गद्दी पर बैठाया।

ढुंढिराज पण्डित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नंदों में मुख्य था। इसको दो स्त्रियाँ थीं। सुनंदा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी, उसका नाम मुरा था। एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहाँ गया और ऋषि कृत मार्जन के समय सुनंदा पर नौ और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी। मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि ने प्रसन्न होकर वरदान दिया। सुनंदा को एक मांसपिंड और मुरा को मौर्य उत्पन्न हुआ। राक्षस ने मांसपिंड काटकर नौ टुकड़े किया, जिससे नौ लड़के हुए। मौर्य को सौ लड़के थे, जिसमें चंद्रगुप्त सबसे बड़ा बुद्धिमान् था। सर्वार्थसिद्धि ने नंदों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा। नंदों ने ईर्षा से मौर्य और उसके लड़कों को मार डाला, किंतु चंद्रगुप्त चाणक्य ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नंदों को नाश करके राजा हुआ।

योंही भिन्न-भिन्न कवियों और विद्वानों ने भिन्न-भिन्न कथाएँ लिखी हैं। किंतु सबके मूल का सिद्धांत पास-पास एक ही आता है।

इतिहास-तिमिरनाशक में इस विषय में जो कुछ लिखा है वह नीचे प्रकाश किया जाता है।

बिंबिसार को उसके लड़के अजातशत्रु ने मार डाला। मालूम होता है कि यह फ़साद ब्राह्मणों ने उठाया। अजातशत्रु बौद्ध मत का शत्रु था। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध श्रावस्ती में रहने लगा। यहाँ भी प्रसेनजित को उसके बेटे ने गद्दी से उठा दिया; शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में गया।

अजातशत्रु की दुश्मनी बौद्ध मत से धीरे-धीरे बहुत कम हो गई। शाक्यमुनि गौतमबुद्ध फिर मगध में गया। पटना उस समय एक गाँव था, वहाँ हरकारों की चौकी में ठहरा। वहाँ से विशाली * में गया।

* जैनी महावीर के समय विशाली अथवा विशाला का राजा चेटक*

विशाली की रानी एक वेश्या थी। वहाँ से पावा† गया, वहाँ से कुशीनार गया। बौद्धों के लिखने बमूजिब उसी जगह सन् ईसवी ४४३ बरस पहले ८० बरस की उमर में साल के वृक्ष के नीचे बाईं करवट लेटे हुए इसका निर्वाण‡ हुआ। काश्यप उसका जानशीन हुआ। अजातशत्रु के पीछे तीन राजा अपने बाप को मारकर मगध की गद्दी पर बैठे, यहाँ तक कि प्रजा ने घबराकर विशाली की वेश्या के बेटे शिशुनाग मंत्री को गद्दी पर बैठा दिया। यह बड़ा बुद्धिमान् था। इसके बेटे काल अशोक ने, जिसका नाम ब्राह्मणों ने काकवर्ण भी लिखा है, पटना अपनी राजधानी बनाया।

जब सिकंदर का सेनापति बाबिल का बादशाह सिल्यूकस सूबेदारों के तदारुक को आया, पटने से सिंधु किनारे तक नंद के बेटे चंद्रगुप्त के अमल दखल में पाया, बड़ा बहादुर था, शेर ने इसका पसीना चाटा था और जंगली हाथी ने इसके सामने सिर झुका दिया था।

पुराणों में बिंबिसार को शिशुनाग के बेटे काकवर्ण का पर-पोता बतलाया है और नंदिवर्द्धन को बिंबिसार के बेटे अजातशत्रु का परपोता; और कहा है कि नंदिवर्द्धन का बेटा महानंद और महानंद का बेटा शूद्री से महापद्मनंद और इसी महापद्मनंद और उसके आठ लड़कों के बाद जिन्हें नवनंद कहते हैं, चंद्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा। बौद्ध कहते

बतलाते हैं। यह जगह पटने के उत्तर तिरहुत में है, उजड़ गई है। वहाँ वाले अब उसे बसहर पुकारते हैं।

† जैनी यहाँ महावीर का निर्वाण बतलाते हैं, पर जिस जगह को अब पावापुर मानते हैं असल में वह नहीं है; पावा विशाली से पश्चिम और गंगा से उत्तर होनी चाहिये।

‡ जैन अपने चौबीसवें अर्थात् सबसे पिछले तीर्थंकर महावीर का निर्वाण विक्रम के संवत् से ४७०, अर्थात् सन् ईसवी से ५२७ बरस पहले बतलाते हैं और महावीर के निर्वाण से २५० बरस पहले अपने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का निर्वाण मानते हैं।

---

* कैसे आश्चर्य की बात है, चेटक रंडी के भड़वे को भी कहते हैं। (हरिश्चंद्र)

हैं कि तक्षशिला के रहनेवाले चाणक्य ब्राह्मण ने धननंद को मार के चंद्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और वह मोरिया नगर के राजा का लड़का था और उसी जाति का था जिसमें शाक्यमुनि गौतम बुद्ध पैदा हुआ।

मेगास्थनीज लिखता है कि पहाड़ों में शिव और मैदान में विष्णु पुजाते है, पुजारी बदन रँग* कर और सिर में फूलों की माला लपेटकर घंटा और झाँझ बजाते हैं। एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण की स्त्री ब्याह नहीं सकता है और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नहीं कर सकता है। हिंदू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कंधों पर कपड़ा † रखते हैं। जूते उनके रंग बरंग के चमकदार और कारचोबी के होते हैं। बदन पर अक्सर गहने, भौं सिंहदी से रँगते हैं और दाढ़ी मूछ पर खिजाब करते हैं। छतरी, सिवाय बड़े आदमियों के, और कोई नहीं लगा सकता। रथों में लड़ाई के समय घोड़े और मंजिल काटने के लिए बैल जोते जाते हैं। हाथियों पर भारी जर्दोजी झूल डालते है। सड़कों की मरम्मत होती है, पुलिस का अच्छा इंतिजाम है। चंद्रगुप्त के लशकर में औसत चोरी तीस रुपये रोज से जियादा नहीं सुनी जाती है। राजा जमीन की पैदावार से चौथाई लेता है।

चंद्रगुप्त सन् ई० के ९१ बरस पहले मरा। उसके बेटे बिंदुसार के पास यूनानी एलची दयोमेकस (Diamachos) आया था परंतु वायुपुराण में उसका नाम भद्रसार और भागवत में वारिसार और मत्स्यपुराण में शायद बृहद्रथ लिखा है। केवल विष्णुपुराण बौद्ध ग्रंथों के साथ बिंदुसार बतलाता है। उसके १६ रानी थीं और उनसे १०१ लड़के, उनमें अशोक ‡ जो पीछे से "धर्म्मअशोक" कहलाया, बहुत तेज था, उज्जैन का नाजिम था। वहाँ के एक सेठ () की लड़की देवी उससे ब्याही थी, उसी से महेंद्र लड़का और संघमिता (जिसे सुमित्रा भी कहते हैं) लड़की हुई थी!

---

* चंदन इत्यादि लगाकर।

† अर्थात् पगड़ी दुपट्टा।

‡ जैनियों के ग्रंथों में इसी का नाम अशोक भी लिखा है।

() सेठ श्रेष्ठों का अपभ्रंश है, अर्थात् जो सबसे बड़ा हो।

सत्यहरिश्चंद्र

नाटक

संवत् १९३२

हरिश्चद्रचंद्रिका खड १ सं० ९ में
प्रस्तावना, सं० ११ में प्रथम अंक
गर्भांक १-२

उपक्रम

मेरे मित्र बाबू बालेश्वरप्रसाद बी० ए० ने मुझसे कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लड़कों के पढ़ने-पढ़ाने के योग्य हो, क्योंकि शृङ्गाररस के आपने जो नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं, लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्हीं के इच्छानुसार मैंने यह सत्यहरिश्चंद्र नामक रूपक लिखा है। इसमें सूर्यकुल-संभूत राजा हरिश्चंद्र की कथा है। राजा हरिश्चंद्र सूर्यवंश का अट्ठाइसवाँ राजा रामचंद्र से ३५ पीढ़ी पहले त्रिशंकु का पुत्र था। इसने शौभपुर नामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इसकी कथा शास्त्रों में बहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपालदेव के समय में आर्य क्षेमीश्वर कवि ने चंडकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चंद्र के चरित्र में बनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य-ग्रंथ में इसका नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चंद्र और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयंसिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। यह एक बेर संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब वशिष्ठ ने सैन-समेत उसकी जाफत अपन शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूमधाम से की तो विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और ऊँट के बदले भी वशिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना का नाश कर दिया और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिए। विश्वामित्र इस पराजय से उदास होकर तप करने लगे और महादेवजी से वरदान में सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आये। वशिष्ठ ने मंत्र के बल से एक ऐसा ब्रह्मदंड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। हारकर विश्वामित्र ने सोचा कि अब तप करके ब्राह्मण होना चाहिए और तप करके अंत

में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गए। यह वाल्मीकीय रामायण के बालकांड* के ५२ से ६० सर्ग तक सविस्तर वर्णित है।

जब हरिश्चंद्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठजी से कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि वह अशक्य काम हमसे न होगा। तब त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उनसे भी कोरा जवाब पाया तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं की और हमको कोरा जवाब दिया इससे अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट होकर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चांडाल हो जा। बिचारा त्रिशंकु चांडाल बनकर विश्वामित्र के पास गया और दुखी होकर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने बैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोचकर राजा से प्रतिज्ञा किया कि इसी देह से तुमको स्वर्ग भेजेंगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आए, पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आए और कहा कि जहाँ चांडाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहाँ कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट होकर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देखकर और बिचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मंत्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञ-भाग लेने न आए तो विश्वामित्र ने क्रोध से श्रुवा उठाकर कहा कि त्रिशंकु! यज्ञ से कुछ काम नहीं, तुम हमारे तपोबल से स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आया चाहता है तो पुकारा कि अरे तू यहाँ आने के योग्य नहीं है, नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा होकर नीचे गिरा और विश्वामित्र को त्राहि-त्राहि पुकारा। विश्वामित्र ने तपोबल से उसको वहाँ बीच ही में स्थिर रखा। कर्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रुव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्होंने नए बनाए और बहुत से जीव-जंतु-फल-मूल बनाकर जब इंद्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डरकर इनसे क्षमा माँगने गए। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रखकर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु

* अयोध्याकांड यहाँ भूल से छपा था।

को ग्रह की भाँति प्रकाशमान स्थिर रख क्षमा किया। यह सब भी रामायण ही में हैं। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा, इससे बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चांडाल के घर भीख माँगने गए और जब कुत्ते का मांस पाया तो उसी से देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इनके भय से काँप गए और इंद्र ने उस समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शांतिपर्व के १४१ अध्याय में है। फिर हरिश्चंद्र की विपत्ति सुनकर क्रोध से वशिष्ठजी ने उनको शाप दिया कि तुम बकुला हो जाओ और विश्वामित्र ने यह सुनकर वसिष्ठ को शाप दिया कि तुम आड़ो * हो जाओ। पक्षी बनकर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया, जिससे त्रैलोक्य काँप गया। अंत में ब्रह्मा ने दोनों से मेल कराया। यह उपाख्यान मार्कंडेय पुराण के नवें अध्याय में है। इनकी उत्पत्ति यों है—भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को ब्याह किए देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और बेटा-बहू देखने को उनके घर आए। उन दोनों ने पिता की पूजा की और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गए। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी, वर माँग। सत्यवती ने यह वर माँगा कि मुझे तो वेदशास्त्र जाननेवाला और मेरी माता को युद्धविद्याविशारद पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कहकर ध्यान दे प्राणायाम किया और उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए। भृगु ने वह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में अश्वत्थ का आलिंगन करके खाय और तुम यह सफेद चरु उसी भाँति उदुंबर का आलिंगन करके खाना। भृगु के वाक्यानुसार सत्यवती ने कन्नौज के राजा गाधि की स्त्री अपनी माता से सब कहा। उसकी माता ने यह समझकर कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने को चरु दिया होगा, जब ऋतुकाल आया तब लाल चरु तो कन्या को खिलाया और सफेद आप खाया। भगवान् भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो आकर बहू से कहा कि तुमने चरु को उलट-पुलट किया इससे तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हो जायगा। सत्यवती ने जब ससुर से इस अपराध की क्षमा चाही तब उन्होंने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रियकर्म्मा होगा। वही राजा गाधि

---

* किसी जाति का गिद्ध।

को तो विश्वामित्र हुए और च्यवन को जमदग्नि और जमदग्नि को परशुराम हुए। यह उपाख्यान कालिकापुराण के ८४ अध्याय में स्पष्ट है।

इन उपाख्यानों के जानने से इस नाटक के पढ़नेवालों को बड़ी सहायता मिलेगी। इस भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्व पुरुष महाराज हरिश्चन्द्र भी थे। यह समझकर इस नाटक के पढ़नेवाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारेंगे तो कवि का परिश्रम सुफल होगा।

समर्पण

नाथ !

यह एक नया कौतुक देखो। तुम्हारे सत्यपथ पर चलनेवाले कितना कष्ट उठाते हैं, यही इसमें दिखाया है। भला हम क्या कहें ? जो हरिश्चंद्र ने किया वह तो अब कोई भी भारतवासी न करेगा, पर उस वंश ही के नाते इनको भी मानना। हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं, पर तुम्हारी तो बहुत कुछ है। बस, इतना ही सही। लो सत्यहरिश्चंद्र तुम्हें समर्पित है, अंगीकार करो। छल मत समझना। सत्य का शब्द सार्थ है, कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं है।

तुम्हारा
हरिश्चंद्र

सत्यहरिश्चंद्र

मंगलाचरण

दोहा

सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुखकद ।
जनहित कमलातजन जय शिव नृप कवि हरिचन्द * ॥

(नांदी के पीछे सूत्रधार † आता है)

सूत्र०—अहा ! आज की संध्या भी धन्य है कि इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सबकी इच्छा है कि हिंदी भाषा का कोई नवीन नाटक देखें। धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहाँ के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे. भला वहाँ अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त तो हुई। परंतु हा ! शोच की बात है कि जो बड़े-बड़े लोग हैं और जिनके किए कुछ हो सकता है वे ऐसी अंध-परंपरा में फँसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है। केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की बात है जिन्हें झूठी खैरखाही दिखाना वा लंबा-चौड़ा गाल बजाना आता है। (कुछ सोचकर) क्या हुआ, ढंग पर चला जायगा तो यों भी बहुत कुछ हो रहेगा। काल बड़ा बली है, धीरे-धीरे सब आप ही कर देगा। पर भला आज इन लोगों को लीला कौनसी

---

* यह श्लेष शिवजी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि पाँच का वर्णन करता है।

† सूत्रधार हरे वा नीले रंग की साटन का कामदार जाँघिया पहिने, उसके आगे पटुके की तरह कमरबंद के दोनों किनारे नीचे-ऊपर लटकते हुए, गले में चुस्त सामने बुताम की मिरजई, ऊपर माला वगैरह और सब गहने, सिर पर टिपारा, पैर में घुँघरू, हाथ में छड़ी, सिर पर मुकुट।

दिखाऊँ। (सोचकर) अच्छा, उनसे भी तो पूछ लें ? ऐसे कौतुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है। (नेपथ्य की ओर देखकर) मोहना ! अपनी भाभी को जरा इधर तो भेजना।

(नेपथ्य में से, 'मैं तो आप ही आती थी' कहती हुई नटी * आती है)

नटी—मैं तो आप ही आती थी। वह एक मनिहारिन आ गई थी, उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती। कहिए, आज जो लीला करनी हो वह पहिले ही से जानी रहे तो मैं और सभों से कह के सावधान कर दूँ।

सूत्र०—आज का नाटक तो हमनें तुम्हारी ही प्रसन्नता पर छोड़ दिया है।

नटी—हम लोगों को तो सत्यहरिश्चंद्र आजकल अच्छी तरह याद है और उसका खेल भी सब छोटे-बड़े को मँज रहा है।

सूत्र०—ठीक है, यही हो। भला इससे अच्छा और कौन नाटक होगा। एक तो इन लोगों ने उसे अभी तक देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणापूर्ण राजा हरिश्चंद्र का है, तीसरे उसका कवि भी हम लोगों का एकमात्र जीवन है।

नटी—(लम्बी साँस लेकर) हा ! प्यारे हरिश्चंद्र का संसार ने कुछ भी गुण-रूप न समझा। क्या हुआ "कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि-भरि पाछे प्यारे हरिचंद की कहानी रहि जायगी"।

सूत्र०—इसमें क्या संदेह है। काशी के पंडितों ही ने कहा है—

सब सज्जन के मान को कारन इक हरिचंद।
जिमि सुभाव दिन रैन को, कारन नित हरि-चंद॥ †

नटी—और फिर उसके मित्र पंडित शीतलाप्रसादजी ने इस नाटक के नायक से उसकी समता भी की है इससे उनके बनाए नाटकों में भी सत्यहरिश्चंद्र ही आज खेलने को जी चाहता है।

---

* महाराष्ट्री वेष, कमर पर पेटी कसे वा मर्दाना कपड़ा पहिने पर जेवर सब जनाने।

† विद्वज्जनप्रतिष्ठाकारणमेको हरिश्चंद्रः।
स्वभावगत्या दिनरात्र्योर्वा हरिश्चंद्रः॥

नटी—कैसी समता, मैं भी सुनूँ।

सूत्र०—जो गुन नृप हरिचंद मैं, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचंद मैं, लखहु प्रतच्छ सुजान* ॥ ३ ॥

(नेपथ्य में)

अरे!

यहाँ सत्य भय एक के, काँपत सब सुरलोक।
यह दूजो हरिचंद को, करन इंद्र उर सोक ॥

सूत्र०—(सुनकर और नेपथ्य की ओर देखकर) यह देखो! हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इंद्र बन कर आ पहुँचा, तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना

---

* "श्रूयंते ये हरिश्चंद्रे जगदाह्लादिनो गुणाः।"
दृश्यंते ते हरिश्चंद्रे चन्द्रवत्प्रियदर्शने ॥"

प्रथम अंक

(जवनिका उठती है)

स्थान—इंद्रसभा

(बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ, घर सजा हुआ, इन्द्र* आता है)

(इंद्र "यहाँ सत्य-भय एक के" यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर-इधर घूमता है)

(द्वारपाल† आता है)

द्वार०—महाराज ! नारदजी आते हैं।

इंद्र—आने दो, अच्छे अवसर पर आए।

द्वार०—जो आज्ञा। [जाता है

इंद्र—(आप ही आप) नारदजी सारी पृथ्वी पर इधर-उधर फिरा करते हैं, इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा। हमने माना कि राजा हरिश्चंद्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो, तथापि उसके धर्म्म की एक बेर परीक्षा तो लेनी चाहिए।

(नारदजी‡ आते हैं)

इंद्र—(हाथ जोड़कर दंडवत् करता है) आइए आइए, धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़े ?

नारद—हमें और भी कोई काम है ? केवल यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ; यही हमें है कि और भी कुछ ?

---

* जामा, क्रीट, कुंडल और गहने पहने हुए, हाथ में वज्र (कई फल का छोटा भाला) लिए हुए।

† छज्जेदार पगड़ी, चपकन, घेरदार पाजामा पहने, कमरबद कसे और आसा लिए हुए।

‡ धोती की लाँग कसे, गाँती बाँधे, सिर से पाँव तक चन्दन का खौर दिए, पैर में घुँघरू, सिर के बाल छुटे और हाथ में बीन लिए हुए। आने और जाने के समय "राधाकृष्ण गोविंद" की ध्वनि नेपथ्य में से हो।

इंद्र—साधु स्वभाव ही से परोपकारी होते हैं, विशेष करके आप ऐसे जो हमारे से दीन गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं। क्योंकि जो लोग गृहस्थ और कामकाजी हैं वे स्वभाव ही से गृहस्थी के बंधनों से ऐसे जकड़ जाते हैं कि साधुसंगम तो उनको सपने में भी दुर्लभ हो जाता है, न वे अपने प्रबन्धों से छुट्टी पावेंगे न कहीं जायँगे।

नारद—आपको इतना शिष्टाचार नहीं सोहता। आप देवराज हैं और आपके संग की तो बड़े-बड़े ऋषि मुनि इच्छा करते हैं, फिर आप को सत्संग कौन दुर्लभ है? केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुँह देखा व्यापार होता है वैसी ही बातें आप इस समय कर रहे हैं।

इंद्र—हमको बड़ा शोच है कि आपने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा। क्षमा कीजिए, आपसे हम बनावट नहीं करते। भला विराजिए तो सही, यह बातें तो होती ही रहेंगी।

नारद—विराजिए। (दोनों बैठते हैं)

इंद्र—कहिए, इस समय कहाँ से आना हुआ?

नारद—अयोध्या से। अहा! राजा हरिश्चंद्र धन्य है। मैं तो उसके निष्कपट और अकृत्रिम स्वभाव से बहुत ही संतुष्ट हुआ। यद्यपि इसी सूर्य्य-कुल में अनेक बड़े-बड़े धार्म्मिक हुए पर हरिश्चंद्र तो हरिश्चंद्र ही है।

इंद्र—(आप ही आप) यह भी तो उसी का गुण गाते हैं।

नारद—महाराज! सत्य की तो मानो हरिश्चंद्र मूर्त्ति है। निस्संदेह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारतभूमि का सिर केवल इनके स्मरण से उस समय भी ऊँचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी।

इंद्र—(आप ही आप) अहा! हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनाई है! यद्यपि इसका स्वभाव सहज ही गुणग्राही हो, तथापि दूसरों की उत्कट कीर्त्ति से इसमें ईर्षा होती है, उसमें भी जो जितने बड़े हैं उनकी ईर्षा उतनी ही बड़ी है। हमारे ऐसे

बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना संताप नहीं देते जितना दूसरों की संपत्ति और कीर्त्ति।

नारद—आप क्या सोच रहे हैं?

इंद्र—कुछ नहीं। योंही, मैं यह सोचता था कि हरिश्चंद्र की कीर्त्ति आजकल छोटे-बड़े सबके मुँह से सुनाई पड़ती है, इससे निश्चय होता है कि नहीं, हरिश्चंद्र निस्संदेह बड़ा मनुष्य है।

नारद—क्यों नहीं, बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे-बड़े सब मानें और फिर नाम भी तो उसी का रह जायगा जो ऐसा दृढ़ होकर धर्म्म साधन करेगा। (आप ही आप) और उसकी बड़ाई का यह भी तो एक बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उससे बुरा मानते हैं, क्योंकि जिससे बड़े-बड़े लोग डाह करें, पर उसका कुछ बिगाड़ न सकें, वह निस्संदेह बहुत बड़ा मनुष्य है।

इंद्र—भला! उसके गृह-चरित्र कैसे हैं?

नारद—दूसरों के लिये उदाहरण बनाने के योग्य। भला पहले जिसने अपने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किए हैं उसकी और बातों पर क्यों विश्वास हो सकता है। शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है। वचन से उपदेशक और क्रियादिक से कैसा भी धर्म्मनिष्ठ क्यों न हो, पर यदि उसके चरित्र शुद्ध नहीं हैं तो लोगों में वह टकसाल न समझा जायगा और उसकी बातें प्रमाण न होंगी। महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन, वचन और कर्म्म एक रहते हैं, इनके भिन्न-भिन्न। निस्संदेह हरिश्चंद्र महाशय है! उसके आशय बहुत उदार हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।

इंद्र—भला! आप उदार वा महाशय किसको कहते हैं?

नारद—जिसका भीतर-बाहर एक सा हो और विद्यानुरागिता, उपकारप्रियता आदि गुण जिसमें सहज हों, अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य्य, संपत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिसकी स्थिरता है, वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है। हरिश्चंद्र में ये सब बातें सहज हैं। दान करके

उसको प्रसन्नता होती है और कितना भी दे पर संतोष नहीं होता, यही समझता है कि अभी कुछ नहीं दिया।

इंद्र– (आप ही आप) हृदय ! पत्थर के होकर तुम यह सब कान खोल के सुनो।

नारद—और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चला भक्ति उसमें ऐसी है जो सबका भूषण है, क्योंकि उसके बिना किसी की शोभा नहीं। फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबंध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को संदेह होता है कि इन्हें राजकाज देखने की छुट्टी कब मिलती है। सच है, छोटे जी के लोग थोड़े ही कामों में ऐसे घबड़ा जाते हैं मानो सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है. पर जो बड़े लोग हैं उनके सब काम महारंभ होते हैं तब भी उनके मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती, क्योंकि एक तो उनके उदार चित्त में धैर्य और अवकाश बहुत है, दूसरे उनके समय व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथायोग्य बँटे रहते हैं जिससे उन पर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं।

इंद्र—भला महाराज ! यह ऐसे दानी हैं तो उनकी लक्ष्मी कैसे स्थिर है ?

नारद—यही तो हम कहते हैं। निस्संदेह वह राजा कुल का कलंक है, जिसने बिना पात्र विचारे दान देते-देते सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया, आप कुछ उपार्ज्जन किया ही नहीं, जो था वह नाश हो गया और जहाँ प्रबंध है वहाँ धन की क्या कमती है। मनुष्य कितना धन देगा और याचक कितना लेंगे ?

इंद्र—पर यदि कोई अपने वित्त के बाहर माँगे या ऐसी वस्तु माँगे जिससे दाता की सर्वस्व-हानि होती हो, तो वह दे कि नहीं ?

नारद—क्यों नहीं। अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिए। जिसको धन पाकर सत्पात्र में उसके त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहाँ हुआ !

इंद्र—(आप ही आप) भला देखेंगे न।

नारद—राजन् ! मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है। वे तो अपने सहज सुभाव ही से सत्य और विचार

तथा दृढ़ता में ऐसे बँधे हैं कि सत्पात्र मिलने या बात पड़ने पर उनको स्वर्ण का पर्वत भी तिल सा दिखाई देता है। और उसमें भी हरिश्चंद्र--जिसका सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष, रानी और तलवार पर भी नहीं है। जो सत्यानुरागी ही नहीं है, भला उससे न्याय कब होगा, और जिसमें न्याय नहीं है, वह राजा ही काहे का है? कैसी भी विपत्ति या संकट पड़े और कैसी ही हानि वा लाभ हो, पर न्याय न छोड़े, वही धीर और वही राजा। और उस न्याय का मूल सत्य है।

इंद्र—तो भला वह जिसे जो देने को कहेगा वा जो करने को कहेगा वह करेगा?

नारद—क्या आप उसका परिहास करते हैं? किसी बड़े के विषय में ऐसी शंका ही उसकी निंदा है। क्या आपने उसका यह सहज साभिमान वचन नहीं सुना है?

चद टरै सूरज टरै, टरै जगतव्यौहार।
पै दृढ़ श्री हरिचंद को, टरै न सत्यविचार॥

इंद्र—(आप ही आप) तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हमको भी अच्छा उपाय मिला। (प्रकट) हाँ, पर आप यह भी जानते हैं कि क्या वह यह सब धर्म स्वर्ग लेने को करता है?

नारद—वाह! भला जो ऐसे हैं उनके आगे स्वर्ग क्या वस्तु है? क्या बड़े लोग धर्म स्वर्ग पाने को करते हैं? जो अपने निर्मल चरित्र से संतुष्ट है उनके आगे स्वर्ग कौन वस्तु है? फिर भला जिनके शुद्ध हृदय और सहज व्यवहार हैं, वे क्या यश वा स्वर्ग की लालच से धर्म करते हैं? वे तो आपके स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं और जिन लोगों को भगवान के चरणारविंद में भक्ति है वे क्या किसी कामना से धर्माचरण करते हैं? यह भी तो एक क्षुद्रता है कि इस लोक में एक देकर परलोक में दो की आशा रखना।

इंद्र—(आप ही आप) हमने माना की उसको स्वर्ग लेने की इच्छा न हो, तथापि अपने कर्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायगा।

नारद—और जिनको अपने किए शुभ अनुष्ठानों से आप संतोष मिल है उनके उस असीम आनंद के आगे आपके स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महातुच्छ हैं। क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं?

इंद्र—तथापि एक बेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।

नारद—राजन्! आपको यह सब सोचना बहुत अयोग्य है। ईश्वर ने आपको बड़ा किया है, तो आपको दूसरों को उन्नति और उत्तमता पर संतोष करना चाहिए। ईर्षा करना तो क्षुद्राशयों का काम है। महाशय वही है जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझे।

इंद्र—(आप ही आप) इनसे काम न होगा। (बात बहलाकर प्रगट) नहीं नहीं, मेरी यह इच्छा थी कि मैं भी उनके गुणों को अपनी आँखों से देखता। भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूँ जिससे उन्हें कुछ कष्ट हो।

नारद—(आप ही आप) अहा! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जिसका चित्त बड़ा है। अधिकार तो बड़ा है, पर चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं, वह आदर के योग्य नहीं है; परंतु जो कैसा भी दरिद्र है पर उसका चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है।

(द्वारपाल आता है)

द्वार०—महाराज! विश्वामित्रजी आए हैं।

इंद्र—(आप ही आप) हाँ, इनसे यह काम होगा। अच्छे अवसर पर आए। जैसा काम हो वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहिएँ। (प्रगट) हाँ हाँ, लिवा लाओ।

द्वार०—जो आज्ञा। [जाता है

(विश्वामित्रजी * आते हैं)

इंद्र—(प्रणामादि शिष्टाचार करके) आइए भगवन्, विराजिए।

(विश्वामित्र नारदजी को प्रणाम करके और इंद्र को आशीर्वाद देकर बैठते हैं)

* मृगचर्म, दाढ़ी जटा, हाथों में पवित्री और कमंडल, खड़ाऊँ पर चढ़े।

नारद—तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम को जाना है।

विश्वा०—यह क्या ? हमारे आते ही आप चले, भला ऐसी रुष्टता किस काम की ?

नारद—हरे हरे ! आप ऐसी बात सोचते हैं—राम-राम, भला आपके आने से हम क्यों जायँगे ? मै तो जाने ही को था कि इतने में आप आ गए।

इंद्र—(हँसकर) आपकी जो इच्छा।

नारद—(आप ही आप) हमारी इच्छा क्या, अब तो आप ही की यह इच्छा है कि हम जायँ, क्योंकि अब आपं तो विश्व के अमित्रजी से राजा हरिश्चंद्र को दुःख देने की सलाह कीजिएगा, तो हम उसके बाधक क्यों हों ? पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं, उतनी ही उनकी सत्य कीर्त्ति तपाए सोने की भाँति और चमकती है, क्योंकि विपत्ति बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती। (प्रगट) यद्यपि "जो इच्छा" आपने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन वचन नहीं कहते, क्योंकि इन वाक्यों से रूखापन झलकता है। मैं कुछ इसका ध्यान नहीं करता, केवल मित्रभाव से कहता हूँ। लो, जाता हूँ और यही आशीर्वाद देकर जाता हूँ कि तुम किसी को कष्टदायक मत होओ, क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं, सुख देना शोभा है।

(इंद्र कुछ लज्जित होकर प्रणाम करता है। नारदजी जाते हैं)

विश्वा०—यह क्यों ? आज नारद भगवान ऐसी जली-कटी क्यों बोलते थे ? क्या तुमने कुछ कहा था ?

इंद्र—नहीं तो, राजा हरिश्चंद्र का प्रसंग निकला था। सो उन्होंने उसकी बड़ी स्तुति की और हमारा उच्चपद का आदरणीय स्वभाव उस परकीर्त्ति को सहन न कर सका, इसमें कुछ बात ही बात ऐसा संदेह होता है कि वे रुष्ट हो गए।

विश्वा०—तो हरिश्चंद्र में कौन से ऐसे गुण हैं ?

(सहज ही भृकुटी चढ़ जाती है)

इंद्र—(ऋषि का भ्रूभंग देखकर चित्त में संतोष करके उनका क्रोध बढ़ाता हुआ) महाराज ! सिपारसी लोग चाहे जिसको बढ़ा दें, चाहे घटा दें, भला सत्यधर्म-पालन क्या हँसी-खेल है ? यह आप ऐसे महात्माओं ही का काम है, जिन्होंने घरबार को छोड़ दिया है। भला राज करके और घर में रहके मनुष्य क्या धर्म का हठ करेगा ! और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ती। इन्हीं बातों से तो नारदजी बिना बात ही अप्रसन्न हुए।

विश्वा०—मैं अभी देखता हूँ न। जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपने का अभिमान करेगा !

(क्रोधपूर्वक उठकर चला चाहते हैं कि परदा गिरता है)

द्वितीय अंक

स्थान—राजा हरिश्चंद्र का राजभवन

(रानी शैव्या[1] बैठी हैं और एक सहेली[2] बगल में खड़ी है)

रानी—अरी ! आज मैंने ऐसे बुरे-बुरे सपने देखे हैं कि जब से सोके उठी हूँ कलेजा काँप रहा है। भगवान् कुशल करें।

सखी—महाराज के पुण्य-प्रताप से सब कुशल ही होगा, आप कुछ चिंता न करें। भला क्या सपना देखा है, मैं भी सुनूँ।

रानी—महाराज को तो मैंने सारे अंग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बाल खोले, और (आँखों में आँसू भरकर) रोहिताश्व को देखा है कि उसे साँप काट गया है।

सखी—राम ! राम ! भगवान् सब कुशल करेगा। भगवान् करे रोहिताश्व जुग-जुग जिए और जब तक गंगा-यमुना में पानी है, आपका सोहाग अचल रहे। भला आपने इसकी शांति का भी कुछ उपाय किया है ?

रानी—हाँ, गुरुजी से तो सब समाचार कहला भेजा है। देखो, वह क्या करते हैं।

सखी—हे भगवान् ! हमारे महाराज, महारानी, कुँवर सब कुशल से रहें, मैं आँचल पसार के यह वरदान माँगती हूँ।

(ब्राह्मण[3] आता है)

ब्रा०—(आशीर्वाद देता है)

---

१ लहँगा, साड़ी, सब जनाना गहिना, बंदी, वेना इत्यादि।

२ साड़ी, सादा सिंगार।

३ धोती, उपरना, सिर पर चुंदी वा सिर पर बाल, डाढ़ी, हाथों में पवित्री, तिलक, खड़ाऊँ।

स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु
गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु ।
ऐश्वर्यमस्तु कुशलास्तु रिपुक्षयोऽस्तु
सतानवृद्धिसहिता हरिभक्तिरस्तु ॥[1]

(रानी हाथ जोड़ती है)

आ०—महाराज गुरुजी ने यह अभिमंत्रित जल भेजा है । इसे महारानी पहले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा सा पान भी कर लें और यह रक्षाबंधन भेजा है, इसे कुमार रोहिताश्व की दहनी भुजा पर बाँध दें, फिर इस जल से मैं मार्जन करूँगा।

रानी—(नेत्रों में जल लगाकर और कुछ मुँह फेरकर आचमन करके) मालती ! यह रक्षाबंधन तू सम्हाल के अपने पास रख, जब रोहिताश्व मिले उसके दहिने हाथ पर बाँध दीजिओ ।

सखी—जो आज्ञा । (रक्षाबंधन अपने पास रखती है)

आ०—तो अब आप सावधान हो जायँ, मैं मार्जन कर लूँ ।

रानी—(सावधान होकर) जो आज्ञा ।

आ०—(दूर्वा से मार्जन करता है)

देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
गन्धर्वाः किन्नरा नागा रक्षां कुर्व्वन्तु ते सदा ॥
पितरो गुह्यका यक्षा देव्यो भूताश्च मातरः ।
सर्व्वे त्वामभिषिञ्चन्तु रक्षां कुर्व्वन्तु ते सदा ॥
भद्रमस्तु शिवञ्चास्तु महालक्ष्मीः प्रसीदतु ।
पतिपुत्रयुता साध्वी जीव त्वं शरदां शतम् ॥[2]

---

१. तुम्हारा शुभ हो, भला हो, दीर्घायु हो, गाय-घोड़ा-हाथी-धन-अन्न की वृद्धि हो, संतान की बढ़ती के साथ कृष्ण-भक्ति बनी रहे ।

२. ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण तुम्हारा अभिषिंचन करें अर्थात् सुरक्षित रखें । गंधर्व, किन्नर तथा नागगण तुम्हारी सर्वदा रक्षा करें । पितरगण गुह्यक (कुबेर के कोष के रक्षक); यक्ष (कुबेर के सिपाही), देवियाँ, भूतगण, सातों माताएँ अर्थात् शक्तियाँ सभी तुम्हारा मार्जन करें तथा तुम्हारी सर्वदा रक्षा करें । शुभ हो और कुशल हो । महालक्ष्मी तुम पर प्रसन्न हो । हे सती, तुम पति-पुत्र के साथ सौ वर्ष तक जीवित रहो ।

(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंककर)

यत्पापं रोगमशुभं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु ।[1]

(फिर रानी पर मार्जन करके)

यन्मङ्गलं शुभं सौभाग्यं धनधान्यमारोग्यम्बहुपुत्रत्व तत्सर्व्वमीश-प्रसादात् ब्राह्मणवचनात् स्वस्त्यस्तु ॥[2]

(मार्जन करके फूल-अक्षत रानी के हाथ में देता है)

रानी—(हाथ जोड़कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है) महाराज, गुरुजी से मेरी ओर से विनती करके दंडवत कह दीजिएगा ।

ब्रा०—जो आज्ञा । [आशीर्वाद देकर जाता है

रानी—आज महाराज अब तक सभा में नहीं आए ?

सखी—अब आते होंगे, पूजा में कुछ देर लगी होगी ।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

[राग भैरव]

प्रगटहु रवि-कुल रवि निसि बीती प्रजा-कमल-गन फूले ।
मंद परे रिपुगन तारा सम जन-भय-तम उनमूले ॥
नसे चोर लंपट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो ।
मागध-बंदी-सूत-चिरैयन मिलि कल रोर मचायो ॥
तुव जस-सीतल-पौन परसि चटकी गुलाब की कलियाँ ।
अति सुख पाइ असीस देत सोइ करि अँगुरिन चट अलियाँ ॥
भए धरम मैं थित सब द्विजजन प्रजा काज निज लागे ।
रिपु-जुवती-मुख-कुमुद मंद, जन-चक्रवाक अनुरागे ॥
अरघ सरिस उपहार लिए नृप ठाढ़े तिन कहँ तोखौ ।
न्याय कृपा सों ऊँच नीच सम समुझि परसि कर पोखौ ॥

(नेपथ्य में से बांजे की धुनि सुन पड़ती है)

---

१. (जिस प्रकार जल फेंका गया है उसी प्रकार) तुम्हारा जो पाप हो और अमंगल हो वह दूर चला जाय ।

२. जो कुछ मंगल, शुभ, सौभाग्य, धन-धान्य, स्वस्थता तथा संतानवृद्धि है, सब भगवान की कृपा तथा ब्राह्मण के आशीर्वाद से तुम्हारा हो

रानी—महाराज ठाकुरजी के मंदिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बंदी लोग भी गाते आते हैं।

सखी—आप कहती हैं चले ? वह देखिए आ पहुँचे, कि चले ?

(रानी घबड़ाकर आदर के हेतु उठती है)

([1]परिकर-सहित महाराज हरिश्चन्द्र[2] आते हैं। रानी प्रणाम करती है और सब लोग यथास्थान बैठते हैं)

हरि०—(रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये ! आज तुम्हारा मुखचंद्र मलिन क्यों हो रहा है ?

रानी—पिछली रात मैंने कुछ दुःस्वप्न ऐसे देखे हैं जिनसे चित्त व्याकुल हो रहा है।

हरि०—प्रिये ! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है, पर तुम तो वीर-कन्या, वीर-पत्नी और वीर माता हो, तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों ?

रानी—नाथ ! मोह से धीरज जाता रहता है।

हरि०—तो गुरुजी से कुछ शांति करने को नहीं कहलाया !

रानी—महाराज ! शांति तो गुरुजी ने कर दी है।

हरि०—तब क्या चिंता है ? शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रखो, सब कल्याण होगा। सदा सर्वदा सहज मंगल-साधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के संतोष करना चाहिए।

रानी—महाराज ! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने ग्रंथों में देखा है ?

---

१ राजा के परिकर में प्रथम मंत्री नीमा, पैजामा, कमरबंद, दुशाला, पगड़ी, सिरपेच सजे। दो मुसाहिब साधारण सभ्यों के वेष में। एक निशान-वाला सेवक के भेष में। निशान पर सूर्य के नीचे "सत्ये नास्ति भयं क्वचित्" लिखा हुआ। चार शस्त्रधारी अंगरक्षक, दो सेवक।

२ सफेद वा केसरी जामा, पैजामा, कमरबंद, मर्दाना सब गहना, सिर पर किरीट वा पगडी, सिरपेच, तुर्रा, हाथ में तलवार, दुशाला या कोई चमकता रूमाल ओढ़े।

हरि०—(रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो कुछ हमने भी देखा है। (चिंतापूर्वक स्मरण करके) हाँ, यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्यासाधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जानकर उनको बचाने गया हूँ तो वह मुझी से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैंने उसे मनाया है तो उसने मुझसे मेरा सारा राज्य माँगा है, मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया।

(इतना कहकर अत्यंत व्याकुलता नाट्य करता है)

रानी—नाथ ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गए ?

हरि०—मैं यह सोचता हूँ कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहाँ पाऊँगा और बिना उसकी थाती उसे सौंपे भोजन कैसे करूँगा ?

रानी—नाथ ! क्या स्वप्न के व्यवहार को भी आप सत्य मानिएगा ?

हरि०—प्रिये ! हरिश्चंद्र की अर्द्धांगिनी होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। हा ! भला तुम ऐसी बात मुँह से निकालती हो ! स्वप्न किसने देखा है ? मैंने न। फिर क्या ? स्वप्नसंसार अपने काल में असत्य है, इसका कौन प्रमाण है ? और जो अब असत्य कहो, तो मरने के पीछे तो यह संसार भी असत्य है, फिर उसमें परलोक के हेतु लोग धर्माचरण क्यों करते हैं ? दिया सो दिया, क्या स्वप्न में, क्या प्रत्यक्ष ?

रानी—(हाथ जोड़कर) नाथ ! क्षमा कीजिए, स्त्री की बुद्धि ही कितनी !

हरि—(चिंता करके) पर मैं अब करूँ क्या ! अच्छा ! प्रधान ! नगर में डौंड़ी पिटवा दो कि राज्य को सब लोग आज से अज्ञातनाम-गोत्र ब्राह्मण का समझें, उसके अभाव में हरिश्चंद्र उसके सेवक की भाँति उसकी थाती समझके राजकार्य्य करेगा और दो मुहर राजकाज के हेतु बनवा लो, एक पर "अज्ञातनाम-गोत्र ब्राह्मण महाराज का सेवक हरिश्चंद्र" और दूसरे पर "राजाधिराज अज्ञात-नाम-गोत्र ब्राह्मण महाराज" खुदा रहे और आज से राज-काज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे। देश के राजाओं और बड़े-बड़े कार्य्याधीशों

को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चंद्र ने स्वप्न में अज्ञातनाम-गोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है, इससे आज से उसका राज्य हरिश्चंद्र मंत्री की भाँति सँभालेगा।

(द्वारपाल आता है)

द्वार०—महाराजाधिराज ! एक बड़ा कोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है।

हरि०—(घबड़ाकर) अभी आदरपूर्वक ले आओ।

द्वार०—जो आज्ञा। [जाता है

हरि०—यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात है।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्र[1] आते हैं)

हरि०—(आदरपूर्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज ! पधारिए, यह आसन है।

विश्वा०—बैठे, बैठे, बैठ चुके, बोल, अभी तैंने मुझे पहिचाना कि नहीं ?

हरि०—(घबड़ाकर) महाराज ! पूर्वपरिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

विश्वा०—(क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम ! तू काहे को पहिचानेगा। सच है रे सूर्य्यकुलकलंक ! तू क्यों पहिचानेगा, धिक्कार है तेरे मिथ्या-धर्माभिमान को, ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट ! तैं भूल गया ; कल पृथ्वी किसको दान दी थी ? जानता नहीं कि मैं कौन हूँ ?

"जातिस्वयग्रहणदुर्ललितैकविप्रं
दृप्यद्वशिष्ठसुतकाननधूमकेतुम्।
सर्गान्तराहरणभीतजगत्कृतान्तं
चाण्डालयाजिनमवैषि न कौशिकं माम्॥"[2]

---

१. जटा और डाढ़ी बढ़ाए, खड़ाऊँ पहने, गले में मृगछाला बाँधे, धोती पर बाघ की मोटी क़रधनी, एक हाथ में कुश और कमंडल।

२. अपनी जाति आप ग्रहण करने वाले, प्रसिद्ध क्रोधी ब्राह्मण, वशिष्ठ के दर्पवान पुत्र-रूपी जंगल के लिए अग्नि रूप, दूसरी सृष्टि बनाने से भयभीत संसार के लिये यम समान और चांडाल त्रिशंकु के पुरोहित मुझ कौशिक को नहीं पहिचानता।

हरि०—(पैरों पर गिरके बड़े विनय से) महाराज ! भला आपको त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानेगा ?

" अन्नक्षयादिषु तथा विहितात्मवृत्ति
राजप्रतिग्रहपराङ्मुखमानसं त्वाम् ।
आडीबकप्रधनकम्पितजीवलोकं
कस्तेजसां च तपसा च निधिं न वेत्ति ॥"[1]

विश्वा०—(क्रोध से) सच है रे पाप पाषंड, मिथ्यादानवीर ! तू क्यों न मुझे "राज-प्रतिग्रह-पराङ्मुख" कहेगा ; क्योंकि तैंने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान दी है, ठहर, ठहर देख, इस झूठ का कैसा फल भोगता है । हा ! इसे देखकर क्रोध से जैसे मेरी दाहिनी भुजा शाप देने को उठती है वैसे ही जातिस्मरण संस्कार से बाईं भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है । (अत्यंत क्रोध से लंबी साँस लेकर और बाँह उठाकर) अरे ब्रह्मा ! सम्हाल अपनी सृष्टि को, नहीं तो परम तेजपुंज दीर्घ-तपोवर्द्धित मेरे आज इस असह्य क्रोध से सारा संसार नाश हो जायगा, अथवा संसार के नाश ही से क्या ? ब्रह्मा का तो गर्व उसी दिन मैंने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई, आज इस राजकुलांगार का अभिमान चूर्ण करूँगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत् में दानी प्रसिद्ध हो रहा है ।

हरि०—(पैरों पर गिरके) महाराज ! क्षमा कीजिए, मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था, सारी पृथ्वी आपकी, मैं आपका, भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुँह से निकालते हैं ! (ईषत् क्रोध से) और आप बारंबार मुझे झूठा न कहिए । सुनिए, मेरी यह प्रतिज्ञा है—

"चंद टरै सूरज टरै, टरै जगत ब्यौहार ।
पै दृढ़ श्री हरिचंद को, टरै न सत्य विचार ॥"

---

१. अकालादि समय में निकृष्ट वृत्ति धारण करने वाले, राजाओं का दान न लेने वाले, आडी (वशिष्ठ) तथा बक (विश्वामित्र) के युद्ध से संसार को कंपित करने वाले और तेज़ तथा तप के कोष आप को कौन नहीं जानता ?

विश्वा०—(क्रोध और अनादर पूर्वक हँसकर) हहहह ! सच है, सच है रे मूढ़। क्यों नहीं, आखिर सूर्यवंशी है। तो दे हमारी पृथ्वी।

हरि०—लीजिए, इसमें विलंब क्या है। मैंने तो आपके आगमन के पूर्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया है। (पृथ्वी की ओर देख कर)

जेहि पाली इक्ष्वाकु सो अबलौं रवि-कुल राज।
ताहि देत हरिचंद नृप विश्वामित्रहि आज॥
वसुधे ! तुम बहु सुख कियो मम पुरुषन की होय।
धरमबद्ध हरिचंद को छमहु सु परबस जोय॥

विश्वा०—(आप ही आप) अच्छा ! अभी अभिमान दिखा ले। तो मेरा नाम विश्वामित्र, जो तुझको सत्य-भ्रष्ट करके न छोड़ा और लक्ष्मी से तो हो ही चुका है। (प्रगट) स्वस्ति अब इस महादान की दक्षिणा कहाँ है ?

हरि०—महाराज ! जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

विश्वा०—भला भला दस सहस्र स्वर्णमुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी !

हरि०—जो आज्ञा। (मंत्री से) मंत्री ! दस हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ।

विश्वा०—(क्रोध से) "मंत्री ! दस हजार स्वर्णमुद्रा अभी लाओ" मंत्री कहाँ से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है ? झूठा कहीं का ! देना नहीं था तो मुँह से कहा क्यों ? चल, मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा।

हरि०—(हाथ जोड़ कर विनय से) महाराज, ठीक है। खजाना अब सब आपका है, मैं भूला, क्षमा कीजिए। क्या हुआ खजाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है।

विश्वा०—एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्मदंड गिराऊँगा। देख, केवल एक मास की अवधि है।

हरि०—महाराज, मैं ब्रह्मदंड से उतना नहीं डरता जितना सत्य-दंड से। इससे—

बेंचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मंद।
रखिहै निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचंद॥

(आकाश से फूल की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है)

(जवनिका गिरती है)

— ——

तृतीय अंक में अंकावतार

स्थान—वाराणसी का बाहरी प्रांत तालाब

(पाप[1] आता है)

पाप—(इधर-उधर दौड़ता और हाँफता हुआ) मरे रे मरे ! जले रे जले !! कहाँ जायँ, सारी पृथ्वी तो हरिश्चंद्र के पुण्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते। सुना है कि राजा हरिश्चंद्र काशी गए हैं, क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हमको तुमने दान दे दी है, इससे पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेंचकर हमसे उऋण नहीं हो सकते यह बात जब हरिश्चंद्र ने सुनी तो बहुत ही घबराए और सोच-विचार कर कहा कि बहुत अच्छा महाराज, हम काशी में अपना शरीर बेचेंगे, क्योंकि शास्त्रों में मिला है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है। यह सुनकर हम भी दौड़े कि चलो हम भी काशी चलें, क्योंकि जहाँ हरिश्चंद्र का राज्य न होगा वहाँ हमारे प्राण बचेंगे, सो यहाँ और भी उत्पात हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ स्नान, पूजा, जप, पाठ, दान, धर्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लगे रहते हैं कि हमारी मानो जड़ ही खोद डालेंगे। रात-दिन शंख, घंटा की घनघोर ध्वनि के साथ वेद की धुनि मानो ललकार-ललकार के हमारे शत्रु धर्म की जय मनाती है और ताप से कैसे भी मनुष्य क्यों न तपा हो, भगवती भागीरथी के जलकण मिले वायु से उसका हृदय एक साथ ही शीतल हो जाता है। इसके उपरांत शिशिशि..... ध्वनि अलग मारे डालती है। हाय ! कहाँ जायँ क्या करें ? हमारी तो संसार से मानों जड़ ही कटी जाती है, भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है, पर

---

१ काजल सा रंग, लाल नेत्र, महाकुरूप, हाथ में नंगी तलवार लिए नीला काछा काछे।

यहाँ तो मानो हमारा राज ही नहीं, कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो यहाँ आया कि गति भई !

(नेपथ्य में)

सच है "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः"[1]

पाप—अरे रे ! यह कौन महा भयंकर भेष अंग में भभूत पोते, एड़ी तक जटा लटकाए, लाल-लाल आँख निकाले साक्षात् काल की भाँति त्रिशूल घुमाता चला आता है। प्राण ! तुम्हें जो अपनी रक्षा करनी हो तो भागो पाताल में, अब इस समय भूमंडल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है।

(भागता हुआ जाता है)

(भैरव[2] आते हैं)

भैरव—सच है "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः।" देखो इतना बड़ा पुण्यशील राजा हरिश्चंद्र भी अपनी आत्मा और पुत्र बेचने को यहीं आया है ! अहा ! धन्य है सत्य ! आज जब भगवान् भूतनाथ राजा हरिश्चंद्र का वृत्तांत भवानी से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गए और रोमांच होने से सब शरीर के भस्मकण अलग-अलग हो गए। मुझको आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्वदा राजा हरिश्चंद्र की अंगरक्षा करना; इससे चलूँ मैं भी भेस बदलकर भगवान् की आज्ञापालन में प्रवृत्त होऊँ।

(जाते हैं जवनिका गिरती है)

---

१. जिसकी कहीं भी गति नहीं है उसकी काशी में गति है।

२. महादेवजी का सा सिंगार, तीन नेत्र, नीला रंग, एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में प्याला।

तृतीय अंक

(स्थान—काशी के घाट-किनारे की सड़क)

(महाराज हरिश्चंद्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं)

हरि०—देखो काशी भी पहुँच गए। अहा! धन्य है काशी! भगवति वाराणसि! तुम्हें अनेक प्रणाम है। अहा! काशी की कैसी अनुपम शोभा है।

"चारहु आश्रम बर्न बसैं मनि
कचन धाम अकासविभासिका।
सोभा नही कहि जाय कछू बिधिनै
रची मानो पुरीन की नासिका॥
आपु बसैं 'गिरिधारन जू' तट
देवनदी बर वारि बिलासिका।
पुन्य प्रकासिका पाप-बिनासिका
हीय-हुलासिका सोहत कासिका॥"
"बसैं बिंदुमाधव बिसेसरादि देव सबै
दरसन ही ते लागै जममुख मसी है।
तीरथ अनादि पचगंगा मनिकर्निकादि
सात आवरण मध्य पुन्यरूपी घसी है॥
'गिरिधरदास' पास भागीरथी सोभा देत
जाकी धार तोरैं आसु कर्मरूप रसी है।
ससी सम जसी असी बरना में बसी पाप
खसी हेतु असी ऐसी लसी बारानसी है॥"
"रचित प्रभा सी भासी अवलि मकानन की
जिनमें अकासी फबै रतन-नकासी है।
फिरैं दास-दासी बिप गृही औ सन्यासी लसैं
बरं गुनरासी देवपुरी हू न जासी है॥
'गिरिधरदास' विस्व कीरति बिलासी रमा
हासी लो उ सो जाकी जगत हुलासी है॥"

खासी परकासी पुनवाँसी चंद्रिका सी जाके
बासी अबिनासी अघनासी ऐसी कासी है ॥"

देखो ! जैसा ईश्वर ने यह सुंदर अँगूठी के नगीने सा नगर बनाया है वैसी ही नदी भी इसके लिये दी है। धन्य गंगे !

"जम की सब त्रास बिनास करी मुख ते निज नाम उचारन में।
सब पाप प्रतापहिं दूर दर्‌यो तुम आपन आप निहारन में॥
अहो गंग अनग के शत्रु करे बहु, नेक जलै मुख डारन में।
'गिरिधारनजू' कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारन में॥"

कुछ महात्म ही पर नहीं, गंगाजी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है ! अहा !

नव उज्वल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच-बिच छहरति, बूँद मध्य मुक्ता-मनि पोहति॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत॥
सुभग स्वर्ग-सोपान-सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान बिबिध भय दूर मिटावत॥
श्रीहरिपद-नख-चद्रकांत-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमडल-मंडन, भव-खंडन सुर-सरवस॥
शिव सिर-मालति-माल, भगीरथ नृपति-पुन्य-फल।
ऐरावत-गज गिरिपति-हिम-नग कंठहार कल॥
सगर-सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हू नहिं तजी, रही अकम लपटाई॥
कहूँ बँधे नव घाट, उच्च गिरिवर-सम सोहत।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत॥
धवल धाम चहुँ ओर फहरत धुजा पताका।
घहरत घंटा धुनि धमकत धौंसा करि साका॥
मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी-नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज, कहुँ जोगी ध्यान लगावत॥
कहुँ सुंदरी नहात नीर कर-जुगल उछारत।

भुज अंबुज मिलि मुक्तगुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
धोवत सुंदरि बदन करन अति ही छबि पावत।
बारिधि नाते ससि कलक मनु कमल मिटावत ॥
सुंदरि ससि-मुख नीर मध्य इमि सुंदर सोहत।
कमलबेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जहीं जहँ जात रहत तितही ठहराई।
गंगा छबि हरिचंद कछू बरनी नहिं जाई ॥

(कुछ सोचकर) पर हा ! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जाना पड़ता है।

"अशनं वसनं वासो येषां चैवाविधानतः।
मगधेन समा काशी गंगाप्यगारवाहिनी ॥"[1]

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिए दुखी होता है। हा ! कैसे कष्ट की बात है, राज-पाट, धन-धाम सब छूटा, अब दक्षिणा कहाँ से देंगे। क्या करें ! हम सत्य-धर्म कभी छोड़ेंगे नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे और जो वह शाप न भी देगें तो क्या ? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग सकते। क्या करें ? कुबेर को जीतकर धन लावें ? पर कोई शस्त्र भी तो नहीं है; तो क्या किसी से माँगकर दें ? पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं कि किसी के आगे हाथ पसारे, फिर ऋण काढ़ें ? पर देंगे कहाँ से ? हा ! देखो, काशी में आकर लोग संसार के बंधन से छूटते हैं, पर हमको यहाँ भी हाय हाय मची है। हा ! पृथ्वी ! तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं अपना कलंकित मुँह फिर किसी को न दिखाऊँ ! (आतंक से) पर यह क्या ? सूर्य्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे ये कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिए बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें। (कुछ सोचकर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही नहीं काम करती। क्या करें ? हमें तो संसार सूना देख पड़ता है।

---

१. जिसका भोजन, वसन तथा निवास ठीक नहीं है उसके लिए काशी भी मगध के समान है और गंगा भी ताप देनेवाली है।

(चिंता करके एक साथ हर्ष से) वाह अभी तो स्त्री, पुत्र और हम तीन-तीन मनुष्य तैयार हैं। क्या हम लोगों के बिकने से दस सहस्र स्वर्णमुद्रा भी न मिलेगी ? तब फिर किस बात का इतना सोच ? न जाने बुद्धि इतनी देर तक कहाँ सोई थी; हमने तो पहले ही विश्वामित्र से कहा था—

बेचि देह दारा सुअन, होय दास हूँ मद।
रखिहै निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचंद॥

(नेपथ्य में) तो क्यों नहीं जल्दी अपने को बेचता ? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे-पीछे दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें ?

हरि०— अरे मुनि तो आ पहुँचे। क्या हुआ आज उनसे एक दो दिन की अवधि और लेंगे।

(विश्वामित्र आते हैं)

विश्वा०—(आप ही आप) हमारी विद्या सिद्धि हुई भी इसी दुष्ट के कारण सब बहक गई। कुछ इंद्र के कहने ही पर नहीं, हमारा इस पर स्वतः भी क्रोध है, पर क्या करें, इसके सत्य, धैर्य और विनय के आगे हमारा क्रोध कुछ काम नहीं करता। यद्यपि यह राजभ्रष्ट हो चुका, पर जब तक इसे सत्यभ्रष्ट न कर लूँगा तब तक मेरा संतोष न होगा। (आगे देखकर) अरे! यही दुरात्मा (कुछ रुककर) वा, महात्मा हरिश्चंद्र हैं ? (प्रगट) क्यों रे! आज महीने में कै दिन बाकी हैं ? बोल कब दक्षिणा देगा ?

हरि०—(घबड़ाकर) अहा ! महात्मा कौशिक भगवन् ! प्रणाम करता हूँ। (दंडवत करता है)।

विश्वा०—हुई प्रणाम, बोल तैंने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया ? आज महीना पूरा हुआ, अब मैं एक क्षण भर भी न मानूँगा। दे अभी, नहीं तो—(शाप के वास्ते कमंडल से जल हाथ में लेते हैं)

हरि०—(पैरों पर गिरकर) भगवन् ! क्षमा कीजिए। यदि आज सूर्यास्त के पहिले मैं न दूँ तो जो चाहे कीजिएगा। मैं अभी

अपने को बेचकर मुद्रा ले आता हूँ।

विश्वा०—(आप ही आप) वाह रे महानुभावता (प्रगट) अच्छा आज साँझ तक और सही। साँझ को न देगा तो मैं शाप ही न दूँगा, वरंच त्रैलोक्य में आज ही विदित कर दूँगा कि हरिश्चंद्र सत्य-भ्रष्ट हुआ।

(जाते हैं)

हरि०—भला किसी तरह मुनि से प्राण बचे। अब चलें अपना शरीर बेचकर दक्षिणा देने का उपाय सोचें। हा! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल-लाल आँखें नहीं देखी हैं। (आगे चलकर) अरे क्या बाज़ार में आ गए, अच्छा, (सिर पर तृण[1] रखकर) अरे सुनो भाई सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारो, हम किसी कारण से अपने को पाँच हज़ार मोहर पर बेचते हैं, किसी को लेना हो तो लो। (इसी तरह कहता हुआ इधर उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्य-विक्रय को अनुचित जानकर हम दूसरे को दंड देते थे, पर आज वही कर्म हम आप करते हैं। दैव बली है। ("अरे सुनो भाई" इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है। ऊपर देखकर) क्या कहा? "क्यों तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो?" आर्य यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा? "तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे?" इसका क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वह करेंगे; समझते सब कुछ हैं, पर इस अवसर पर समझना कुछ काम नहीं आता, और जैसे स्वामी रखेगा वैसे रहेंगे। जब अपने को बेच ही दिया तब इसका क्या विचार है। (ऊपर देखकर) क्या कहा? "कुछ दाम कम करो।" आर्य हम लोग तो क्षत्रिय हैं, हम दो बात कहाँ से जानें। जो कुछ ठीक था कह दिया।

---

[1] उस काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तो सिर पर तृण रखता था।

(नेपथ्य में से)

आर्यपुत्र ! ऐसे समय में हमको छोड़े जाते हो ! तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रहके क्या करूँगी ? स्त्री को अर्द्धांगिनी कहते हैं, इससे पहिले बायाँ अंग बेच लो तब दाहिना अंग बेचो।

हरि०—(सुनकर बड़े शोक से) हा ! रानी की यह दशा इन आँखों से कैसे देखी जायगी ?

(सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)

शैव्या—कोई महात्मा कृपा करके हमको मोल ले तो बड़ा उपकार हो।

बालक—अमको बी कोई मोल ले तो बला उपकाल ओ।

शैव्या—(आँखों में आँसू भरकर) पुत्र ! चंद्र-कुल-भूषण महाराज वीरसेन का नाती और सूर्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू क्यों ऐसे कातर वचन कहता है। मैं अभी जीती हूँ। (रोती है)

बालक—(माँ का अंचल पकड़ के) माँ ! तुमको कोई मोल लेगा तो अमको बी मोल लेगा। आँ आँ माँ लोती काए को औ। (कुछ रोना सा मुँह बनाके शैव्या का आँचल पकड़के झूलने लगता है)

शैव्या—(आँसू पोंछकर) मेरे भाग्य से पूछ।

हरि०—अहह ! भाग्य ! यह भी तुम्हें देखना था ? हा ! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई, हम उनको कुछ धीरज भी न दे आए। उनकी अब कौन गति होगी। हा ! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो। अब यह देखना पड़ा। हृदय ! तुम इस चक्रवर्त्ती की सेवायोग्य बालक और स्त्री को बिकता देखकर टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ? (बारंबार लंबी साँस लेकर आँसू बहाता है)

शैव्या—('कोई महात्मा' इत्यादि कहती हुई ऊपर देखकर) क्या कहा ? "क्या-क्या करोगी ?" पर-पुरुष से संभाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और सब सेवा करूँगी। (ऊपर

देखकर) क्या कहा ? "इतने मोल पर कौन लेगा ?" आर्य ! कोई साधु ब्राह्मण महात्मा कृपा करके ले ही लेंगे ।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)

उपा०—क्यों रे कौंडिन्य, सच ही दासी बिकती है ?

बटु०—हाँ गुरुजी, क्या मैं झूठ कहूँगा ? आप ही देख लीजिएगा ।

उपा०—तो चल, आगे-आगे भीड़ हटाता चल । देख, धाराप्रवाह की भाँति कैसे सब कामकाजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं, भीड़ के मारे पैर धरने की जगह नहीं हैं । और मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता ।

बटु०—(आगे-आगे चलता हुआ) हटो भाई हटो (कुछ आगे बढ़कर) गुरुजी, यह जहाँ भीड़ लगी है वहीं होगी ।

उपा०—(शैव्या को देखकर) अरे ! यही दासी बिकती है ?

(शैव्या 'अरे कोई हमको मोल ले' इत्यादि कहती और रोती है । बालक भी माता की भाँति तोतली बोली से कहता है)

उपा०—पुत्री ! कहो तुम कौन-कौन सेवा करोगी ?

शैव्या—पर-पुरुष से संभाषण और उच्छिष्ट-भोजन छोड़कर और जो-जो कहिएगा, सब सेवा करूँगी ।

उपा०—वाह ठीक है । अच्छा, लो यह सुवर्ण । हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र की अग्नि की सेवा से घर के कामकाज नहीं कर सकती सो तुम सम्हालना ।

शैव्या—(हाथ फैलाकर) महाराज ! आपने बड़ा उपकार किया ।

उपा०—(शैव्या को भली भाँति देखकर आप ही आप) अहा ! यह निस्संदेह किसी बड़े कुल की है । इसका मुख सहज लज्जा से ऊँचा नहीं होता और दृष्टि बराबर पैर ही पर है । जो बोलती है वह धीरे-धीरे और बहुत सम्हाल के बोलती है । हा ! इसकी यह गति क्यों हुई ! (प्रगट) पुत्री ! तुम्हारे पति हैं न ?

(शैव्या राजा की ओर देखती है)

हरि०—(आप ही आप दुःख से) अब नहीं हैं । पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हा !

उपा०—(राजा को देखकर आश्चर्य से) अरे यह विशालनेत्र, प्रशस्त वक्षःस्थल, और संसार की रक्षा करने के योग्य लंबी-लंबी भुजावाला कौन मनुष्य है, और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रखा है ? (प्रगट) महात्मा तुम हमको अपने दुख का भागी समझो और कृपापूर्वक अपना सब वृत्तांत कहो।

हरि०— भगवन् ! और तो विदित करने का अवसर नहीं है, इतना ही कह सकता हूँ कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई।

उपा०—तो हमसे धन लेकर आप शीघ्र ही ऋण-मुक्त हूजिए !

हरि०—(दोनों कानों पर हाथ रखकर) राम-राम ! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है। आपसे धन लेकर हमारी कौन गति होगी !

उपा०—तो पाँच हजार मोहर पर आप दोनों में से जो चाहे सो हमारे संग चले।

शैव्या—(राजा से हाथ जोड़कर) नाथ ! हमारे आछत आप मत बिकिए, जिसमें हमको अपनी आँख से यह न देखना पड़े, हमारी इतनी विनती मानिए। (रोती है)

हरि०—(आँसू रोककर) अच्छा ! तुम्ही जाओ। (आप ही आप) हाँ ! यह वज्रहृदय हरिश्चंद्र ही का है कि अब भी नहीं विदीर्ण होता !

शैव्या—(राजा के कपड़े में सोना बाँधती हुई) नाथ ! अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे। (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य्य ! आप क्षण भर क्षमा करें तो मैं आर्य्यपुत्र का भली भाँति दर्शन कर लूँ। फिर यह मुख कहाँ और मैं कहाँ।

उपा०—हाँ ! हाँ ! मैं जाता हूँ। कौंडिन्य यहाँ है, तुम उसके साथ आना। [जाता है

शैव्या—(रोकर) नाथ ! मेरे अपराधों को क्षमा करना।

हरि०—(अत्यन्त घबड़ाकर) अरे अरे विधाता ! तुझे यही करना था ! (आप ही आप) हा ! पहिले महारानी बना कर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बदा था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान् सूर्य का भी मुख मलीन हो रहा है (रोता हुआ प्रगट रानी से) प्रिये ! सर्व भाव से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करना।

शैव्या—(रोकर) नाथ ! जो आज्ञा।

बटु०—उपाध्याय जी गए, अब चलो जल्दी करो।

हरि०—(आँखों में आँसू भरके) देवी ! (फिर रुककर अत्यंत सोच से आप ही आप) हाय ! अब मैं देवी क्यों कहता हूँ, अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया। (धैर्य से) देवी, उपाध्याय की आराधना भली भाँति करना और उनके सब शिष्यों से भी सुहृद-भाव रखना, ब्राह्मण की स्त्री की प्रीति-पूर्वक सेवा करना, बालक का यथासंभव पालन करना और अपने धर्म और प्राण की रक्षा करना। विशेष हम क्या समझावें, जो-जो दैव दिखावे उसे धीरज से देखना। (आँसू बहते हैं)

शैव्या—जो आज्ञा। (राजा के पैरों पर गिर के रोती है)

हरि०—(धैर्यपूर्वक) प्रिये, देर मत करो, बटुक घबड़ा रहे हैं।

(शैव्या उठकर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे-धीरे चलती है)

बालक—(राजा से) पिता, मा कआँ जाती ऐं ?

हरि०—(धैर्य से आँसू रोककर) जहाँ हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बालक—(बटुक से) अले मा को मत ले जा। (माँ का आँचल पकड़के खींचता है)

बटु०—(बालक को ढकेलकर) चल-चल देर होती है।

(बालक ढकेलने से गिरकर रोता हुआ उठकर अत्यंत क्रोध और करुणा से माता-पिता की ओर देखता है)

हरि०—ब्राह्मण देवता, बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होना चाहिये। (बालक को उठाकर धूर पोंछ के मुँह चूमता हुआ) पुत्र, मुझ चांडाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए। जाओ माता के संग, मुझ भाग्यहीन के साथ रहकर क्या करोगे ? (रानी से) प्रिये, धैर्य्य धरो। अपना कुल और जाति स्मरण करो। अब जाओ, देर होती है।

(रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं)

हरि०—धन्य हरिश्चंद्र ! तुम्हारे सिवाय और ऐसा कठोर हृदय किसका होगा ? संसार में धन और जन छोड़कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं, पर तुमने उसका भी त्याग किया।

(विश्वामित्र आते हैं और हरिश्चन्द्र पैर पर गिरकर प्रणाम करता है)

विश्वा०—ला, दे दक्षिणा ! अब साँझ होने में कुछ देर नहीं है।

हरि०—(हाथ जोड़कर) महाराज, आधी लीजिए आधी अभी देता हूँ। (सोना देता है)

विश्वा०—हम आधी दक्षिणा लेके क्या करें, दे चाहे जहाँ से सब दक्षिणा।

(नेपथ्य में)

धिक् तपो धिक् व्रतमिदं धिक् ज्ञानं धिक् बहुश्रुतम्।
नीतवानसि यद्ब्रह्मन् हरिश्चन्द्रमिमां दशाम् ॥[1]

विश्वा०—(बड़े क्रोध से) आः हमको धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है ? (ऊपर देखकर) अरे विश्वेदेवा, (क्रोध से जल हाथ में लेकर) अरे क्षत्रिय के पक्षपातियो, तुम अभी विमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में तुम्हारा जन्म हो और वहाँ भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ मारे जाओ[2]। (जल छोड़ते हैं)

(नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है)

(सुनकर और ऊपर देखकर आनंद से) हहहह ! अच्छा हुआ ! यह देखो, किरीट-कुंडल बिना मेरे क्रोध से विमान से छूटकर विश्वेदेवा उल्टे हो होकर नीचे गिरते हैं। और हमको धिक्कार दें।

१—हे ब्राह्मण, तुम्हारे इस तप, व्रत, ज्ञान तथा बहुश्रुत होने को धिक्कार है कि तुमने हरिश्चंद्र को इस दशा में ला दिया है।

२—यही पाँचों विश्वेदेवा विश्वामित्र के शाप से द्वापर में द्रौपदी के पाँच पुत्र हुए थे, जिन्हें अश्वत्थामा ने बालकपन ही में मार डाला।

हरि०—(ऊपर देखकर भय से) वाह रे तप का प्रभाव ! (आप ही आप) तब तो हरिश्चंद्र को अब तक शाप नहीं दिया है यह बड़ा अनुग्रह है ! (प्रगट) भगवन्, स्त्री बेचकर यह आधा धन पाया है सो लें, और आधा हम अपने को बेचकर अभी देते हैं।

(नेपथ्य में,)

अरे, अब तो नहीं सही जाती।

विश्वा०—हम आधा न लेंगे, चाहे जहाँ से अभी सब दे।

(हरिश्चन्द्र 'अरे सुनो भाई सेठ साहूकार' इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है। चांडाल के वेष में धर्म और सत्य आते हैं[1])

धर्म—(आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरिरूप जगत हमरे बल चालत।
जल-थल-नभ थिर मो प्रभाव मरजाद न टालत॥
हमहीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी।
इक हमहीं सँग जात, तजत जब पितु सुत नारी॥
सो हम नित थित सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य-परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो॥

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है।

(आगे बढ़कर प्रकट) अरे ! हरजनवाँ ! मोहर का संदूक ल आवा है न ?

सत्य—क चौधरी ! मोहर ले के का करबो ?

धर्म—तोह से का काम पूछै से ?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

हरि०—('अरे सुनो भाई सेठ साहूकार' इत्यादि दो-तीन बेर पुकार के इधर-उधर घूमकर) हाय ! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु

१—काँछा कछे, काला रंग, लाल नेत्र, सिर पर छोटे-छोटे घुँघराले बाल और शरीर नंगा, बातों से मतवालापन झलकता हुआ।

भगवान् सूर्य्य भी आज हमसे रुष्ट होकर शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं। (घबराहट दिखाता है)

धर्म—(आप ही आप) हाय हाय ! इस समय इस महात्मा को बड़ा ही कष्ट है। तो अब चलें आगे। (आगे बढ़कर) अरे ! अरे ! हम तुमको मोल लेंगे, लेव यह पचास सै मोहर लेव।

हरि—(आनंद से आगे बढ़कर) वाह कृपानिधान ! बड़े अवसर पर आप आए लाइए। (उसको पहिचानकर) आप मोल लोगे ?

धर्म—हाँ, हम मोल लेंगे। (सोना देना चाहता है)

हरि—आप कौन हैं ?

धर्म—

हम चौधरी डोम सरदार। अमल हमारा दोनों पार ॥
सब मसान पर हमरा राज। कफन माँगने का है काज ॥
फूलमती देवी[1] के दास। पूजैं सती मसान निवास ॥
धनतेरस औ रात दिवाली। बलि चढ़ाय के पूजैं काली ॥
सो हम तुमको लेंगे मोल। देंगे मुहर गाँठ से खोल ॥

(मत्त की भाँति चेष्टा करता है)

हरि०—(बड़े दुःख से) अहह ! बड़ा दारुण व्यसन उपस्थित हुआ है। (विश्वामित्र से) भगवन् ! मैं पैर पड़ता हूँ, मैं जन्म भर आपका दास होकर रहूँगा, मुझे चांडाल होने से बचाइए।

विश्वा०—छिः मूर्ख ! भला हम दास लेके क्या करेंगे ? "स्वयं दासास्तपस्विनः"।

हरि०—(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा कीजिएगा हम सब करेंगे।

विश्वा०—सब करेगा न ? (ऊपर हाथ उठाकर) धर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूँगा।

हरि०—हाँ हाँ, जो आप आज्ञा कीजिएगा सब करूँगा।

१—प्राचीन काल में चांडालों की कुलदेवी चंडकात्यायनी थीं, परंतु इस काल में फूलमती इन लोगों की कुलदेवी हैं।

विश्वा०—तो इसी गाहक के हाथ अपने को बेचकर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे।

हरि०—जो आज्ञा। (आप ही आप) अब कौन सोच है। (प्रगट धर्म से) तो हम एक नियम पर बिकेंगे!

धर्म—कौन?

हरि०—भीख असन कंबल बसन, रखिहैं दूर निवास।
जो प्रभु आज्ञा होइहै, करिहैं सब है दास॥

धर्म—ठीक है, लेव सोना। (दूर से राजा के आँचल में मोहर देता है)

हरि०—(लेकर हर्ष से आप ही आप)

ऋण छूट्यो पूर्यो बचन, द्विजहु न दीनो साप।
सत्य पालि चंडाल हू होइ आजु मोहि दाप॥

(प्रगट विश्वामित्र से) भगवन्, लीजिए यह मोहर।

विश्वा०—(मुँह चिढ़ाकर) सचमुच देता है?

हरि०—हाँ हाँ, यह लीजिए! (मोहर देते हैं)

विश्वा०—(लेकर) स्वस्ति। (आप ही आप) बस अब चलो, बहुत परीक्षा हो चुकी। (जाना चाहते हैं)

हरि०—(हाथ जोड़कर) भगवन्! दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न?

विश्वा०—हाँ, क्षमा हुआ। अब हम जाते हैं।

हरि०—भगवन्! प्रणाम करता हूँ।

(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं)

हरि०—अब चौधरीजी, (लज्जा से रुककर) स्वामी की जो आज्ञा हो वह करें।

धर्म—(मत्त की भाँति नाचता हुआ)

जावो अभी दक्खिनी मसान। लेव वहाँ कफ्फन का दान॥
जो कर तुमको नहीं चुकावे। सो किरिया करने नहिं पावे॥
चलो घाट पर करो निवास। भए आज से हमरे दास॥

हरि०—जो आज्ञा।

(जवनिका गिरती है)

चतुर्थ अंक

स्थान-दक्षिण श्मशान

[नदी, पीपल का बड़ा पेड़, चिता, मुरदे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी इत्यादि]

(कंबल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिए हुए राजा हरिश्चंद्र दिखाई पड़ते हैं)

हरि०-(लम्बी साँस लेकर) हाय! अब जन्म भर यही दुख भोगना पड़ेगा।

जाति दास चंडाल की, घर घनघोर मसान।
कफन खसोटी को करम, सब ही एक समान॥

न जानें विधाता का क्रोध इतने पर भी शांत हुआ कि नहीं। बड़ों ने सच कहा है कि दुःख से दुःख जाता है। दक्षिणा का ऋण चुका, तो यह कर्म करना पड़ा। हम क्या सोचें? अपनी अनाथ प्रजा को, या दीन नातेदारों को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान बालक को, या अपने ही इस चांडालपने को। हा! बटुक के धक्के से गिरकर रोहिताश्व ने क्रोध भरी और रानी ने जाते समय करुणा भरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलती। (घबड़ाकर) हा देवी! सूर्यकुल की बहू और चंद्रकुल की बेटी होकर तुम बेची गईं और दासी बनीं। हा! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गूँथ सकती थीं उनसे बरतन कैसे माँजोगी? (मोह प्राप्त होने चाहता है पर सम्हलकर) अथवा क्या हुआ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा।

बेचि देह, दारा सुअन, होइ दास हू मंद।
राख्यो निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचंद॥

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

अरे यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी ? किसी पुण्यात्मा का मुरदा आया होगा। तो हम सावधान हो जायँ। [लट्ठ कंधे पर रख कर फिरता हुआ] खबरदार ! खबरदार ! बिना हमसे कहे और बिना हमें आधा कफन दिए कोई संस्कार न करे। [यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर-उधर देखता फिरता है। नेपथ्य में कोलाहल सुन कर] हाय-हाय ! कैसा भयंकर श्मशान है ! दूर से मंडल बाँध-बाँधकर चोंच बाए, डैना फैलाए, कंगालों की तरह मुर्दों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं और कैसा मांस नोच-नोचकर आपस में लड़ते और चिल्लाते हैं। इधर अत्यंत कर्णकटु अमंगल के नगाड़े की भाँति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं। उधर चिर्राइन फैलाती हुई चट-चट करती चिताएँ कैसी जल रही हैं, जिनमें कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू वा चरबी बहती है। आग का रंग मांस के संबंध से नीला-पीला हो रहा है, ज्वाला घूम-घूम कर निकलती है, कभी एक साथ धधक उठती है, कभी मंद हो जाती है। धुआँ चारों ओर छा रहा है। [आगे देखकर आदर से] अहा ! यह वीभत्स व्यापार भी बड़ाई के योग्य है। शव ! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो ; अतएव कहा है—

"मरनो भलो विदेश को, जहाँ न अपुनो कोय।
माटी खाँय जनावराँ, महा महोच्छव होय ॥"

अहा ! देखो।

सिर पै बैठ्यौ काग आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनँद उर धारत ॥
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि खोदि कै मांस उचारत।
स्वान आँगुरिन काटि काटि के खान बिचारत ॥
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद मढ़्यो सबको हियो।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहँ दियो ॥

अहा ! शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है !

सोई मुख सोई उदर, सोई कर पद दोय।
भयो आजु कछु और ही, परसत जेहि नहिं कोय ॥

हाड़ माँस लाला रकत, बसा तुचा सब सोय।
छिन्न भिन्न दुर्गंध-मय, मरे मनुस के होय॥
कादर जेहि लखि कै डरत, पंडित पावत लाज।
अहो! व्यर्थ संसार को, विषय बासना साज॥

अहो! मरना भी क्या वस्तु है।

सोई मुख जेहि चंद बखान्यौ।
सोई अँग जेहि प्रिय करि जान्यौ॥
सोई भुज जे प्रिय गर डारैं।
सोइ भुज जिन नर बिक्रम पारैं॥
सोई पद जिहि सेवक बंदत।
सोई छबि जेहि देखि अनंदत॥
सोइ रसना जहँ अमृत बानी।
जेहि सुन के हिय नारि जुड़ानी॥
सोइ हृदय जहँ भाव अनेका।
सोई सिर जहँ निज बच टेका॥
सोई छबि मय अग सुहाए।
आज जीव बिनु धरनि सुहाए॥
कहाँ गई वह सुंदर सोभा।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा॥
प्रानहुँ ते बढ़ि जा कहँ चाहत।
ता कहँ आजु सबै मिलि दाहत॥
फूल बोझ हू जिन न सहारे।
तिन पै बोझ काठ बहु डारे॥
सिर पीड़ा जिनकी नहिं हेरी।
करत कपाल क्रिया तिन केरी॥
छिनहूँ जे न भए कहुँ न्यारे।
तेउ बंधु गन छोड़ि सिधारे॥
जो दृगकोर महीप निहारत।
आजु काक तेहि भोज बिचारत॥
भुजबल जे नहिं भुवन समाए।
ते लखियत मुख कफन छिपाए॥
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे।

गने काल सब एकहि लेखे ॥
सुभग कुरूप अमृत बिष साने ।
आजु सबै इक भाव बिकाने ॥
पुरु दधीच कोऊ अब नाहीं ।
रहे नामही ग्रंथन माँहीं ॥

अहा ! देखो वही सिर, जिस पर मंत्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रखा जाता था, जिसमें इतना अभिमान था कि इंद्र को भी तुच्छ गिनता था, और जिसमें बड़े-बड़े राज जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे पैर से छूने में भी घिन करते हैं। (आगे देखकर) अरे यह श्मशान-देवी हैं। अहा ! कात्यायनी को भी कैसा वीभत्स उपचार प्यारा है ? यह देखो, डोम लोगों ने सूखे गले सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़-पकड़ कर देवी को पहिना दी है और कफन की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैसों के गले के घंटे पीपल की डार में लटक रहे हैं, जिनमें लोलक की जगह नली की हड्डी लगी है। घंटे के पानी से चारों ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खंभे में लोहू के थापे लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है उसके खाने को कुत्ते और सियार लड़-लड़कर कोलाहल मचा रहे है। (हाथ जोड़कर)

"भगवति ! चंडि ! प्रेते ! प्रेतविमाने ! लसत्प्रेते ! प्रेतास्थिरौद्ररूपे ! प्रेताशिनि ! भैरवि ! नमस्ते" ॥

(नेपथ्य में)

राजन् ! हम केवल चांडालों के प्रणाम के योग्य हैं। तुम्हारे प्रणाम से हमें लज्जा आती है। माँगो क्या वर माँगते हो ?

हरि०—(सुनकर आश्चर्य से) भगवति ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिए।

(नेपथ्य में)

साधु महाराज हरिश्चंद्र साधु !

हरि०—(ऊपर देखकर) अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनीवल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्त्तक था, जो दोपहर तक अपना प्रचंड प्रताप क्षण-क्षण बढ़ाता गया, जो गगनांगन का दीपक और कालसर्प का शिखामणि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भाँति अपना सब तेज गँवाकर देखो समुद्र में गिरा चाहता है।

अथवा

साँझ सोई पट लाल कसे कटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है।
पच्छिन के बहु शब्दन के मिस जीव उचाटन मंत्र कह्यो है॥
मद्य भरी नरखोपरी सो ससि को नव बिंबहु धाइ गह्यो है।
दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै काल-कपालिक नाचि रह्यो है॥
सूरज धूम बिना की चिता सोई अत में लै जल माँहि बहाई।
बोलैं घने तरु बैठि बिहंगम रोअत सो मनु लोग-लोगाई॥
धूप अँधार, कपाल निसाकर, हाड़ नछत्र लहू सी ललाई।
आनँद हेतु निशाचर के यह काल मसान सो साँझ बनाई॥

अहा ! यह चारों ओर से पक्षी सब कैसा शब्द करते हुए अपने-अपने घोंसलों की ओर चले आते हैं। वर्षा से नदी का भयंकर प्रवाह, साँझ होने से श्मशान के पीपल पर कौओं का एक सग अमंगल शब्द से काँव-काँव करना और रात के आगमन से सन्नाटे का समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है। अंधकार बढ़ता ही जाता है। वर्षा के कारण इन श्मशानवासी मंडूकों का टर-टर करना भी कैसा डरावना मालूम होता है।

रुरुआ चहुँ दिसि ररत डरत सुनि के नर-नारी।
फटफटाइ दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारीं॥
अंधकारबस गिरत काक अरु चील करत रव।
गिद्ध-गरुड़-हड़गिल्ल भजत लखि निकट भयद रव॥
रोअत सियार, गरजत नदी, स्वान भूँकि डरपावहीं।
झींग दादुर झींगुर रुदन-धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावहीं॥

इस समय ये चिता भी कैसी भयंकर मालूम पड़ती हैं। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आँच से हाथ-पैर

जलकर गिर पड़े हैं, कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिलकुल कच्चा है, किसी को वैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे ही छोड़ दिया है, किसी का मुँह जल जाने से दात निकला हुआ भयंकर हो रहा है और कोई आग में ऐसा जल गया है कि कहीं पता भी नही है। वाह रे शरीर, तेरी क्या-क्या गति होती है !! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है, क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे उसको कीड़ों वा मछलियों से नुचवाना और सड़ाकर दुर्गंधमय करना बहुत ही बुरा है। न कुछ शेष रहेगा न दुर्गति होगी। हा ! चलो आगे चलें।

(खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर घूमता है)

(पिशाच और डाकिनीगण परस्पर आमोद करते और गाते-बजाते हुए आते हैं)

पि०—और डा०—हैं भूत प्रेत हम, डाइन हैं छमाछम,
हम सेवैं मसान शिव को भजैं बोलैं बम बम बम।

पि०—हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ेंगे ॥
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ेंगे।

डा०—हम घुट घुट घुंट घुट घुट घुट लोहू पिलावेंगी ॥
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावेंगी ॥

सब—हम नाचें मिलकर थेई थेई थेई थेई कूदें धम् धम् धम्। है०

पि०—हम काट काट कर शिर का गेंदा उछालेंगे।
हम खींच खींच कर चरबी पंशाखा बालेंगे ॥

डा०—हम माँग में लाल-लाल लोहू का सेंदुर लगावेंगी।
हम नस के तागें चमड़े का लहँगा बनावेंगी ॥

सब—हम धज से सज के बज के चलेंगे चमकेंगे चम चम चम।

पि०—लोहू का मुँह से फर्र फर्र फुहारा छोड़ेंगे।
माला गले पहिरनेको अँतड़ी को जोड़ेंगे ॥

डा०—हम लादके औंधे मुरदे चौकी बनावेंगी।
कफना बिछा के लड़कों को उस पर सुलावेंगी ॥

सब—हम मुख से गावेंगे ढोल बजावेंगे ढम ढम ढम ढम ढम।

(वैसे ही कूदते हुए एक ओर से चले जाते हैं)

हरि०—(कौतुक से देखकर) पिशाचों की क्रीड़ा-कुतूहल भी देखने के योग्य है। अहा! यह कैसे काल-काले झाड़ू से सिर के बाल खड़े किए लंबे-लंबे हाथ-पैर विकराल दाँत लंबी जीभ निकाले इधर-उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानो भयानक रस की सेना मूर्तिमान होकर यहाँ स्वच्छंद विहार कर रही है। हाय-हाय! इनका खेल और सहज व्यौहार भी कैसा भयंकर है। कोई कटाकट हड्डी चबा रहा है, कोई खोपड़ियों में लहू भर-भर करके पीता है, कोई सिर का गेंद बनाकर खेलता है, कोई अँतड़ी निकाल गले में डाले है और चंदन की भाँति चरबी और लहू शरीर में पोत रहा है, एक दूसरे से मांस छीनकर ले भागता है, एक जलता मांस मारे तृष्णा के मुँह में रख लेता है, पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू थू करके थूक देता है, और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है। हा! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ समेत नोच लाई है, जिसे देखने को चारों ओर से सब भुतने एकत्र हो रहे हैं और सभों को इसका बड़ा कौतुक हो गया है। हँसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुरदों के अंगों से लड़ते हैं और उनको ले-लेकर नाचते हैं। यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो श्मशान के कुत्तों को पकड़-पकड़कर खा जाते हैं। अहा! भगवान् भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योगसाधना किया है। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है। ऊपर देखकर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अँधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता! चांडाल कुल की भाँति श्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है। (स्मरण करके) हा! इस दुःख की दशा में भी हमसे प्रिया अलग पड़ी है। कैसी भी हीन अवस्था हो, पर अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता। सच है—

"टूट ठाट घर टपकत खटियौ टूट।
पिय कै बाँह उसिसवाँ सुख कै लूट॥"

बिधना ने इस दुःख पर भी वियोग दिया। हा! यह वर्षा और यह दुःख! हरिश्चंद्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा, पर जिसने सपने में भी दुःख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होगी। हा देवि! धीरज धरो, धीरज धरो! तुमने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है, जिसके साथ सदा दुःख ही दुःख है। (ऊपर देखकर) पानी बरसने लगा। अरे! (धोधी भली भाँति ओढ़कर) हमको तो यह वर्षा और श्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो—

चपला की चमक चहूँधा सो लगाई चिता,
चिनगी चिलक पटबीजना चलायो है।
हेती बगमाल श्याम बादर सु भूमि कारी,
बीरबधू लहूबूँद भुव लपटायो है॥
'हरीचंद' नीर-धार आँसू सी परत जहाँ,
दादुर को सोर रोर दुखिन मचायो है॥
दाहन बियोग दुखियान को मरे हू यह,
देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥

(कुछ देर तक चुप रहकर) कौन है? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिर कर)

इंद्र काल हू सरिस जो आयसु लाँघै कोय।
यह प्रचंड भुजदंड मम प्रतिभट ताको होय॥

अरे कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़कर) कौन है?

(नेपथ्य में)

हम हैं।

हरि०—अरे हमारी बात का उत्तर कौन देता है? चलें, जहाँ से आवाज आई है वहाँ चलकर देखें। (आगे बढ़कर नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह कौन है?

चिता-भस्म सब अंग लगाए। अस्थि-अभूषन बिबिध बनाए॥
हाथ कपाल मसान जगावत। को यह चल्यो रुद्र सम आवत॥

(कापालिक के वेष में धर्म[1] आता है)

धर्म—अरे, हम हैं।

वृत्ति अयाचित आत्म-रति करि जग के सुख त्याग।
फिरहिं मसान मसान हम धारि अनंद बिराग॥

(आगे बढ़कर महाराज हरिश्चंद्र को देखकर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि-रूप जगत हमरे बल चालत।
जल-थल-नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत॥
हमहीं नर के मीत सदा साँचे हितकारी।
इक हमहीं सँग जात तजत जब पितु सुत नारी॥

सो हम नित थित इक सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य-परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो॥

(कुछ सोचकर) राजर्षि हरिश्चंद्र की दुःखपरंपरा अत्यंत शोचनीय और इनके चरित्र अत्यंत आश्चर्य के हैं। अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है।

सहत बिबिध दुख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छाँड़हीं, जे जग साँचे लोग॥
बरु सूरज पच्छिम उगे, बिध्य तरै जल माहिं।
सत्यवीर जन पै कबहुँ, निज बच टारत नाहिं॥

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुःख को दुःख सुख को सुख गिनते ही नहीं। चलें उनके पास चलें। (आगे बढ़कर और देखकर) अरे! यही महात्मा हरिश्चंद्र हैं? (प्रगट) महाराज, कल्याण हो।

हरि०—(प्रणाम करके) आइए योगिराज!

धर्म—महाराज, हम अर्थी हैं।

(हरिश्चंद्र लज्जा और विकलता नाट्य करता है)

---

१. गेरुए वस्त्र का काछा काछे, गेरुआ कफनी पहिने, सिर के बाल खोले, सेंदुर का अर्द्धचंद्र किए, नंगी तलवार गले में लटकती हुई, एक हाथ में खप्पड़ चलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में भभूत पोते, नशे से आँखें लाल, लाल फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहिने।

धर्म—महाराज ! आप लज्जा मत कीजिए। हम लोग योगबल से सब कुछ जानते हैं। आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने के लिये बहुत हैं। चंद्रमा राहु से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवाकर भिक्षुकों का कल्याण करता है।

हरि०—हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिए।

धर्म—अंजन, गुटिका, पादुका, धातु-भेद, बैताल।
बज्र, रसायन, जोगिनी, मोहि सिद्ध यहि काल[1] ॥

हरि०—तो मुझे जो आज्ञा हो वह करूँ।

धर्म—आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गए हैं, पर विघ्न इसमें बाधक होते हैं, सो विघ्नों का निवारण कर दीजिए।

हरि०—आप जानते हैं कि मैं पराया दास हूँ इससे जिसमें मेरा धर्म न जाय वह मैं करने को तैयार हूँ।

धर्म—(आप ही) राजन् ! जिस दिन तुम्हारा धर्म जायगा उस दिन पृथ्वी किसके बल से ठहरेगी ? (प्रत्यक्ष) महाराज ! इसमें धर्म न जायगा, क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लंघन करते ही नहीं। सिद्धि का आकर इसी श्मशान के निकट ही है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूँ, आप विघ्नों का निषेध कर दीजिए।

[जाता है

हरि०—(ललकार कर) हटो रे हटो विघ्नो ! चारों ओर से तुम्हारा प्रचार हमने रोक दिया।

(नेपथ्य में)

---

१. अंजनसिद्धि से जमीन में गड़े खजाने देख पड़ते हैं। गुटिका मुँह में रखकर वा पादुका पहिनकर चाहे जहाँ अलक्ष्य चला जाय। धातुभेद से औषध मात्र सिद्ध होती हैं। बैताल बस में होकर यथेच्छ काम देता है। बज्र सिद्ध होने से जहाँ गिराओ वहाँ गिरता है। रसायन सिद्ध होने से चाँदी-सोना बनता है। जोगिनी सिद्ध होने से भूतभविष्यत् का वृत्तांत कह देती है और सब इच्छा पूर्ण करती है। ये ही आठों सिद्धियाँ है।

महाराजाधिराज ! जो आज्ञा। आपसे सत्य वीर की आज्ञा कौन लाँघ सकता है !

खुल्यो द्वार कल्यान को, सिद्ध जोग तप आज।
निधि सिधि विद्या सब करहिं अपुने मनको काज॥

हरि०—(हर्ष से) बड़े आनंद की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया। ।

(विमान पर बैठी हुई तीनों महाविद्याएँ[1] आती हैं)

महावि०—महाराज हरिश्चंद्र ! बधाई है। हमी लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था, तब देवताओं ने माया से आपको स्वप्न में हमारा रोना सुनाकर हमारा प्राण बचाया।

हरि०—(आप ही आप) अरे यही सृष्टि की उत्पन्न, पालन और नाश करनेवाली महाविद्याएँ हैं, जिन्हें विश्वामित्र भी न सिद्ध कर सके। (प्रगट हाथ जोड़कर) त्रिलोक-विजयिनी महाविद्याओं को नमस्कार है।

महावि०—महाराज ! हम लोग तो आपके वश में हैं। हमारा ग्रहण कीजिए।

हरि०—देवियो, यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि की वशवर्त्तिनी हों, उन्होंने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है।

महावि०—धन्य महाराज ! धन्य ! जो आज्ञा। [जाती हैं

(धर्म एक बैताल के सिर पर पिटारा रखवाए हुए आता है)

धर्म—महाराज का कल्याण हो, आपकी कृपा से महानिधान[2] सिद्ध हुआ। आपको बधाई है। अब लीजिए इस रसेंद्र को।

---

१. ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेश में पर स्त्री का शृंगार। खेलने में चित्रपट द्वारा परदे के ऊपर इनको दिखलावेंगे और इनकी ओर से बोलने वाला नेपथ्य में से बोलेगा।

२. महानिधान बुभुक्षित धातुभेदी पारा, जिसे बावन तोला पाव रत्ती कहते हैं।

याही के परभाव सों अमर देव-सम होइ।
जोगी जन बिहरहिं सदा मेरु-शिखर भय खोइ॥

हरि०—(प्रणाम करके) महाराज ! दास धर्म के यह विरुद्ध है। इस समय स्वमी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।

धर्म—(आश्चर्य से आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) तो इससे स्वर्ण बनाकर आप अपना दास्य छुड़ा लें।

हरि०—यह ठीक है, पर मैंने तो विनती की न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है। क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना स्वत्वमात्र बेच चुका, इससे आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को यह रसद्र दीजिये।

धर्म—(आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चंद्र ! धन्य तुम्हारा धैर्य ! धन्य तुम्हारा विवेक ! और धन्य तुम्हारी महानुभावता ! या—

चलै मेरु बरु प्रलय जल पवन झकोरन पाय।
पै बीरन के मन कबहुँ चलहिं नहीं ललचाय॥

तो हमें भी इसमें कौन हठ है। (प्रत्यक्ष) बैताल ! जाओ, जो महाराज की आज्ञा है वही करो।

बैताल—जो रावलजी की आज्ञा। [जाता है

धर्म—महाराज ! ब्राह्ममुहूर्त्त निकट आया, अब हमको भी आज्ञा हो।

हरि०—योगिराज ! हमको भूल न जाइएगा, कभी-कभी स्मरण कीजिएगा।

धर्म—महाराज ! बड़े-बड़े देवता आपका स्मरण करते हैं और करेंगे, मैं क्या कहूँ। [जाता है

हरि०—क्या रात बीत गई ! आज तो कोई भी मुरदा नया नहीं आया। रात के साथ ही श्मशान भी शांत हो चला, भगवान् नित्य ही ऐसा करे।

(नेपथ्य में घंटा नूपुरादि का शब्द सुनकर)

अरे! यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ ?

(विमान पर अष्ट महासिद्धि, नव निधि और बारहों प्रयोग आदि देवता[1] आते हैं)

हरि०—(आश्चर्य से) अरे ये कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर श्मशान पर एकत्र हो रहे हैं ?

देवता—महाराज हरिश्चंद्र की जय हो। आपके अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूटकर स्वतंत्र हो गए, अब हम आपके वश में हैं। जो आज्ञा हो, करें। हम लोग अष्ट महासिद्धि, नव निधि और बारह प्रयोग सब आपके हाथ में हैं।

हरि०—(प्रणाम करके) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हों तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ।

देवता—(आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चंद्र! तुम्हारे बिना और ऐसा कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे। हमी लोगों की सिद्धि को बड़े-बड़े योगी मुनि पच मरते हैं! पर तुमने तृण की भाँति हमारा त्याग करके जगत् का कल्याण किया।

हरि०—आप लोग मेरे सिर आँखों पर हैं पर मैं क्या करूँ क्योंकि मैं पराधीन हूँ। एक बात और भी निवेदन है। वह यह कि छः अच्छे प्रयोगों की तो हमारे समय में सद्यः सिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलंब से हो।

देवता—महाराज! जो आज्ञा। हम लोग जाते हैं। आज आपके

---

१. साधारण देवी-देवताओं के वेश में। अष्ट महासिद्धि, यथा—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। नवनिधि, यथा—पद्म, महापद्म, शख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुंद, नील और वर्च्चस्। बारह प्रयोग, यथा—मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन—ये छः बुरे और स्तंभन, वशीकरण, आकर्षण, बंदीमोचन, कामपूरण और वाक्प्रसारण—ये छः अच्छे। ये भी चित्रपट में दिखलाए जायँगे।

सत्य ने शिवजी के कीलन[1] को भी शिथिल कर दिया। महाराज का कल्याण हो। [जाते हैं

(नेपथ्य में इस भाँति मानो राजा हरिश्चंद्र नहीं सुनता)

(एक स्वर से) तो अप्सरा को भेजें। (दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख! जिसको अष्ट सिद्धि नव निधियों ने नहीं डिगाया उसको अप्सरा क्या डिगावेंगी? (एक स्वर से) तो अब अंतिम उपाय किया जाय? (दूसरे स्वर से) हाँ, तक्षक को आज्ञा दें। अब और कोई उपाय नहीं है!

हरि०—अहा! अरुण उदय हुआ चाहता है। पूर्व दिशा ने अपना मुँह लाल किया। (साँस लेकर)

"वा चकई को भयो चित चीतो चितोति चहूँ दिसि चाय सों नाँची।
ह्वै गई छीन कलाधर की कला जामिनि जोति मनौं जम जाँची॥
बोलत बैरी 'बिहंगम' 'देव' सँजोगिन की भई संपति काँची।
लोहू पियो जो बियोगिन को सो कियो मुख लाल पिशाचिनि प्राची॥"

हा! प्रिये! इन बरसात की रातों को तुम रो-रो के बिताती होगी! हा! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने तो अपना शरीर बेचा तब दास हुए, तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गए?

जेहि सहसन परिचारिका राखत हाथहिं हाथ।
सो तुम लोटत धूर में दास-बालकन साथ॥
जाकी आयसु जग नृपति सुनतहि धारत सीस।
तेहि द्विज-बटु आज्ञा करत, अहह कठिन अति ईस॥
बिनु तन बेचे बिनु दिए, बिनु जग ज्ञान बिबेक।
दैव-सर्प दंशित भये, भोगत कष्ट अनेक॥

(घबड़ाकर) नारायण! नारायण! मेरे मुख से क्या निकल गया? देवता उसकी रक्षा करें। (बाईं आँख का फड़कना

---

[1] शिवजी ने साधनमात्र को कील दिया है जिसमें जल्दी न सिद्ध हों सो राजा हरिश्चंद्र ने विघ्नों को जो रोक दिया इसमें वह कीलन भी शिवजी की इच्छापूर्वक उस समय दूर होगया था, क्योंकि यह भी तो एक सबमें बड़ा विघ्न था।

दिखाकर) इसी समय में यह महा अपशकुन क्यों हुआ ? (दाहिनी भुजा का फड़कना दिखाकर) अरे और साथ ही यह मंगल-शकुन भी ! न जाने क्या होनहार है ! ला अब क्या होनहार है ? जो होना था सो हो चुका। अब इससे बढ़कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरणमात्र बाकी है। इच्छा तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहले ही शरीर छूटे, क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है, पर वश क्या है ?

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चंद्र ! सावधान। यही अंतिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरुषा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्य्यंत आकाश में नेत्र भरे खड़े एकटक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुःख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इनका सिर नीचा हो। अपने धैर्य का स्मरण करो।

हरि०—(घबड़ाकर ऊपर देखकर) अरे यह कौन है ? कुल-गुरु भगवान् सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं। (ऊपर देखकर) पितः, मैं सावधान हूँ। सब दुःखों को फूल की माला की भाँति ग्रहण करूँगा।

(नेपथ्य में रोने की आवाज सुन पड़ती है)

हरि०—अरे अब सवेरा होने के समय मुरदा आया ? अथवा चांडाल-कुल का सदा कल्याण हो, हमें इससे क्या ? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई ! हाय बेटा ! हमें रोती छोड़ के कहाँ चले गए ! हाय-हाय रे !

हरि०—अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इसको पुत्र का है। हाय हाय ! हमको भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और बीभत्स कर्म सौंपा है ! इससे भी वस्त्र माँगना पड़ेगा।

शैव्या—(रोती हुई) हाय बेटा ! जब बाप ने छोड़ दिया, तब तुम

भी छोड़ चले। हाय! हमारी बिपत और बुढ़ौती की ओर भी तुमने न देखा! हाय! हाय रें! अब हमारी कौन गति होगी! (रोती है)।

हरि०—हाय-हाय! इसके पति ने भी इसको छोड़ दिया है। हा! इस तपस्विनी को निष्करुण विधि ने बड़ा ही दुःख दिया है।

शैव्या—(रोती हुई) हाय बेटा! अरे आज मुझे किसने लूट लिया। हाय मेरी बोलती चिड़िया कहाँ उड़ गई! हाय, अब मैं किसका मुँह देख के जीऊँगी! हाय, मेरी अंधी की लकड़ी कौन छीन ले गया! हाय, मेरा ऐसा सुंदर खिलौना किसने तोड़ डाला! अरे बेटा तैं तो मरे पर भी सुंदर लगता है! हाय रे! अरे बोलता क्यों नहीं! बेटा जल्दी बोल, देख, माँ कब की पुकार रही है! बच्चा! तू तो एक ही दफ़े पुकारने में दौड़ कर गले से लपट जाता था, क्यों नहीं बोलता? (शव को बार-बार गले लगाती, देखती और चूमती है)

हरि०—हाय-हाय! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता।

शैव्या—(पागल की भाँति) अरे यह क्या हो रहा है? बेटा, कहाँ गये हो? आओ जल्दी। अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगता है, यहाँ मुझको कौन ले आया है रे? बेटा जल्दी आओ! अरे क्या कहते हो, मैं गुरु को फूल लेने गया था, वहाँ काले साँप ने मुझे काट लिया। हाय! हाय रे!! अरे कहाँ काट लिया? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावे बच्चे को। अरे वह साँप कहाँ गया, हमको क्यों नहीं काटता? काट रे काट, क्या उस सुकुआर बच्चे ही पर बल दिखाना था? हमें काट। हाय! हमको नहीं काटता। अरे यहाँ तो कोई साँप-वाँप नहीं है। मेरे लाल झूठ बोलना कब से सीखे? हाय-हाय! मैं इतना पुकारती हूँ और तुम खेलना नहीं छोड़ते? बेटा, गुरुजी पुकार रहे हैं, उनके होम की बेला निकली जाती है। देखो, बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं। दो जल्दी उनको दूब और बेलपत्र। हाय! हमने इतना पुकारा, तुम कुछ नहीं बोलते! (ज़ोर से) बेटा, साँझ भई, सब विद्यार्थी लोग घर फिर आए; तुम अब

तक क्यों नहीं आए ? (आगें शव देखकर) हाय-हाय रे ! अरे मेरे लाल को साँप ने सचमुच डस लिया ! हाय लाल ! हाय रे ! मेरे आँखों के उजियाले को कौन ले गया ! हाय मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहाँ उड़ गया ! बेटा ! अभी तो बोल रहे थे, अभी क्या हो गया ! हाय मेरा बसा घर आज किसने उजाड़ दिया ! हाय मेरी कोख में किसने आग लगा दी ! हाय, मेरा कलेजा किसने निकाल लिया ! (चिल्ला-चिल्लाकर रोती है) हाय, लाल कहाँ गये ? अरे ! अब मैं किसका मुँह देखके जिऊँगी रे ? हाय ! अब मा कहके मुझको कौन पुकारेगा ? अरे आज किस बैरी की छाती ठंढी भई रे ? अरे, तेरे सुकुँआर अंगों पर भी काल को तनिक दया न आई ! अरे बेटा ! आँखें खोलो । हाय ! मैं सब बिपत तुम्हारा ही मुँह देख कर सहती थी, सो अब कैसे जीती रहूँगी । अरे लाल ! एक बेर तो बोलो ! (रोती है)

हरि०—न जाने क्यों इसके रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है ।

शैव्या—(रोती हुई) हा नाथ ! अरे अपने गोद के खेलाए बच्चे की यह दशा क्यों नहीं देखते ? हाय ! अरे तुमने तो इसको हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना, सो हमने इसकी यह दशा कर दी । हाय ! अरे ऐसे समय में भी आकर नहीं सहाय होते ! भला एक बार लड़के का मुँह तो देख जाओ ! अरे मैं अब किसके भरोसे जीऊँगी !

हरि०—हाय-हाय ! इसकी बातों से तो प्राण मुँह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है । यहाँ से हट चलें । (कुछ दूर हट कर उसकी ओर देखता खड़ा हो जाता है)

शैव्या—(रोती हुई) हाय ! यह बिपत का समुद्र कहाँ से उमड़ पड़ा । अरे छलिया मुझे छल कर कहाँ भाग गया ! (देखकर) अरे आयुष की रेखा तो इतनी लंबी है, फिर अभी से यह बज्र कहाँ से टूट पड़ा । अरे ऐसा सुंदर मुँह, बड़ी-बड़ी आँख, लंबी-लंबी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रंग ! हाय, मरने के तुझमें कौन लच्छन थे जो भगवान् ने तुझे मार डाला ! हाय

लाल ! अरे, बड़े-बड़े जोतसी गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्त्ती राजा होगा, बहुत दिन जिएगा सो सब झूठ निकला ! हाय ! पोथी, पत्रा, पूजा, पाठ, दान, जप, होम कुछ भी काम न आया ! हाय ! तुम्हारे बाप का कठिन पुण्य भी तुम्हारा सहाय न हुआ और तुम चल बसे ! हाय !

हरि०—अरे ! इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है ! (शव को भलीं भाँति देखकर) अरे ! इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती से दिखाई पड़ते हैं ! हाय न-जाने किस बड़े कुल का दीपक आज इसने बुझाया है, और न जाने किस नगर को आज इसने अनाथ किया है। हाय ! रोहिताश्व भी इतना बड़ा हुआ होगा। (बड़े सोच से) हाय ! हाय ! मेरे मुँह से क्या अमंगल निकल गया ! नारायण ! (सोचता है)

शैव्या—भगवन् विश्वामित्र ! आज ! तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हुए ! हाय !

हरि०—(घबराकर) हाय-हाय ! यह क्या ? (भली भाँति देखकर रोता हुआ) हाय ! अब तक मैं संदेह ही में पड़ा हूँ ! अरे ! मेरी आँखें कहाँ गई थीं, जिनने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना, और कान कहाँ गए थे जिनने अब तक महारानी की बोली न सुनी ! हा पुत्र ! हा लाल ! हा सूर्यवंश के अंकुर ! हा हरिश्चंद्र की विपत्ति के एकमात्र अवलंब ! हाय ! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया मा को छोड़कर कहाँ गए ! अरे ! तुम्हारे कोमल अंगों को क्या होगया ? तुमने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे ? पुत्र ! स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझसें कहते, मैं अपने बाहुबल से तुमको इसी शरीर से स्वर्ग पहुँचा देता। अथवा अब इस अभिमान से क्या ? भगवान् इस अभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र ! (रोता है)

आह ! मुझसें बढ़ कर और कौन मंदभाग्य होगा ! राज्य गया, धन-जन-कुटुंब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ। भला अब मैं रानी को क्या मुँह दिखाऊँ ?

निस्संदेह मुझसे अधिक अभागा और कौन होगा ? न-जाने हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं ! जो कुछ हमने आज तक किया, वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुःख न देखना पड़ता। हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निस्संदेह मैं महा-अभागा और बड़ा पापी हूँ। (रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलयकाल आ गया ? नहीं, यह बड़ा भारी अशगुन हुआ है, इसका फल कुछ अच्छा नहीं; वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा ? हा ! न-जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा है। (रोता है) हा, सूर्यकुल-आल-वाल-प्रवाल ! हा हरिश्चंद्र-हृदयानंद ! हा शैव्यावलंब ! हा वत्स रोहिताश्व ! हा मातृ-पितृ-विपत्ति-सहचर ! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़कर कहाँ गए ! आज हम सचमुच चांडाल हुए। लोग कहेंगे कि इसने न-जाने कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा। हाय ! हम संसार को क्या मुँह दिखावेंगे ! (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रगट होने के पहले ही हम भी प्राणत्याग करें ? हा निर्लज्ज प्राण ! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ? हा वज्र-हृदय ! इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता ? अरे नेत्रो ! अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो ? या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीता जाता है। इसके पूर्व कि किसी से सामना हो, प्राणत्याग करना ही उत्तम बात है। (पेड़ के पास जाकर फाँसी देने के योग्य डाल खोजकर उसमें दुपट्टा बाँधता है) धर्म ! मैंने अपने जान सब अच्छा ही किया, परंतु न-जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना ! (दुपट्टे की फाँसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) गोविंद ! गोविंद ! यह मैंने क्या अनर्थ अधर्म विचारा ! भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राण-त्याग करना चाहा ! भगवान् सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण नारायण ! इस इच्छा-कृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ? हे सर्वांतर्यामी

जगदीश्वर ! क्षमा करना। दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। अब तो मैं चाडाल कुल का दास हूँ। न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र ! चलूँ, अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊँ, वा देखूँ अब दुःखिनी शैव्या क्या करती है। (शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है)

शैव्या—(पहले की तरह बहुत रोकर) हाय ! अब मैं क्या करूँ ! अब मैं किसका मुँह देखकर संसार में जीऊँगी ! हाय ! मैं आज से निपूती भई ! पुत्रवती स्त्रियाँ अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी ! हा ! नित्य सवेरे उठकर अब मैं किसकी चिंता करूँगी ! खाने के समय मेरी गोद में बैठकर और मुझसे माँग-माँगकर अब कौन खायगा ! मैं परोसी थाली सूनी देख कर कैसे प्राण रखूँगी ! (रोती है) हाय ! खेलते-खेलते आकर मेरे गले से कौन लपट जायगा और माँ-मा कहकर तनक-तनक बातों पर कौन हठ करेगा ! हाय ! मैं अब किसको अपने आँचल से मुँह की धूल पोंछकर गले लगाऊँगी और किसके अभिमान से विपत्ति में भी फूली-फूली फिरूँगी ! (रोती है) या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जीके क्या करूँगी ! (छाती पीटकर) हाय प्राण ! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ? हाय ! मैं ऐसी स्वारथी हूँ कि आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती ! नहीं-नहीं, अब मैं न जीऊँगी। या तो इस पेड़ में फाँसी लगाकर मर जाऊँगी या गंगा में कूद पड़ूँगी। (उन्मत्ता की भाँति उठकर दौड़ना चाहती है)

हरि०—(आड़ में से)

तनहिं बेचि दासी कहवाई।
मरत स्वामि-आयसु बिनु पाई॥
करु न अधर्म सोच जिय माहीं।
"पराधीन सपने सुख नाहीं"॥

शैव्या—(चौकन्नी होकर) अहा ! यह किसने इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया। सच है, मैं अब इस देह की कौन हूँ जो मर सकूँ ! हाय दैव ! तुझसे यह भी न देखा गया कि

मैं मर कर भी सुख पाऊँ! (कुछ धीरज धरकर) तो चलूँ छाती पर वज्र धरके अब लोकरीति करूँ। (रोती और लकड़ी चुनकर चिता बनाती हुई) हाय! जिन हाथों से ठोक-ठोक कर रोज सुलाती थी, उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रखूँगी, जिसके मुँह में छाला पड़ने के भय से कभी मैंने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे—(बहुत ही रोती है)

हरि०—धन्य देवी, आखिर तो चंद्र-सूर्यकुल की स्त्री हो, तुम न धीरज धरोगी तो कौन धरेगा।

(शैव्या चिता बनाकर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती और रोती है)

हरि०—तो अब चलें उससे आधा कफन माँगें। (आगे बढ़कर और बलपूर्वक आँसुओं को रोक कर शैव्या से) महाभागे! श्मशान-पति की आज्ञा है कि आधा कफन दिए बिना कोई मुरदा फूँकने न पावे सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे लो तब क्रिया करो। (कफन माँगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्प-वृष्टि होती है)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्य्यमहो सत्यमहो दानमहो बलम्।
त्वया राजन् हरिश्चंद्र सर्व्वलोकोत्तरं कृतम्॥[1]

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शैव्या—हाय! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है! वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं, नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो! यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखंड है।

हरि०—(दोनों कानों पर हाथ रखकर) नारायण! नारायण! महाभागे! ऐसा मत कहो। शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित्त होगा। अपना धर्म विचारो। लाओ मृतकम्बल हमें दो और अपना काम आरंभ करो। (हाथ फैलाता है)

---

१. धैर्य, सत्य, दान तथा बल सभी आश्चर्यजनक हैं। हे राजा हरिश्चंद्र तुमसे सारे संसार से बढ़कर कार्य हुआ है।

शैव्या—(महाराज हरिश्चंद्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिह्न देखकर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहचानकर) हा आर्यपुत्र! इतने दिन तक कहाँ छिपे थे? देखो अपने गोद के खेलाए दुलारे पुत्र की दशा। तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भाँति मसान में पड़ा है। (रोती है)

हरि०—प्रिये! धीरज धरो, यह रोने का समय नहीं है। देखो सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आ जाय और हम लोगों को जान ले, और एक लज्जामात्र बच गई है वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल रख कर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कंबल हमको दो।

शैव्या—(रोती हुई) नाथ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आँचल फाड़कर इसे लपेट लाई हूँ, उसमें से भी जो आधा दे दूँगी तो यह खुला रह जायगा! हाय! चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता! (बहुत रोती है)

हरि०—(बलपूर्वक आँसुओं को रोककर और बहुत धीरज धरकर) प्यारी! रो मत। ऐसे समय में तो धीरज और धरम रखना काम है। मैं जिसका दास हूँ उसकी आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिए क्रिया मत करने दो। इससे मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझकर तुमसे इसका आधा कफन न लूँ तो बड़ा अधर्म होगा। जिस हरिश्चंद्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिये धर्म न छोड़ा उसका धर्म आध गज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो, सबेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान् सूर्य अपने वंश की यह दुर्दशा देखकर चित्त में उदास हों। (हाथ फैलाता है)

शैव्या—(रोती हुई) नाथ! जो आज्ञा।

(रोहिताश्व का मृतकबल फाड़ा चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छूटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है। नेपथ्य में बाजे की और बस धन्य और जय जय की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं, और भगवान् नारायण प्रगट होकर हरिश्चंद्र का हाथ पकड़ लेते हैं)

भग०—बस महाराज बस ! धर्म और सत्य सबकी परमावधि हो गई। देखो, तुम्हारे पुण्य-भय से पृथ्वी बारंबार काँपती है, अब त्रैलोक्य की रक्षा करो। (नेत्रों से आँसू बहते हैं)

हरि०—(साष्टांग दंडवत् करके रोता हुआ गद्गद् स्वर से) भगवन् ! मेरे वास्ते आपने परिश्रम किया ! कहाँ यह श्मशान-भूमि-कहाँ यह मर्त्यलोक, कहाँ मेरा मनुष्य शरीर, और कहाँ पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानंदघन साक्षात् आप ! (प्रेम के आँसुओं से और गद्गद् कंठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)

भग०—(शैव्या से) पुत्री ! अब सोच मत कर। धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चंद्र ऐसा पति मिला है। (रोहिताश्व की ओर देखकर) वत्स रोहिताश्व ! उठो। देखो, तुम्हारे माता-पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं।

(रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान् को प्रणाम करके माता-पिता का मुँह देखने लगता है, आकाश से फिर पुष्पवृष्टि होती है। हरिश्चन्द्र और शैव्या आश्चर्य, आनन्द, करुणा और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते। आँखो से आँसू बहते हैं और एकटक भगवान् के मुखारविंद की ओर देखते हैं। श्रीमहादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इंद्र और विश्वामित्र आते हैं[1])।

सब—धन्य महाराज हरिश्चंद्र धन्य ! जो आपने किया सो किसी ने न किया, न करेगा।

(राजा हरिश्चंद्र, शैव्या और रोहिताश्व सब का प्रणाम करते हैं)

विश्वा०—महाराज ! यह केवल चंद्र-सूर्य तक आपकी कीर्त्ति स्थिर रखने के हेतु मैंने छल किया था, सो क्षमा कीजिए और अपना राज्य लीजिए।

(हरिश्चन्द्र भगवान् और धर्म का मुँह देखते हैं)

---

१. श्रीमहादेव, पार्वती और भैरव का ध्यान सबको विदित है। इंद्र और विश्वामित्र का लिख चुके हैं। धर्म चतुर्भुज, श्याम रंग, पीतांबर, दंड, शंख और कमल हाथ में। सत्य शुक्ल वर्ण, श्वेत वस्त्राभरण, नारायण के चारों शस्त्र हाथ में।

धर्म—महाराज ! राज्य आपका है, इसका मैं साक्षी हूँ, आप निस्संदेह लीजिए।

सत्य—ठीक है, जिसने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का पृथ्वी का राज्य है।

श्रीमहादेव—पुत्र हरिश्चंद्र ! भगवान् नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक-पर्यंत तुमने पाया, तथापि मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी कीर्त्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे और रोहिताश्व दीर्घायु, प्रतापी और चक्रवर्त्ती हो।

पार्वती—पुत्री शैव्या ! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्त्ति स्वर्ग की स्त्रियाँ गावें। तुम्हारी पुत्रवधू सौभाग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करें।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

भैरव—और जो तुम्हारी कीर्त्ति कहे-सुने और उसका अनुसरण करे उसको भैरवी यातना न हो।

इंद्र—(राजा को आलिंगन करके और हाथ जोड़ के) महाराज ! मुझे क्षमा कीजिए। यह सब मेरी दुष्टता थी। परंतु इस बात से आपका तो कल्याण ही हुआ; स्वर्ग कौन कहे, आपने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया। देखिए, आपकी रक्षा के हेतु श्रीशिव जी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे, नारदजी बटु बने थे, साक्षात् धर्म ने आपके हेतु चांडाल और कापालिक का वेष लिया, और सत्य ने आप ही के कारण चांडाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान् नारायण की इच्छा से केवल आप के सुयश के हेतु किया गया।

हरि०—(गद्गद् स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ाने वाला और कौन है ?

भग०—महाराज ! और भी जो इच्छा हो, माँगो।

हरि०—(प्रणाम करके गद्गद् स्वर से) प्रभु ! आपके दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आपके आज्ञानुसार यह वर

माँगता हूँ कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ वैकुंठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।

भग०—एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग जीव मात्र सब परमधाम जायँगे, और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायँगे, तब भी वह तुम्हारे इच्छानुसार सत्य-मात्र एक पद से स्थित रहेगा। इतना ही देकर मुझे संतोष नहीं हुआ; कुछ और भी माँगो। मैं तुम्हें क्या-क्या दूँ? क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका। तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुमको और कुछ वर दूँ। तुम्हें वर देने में मुझे संतोष नहीं होता।

हरि०—(हाथ जोड़कर) भगवन्! मुझे अब कौन इच्छा है? मैं और क्या वर माँगूँ? तथापि भरत का यह वाक्य सुफल हो—

खलगनन सों सज्जन दुखी मत होइँ, हरिपद रति रहै।
उपधर्म छूटै, सत्व निज भारत गहै, कर-दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि-नर सम होहिं, सब जग सुख लहै।
तजि नामकविता सुकविजन की अमृतबानी सब कहैं॥

(पुष्पवृष्टि और बाजे की ध्वनि के साथ जवनिका गिरती है)

प्रेमजोगिनी

नाटिका

संवत् १९३२

'काशी के छाया चित्र या दो भले-बुरे फोटो ग्राफ' नाम से प्रथम संस्करण। हरिश्चंद्र चंद्रिका सन् १८७४ ई० में छपना आरंभ।

बैठ कर सैर मुल्क की करना।
यह तमाशा किताब में देखा॥

प्रेमजोगिनी

नाटिका

—:※:—

(नांदी पाठ)

भरित नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर॥

और भी—

जिन तृन सम किय जानि जिय कठिन जगत-जंजाल।
जयतु सदा सो ग्रंथ कवि प्रेमजोगिनी बाल॥

(मलिन मुख किए सूत्रधार और पारिपार्श्वक आते हैं)

सूत्र०—(नेत्र से आँसू पोंछ और ठंढी साँस भरकर) हा! कैसे ईश्वर पर विश्वास आवे!

पारि०—मित्र, आज तुम्हें क्या हो गया है और क्या बकते हो और इतने उदास क्यों हो?

(सूत्रधार के नेत्र से जल की धारा बहती है और रोकने से भी नहीं रुकती)

पारि०—(अपने गले से सूत्रधार को लगाकर और आँसू पोंछकर) मित्र, आज तुम्हें हो क्या गया है? यह क्या सूझी है? क्या आज लोगों को यही तमाशा दिखाओगे?

सूत्र०—हो क्या गया है? क्या मैं झूठ कहता हूँ? इससे बढ़कर और दुःख का विषय क्या होगा कि मेरा आज इस जगत् के कर्त्ता और प्रभु पर से विश्वास उठा जाता है और सच है क्यों न उठे, यदि कोई हो तब न न उठे। हा! क्या ईश्वर है तो

उसके यही काम हैं जो संसार में हो रहे हैं ? क्या उसकी इच्छा के बिना भी कुछ होता है ? क्या लोग दीनबन्धु दयासिंधु उसको नहीं कहते ? क्या माता-पिता के सामने पुत्र की, स्त्री के सामने पति की और बधुओं के सामने बन्धुओं की मृत्यु उसकी इच्छा बिना ही होती है ? क्या सज्जन लोग विद्यादि सुगुण से अलंकृत होकर भी उसकी इच्छा बिना ही दुखी होते हैं और दुष्ट मूर्खों के अपमान सहते हैं ? केवल प्राणमात्र नहीं त्याग करते, पर उनकी सब गति हो जाती है। क्या इस कमल-वन-रूप भारत भूमि को दुष्ट गजों ने उसकी इच्छा बिना ही छिन्न-भिन्न कर दिया ? क्या जब नादिर-चंगेजखाँ ऐसे निर्दयों ने लाखों निर्दोषी जीव मार डाले तब वह सोता था ? क्या अब भारतखंड के लोग ऐसे कापुरुष और दीन उसकी इच्छा के बिना ही हो गये ? हा ! (आँसू बहते हैं) लोग कहते हैं कि यह उसके खेल हैं। छिः ! ऐसे निर्दय को भी लोग दयासमुद्र किस मुँह से पुकारते हैं ?

पारि०—इतना क्रोध एक साथ मत करो। यह संसार तो दुःखरूप आप ही है, इसमें सुख का तो केवल आभास-मात्र है।

सूत्र०—आभास-मात्र है—तो फिर किसने यह बखेड़ा बनाने और पचड़ा फैलाने को कहा था ? उस पर भी न्याय करने और कृपालु बनने का दावा ! (आँख भर आती है)

पारि०—आज क्या है ? किस बात पर इतना क्रोध किया है ? भला यहाँ ईश्वर का निर्णय करने आए हो कि नाटक खेलने आए हो ?

सूत्र०—क्या नाटक खेलें, क्या न खेलें, लो इसी खेल ही में देखो। क्या सारे संसार के लोग सुखी रहें और हम लोगों का परम-बन्धु, पिता-मित्र-पुत्र सब भावनाओं से भावित, प्रेम की एकमात्र मूर्त्ति, सत्य का एकमात्र आश्रय, सौजन्य का एकमात्र पात्र, भारत का एकमात्र हित, हिंदी का एकमात्र जनक, भाषा नाटकों का एकमात्र जीवनदाता, हरिश्चंद्र ही दुखी हो ! (नेत्र में जल भरकर)—हा सज्जनशिरोमणे ! कुछ चिंता नहीं,

तेरा तो बाना है, कि 'कितनी भी दुख हो उसे सुख ही मानना'। लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्त्ति तक का परित्याग कर दिया है और जगत से विपरीत गति चलके तूने प्रेम की टकसाल खड़ी की है। क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुझे प्रत्यक्ष आकर अपने अंक में रखकर आदर नहीं देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निंदा करते हैं और तू संसारी वैभव से सूचित नहीं है; तुझे इससे क्या; प्रेमी लोग जो तेरे और तू जिन्हें सरबस है, वे जब जहाँ उत्पन्न होंगे तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरी रहन-सहन को अपनी जीवनपद्धति समझेंगे। (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) मित्र, तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हो; तुम्हें इनकी निंदा से क्या? इतना चित्त क्यों क्षुब्ध करते हो? स्मरण रक्खो ये कीड़े ऐसे ही रहेंगे और तुम लोकबहिष्कृत होकर भी इनके सिर पर पैर रखके विहार करोगे। क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए—"कहैंगे सबै ही नैन नीर भरि-भरि पाछे प्यारे हरिचंद की कहानी रहि जायगी।" मित्र, मैं जानता हूँ कि तुम पर सब आरोप व्यर्थ है; हा! बड़ा विपरीत समय है। (नेत्र से आँसू बहते हैं)

पारि०—मित्र, जो तुम कहते हो सो सब सत्य है, पर काल भी तो बड़ा प्रबल है, कालानुसार कर्म किए बिना भी तो काम नहीं चलता।

सूत्र०—हाँ, न चले तो हम लोग काल के अनुसार चलेंगे, कुछ वह लोकोत्तर-चरित्र थोड़े ही काल के अनुसार चलेगा!!

पारि०—पर उसका परिणाम क्या होगा?

सूत्र०—क्या कोई परिणाम होना अभी बाकी है? हो चुका जो होना था।

पारि०—तो फिर आज जो ये लोग आए हैं सो यही सुनने आए हैं।

सूत्र०—तो ये सब सभासद तो उसके मित्रवर्गों में हैं और जो मित्रवर्गों में नहीं हैं उनका जी भी तो उसी की बातों में लगता है। ये क्यों न इन बातों को आनन्दपूर्वक सुनेंगे?

पारि०—परन्तु मित्र बातों ही से तो काम न चलेगा न! देखो ये हिन्दी भाषा में नाटक देखने की इच्छा से आए हैं, इन्हें कोई खेल दिखाओ।

सूत्र०—आज मेरा चित्त तो उन्हीं के चरित्र में मगन है। आज मुझे और कुछ नहीं अच्छा लगता।

पारि०—तो उनके चरित्र के अनुरूप ही कोई नाटक करो।

सूत्र०—ऐसा कौन नाटक है? यों तो सभी नायकों के चरित्र किसी-किसी विषय में उनसे मिलते हैं, पर आनुपूर्वी चरित्र कैसे मिलेगा?

पारि०—मित्र। मृच्छकटिक हिन्दी में खेलो, क्योंकि उसके नायक चारुदत्त का चरित्रमात्र उनसे सब मिलता है, केवल वसंत-सेना और राजा की हानि है।

सूत्र०—तो फिर भी आनुपूर्वी न हुआ और पुराने नाटक खेलने में इनका जी भी न लगेगा, कोई नया खेलें।

पारि०—(स्मरण करके) हाँ हाँ, वह नाटक खेलो जो तुम उस दिन उद्यान में उनसे सुनते थे। वह उनके और इस घोर काल के बड़ा ही अनुरूप है। उसके खेलने से लोगों को वर्त्तमान समय का ठीक नमूना दिखाई पड़ेगा और वह नाटक भी नई पुरानी दोनों रीति मिलके बना है।

सूत्र०—हाँ हाँ, प्रेमजोगिनी—अच्छी सुरत पड़ी—तो चलो योंही सही, इसी बहाने उनका स्मरण करें।

पारि०—चलो। [दोनों जाते हैं

(आधी जवनिका गिरती है)

पहिला अंक

पहिला गर्भांक

स्थान--मंदिर का चौक

(झपटिया इधर-उधर घूम रहा है)

झपटिया--आज अभी तक कोई दरसनी-परसनी नाहीं आए और कहाँ तक अभहिंन तक मिसरो नाहीं आए, अभहीं तक नींद न खुली होइहै। खुलै,कहाँ से ? आधी रात तक बाबू किहाँ बैठ के ही-ही ठी-ठी करा चाहैं, फिर सबेरे नींद कैसे खुलै।

(दोपहर माथे में लपेटे आँखें मलते मिश्र आते हैं—देखकर)

झप०—का हो मिसिरजी, तोरी नींद नाहीं खुलती ? देखो शंखनाद होय गवा, मुखियाजी खोजत रहे।

मिश्र—चले तो आई थे, अधियै रात के शंखनाद होय तो हम का करैं ! तोरे तरह से हमहू के घर में से निकस के मंदिर में घुस आवना होता तो हमहू जल्दी अउते। हियाँ तो दारानगर से आवना पड़त है। अबहीं सुरजौ नाहीं उगे।

झप०—भाई, सेवा बड़ै कठिन है, लोहे का चना चबावे के पड़थै, फोकटै थोरें होथी।

मिश्र—भवा चलो अपना काम देखो। (बैठ गया)

(स्नान किए तिलक लगाए दो गुजराती आते हैं)

प० गुज०--मिसिरजी, जय श्रीकृष्ण। कहो का समय है ?

मिश्र--अच्छी समय है, मंगला की आधी समय है। बैठो।

प० गुज०—अच्छा मथुरादासजी बैसी जाओ। (बैठते हैं)

(धोती पहिने एक धोती ओढ़े छक्कूजी आते हैं और उसी वेष से माखनदास भी आए)

छक्कूजी—(माखनदास की ओर देखकर) काहो ! माखनदास एहर आवो।

माखन०—(आगे बढ़कर हाथ जोड़कर) जै श्रीकृष्ण साहब।

छक्कूजी—जै श्रीकृष्ण, बैठो। कहो आजकल बाबू रामचंद्र का क्या हाल है ?

माखन०—हाल जौन है तौन आप जनतै हौ, दिन दूना रात चौगुना। अभइं कल्हौ हम ओं रस्ते रात के आवत रहे तो तबला ठनकत रहा। बस रात-दिन हा-हा ठी-ठी, बहुत भवा दुइ चार कवित्त बनाय लिहिन बस होय चुका।

छक्कू जी—अरे कवित्त तो इनके बापौ बनावत रहे। कवित्त बनावै से का होथै और कवित्त बनावना कुछ अपने लोगन का काम थोरै हय, ई भाँटन का काम है॥

माखन—ई तो हई है पर उन्है तो ऐसी सेखी है कि सारा ज़माना मूरख है और मैं पाडत। थोड़ा सा कुछ पढ़ वढ़ लिहिन है।

छक्कूजी—पढ़िन का है, पढ़ा-वढ़ा कुछ भी नहिंनी, एहर-ओहर की दुइ-चार बात सीख लिहिन किरिस्तानी मते की, अपने मारग का बात तो कुछ जनबै नाहीं कर्तै, अबहीं कल के लड़का हैं।

माखन०—और का।

(बालमकुन्द और मलजी आते हैं)

दोनों—(छक्कू की ओर देखकर) जय श्रीकृष्ण बाबू साहब।

छक्कूजी—जय श्रीकृष्ण, आओ बैठो, कहो नहाय आयो ?

बालमु०—जी, भय्याजी का तो नेम है कि बड़े सबेरे नहा कर फूलघर में जाते हैं तब मंगला के दर्शन करके तब घर में ज़ायकर सेवा में नहाते है और मैं तो आजकल कार्तिक के सबब से नहाता हूँ, तिस पर भी देर हो जाती है। रोकड़ मेरे जिम्मे काकाजी ने कर रखा है, इस्से बिध-विध मिलात देर हो जाती है, फिर कीर्त्तन होते प्रसाद बँटते ब्यालू-वालू कर्ते बारह कभी एक बजते हैं।

छक्कूजी—अच्छी है जो निबही जाय; कहो कातिक नहाये बाबू रामचंद जाथें कि नाहीं ?

बालमु०—क्यों, जाते क्यों नहीं ? अब की दोनों भाई जाते हैं कभी दोनों साथ, कभी आगे-पीछे, कभी इनके साथ मसाल, कभी उनके; मुझको अक्सर करके जब मैं जाता हूँ तब वह नहाकर आते रहते हैं।

छक्कूजी—मसाल काहे ले जायँ मेहरारुन का मुँह देखै के ?

बलमु०—(हँस कर) यह मैं नहीं कह सकता।

छक्कूजी—कहो मलजी, आज फूलघर में नाही गयो हिंअई बैठ गयो ?

मलजी—आज देर हो गई, दर्शन करके जाऊँगा।

छक्कूजी—तोरे हियाँ ठाकुर जी जागे होहिंहै कि नाहीं ?

मलजी—जागे तो न होंगे पर अब तैयारी होगी। मेरे हियाँ तो स्त्रियें जगाकर मंगल भोग-धर देती हैं। फिर जब मैं दर्शन करके जाता हूँ तो भोग धराकर आरती करता हूँ।

छक्कूजी—कहो तोसे रामचंद्र से बोलाचाली है कि नाहीं ?

मलजी—बोलचाल तो है, पर अब वह बात नहीं है। आगे तो दर्शन करने का सब उत्सवों पर बुलावा आता था अब नहीं आता, तिसमें बड़े साहब तो ठीक-ठीक, छोटे चित्त के बड़े खोटे हैं।

(नेपथ्य में)

गरम जल की गागर लाओ।

झप०—(गली की ओर देखकर जोर से) अरे कौन जलधरिया है ? एतनी देर भई अभहीं तोरे गागर लिआवै की बखत नाहीं भई ?

(सड़सी से गरम जल की गगरी उठाये सनिया लपेटे जलधरिया आता है)

झप०—कहो जगेसर, ई नाहीं कि जब शंखनाद होय तब झटपट अपने काम से पहुँच जावा करो।

जलधरिया—अरे चल्ले तो आवथई का भहराय पड़ीं ? का सुत्तल थोड़े रहली ? हमहूँ के झापट कंधे पर रखके एहर-ओहर घूमै के होत तब न। इहाँ तो गगरा ढोवत-ढोवत कंधा छिल जाला। (यह कहकर जाता है)

(मैली धोती पहिने दोहर सिर में लपेटे टेकचंद आए)

टेकचंद—(मथुरादास की ओर देखकर) कहो मथुरादास जी रूडा छो ?

मथुरा०—हाँ साहब, अच्छे हैं। कहिए तो सही आप इतने बड़े उच्छव में कलकत्ते से नहीं आए ! हियाँ बड़ा सुख हुआ था, बहुत से महाराज लोग पधारे थे। षट रुत छप्पन भोग में बड़े आनन्द हुए।

टेक०—भाई साहब, अपने लोगन का निकास घर से बड़ा मुसकिल है। एक तो अपने लोगन का रेल के सवारी से बड़ा बखेड़ा पड़ता है, दुसरे जब जौन काम के वास्ते जाओ जब तक ओका सब इंतजाम न बैठ जाय तब तक हुँवा जाए से कौन मतलब और सुख तो भाई साहब श्रीगिरिराजजी महाराज के आगे जो-जो देखा है सो अब सपने में भी नहीं है। अह ! वह श्रीगोविन्दराय जी के पधारने का सुख कहाँ तक कहें।

(धनदास और बनितादास आते हैं)

धनदास—कहो यार का तिगथो ?

बनितादास—भाई साहेब, बड़ी देर से देख रहे हैं, कोई पंछी नजर नाहीं आवा।

धन०—भाई साहेब, अपने तो ऊ पंछी काम का जे भोजन सोजन दूनो दे।

बनिता०—तोहरे सिद्धान्त से भाई साहेब हमरा काम तो नाहीं चलता।

धन०—तबै न सुरमा घुलाय के आँख पर चरणामृत लगाये हौ जे में पलकवाजी खूब चले, हाँ एक पलक एहरो।

बनिता०—(हँसकर) भाई साहेब अपने तो वैष्णव आदमी हैं, वैष्णविन से काम रक्खित है।

धन०—तो भला महाराज के कबौ समर्पन किये हौ कि नाहीं ?

बनिता०—कौन चीज ?

धन०—अरे कोई चौकाला ठल्ली मावड़ी पामरी ठोमली अपने घरवाली।

बनिता०—अरे भाई गोसँइयन पर तो ससुरी सब आपै भहराई पड़थीं पवित्र होवै के वास्ते, हम का पहुँचैबे।

धन०—गुरु, इन सबन का भाग बड़ा तेज है, मालो लूटैं मेह-रारुवो लूटैं।

बनिता०—भाई साहब, बड़ेन का नाम बेचथैं और इन सबन में कौन लच्छन हैं, न पढ़ना जानैं न लिखना, रात-दिन हा-हा ठी-ठी इहै है कि और कुछ ?

धन०—और गुरु इनके बदौलत चार जीवन के और चैन है, एक तो भट दुसरे इनके सरबस खवास तिसरे बिरकत और चौथी बाई।

बनिता०—कुछ कहै की बात नाहीं है। भाई मन्दिर में रहै से स्वर्ग में रहै। खाए के अच्छा, पहिरै के परसादी, से महाराज कब्बौं गाढ़ा तो पहिरबै न करियैं, मलमल नागपुरी ढाँकै पहिरियैं, अतरै फुलेल बेसर परसादी बीड़ा चाभो सब से सेवकी ल्यौ, ऊपर से ऊ बात का सुख अलगै है।

धन०—क्या कहैं, भाई साहब ! हमरो जनम हियँई होता।

बनिता०—अरे गुरु, गली-गली तो मेहरारू मारी फिरथीं तौहें एहू पर रोनै बना है। अब तो मेहरारू टके सेर हैं। अच्छे-अच्छे अमीरनौ के घर की तो पैसा के वास्ते हाथ फैलावत फिरथीं।

धन०—तो गुरु, हम तो ऊ तार चाही थै जहाँ से उलटा हमैं कुछ मिलै।

बनिता०—भाग होय तो ऐसियो मिल जायँ। देखो लाड़ली-प्रसाद के और बच्चू के ऊ नागरनी और बम्हनिया मिली हैं कि नाहीं !

धन०—गुरु, हियाँ तो चाहे मूड़ मुड़ाये हो चाहे मुँह में एको दाँत न होय पताली खोल होय, पर जो हथफेर दे सो काम की।

बनिता—तोहरी हमरी राय ई बात में न मिलिए।

(रामचन्द ठीक उन दोनों के पीछे का किवाड़ खोलकर आता है)

छक्कूजी – (धीरे से मुँह बना के) ई आएँ। (सब लोगों से जय श्रीकृष्ण होती है)

बालमु०—(रामचंद को अपने पास बैठाकर) कहिए बाबू साहब, आजकल तो आप मिलते ही नहीं क्या खबंगी रहती है ?

रामचंद—भला आप ऐसे मित्र से कोई खफा हो सकता है ? यह आप कैसी बात कहते हैं ?

बालमु०—कार्त्तिक नहान होता न है ?

रामचंद—(हँसकर) इसमें भी कोई सन्देह है !

बालमु०—हँहँहँ फिर आप तो जो काम करेंगे एक तजवीज के साथ ऐं।

(रामचन्द्र का हाथ पकड़ के हँसता है)

रामचंद—भाई ये दोनों (धनदास और बनितादास को दिखा कर) बड़े दुष्ट हैं। मैं किवाड़ी के पीछे खड़ा सुनता था। घंटों से ये स्त्रियों ही की बात करते थे।

बालमु०—यह भवसागर है। इसमें कोई कुछ बात करता है, कोई कुछ बात करता है। आप इन बातों का कहाँ तक खयाल कीजिएगा ऐं ! कहिए कचहरी जाते हैं कि नहीं ?

रामचंद—जाते हैं कभी-कभी—जी नहीं लगता, मुफत की बेगार और फिर हमारा हरिदास बाबू का साथ कुकुर-झौंझौं, हुज्जते-बंगाल, माथा खाली कर डालते हैं। खाँव-खाँव करके, थूक-थूँक के, बीभत्स रस के आलंबन, सूर्य्यनंदन—

बालमु०—(हँसकर) उपमा आप ने बहुत अच्छी दी और कहिए। और अंधेरी मजिस्टरों[1] का क्या हाल है ?

रामचंद—हाल क्या है सब अपने-अपने रंग में मस्त हैं। काशी

---

१. 'आनरेरी मजिस्ट्रेट का पद और अधिकार दिया है, उनका नाम यों है—, कुँअर शंभूनारायण सिंह, बा० ऐश्वर्यनारायण सिंह, बा० गुरुदास मित्र, बा० हरिश्चंद्र, राय नारायणदास, बा० विश्वेश्वर दास, डा० लाज़रस, मुं० बेणीलाल और दीवान कृष्ण कुँअर।' (कवि-वचन-सुधा भाद्रपद शु० १५ सं० १९२३)

परसाद अपना कोठीवाली ही में लिखते हैं, सहजादे साहब तीन घंटे में एक सतर लिखते हैं; उसमें भी सैकड़ों गलती। लक्ष्मीसिंह और शिवसिंह अच्छा काम करते हैं और अच्छा प्रयाग लाल भी करते हैं ; पर वह पुलिस के शत्रु हैं। और विष्णुदास बड़े Cunning chap हैं। दीवानराम हईं नहीं, बाकी रहे फिजिशियन, सो वे तो अँगरेज़ ही हैं, पर भाई कई मूर्खों को बड़ा अभिमान हो गया है, बात-बात में तपाक दिखाते और छः महीने को भेज दूँगा कहते हैं।

बालमु०—मैं कनमचाप नहीं समझा।

रामचंद--कनिङ्चैप माने कुटीचर।

(नेपथ्य में)

श्री गोविन्दराय जी की श्री मंगला खुली। (सब दौड़ते हैं)

(जवनिका गिरती है)

इति मन्दिरादर्श-नामक प्रथम गर्भांक

———

दूसरा गर्भांक

स्थान—गैबी, पेड़, कूँवा, पास बावली

(दलाल, गगापुत्र, दूकानदार, भडेरिया और झूरीसिह बैठे हैं)

दलाल—कहो गहन यह कैसा बीता ? ठहरा भोग बिलासी ।
माल-बाल कुछ मिला, या हुआ कोरा सत्यानासी ?
कोई चूतिया फँसा या नहीं ? कोरे रहे उपासी ?

गंगा०—मिलै न काहे भैया, गगा मैया दौलत दासी ॥
हम से पूत कपूत को दाता मनकनिका सुखरासी ।
भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी ॥

दूकान०—परदेसियौ बहुत रहे आए ?

गंगा०— और साल से बढ़कर ।

भँडे०—पितर-सौंदनी रही न अमसिया,

झूरी०— रंग है पुराने झझर ॥

खूब बचा ताइयो, का कहना,
तूँ हौ चूतिया हटर ।

भँडे०—हम न तइवै तो के तड़िए ? यही किया जनम भर ॥

दलाल—जो हो, अब की भली हुई, यह अमावसो पुनवासी ।

गंगा०—भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी ॥

झूरी०—यार लोग तो रोजै कड़ाका करथैं ऐ पैजामा ।

गंगा०—ई तो झूठ कहयौ, सिंहा,

झूरी०— तू सच बोल्यो, मामा ॥

गंगा०—तोहैं का, तू मार-पीट के करयौ अपना कामा ।
कोई का खाना, कोई की रंडी, कोई का पगड़ी-जामा ॥

झूरी०—ऊ दिन खीपट दूर गए अब सोरहो दड एकासी ।

गंगा०—भूखे पेट कोई नहि सुतता, ऐसी है ई कासी ॥

भूरी०—जब से आये नए मजिस्टर तब से आफत आई।
जान छिपावत फिरीथै खटमल--

दूकान०— ई तो सच है भाई॥

भूरी०—ई है ऐसा तेज गुरू बरसन के देथै लदाई।
गोविंद पालक मेंकलौंडो से एकी जबर दोहाई॥
जान बचावत छिपत फिरीथैं घुस गइ सब बदमासी।

गंगा०—भूखे पेट तो कोइ नहीं सुतता, ऐसी है ई कासी॥

भूरी०—तोरे आँख में चरबी छाई माल न पायो गोजर।
कैसी दून की सूझ रही है असमानों के उप्पर॥
तर न भए हौ पैदा करके, धर के माल चुतरे तर।
बछिया के बाबा, पँडिया के ताऊ, घुसनि के घुसघुस झरझर॥
कहाँ की ई तूँ बात निकास्यो खासी सत्यानासी।
भूखे पेट कोई नहिं सुतता, ऐसी है ई कासी॥

(गाता हुआ एक परदेसी आता है)

पर०—देखी तुमरी कासी, लोगो, देखी तुमरी कासी।
जहाँ बिराजैं विश्वनाथ विश्वेश्वरजी अविनासी॥
आधी कासी भाँट-भंडेरिया बाम्हन औ संन्यासी।
आधी कासी रंडी मुंडी राँड़ खानगी खासी॥
लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे, वे-बिसवासी।
महा आलसी झूठे शुहदे वे-फिकरे बदमासी॥
आप काम कुछ कभी करैं नहिं कोरे रहैं उपासी।
और करे तो हँसैं बनावैं उसको सत्यानासी॥
अमीर सब झूठे औ निंदक करैं घात विश्वासी।
सिपारसी डरपुकने सिट्टू बोलैं बातं अकासी॥
मैली गली भरी कतवारन सड़ी चमारिन पासी।
नीचे नल से बदबू उबलै मनो नरक चौरासी॥
कुत्ते भूँकत काटन दौड़ैं सड़क सौंड़ सो नासी।
दौड़ैं बंदर बने मुछंदर कूदैं चढ़े अगासी॥
घाट जाओ तो गंगापुत्तर नोचैं दै गल फाँसी॥
करैं घाटिया बस्तर-मोचन दे दे के सब झाँसी॥

राह चलत भिखमंगे नोचैं बात करैं दाता सी।
मंदिर बीच भँड़ेरिया नोचैं करैं धरम की गाँसी॥
सौदा लेत दलालो नोचैं देकर लासालासी।
माल लिए पर दुकनदार नोचैं कपड़ा दे रासी॥
चोरी भए पर पूलिस नोचैं हाथ गले बिच ढाँसी।
गए कचहरी अमला नोचैं मोचि बनावैं घासी॥
फिरैं उचक्का दे दे धक्का लूटैं माल मवासी।
कैद भए की लाज तनिक नहिं बे-सरमी नंगा सी॥
साहेब के घर दौड़े जावैं चंदा देहिं निकासी।
चढ़ै बुखार नाम मंदिर का सुनतहि होय उदासी॥
घर की जोरू लड़के भूखे बने दास औ दासी।
दाल की मंडी रडी पूजैं मानो इनकी मासी॥
आप माल कचरैं छानैं उठि भोरहिं कागाबासी।
बाप के तिथि दिन बाम्हन आगे धरैं सड़ा औ बासी॥
करि बेवहार साक बाँधैं बस पूरी दौलत दासी।
घालि रुपैया काढ़ि दिवाला माल डेकारैं ठाँसी॥
काम-कथा अमृत सी पीयैं समुझैं ताहि विलासी।
रामनाम मुँह से नहिं निकसै सुनतहि आवै खाँसी॥
देखी तुमरी कासी भैया, देखी तुमरी कासी॥

मूरी०—कहो ई सरवा अपने सहर की एतनी निंदा कर गवा; तूँ लोग कुछ बोलत्यौ नाहीं ?

गंगा०—भैया, अपना तो जिजमान है अपने न बोलैंगे चाहे दस गारी दे ले।

भंडे०—अपनो जिजमानै ठहरा।

दलाल—और अपना भी गाहकै है।

दूकान०—और भाई हमहूँ चार पैसा एके बदौलत पावा है।

मूरी०—तू सब का बोलबो, तूं सब निरे दब्बू चप्पू हौ; हम बोलबै। (परदेसी से) ए चिड़ियाबावली के परदेसी फरदेसी। कासी की बहुत निंदा मत करो। मुँह बस्सैये, का कहैं के साहिब मजिस्टर हैं नाहीं तो निंदा करना निकास देते।

पर०—निकास क्यों देते ? तुमने क्या किसी का ठीका लिया है ?

भूरी०—हाँ हाँ, ठीका लिया है मटिय़ाबुर्ज।

पर०—तो क्या हम झूठ कहते हैं ?

भूरी०—राम राम, तू भला कबौं झूठ बोलबो, तू तो निरे पोथी के बेठन हौ।

पर०—बेठन क्या।

भूरी०—वे तें मत करो गप्पो के, नाहीं तो तोरी अरबी-फारसी घुसेड़ देबै।

पर०—तुम तो भाई अजब लड़ाके हो, लड़ाई मोल लेते फिरते हो। वे ते किसने किया है ? यह तो अपनी-अपनी राय है; कोई किसी को अच्छा कहता है, कोई बुरा कहता है, इससे बुरा क्या मानना।

भूरी०—सच है पनचोरा, तू कहै सो सच, बुडढी तू कहे सो सच।

पर०—भाई अजब शहर है, लोग बिना बात ही लड़े पड़ते हैं।

(सुधाकर आता है)

(सब लोग आशीर्वाद, दंडवत्, आओ-आओ शिष्टाचार करते हैं)

गंगा०—भैया इनके दम के चैन है। ई अमीरन के खेलउना हैं।

भूरी०—खेलउना का हैं टाल, खजानची, खिदमतगार सबै कुछ हैं।

सुधाकर—तुम्हें साहब चर्रियै बूकना आता है।

भूरी०—चर्री का, हमहन झूठ बोलीलः; अरे बखत पड़े पर तूँ रंडी ले आवः, मंगल के मुजरा मिले ओमें दस्तूरी काटः, पैर दाबः, रुपया-पैसा अपने पास रक्खः, यारन के दूरे से झाँसा बतावः। ऐ ! ले गुरु तोहीं कहः हम झूठ कहथई।

गंगा०—अरे भैया बिचारे ब्राह्मण कोई तरह से अपना कालक्षेप करथैं, ब्राह्मण अच्छे हैं।

भंडे०—हाँ भाई न कोई के बुरे में, न भले में और इनमें एक बड़ी बात है कि इनकी चाल एक-रंगै हमेसा से देखी थै।

गंगा०—और साहेब एक अमीर के पास रहै से इनकी चार जगह ज्ञान-पहिचान होय गई। अपनी बात अच्छी बनाय लिहिन है।

दूकान०—हाँ भाई, बजार में भी इनकी साख बँधी है।

सुधाकर—भया भया, यह पचड़ा जाने दो; कहो यह नई मूरत कौन है?

भूरी०—गुरू साहब, हम हियाँ भाँग का रगड़ा लगावत रहे, बीच में गहन के मारे-पीटे ई धूआँकस आय गिरे।

आके पिंजड़े में फँसा अब तो पुराना चंडूल।
लगी गुलसन की हवा, तुम का हिलाना गया भूल॥

(परदेसी के मुँह के पास चुटकी बजाता है और नाक के पास से उँगली लेकर दूसरे हाथ की उँगली पर घुमाता है)

पर०—भाई तुम्हारे शहर सा तुम्हारा ही शहर है, यहाँ की लीला ही अपरंपार है।

भूरी०—तोहूँ लीला करथौ।

पर०—क्या?

भूरी०—नहीं ई जे तोहूँ रामलीला में जाथौ कि नाहीं?

(सब हँसते हैं)

पर०—(हाथ जोड़कर) भाई, तुम जीते हम हारे, माफ करो।

भूरी०—(गाता है) तुम जीते हम हारे साधो, तुम जीते हम हारे।

सुधा०—(आप ही आप) हा! क्या इस नगर की यही दशा रहेगी? जहाँ के लोग ऐसे मूर्ख हैं वहाँ आगे किस बात की वृद्धि की संभावना करें! केवल यह मूर्खता छोड़ इन्हें कुछ आता ही नहीं! निष्कारण किसी को बुरा-भला कहना। बोली ही बोलने में इनका परम पुरुषार्थ! अनाब-शनाब जो मुँह में आया बक उठे, न पढ़ना न लिखना! हाय! भगवान् इनका कब उद्धार करेगा!!

भूरी०—गुरु, का गुड़बुड़-गुड़बुड़ जपथौ?

सुधा०—कुछ नाहीं भाई यही भगवान का नाम।

भूरी०—हाँ भाई, संझा भई एह बेरा टें टें न किया चाहिए, राम-राम की बखत भई, तो चलो न गुरू।

सब—चलो भाई।

(जवनिका गिरती है)

(इति गैबी-ऐबी नामक दृश्य)

———

तीसरा गर्भांक

स्थान—मुगलसराय का स्टेशन

(मिठाईवाले, खिलौनेवाले, कुली और चपरासी इधर-उधर फिरते हैं। सुधाकर, एक विदेशी पंडित और दलाल बैठे हैं)

दलाल—(बैठके पान लगाता है) या दाता राम ! कोई भागवान से भेंट कराना।

विदेशी पंडित—(सुधाकर से) आप कौन हैं ? कहाँ से आते हैं ?

सुधाकर—मैं ब्राह्मण हूँ, काशी में रहता हूँ और लाहोर से आता हूँ।

वि० पंडित—क्या आप का घर काशीजी ही में है ?

सुधा०—जी हाँ।

वि० पंडित—भला काशी कैसा नगर है ?

सुधा०—वाह ! आप काशी का वृत्तांत अब तक नहीं जानते ? भला त्रैलोक्य में और दूसरा ऐसा कौन नगर है जिसको काशी की समता दी जाय ?

वि० पंडित—भला कुछ वहाँ की शोभा हम भी सुनें।

सुधा०—सुनिए, काशी का नामांतर वाराणसी है, जहाँ भगवती जह्नु-नंदिनी उत्तरवाहिनी होकर धनुषाकार तीन ओर से ऐसी लपटी हैं, मानो इसको शिव की प्यारी जानकर गोद में लेकर आलिंगन कर रही हैं. और अपने पवित्र जलकण के स्पर्श से तापत्रय दूर करती हुई मनुष्यमात्र को पवित्र करती हैं। उसी गंगा के तट पर पुण्यात्माओं के बनाए बड़े-बड़े घाटों के ऊपर दोमंजिले, चौमंजिले, पँचमंजिले और सतमंजिले ऊँचे-ऊँचे घर आकाश से बातें कर रहे हैं, मानो हिमालय के श्वेत शृंग सब गंगा-सेवन करने को एकत्र हुए हैं। उसमें भी माधोराय के दोनों धरहरे तो ऐसे दूर से दिखाई देते हैं मानो बाहर के

पथिकों को काशी अपने दोनों हाथ ऊँचे कर के बुलाती है। साँझ-सबेरे घाटों पर असंख्य स्त्री-पुरुष नहाते हुए, ब्राह्मण लोग संध्या वा शास्त्रार्थ करते हुए, ऐसे दिखलाई देते हैं मानो कुबेरपुरी की अलकनंदा में किन्नरगण और ऋषिगण अवगाहन करते हैं; और नगाड़ा-नफीरी, शंख-घंटा, झाँझ-स्तव और जय का तुमुल शब्द ऐसा गूँजता है मानो पहाड़ों की तराई में मयूरों की प्रतिध्वनि हो रही है; उसमें भी जब कभी दूर से साँझ को वा बड़े सबेरे नौबत की सुहानी धुन कान में आती है तो कुछ ऐसी भली मालूम पड़ती है कि एक प्रकार की झपकी सी आने लगती है। और घाटों पर सबेरे धूप की झलक और साँझ को जल में घाटों की परछाहीं की शोभा भी देखते ही बन आती है।

जहाँ व्रज-ललना-लालित, चरण-युगल पूर्ण परब्रह्म सच्चिदानंदघन वासुदेव आप ही श्री गोपाललाल रूप धारण करके प्रेमियों को दर्शन-मात्र से कृत-कृत्य करते हैं और भी बिंदुमाधवादि अनेक रूप से अपने नाम-धाम के स्मरण, दर्शन, चिंतनादि से पतितों को पावन करते हुए विराजमान हैं।

जिन मंदिरों में प्रातःकाल संध्या समय दर्शकों की भीड़ जमी हुई है, कहीं कथा, कहीं हरिकीर्त्तन, कहीं नामकीर्त्तन, कहीं नाटक, कहीं भगवत-लीला-अनुकरण इत्यादि अनेक कौतुकों के मिस से भी भगवान के नाम-गुण में लोग मग्न हो रहे हैं।

जहाँ तारकेश्वर विश्वेश्वरादि नामधारी भगवान भवानीपति तारकब्रह्म का उपदेश करके तनत्याग मात्र से ज्ञानियों को भी दुर्लभ अपुनर्भव परम मोक्षपद—मनुष्य, पशु, कीट, पतंगादि आपामर जीवमात्र को देकर उसी क्षण अनेक कल्प-संचित महापापपुंज भस्म कर देते हैं।

जहाँ अंधे, लँगड़े, लूले, बहरे, मूर्ख और निरुद्यम आलसी जीवों को भी भगवती अन्नपूर्णा अन्न-वस्त्रादि देकर माता की भाँति पालन करती हैं।

जहाँ अब तक देव, दानव, गंधर्व, सिद्ध, चारण, विद्याधर, देवर्षि, राजर्षिगण और सब उत्तम-उत्तम तीर्थ—कोई मूर्त्तिमान, कोई छिपकर और कोई रूपांतर करके नित्य निवास करते हैं।

जहाँ मूर्त्तिमान सदाशिव प्रसन्न-वदन आशुतोष सकल-सद्गुणैकरत्नाकर, विनयैकनिकेतन, निखिल विद्याविशारद, प्रशांतहृदय, गुणिजनसमाश्रय, धार्मिकप्रवर, काशीनरेश महाराजाधिराज श्रीमदीश्वरीप्रसादनारायणसिंह बहादुर और उनके कुमारोपम कुमार श्री प्रभुनारायणसिंह बहादुर दान धर्म्मसभा रामलीलादि के मिस धर्मोन्नति करते हुए और असत् कर्म्म नीहार को सूर्य की भाँति नाशते हुए पुत्र की तरह अपनी प्रजा का पालन करते हैं।

जहाँ श्रीमता चक्रवर्त्तिनिचयपूजितपादपीठा श्रीमती महारानी विक्टोरिया के शासनानुवर्त्ती अनेक कमिश्नर, जज, कलेक्टरादि अपने-अपने काम में सावधान प्रजा को हाथ पर लिए रहते हैं और प्रजा उनके विकट दंड के सर्वदा जागने के भरोसे नित्य सुख से सोती है।

जहाँ राजा शंभूनारायणसिंह, बाबू फतहनारायणसिंह, बाबू गुरुदास, बाबू माधवदास, विश्वेश्वरदास, राय नारायणदास इत्यादि बड़े-बड़े प्रतिष्ठित और धनिक तथा श्री बापूदेव शास्त्री, श्रीबाल शास्त्री से प्रसिद्ध पंडित, श्रीराजा शिवप्रसाद, सैयद अहमद खाँ बहादुर ऐसे योग्य पुरुष, मानिकचंद्र मिस्तरी से शिल्पविद्या-निपुण, वाजपेयी जी से तन्त्रीकार, श्री पंडित बेचनजी, शीतलजी, श्रीताराचरण से संस्कृत के और सेवक तथा श्रीबाबू गोपाल चंद्र से पूर्व में और अब हरिश्चंद्र से भाषा के कवि, बाबू अमृतलाल, मुंशी गन्नूलाल, मुंशी श्यामसुंदरलाल से शास्त्रव्यसनी और एकांतसेवी, श्रीस्वामी विश्वरूपानंद से यति, श्रीस्वामी विशुद्धानंद से धर्म्मोपदेष्टा, दातृगणैकाग्रगण्य श्रीमहाराजाधिराज विजयनगराधिपति से विदेशी सर्वदा निवास करके नगर की शोभा दिन दूनी रात चौगुनी करते रहते हैं।

जहाँ क्वींस कालिज (जिसके भीतर-बाहर चारों ओर श्लोक और दोहे खुदे हैं), जयनारायण कालिज से बड़े, बंगाली टोला, नार्मल और लंडन मिशन से मध्यम, तथा हरिश्चंद्र स्कूल से छोटे तथा महाराज काश्मीर और महाराज दरभंगा की पाठशालादि अनेक विद्यामंदिर हैं, जिनमें संस्कृत, अँगरेजी, हिंदी, फारसी, बँगला, महाराष्ट्री की शिक्षा पाकर प्रति वर्ष अनेक विद्यार्थी विद्योत्तीर्ण होकर प्रतिष्ठालाभ करते हैं; इनके अतिरिक्त पंडितों के घर में तथा हिंदी-फारसी पाठकों की निज शाला में अलग ही लोग शिक्षा पाते हैं, और राय संकटाप्रसाद के परिश्रमोत्पन्न पबलिक लाइब्रेरी, मुंशी सीतलप्रसाद का सरस्वती-भवन, कामाईकेल लाइब्रेरी, वंगसाहित्य-समाज, बाल सरस्वती भवन, हरिश्चंद्र का सरस्वती-भंडार इत्यादि अनेक पुस्तक-मंदिर हैं, जिनमें साधारण लोग सब विद्या की पुस्तकें देखने पाते हैं।

जहाँ मानमंदिर ऐसे यंत्रभवन, सारनाथ की धमेख से प्राचीनावशेष चिह्न, विश्वनाथ के मंदिर का वृषभ और स्वर्ण-शिखर, राजा चेतसिंह के गंगा-पार के मंदिर, कश्मीरीमल की हवेली और क्वींस कालिज की शिल्पविद्या और माधोराय के धरहरे की ऊँचाई देखकर विदेशी जन सर्वदा चकित रहते हैं।

जहाँ महाराज विजयनगर के तथा सरकार के स्थापित स्त्री-विद्यामंदिर, औषधालय, अंधभवन, उन्मत्तागार इत्यादिक लोकद्वय-साधक अनेक कीर्तिकर कार्य हैं, वैसे ही चूड़-वाले इत्यादि महाजनों का सदावर्त्त और श्री महाराजाधिराज सेंधिया आदि के अटल सत्र से ऐसे अनेक दीनों के आश्रय-भूत स्थान हैं जिनमें उनको अनायास ही भोजनाच्छादन मिलता है।

जहाँ नारायण भट्ट जी का और शेष और धर्माधिकारी पंडितों का वंश, अहोबल शास्त्री, जगन्नाथ शास्त्री, गोस्वामी श्री गिरिधर जी, पंडित काकाराम, पंडित मायादत्त, पंडित

हीरानंद चौबे, काशीनाथ शास्त्री, पंडित भवदेव, पंडित सुखलाल और भी जिनका नाम इस समय मुझे स्मरण नहीं आता, अनेक ऐसे-ऐसे धुरंधर पंडित हुए हैं, जिनकी विद्या मानों मंडन मिश्र की परंपरा पूरी करती थी।

जहाँ विदेशी अनेक तत्त्ववेत्ता धार्म्मिक धनीजन घर-बार कुटुंब देश-विदेश छोड़कर निवास करते हुए तत्त्वचिंता में मग्न सुख-दुःख भुलाए संसार को यथारूप में देखते सुख से निवास करते हैं। आत्मानंद हंस जी को देख लीजिए।

जहाँ पंडित लोग विद्यार्थियों को ऋक्, यजुः, साम, अथर्व, महाभारत, रामायण, पुराण, उपपुराण, स्मृति, न्याय, व्याकरण, सांख्य, पातंजल, वैशेषिक, मीमांसा, वेदांत, शैव, वैष्णव, अलंकार, साहित्य, ज्योतिष इत्यादि शास्त्र सहज में पढ़ाते हुए मूर्तिमान गुरु और व्यास से शोभित काशी की विद्यापीठता सत्य करते हैं।

जहाँ भिन्न देशनिवासी आस्तिक विद्यार्थीगण परस्पर देवमंदिरों में, घाटों पर, अध्यापकों के घर में, पंडित-सभाओं में वा मार्ग में मिलकर शास्त्रार्थ करते हुए अनर्गल धारा-प्रवाह संस्कृत-भाषण से सुननेवालों का चित्त हरण करते हैं।

जहाँ स्वर लय छंद मात्रा, हस्तकंपादि से शुद्ध वेदपाठ की ध्वनि से जो मार्ग में चलते वा घर बैठे सुन पड़ती है, तपोवन की शोभा का अनुभव होता है।

जहाँ द्रविड़, मगध, कान्यकुब्ज, महाराष्ट्र, बंगाल, पंजाब, गुजरात इत्यादि अनेक देश के लोग परस्पर मिले हुए अपना-अपना काम करते दिखाते हैं और वे एक एक जाति के लोग जिन मुहल्लों में बसे हैं वहाँ जाने से ऐसा ज्ञात होता है मानो उसी देश में आए हैं, जैसे बंगाली टोले में ढाके का, लहौरी टोले में अमृतसर का और ब्रह्माघाट में पूने का भ्रम होता है।

जहाँ निराहार, पयाहार, यताहार, भिक्षाहार, रक्ताम्बर, श्वेताम्बर, नीलाम्बर, चर्म्माम्बर, दिगम्बर, दंडी, संन्यासी, ब्रह्मचारी, योगी, यती, सेवड़ा, फकीर, सुथरेसाईं, कनफटे,

ऊर्ध्वबाहु, गिरि, पुरी, भारती, वन, पर्वत; सरस्वती, किनारामी, कबीरी, दादूपंथी, नान्हकसाही, उदासी, रामानंदी, कौल, अघोरी, शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर इत्यादि हिंदू और ऐसे ही अनेक भाँति के मुसलमान फकीर नित्य इधर से उधर भिक्षा उपार्जन करते फिरते हैं और इसी भाँति सब अंधे, लँगड़े, लूले, दीन, पंगु, असमर्थ लोग भी भिक्षा पाते हैं, यहाँ तक कि आधी काशी केवल दाता लोग के भरोसे नित्य अन्न खाती है।

जहाँ हीरा, मोती, रुपया, पैसा, कपड़ा अन्न, घी, तेल, अतर, फुलेल, पुस्तक, खिलौने इत्यादि की दूकानों पर हजारों लोग कांम करते हुए मोल लेते बेंचते दलाली करते दिखाई पड़ते हैं।

जहाँ की बनी कमखाब, बाफता, हमरू, समरू, गुलबदन, पोत, बनारसी साड़ी, दुपट्टे, पीताम्बर, उपरने, चोलखंड, गोंटा, पट्टा इत्यादि अनेक उत्तम वस्तुएँ देशविदेश जाती हैं और जहाँ की मिठाई, खिलौने, चित्र, टिकुली, बीड़ा इत्यादि और भी अनेक सामग्री ऐसी उत्तम होती हैं कि दूसरे नगर में कदापि स्वप्न में भी नहीं बन सकतीं।

जहाँ प्रसादी तुलसी-माला फूल से पवित्र और स्नायी स्त्री-पुरुषों के अंग के विविध चंदन, कस्तूरी, अतर इत्यादि सुगंधि-द्रव्य के मादक आमोद-संयुक्त परम शीतल तापत्रय-विमोचक गंगाजी के कण स्पर्श मात्र से अनेक लौकिक अलौकिक ताप से तापित मनुष्यों का चित्त सर्वदा शीतल करते हैं।

जहाँ अनेक रंगों के कपड़े पहने, सोरहो सिंगार, बत्तीसो आभरण सजे, पान खाए, मिस्सी की धड़ी जमाए, जोबन-मदमाती झमझमाती हुई बारबिलासिनी देवदर्शन वैद्य-ज्योतिषी-गुणीगृहगमन, जार-मिलन, गानश्रावण, उपवन-भ्रमण इत्यादि अनेक बहानों से राजपथ में इधर-उधर झूमती-घूमती नैनों के पटे फेरती बिचारे दीन पुरुषों को ठगती फिरती हैं और कहाँ तक कहैं काशी काशी ही है। काशी सी नगरी

त्रैलोक्य में दूसरी नहीं है। आप देखिएगा तभी जानिएगा, बहुत कहना व्यर्थ है।

वि० पंडित—वाह वाह! आपके वर्णन से मेरे चित्त का काशी दर्शन का उत्साह चतुर्गुण हो गया। यों तो मैं सीधा कलकत्ते जाता, पर अब काशी बिना देखे कहीं न जाऊँगा। आपने तो ऐसा वर्णन किया मानो चित्र सामने खड़ा कर दिया। कहिए वहाँ और कौन-कौन गुणी और दाता लोग हैं जिनसे मिलूँ।

सुधा०—मैं तो पूर्व ही कह चुका हूँ कि काशी गुणी और धनियों की खान है, यद्यपि यहाँ के बड़े-बड़े पंडित जो स्वर्गवासी हुए उनसे अब होने कठिन हैं, तथापि अब भी जो लोग हैं दर्शनीय और स्मरणीय हैं। फिर इन व्यक्तियों के दर्शन भी दुर्लभ हो जायंगे, और यहाँ के दाताओं का तो कुछ पूछना ही नहीं। चूड़ की कोठीवालों ने पंडित काकाराम जी के ऋण के हेतु एक साथ बीस सहस्र मुद्रा दीं। राजा पटनीमल के बाँधे धर्म्मचिन्ह कर्मनाशा का पुल और अनेक धर्म्मशाला, कूएँ, तालाब, पुल इत्यादि भारतवर्ष के प्रायः सब तीर्थों पर विद्यमान हैं। साह गोपालदास के भाई साह भवानीदास की भी ऐसी ही उज्ज्वल कीर्ति है और भी दीवान केवलकृष्ण, चम्पतराय अमीन इत्यादि बड़े-बड़े दानी इसी सौ वर्ष के भीतर हुए हैं। बाबू राजेन्द्र मित्र की बाँधी देवी-पूजा बाबू गुरु दास मित्र के यहाँ अब भी बड़े धूम से प्रतिवर्ष होती है। अभी राजा देवनारायण सिंह ही ऐसे गुणज्ञ हो गए हैं कि उनके यहाँ से कोई खाली हाथ नहीं फिरा। अब भी बाबू हरिश्चंद्र इत्यादि गुणग्राहक इस नगर की शोभा की भाँति विद्यमान हैं। अभी लाला बिहारीलाल और मुंशी रामप्रताप जी ने कायस्थ जाति का उद्धार करके कैसा उत्तम कार्य्य किया। आप मेरे मित्र रामचंद्र ही को देखिएगा। उसने बाल्यावस्था ही में लक्षावधि मुद्रा व्यय कर दी है।* अभी बाबू हरखचंद मरे हैं जो एक गोदान

* इतना विषय मैंने सत्य होने के कारण स्वयं दे दिया है। (राधा कृष्णदास)

नित्य करके जलपान करते थे। कोई भी फकीर यहाँ से खाली नहीं गया। दस पंद्रह रामलीला इन्हीं काशी-वालों के व्यय से प्रति वर्ष होती है और भी हजारों पुण्यकार्य यहाँ हुआ ही करते हैं। आपको सबसे मिलाऊँगा आप काशी चलें तो सही।

वि० पंडित—लाहोर क्यों गये थे ?

सुधा०—(लम्बी साँस लेकर) कुछ न पूछिए योंहीं सैर को गया था।

दलाल—(सुधाकर से) का गुरु। कुछ पंडितजी से बोहनी वाड़े का तार होय तो हम भी साथै चलूँ चैं।

सुधा०—तार तो पंडित वाड़ा है कुछ विशेष नहीं जान पड़ता।

दलाल—तब भी फोंक सऊड़े का मालवाड़ा कहाँ तक न लेऊचियै।

सुधा०—अब जो पलते पलते पलै।

वि० पंडित—यह इन्होंने किस भाषा में बात की ?

सुधा०—यह काशी ही की बोली है, ये दलाल हैं, सो पूछते थे कि पंडितजी कहाँ उतरेंगे।

वि० पंडित—तो हम तो अपने एक संबंधी के यहाँ नीलकंठ पर उतरेंगे।

सुधा०—ठीक है, पर मैं आपको अपने घर अवश्य ले जाऊँगा।

वि० पंडित—हाँ हाँ, इसमें कोई संदेह है ? मैं अवश्य चलूँगा।

(स्टेशन का घंटा बजता है और जवनिका गिरती है)

इति प्रतिच्छवि-वाराणसी नामक दृश्य

———

चौथा गर्भांक

स्थान—बुभुक्षित दीक्षित की बैठक

(बुभुक्षित दीक्षित, गप्प पंडित, रामभट्ट, गोपाल शास्त्री, चंबूभट्ट, माधव शास्त्री आदि लोग पान-बीड़ा खाते और भाँग बूटी की तजवीज करते बैठे हैं; इतने में महाश कोतवाल अर्थात् निमंत्रण करने वाला आकर चौक में से दीक्षित को पुकारता है)

महाश—काहो, बुभुक्षितदीक्षित आहेत ?

बुभुक्षित— (इतना सुनते ही हाथ का पान रखकर) कोण आहे ? (महाश आगे बढ़ता है) वाह महाश तु आहेश काय ? काय बाबा आज किती ब्रह्मण आमच्या तड़ांत देतोस ? सरदारांनी किती सांगीतलेत ? (थोड़ा ठहरकर) कायरे ठोक्याच्या कमरयान्त सहस्रभोजन कुणाच्या यजमानाचे चाल्ले आहे ?

महाश—दीक्षितजी ! आज ब्राह्मणाची अशी मारामार झाली कि मी माँहीं सांगूँ शकत नाहीं—कोण तो पचड़ा !!

बुभु०—खरें, काय मारामार झाली ? अच्छा ये तर बैठकेंत पण; आखेरीस आमचे तड़ाची काय व्यवस्था ? ब्राह्मण आणलेस की नाहीं ? काँ हात हलवीतच आलास ?

महाश—(बैठक में बैठकर जल माँगता है) दीक्षितजी थोड़ेंसें पाणी द्या, तहान बहुत लागली आहे ।

बुभु०—अच्छा भाई, थोड़ा सा ठहर अत्ता उनातून आला आहेस, बूटी ही बनतेच आहे । पाहिजे तर बूटीचच पाणी पी । अच्छा सॉग तर कसे काय ब्राह्मण किती मिलाले ?

महाश—गुरु, ब्राह्मण तो आज २५ निकाले, यार लोग आपके शागिर्द हैं कि और किसके ?

चंबूभट्ट—(बड़े आनन्द से) क्या भाई सच कहो—२५ ब्राह्मण मिलाले ?

महाश—हो गुरु ! २५ ब्राह्मण तर नुसते सहस्रभोजनाचे, परन्तु आजचे वसंतपूजेचे तर शिवाय च—आणखी सभेकरतां तर पेष लावलाच आहे पण—

गोपाल, माधव शास्त्री—(घबड़ाकर) काय महाश पण काँ ? सभेचें काम कुणाकड़े आहे ? अणखी सभा कधीं होणार ? आँ ?

महाश—पण इतकेंच कीं हा यजमान पाप नगरांत रहतो, आणि याला एक कन्या आहे ती गत-भर्तृका असून सकेशा आहे आणि तीर्थस्थलीं तर चौर करणें अवश्य पण चौरेकरून कन्येंची शोभा जाईल या करितां जर कोणी असा शास्त्रीय आधार दाखवील तर एक हजार रुपयांची सभाकरण्याचा त्यांचा विचार आहे व या कामांत धनतुंदिल शास्त्रीनी हात घातला आहे।

गप्प पंडित—अंः, तो ऐसी क्षुल्लक बात के हेतु शास्त्राधार का क्या काम है ? इसमें तो बहुत से आधार मिलेंगे।

माधव शास्त्री—हाँ पंडितजी आप ठीक कहते हैं, क्योंकि हम लोगों का वाक्य और ईश्वर का वाक्य समान ही समझना चाहिए "विप्रवाक्ये जनार्दनः" "ब्राह्मणो मम दैवतं" इत्यादि।

गोपाल—ठीकच आहे, आणि जरि कदाचित् असल्या दुर्घट कामांनी आम्ही लोकदृष्ट्या निन्द्य झालों तथापि वन्द्यच आहों, कारण श्री मद्भागवतांत ही लिहलें आहे "विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्येत कश्चनेत्यादि"।

गप्प पंडित—हाँजी, और इसमें निन्द्य होने का भी क्या कारण ? इसमें शास्त्र के प्रमाण बहुत से हैं और युक्ति तो हई है। पहिले यही देखिए कि इस चौर कर्म से दो मनुष्यों को अर्थात् वह कन्या और उसके स्वजन इनको बहुत ही दुःख होगा और उसके प्रतिबंध से सबको परम आनंद होगा। तब यहाँ इस वचन को देखिए—

"येन केनाप्युपायेन यस्य कस्यापि देहिनः।
संतोष जनयेत् प्राज्ञस्तदेवेश्वर पूजनं॥'

बुभु०—और ऐसे बहुत से उदाहरण भी इसी काशी में होते आए हैं। दूसरा काशीखंड ही में कहा है "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसीगतिः।"

चंबूभट्ट—मूर्खतागार का भी यह वाक्य है "अथवा वाललवनं जीवनार्हनवद्भवेत्"। संतोषसिंधु में भी "सकेशैव हि संस्थाप्या यदि स्यात्तोषदा नृणां"।

महाश—दीक्षितजी! बूटी झाली—अब छने जल्दी कारण बहुत प्यासा जीव होऊन गेला अणखी अझून पुष्कल ब्राह्मण सांगायचे आहेत।

बुभु०—(भांग की गोली और जल, बरतन, कटोरा, साफी लेकर) शास्त्रीजी! थोड़े से बढ़ा तर।

माधव शास्त्री—दीक्षितजी! हें माँझ काम नव्हें, कारण मी अपला खाली पीण्याचा मालिक आहे, मला छानतां येत नाहीं। (गोपाल शास्त्री की ओर दिखलाकर) ये इसमें परम प्रवीण हैं।

गोपाल शास्त्री—अच्छा दीक्षितजी, मीच आलों सही।

चंबूभट्ट—(इन सबों को अपने काम में निमग्न देखकर) बरें मग महाश अखेरीस तड़ाचे किती ब्राह्मण सहस्रभोजनाचे व वसंतपूजेचे किती?

महाश—दीक्षिताचे तड़ांत आज एकंदर २५ ब्राह्मण; पैकीं १५ संहस्रभोजनाकड़े आणि १० वसंतपूजेकड़े—

माधव शास्त्री—आणि सभेचे?

महाश—सभेचे तर मी सांगीतलेंच कीं धनतुंदिल शास्त्रीचे अधिकारांत आहे, आणि दोन तीन दिवसाँत ते बंदोबस्त करणार आहेत।

गप्प पंडित—क्यों महाश! इस सभा में कोई गौड़ पंडित भी हैं वा नहीं?

महाश—हाँ पंडित जी, वह बात छोड़ दीजिए, इसमें तो केवल दाक्षिणात्य, द्राविड़ और कचित् तैलंग भी होंगे, परंतु सुना है कि जो इसमें अनुमति करेंगे वे भी अवश्य सभामद होंगे।

गप्प पंडित—इतना ही न, तब तो मैंने पहिले ही कहा है, माधव शास्त्री ! अब भाई यह सभा दिलवाना आप के हाथ में है।

माधव—हाँ पंडित जी, मैं तो अपने शक्त्यनुसार प्रयत्न करता हूँ, क्योंकि प्रायः काका (धनतुंदिल शास्त्री जो कुछ करते हैं उसका सब प्रबंध मुझे ही सौंप देते हैं। (कुछ ठहर कर) हाँ, पर पंडित जी, अच्छा स्मरण हुआ, आप से और न्यू फांड (New fond) शास्त्री से बहुत परिचय है, उन्हीं से आप प्रवेश कीजिए, क्योंकि उनसे और काका जी से गहरी मित्रता है।

गप्प पंडित—क्या क्या शास्त्री जी ? न्यू—क्या ? मैंने यह कहीं सुना नहीं।

गोपाल—कभी सुना नहीं इसी हेतु न्यू फांड।

गप्प पंडित—मित्र ! मेरा ठट्टा मत करो। मैं यह तुम्हारी बोली नहीं समझता। क्या यह किसी का नाम है ? मुझे मालूम होता है कि कदाचित् यह द्रविड़ त्रिलिंग आदि देश के मनुष्य का नाम होगा। क्योंकि उधर की बोली मैंने सुनी है उसमें मूर्द्धन्य वर्ण प्रायः बहुत रहते हैं।

माधव शास्त्री—ठीक पंडित जी, अब आप का तर्कशास्त्र पढ़ना आधा सफल हुआ। अस्तु ये उधर ही के हैं जो आप के साथ रामनगर गए थे, जिन्होंने घर में तमाशे वाले की बैठक की थी—

गप्प पंडित—हाँ हाँ, अब स्मरण हुआ, परंतु उनका नाम परोपकारी शास्त्री है और तुम क्या भांड कहते हो ?

गोपाल शास्त्री—वाह पंडित जी, भांड नहीं कहा फांड कहा—न्यू फांड अर्थात् नये शौखीन। सारांश प्राचीन शौखीन लोगों ने जो-जो कुछ पदार्थ उत्पन्न किए, उपभुक्त किए उन ही उनके उच्छिष्ट पदार्थ का अवलम्बन करके वा प्राचीन रसिकों की चाल-चलन को अच्छी समझ हम को भी लोक वैसा ही कहें आदि से खींच-खींच के रसिकता लाना, क्या शास्त्री जी ऐसा न इसका अर्थ ?

माधव शास्त्री—भाई, मुझे क्यों नाहक इसमें डालते हो—

गप्प पंडित—अच्छा, जो होय मुझे उसके नाम से क्या काम। व्यक्ति मैंने जानी परन्तु माधव जी आप कहते हैं और मुझसे उनसे भी पूर्ण परिचय है और उनको उनका नाम सच शोभता है, परन्तु भाई वे तो बड़े आढ्य मान्य हैं और कंजूस भी हैं—और क्या तुमसे उनसे मित्रता मुझसे अधिक नहीं है। यहाँ तक शयनासन तक वे तुमको परकीय नहीं समझते।

माधव शास्त्री—पंडित जी! वह सर्व ठीक है, परन्तु अब वह भूत-कालीन हुई। कारण 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'—

बुभु०—हाँ पंडित जी! अब क्षण भर इधर बूटी को देखिए, लीजिए।

(एक कटोरा देकर पुनः दूसरा देते हैं)

गप्प पंडित—वाह दीक्षित जी, बहुत ही बढ़िया हुई।

चंबूभट्ट—(सब को बूटी देकर अपनी पारी आई देख कर) हाँ हाँ दीक्षित जी, तिकड़ेच खतम करा मी आज काल पीत नाहीं।

गोपाल, माधव—काँ भटजी! पुरे आतां, हे नखरे कुठे शिकलात, या—त्या—हवेने व्यर्थ थंडी होतें।

चंबूभट्ट—नाहीं भाई मी सत्य सांगतों, मला सोसत नाहीं। तुम्हाला माझे नखरे वाटतात पण हे प्रायः इथले काशीतलेच आहेत, व अपल्या सारख्यांच्या परम प्रियतम सफेत खड़खड़ीत उपर्णा पाँघरणार अनाथा बालानींच शिकविलेत बरें।

(सब आग्रह करके उसको पिलाते हैं)

महाश—कां गुरु दीक्षित जी अब पलेती जमविली पाहिजे।

बुभु०—हाँ भाई, घे तो बंटा आणि लाव तर एक दोन चार।

महाश—(इतने में अपना पान लगाकर खाता है और दीक्षित जी से-) दीक्षित जी, १५ ब्राह्मण ठोक्याच्या कमऱ्यांत पाठवा; दाहा बाजतां पानें माँडलो जातील, आणि आज रात्री वसंतपूजेस १० ब्राह्मण लवकर पाठवा कारण मग दूसरे तड़ाचे ब्राह्मण येतील। (ऐसा कहता हुआ चला जाता है)

बुभु०—(उसको पुकारते हुए जाते हैं) महाश! दक्षिणा कितनी?

(महाश वहीं से चार अँगुली दिखा कर गड्डा कहकर गया)

माधव—दीक्षित जी ! क्या कहीं बहरी ओर चालएगा ?

गोपाल—(दीक्षित से) हाँ गुरु, चलिए आज बड़ी वहाँ लहरा है।

बुंभु०—भाई बहरीवर मी जाऊन इकडचा बंदोबस्त कोण करील ?

गोपाल—अंः गुरु इतके १५ ब्राह्मणांत घबड़ावता । सर्वभक्षास साँगीतले ब्राह्मण जे झाले। न्यूफांड की पत्ती है।

गप्प पंडित—क्या परोपकारी क़ी पत्ती है ? खाली पत्ती दी है कि और भी कुछ है ? नाहीं तो मैं भी चलूँ।

माधव शास्त्री—पत्ती क्या बड़ी-बड़ी लहरा है, एक तो बड़ा भारी प्रदर्शन होगा और नाना रीति के नाच, नए-नए रंग देख पड़ेंगे।

गप्प पंडित—क्यों शास्त्री जी, मुझे यह बड़ा आश्चर्य्य ज्ञात होता है और इस से परिहासोक्ति सी देख पड़ती है। क्योंकि उसके यहाँ नाच-रंग होना सूर्य का पश्चिमाभिमुख उगना है।

गोपाल—पंडितजी ! इसी कारण इनका नाम न्यू फांड है। और तिस पर यह एक गुह्य कारण से होता है। वह मैं और कभी आप से निवेदन करूँगा, वा मार्ग में—

बुभु०—(सर्वभक्ष नाम अपने लड़के को सब व्यवस्था कहकर आप पान-पत्तेती और रस्सी-लोटा और एक पंखी लकर) हाँ भाई मेरी सब तैयारी है।

माधव, गोपाल—चलिए पंडितजी वैसे ही धनतुंदिल शास्त्री जी के यहाँ पहुँचेंगे। (सब उठकर बाहर आते हैं)

चंबूभट्ट—मैं तो भाई जाता हूँ क्योंकि संध्या समय हुआ।

[चला जाता है

गप्प पंडित—किधर जाना पड़ेगा ?

माधव शास्त्री—शंखोद्धारा क्योंकि आजकल श्रावण मास में और कहाँ लहरा ? घराऊ कजरी, श्लोक, लावनी, ठुमरी, कटौवल, बोली-ठोली सब उधर ही।

गप्प पंडित--ठीक शास्त्रीजी, अब मेरे ध्यान में पहुँचा, आजकाल शंखोद्धारा का बड़ा माहात्म्य है। भला घर पर यह अब कहाँ सुनने में आवेगा ? क्योंकि इसमें घराऊ विशेषण दिया है।

गोपाल--आः हमारा माधव शास्त्री जहाँ है वहाँ सब कुछ ठीक ही होगा, इसका परम आश्रय प्राणप्रिय रामचंद्र बाबू आप को विदित है कि नहीं ? उसके यहाँ ये सब नित्य कृत्य हैं।

गप्प पंडित--रामचंद्र हम ही को क्या परंतु मेरे जान प्रायः यह जिसको विदित नहीं ऐसा स्वल्प ही निकलेगा। विशेष करके रसिकों को; उसको तो मैं खूब जानता हूँ।

गोपाल--कुछ रोज हमारे शास्त्री जी भी थे, परंतु हमारा क्या उनका कहिए ऐसा दुर्भाग्य हुआ कि अब वर्ष-वर्ष दर्शन नहीं होने पाता। रामचंद्र जी तो इनको अपने भ्राता के समान पालन करते थे और इनसे बड़ा प्रम रखते थे। अस्तु सारांश पंडित जी वहाँ रामचंद्र जी के बगीचे में जायँगे। वहाँ सब लहरा देख पड़ेगी और इस मिस से तो भी उनका दर्शन होगा।

बुभु०--अरे पहिले नवे शौखिनाचे इथे जाऊँ तिथे काय आहे हें पाहूँ आणि नंतर रामचंद्राकडे झुकूँ।

माधव शास्त्री--अच्छा तसेच होय आजकल न्यू फांड शास्त्री यानी ही बहुत उदारता धरली आहे बहुत सी पाखरें ही चारली आहेत तो सर्व द्रष्टीस पड़तील पण भांई मी आँत यायचा नाहीं। कारण मला पाहून त्यांना त्रास होतो।

गोपाल - अच्छा तिथ वर तर चलशील आगे देखा जायगा।

(सब जाते हैं और जवनिका गिरती है)

धिस्सधिसद्विज कृत्य विवर्तनों नामक दृश्य

प्रेम-योगिनी के

चौथे गर्भांक के मराठी अंश का हिंदी रूपान्तर

महाश—क्या हो बुभुक्षित दीक्षित हैं ?

बुभुक्षित—कौन है ? वाह महाशय, क्या तू है ? क्यों बाबा आज कितने ब्राह्मणों को हमारे द्वारा निमंत्रण दोगे। मालिक ने कितने ब्राह्मण कहे हैं ? क्यों रे ठोक्या के यहाँ कहाँ के यज़मान का सहस्र भोजन चल रहा है ?

महाश—दीक्षित जी, आज ब्राह्मणों में ऐसी मार-पीट हुई कि नहीं कह सकता। वह बड़ा पचड़ा है।

बुभु०—क्या सचमुच मार-पीट हुई ? अच्छा, आओ चलो बैठक में। पर यह तो बतलाओ कि आखिर हमारे ब्राह्मणों की क्या व्यवस्था होगी ? तू ब्राह्मणों को लाया या नहीं ? या यों ही हाथ झुलाता चला आया।

महाश०—दीक्षित जी थोड़ा सा जल दीजिए, बड़ी प्यास लगी है।

बुभु०—अच्छा भाई थोड़ा ठहरो इतनी धूप में आए हो। बूटी ही बन रही है। थोड़ी बूटी ही पी लो। अच्छा यह बतलाओ कि कौन कौन से और कितने ब्राह्मण मिले ?

महाश—(हिन्दी)

चंबूभट्ट—.. .....२५ ब्राह्मण ?

महाश—हाँ गुरु, २५ ब्राह्मण तो केवल सहस्र भोजन के हैं। और आज जो बसंत पूजा होगी, उसके लिए अलग, और जो सभा होगी, उनके लिए भी मैंने तार लगाया है, लेकिन...।

गोपाल, माधव शास्त्री—क्यों महाश लेकिन क्या ! सभा का काम किसके हाथ में है ? और सभा कब होने वाली है ?

महाश—पर यही है कि यह यजमान पाप नगर में रहता है। इसे एक कन्या है, वह विधवा है पर उसके सिर पर केश हैं। तीर्थ स्थान में आकर क्षौर करना आवश्यक है पर क्षौर करने से कन्या की शोभा चली जायगी इसलिए जो कोई ऐसी शास्त्रोक्त

व्यवस्था दे तो उसका एक हजार रुपये की सभा करने का विचार है और यह काम धन-तुंदिल शास्त्री के हाथ में पड़ गया है।

गप्प पं०—उँ (हिन्दी)

माधव शास्त्री—(हिन्दी)

गोपाल०—ठीक ही है, और यदि किसी दुर्घट काम के कारण हम लोक-दृष्टि में निंद्य भी हों तब भी हम वंद्य हैं, क्योंकि श्रीमद्भागवत ही में लिखा है कि 'पापं किए हुए ब्राह्मण को भी कोई हानि न पहुँचावे इत्यादि'.....।

गप्प पं०—(हिन्दी)

बुभु०—(हिन्दी)

चंबू भट्ट—(हिन्दी)

महाश—दीक्षित जी, बूटी तैयार हुई—अब जल्दी छने क्योंकि यह जीव बहुत प्यासा हो गया है और अभी बहुत से ब्राह्मणों के यहाँ कहने जाना है।

बुभु०—जरा छानो तो।

माधव शास्त्री—दीक्षित जी, यह मेरा काम नहीं, कारण, मैं केवल अपने पीने का मालिक हूँ, मुझे छानना नहीं आता।
(हिन्दी)

गोपाल०—अच्छा दीक्षित जी, मैं ही आता हूँ।

चंबू भट्ट—महाश आखिर हमारे दल के सहस्र भोजन में कितने ब्राह्मण और बसंत पूजा में कितने ब्राह्मण रहेंगे ?

महाश—आज दीक्षित के दल के कुल २५ ब्राह्मण हैं। उनमें से १५ सहस्र भोजन में और १० बसंत पूजा में रहेंगे।

माधव शास्त्री—और सभा के ?

महाश—सभा के बारे में तो मैंने कह ही दिया कि धनतुंदिल शास्त्री के अधिकार में है और दो तीन दिन में वे उसका भी बंदोबस्त करेंगे।

गप्प पं०—(यहाँ से पृष्ठ १६७ में गप्प पंडित तक हिन्दी है)

चंबू भट्ट—हाँ हाँ दीक्षित जी वहीं खतम करिये मैं आज कल नहीं पीता।

गोपाल, माधव—क्यों भट्ट जी, बस रहने दो, ये नखरे कहाँ सीखे ? इसे पीओ, व्यर्थ यह ठंढी होती है।

चंबू भट्ट—नहीं भाई मैं सत्य कहता हूँ, मुझको बरदाश्त नहीं होती। तुम लोगों को तो यह नखरा जान पड़ता है पर ये सब प्रायः काशी के ही हैं और आप लोगों के समान परम प्रियतम सफेद करकराता डुपट्टा ओढ़ने वाली अनाथ बाला ने ही सिखलाए होंगे।

महाश—क्यों गुरु दीक्षित जी अब पान जमाना चाहिए।

बु०भु०—हाँ भाई, यह बंटा है ले आओ और लगाओ तब एक दो चार।

महाश—दीक्षित जी, ठोक्या के कमरे में १५ ब्राह्मण भेजिए। दस बजे पत्तल परसी जायगी और रात को बसन्त पूजा में १० ब्राह्मण जल्दी भेज देना, क्योंकि उसके बाद दूसरे दल के ब्राह्मण आवेंगे।

बुभु०—(हिन्दी)

माधव०—(हिन्दी)

गोपाल—(हिन्दी)

बुभु०—भाई बहरी ओर यदि मैं जाऊँ तो यहाँ का प्रबंध कौन करेगा।

गोपाल—एँ, गुरु केवल १५ ब्राह्मणों के लिए घबड़ाते हो। सर्वभक्ष को सहेज दो ब्राह्मणों को भेज देगा। (हिन्दी)

गप्प पं—(यहाँ से पृ० १७० गोपाल० के कथन तक हिंदी है)

बुभु०—अरे पहिले नए शौकीन के यहाँ चलूँ, वहाँ क्या है यह देख लूँ तब रामचंद की ओर झुकूँ।

माधव शास्त्री—अच्छा वैसा ही हो, आजकल म्यू फांड शास्त्री ने बहुत उदारता धारण की है और बहुत सी चिड़िया भी पाली हैं। वह सब भी देखने में आवेंगी। पर भाई मैं अन्दर नहीं जाऊँगा। क्योंकि मुझे देखकर उन्हें बहुत कष्ट होता है।

गोपाल-अच्छा वहाँ तक तो चलो, आगे देखा जायगा।

———

विषस्य विषमौषधम्

भाण

संवत् १९३३

हरिश्चंद्र चंद्रिका, खंड ३ संख्या १०
अक्तूबर सन् १८७६ ई० में प्रकाशित

विषस्य विषमौषधम्

भाण

—:o:—

परतिय-रत रावन बध्यौ, पर-धन रत तिमि कंस।
राम-कृष्ण जय सूर-ससि, करन मोह अघ धंस॥

(भंडाचार्य्य आता है)

भंडाचार्य्य—(लंबी साँस लेकर)

"पर नारी पैनी छुरी, ताहि न लाओ अंग।
रावनहू को सिर गयो, पर-नारी के संग॥"

हमारी दशा भी अब रावण की हुआ चाहती है, तो क्या हुआ, होय।

रावन ने दस सिर दिए, जनक-नंदिनी-काज।
जौ मेरी इक सिर गयो, तो यामें कहँ लाज॥

देखो पर-स्त्री-संग से चन्द्रमा यद्यपि लांछित है तो भी जगत् को आनंद देता है वैसे ही (मोछों पर हाथ फेरकर) हम बड़े कलंकित सही पर इस नगर की शोभा हैं। भला दुष्ट बाबाभट्ट क्या हुआ, तुमने हमारा सब भेद खोल दिया, यह भेद खुलने पर भी हमने तुम्हें और कृष्णाबाई दोनों को न छकाया तो मेरा नाम भंडाचार्य्य नहीं। अब भी क्या खंडेराव का राज्य है कि पहलवानों की पूछ होगी, अब तो जो कुछ हैं हमीं लोग हैं। (ऊपर देखकर) क्या कहा कि 'इसी उपद्रव से न यह गति हुई'। किसकी किसकी ? महाराज मल्हारराव की ? ए भाई जरा हाल तो कहे जाओ ! (ऊपर देखकर) हैं चला गया, कौन गति हुई, इतना तो हमने भी सुना था कि कुछ दिन हुए एक खबीसन आई थी, क्या जाने कौन साहब उसके

मालिक थे। उँः अरे वह तो इसी बात पर न आई थी कि महाराज की भेड़ियाँ उनसे अच्छी तरह नहीं चराई जातीं तो फिर इससे क्या? अपनी नाक ठहरी चाहे जिधर फेर दिया। और फिर उसका प्रबंध करने तो उनके साढ़े तीन नातेदार आए न थे-एक दादा, दूसरा भाई, तीसरा पति (नौरा) और आधी जीजी, क्या उनसे भी कुछ न हुआ। (ऊपर देखकर) क्या कहा, होता कहाँ से, मलहर जी कुछ करने देते तब तो। अजी बावले हुए हो, करने क्या देते? राजा होता है प्रभु और "कतुमकर्तुमन्यथाकर्तं समर्थः प्रभुः" * यह प्रभु का लक्षण है, फिर उनकी बकरी थी चाहे जिस घाट पानी पिलाया। हम तो अपने नौकरों से रात-दिन जो चाहते हैं काम लेते हैं। और फिर सुख भी तो हिंदुस्तान में तीन ही ने किया—एक मुहम्मदशाह ने, दूसरे वाजिदअलीशाह ने, तीसरे हमारे महाराज ने। मुहम्मदशाह के जमाने में नादिर शाही हुई, वाजिदअली से लखनऊ ही छूटा, अब देखें इनकी कौन गति होती है। इसका तो यही फल है, पर फिर कौन इस रंग में नहीं है, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि राजा-महाराजा नये-पुराने सभी तो इसमें फँसे है। अहा स्त्री वस्तु भी ऐसी ही है।

पुरुष जनन के मोहन को विधि यंत्र विचित्र बनायो है।
काम-अनल लावन्य-सुजल बल जाको बिरचि चलायो है॥
कमर-कमानी बार-तार सो सुदर ताहि सजायो है।
धरमधड़ी अरु रेलहु सों बढ़ि यह सबके मन भायो है।

यह तो कल के अर्थ में यंत्र हुआ अब हिंदुस्तानी तंत्र के यंत्र का वर्णन सुनिए।

पुरुष जनन के मोहन को यह मंगल यंत्र बनाया है।
कामदेव के बीज मंत्र सो अंकित सब मन भायो है॥
ग्रहण दीवारी कारी चौदस सारी रात जगायो है।
सिद्ध भयो सबको मन मोहत नारी नाम धरायो है॥

(ऊपर देखकर) क्या कहा? इसी यंत्र के अनुष्ठान का न यह

* स्वामी ही करने, न करने या और कुछ करने में समर्थ होता है।

फल हुआ कि सिर पर इतनी भारी जबाबदेही आ पड़ी। किसके-किसके ? किसके बल हम कूदते हैं ? अरे महाराज के ? क्या हुआ ? (ऊपर देखकर) क्या कहा ? "तुमको क्या नहीं मालूम" । हमको यहाँ तक तो मालूम है कि पहिले एक कमीशन आया था और फिर कुछ आया के आया-जाया की गड़बड़ सुनी थी। छिः छिः स्त्री ऐसी ही वस्तु है उस पर भी कुमारी। बिजली को घन का पचड़। स्त्री और बिजली जिससे छू गई वह गया। (ऊपर देखकर) क्या कहा "गया भी ऐसा कि फिर न बहुरेगा"। अरे कौन कौन ? क्या कहा ? वही जिसका तुम सबेरे से पचड़ा गा रहे हो ! हाय-हाय ! महाराज ! अरे क्या हुए ? गद्दी से उतारे गए ? हाय ! महा अनर्थ हुआ। महाराज नहीं गए। हिंदुस्तान गया। भला पूरा हाल तो कहो। (कुछ ठहरकर ऊपर देखकर) हाँ समझा। हाय बहुत ही बुरा हुआ, बुढ़िया मरने का डर नहीं जम परचने का डर है। 'परचल गोह करौदा खाय'। वाजिद अलीशाह भी तो इसी खुराफात से उतरे थे। "मा और भाई मलिकः से इनसाफ चाहने के लिए विलायत पहुँचे, दोनों अपनी जान मलिकः पर निछावर कर गुजरे"। "सो बातैं मुनि राजसभा में ह्वै निशंक बिस्तारीं जू"। भाई 'यस्यास्ति भाग्यं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतिमान् गुणज्ञः। स एव दाता स च दर्शनीयः सर्व्वे गुणाः भाग्यवतामधीना।' * हमारा तो सुनकर जी जल गया कि कविवचनसुधा नाम का कोई अखबार सोने के और लाल टाइप में उस दिन छपा था जिस दिन महाराज उतारे गए। वाह रे सिफारशियों ! अरे खुशामद की भी कुछ हद होती है। एक बादशाह ने हुक्म दिया बड़े-बड़े खुशामदी लाओ। तीन आदमी हाजिर किए गए। बादशाह ने पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे ? पहिला बोला, हजूर क्यों नहीं। बादशाह ने उसे निकाल दिया। दूसरे से पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे ? उसने कहा,

* जो भाग्यवान है, वही मनुष्य कुलीन, विद्वान, वेदज्ञ, गुणवान, दाता और सुंदर है ; सभी गुण उसके अधीन हैं।

जहाँपनाह जहाँ तक हो सकेगा। बादशाह ने उसे भी निकाल दिया। तीसरे से भी पूछा तुम खुशामद कर सकोगे? बोला, गरीबपरवर क्या मजाल, भला मेरी ताकत है कि हुजूर की खुशामद कर सकूँ। बादशाह ने कहा, हाँ यह पक्का खुशामदी है। ठीक वही हाल है। और निबाह भी इसी से है, हजार जान दे मरो सिफारिश नहीं तो कुछ भी नहीं। जान भी तो बादशाह ही न था। पर भाई सिफारिशियों का कल्याण है 'तो हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती'। 'हँसब ठठाइ फूलाउब गालू' पर हमसे न होगा। भला कहाँ हिंदुस्तानी सिफारिशी दरबार, कहाँ हमसे पंडित। "हरि सँग भोग कियो जा तन सों तासों कैसे जोग करैं!" पक्षपात नहीं है ऐसा ही है, सबूत दे सकते हैं पर कोई सुने भी। हाय! कोई सुनने वाला भी तो नहीं। "प्राणपियारे तिहारे बिना कहो काहि करेजो निकासि दिखाऊँ?" ए भाई कुछ कहना भी तो झख मारना है। 'पासा पड़े सो दाव, राजा करे सो न्याव'। 'कहें जो लोग बस उसको बजा-बजा कहिए।' इनका राज गया तो क्या आश्चर्य है यह कुछ आज ही थोड़े हुई है सनातन से चली आई है। और फिर राजनीति-रक्षा भी तो इसी से होती है। पर ऐसे ही सारे भारतवर्ष की प्रजा का सरकार ध्यान नहीं रखती। रामपुर में दुरंत यवन हिंदुओं को इतना दुख देते हैं, पूजा, नहीं करने देते, शंख नहीं बजता, पर सर्कार इस बात की पुकार नहीं सुनती। यद्यपि यह अनर्थ वहाँ है जहाँ पहिले सर्कार का राज्य था और जिस देश के विषय में पक्का अहदनामा हो चुका है। अहदनामे पर क्या, जैसे अधिकारी आते हैं, वैसा बरताव होता है। सर्कार बिचारी कुछ देखने थोड़े ही आती है। धन्य है ईश्वर! सन् १५९९ में जो लोग सौदागरी करने आये थे वे आज स्वतंत्र राजाओं को यों दूध की मक्खी बना देते हैं। वा यह तो बुद्धि का प्रभाव है और यह तो इनके सुशासन और बल का फल है। साढ़े सत्रह सौ के सन् में जब आरकाट में क्लाइव किले में बंद था तो हिंदुस्तानियों ने कहा कि रसद घट गई है सिर्फ चावल

है सो गोरे खाँय हम लोग माड़ पीकर रहेंगे। सन् १६१७ में जब सर्कार से सब मरहटे-मात्र बिगड़े थे। तब सिर्फ बड़ोदे वाले साथ थे। उनके कुल की यह दशा! यह तो जब पहिले कमीशन आया था तभी हम समझे थे। 'यदाऽऔषं माधवं वासुदेवं सर्वात्मना पांडवार्थे निविष्टं यस्येमां गां विक्रममेक-माहुस्तदा नाशंसे विजयाय संजय।* जो हो, मलहर की यह करतूत भी कभी न भूलेगी। कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा अपूर्व-कृष्ण से किसी ने पूछा था कि आप लोग कैसे राजा हैं तो उन्होंने उत्तर दिया जैसे शतरंज के राजा, जहाँ चलाइए वहाँ चलें। (ऊपर देखकर) क्या कहा? यह सब ठीक, पर कहे कौन? सो तो ठीक है "कौन साहिब नू अक्खे" यों नहीं यों कर। राजा और दैव बराबर होते हैं, ये जो करें सो देखते चलो बोलने की तो जगही नहीं। मलहर सुनते ही तो यह नौबत काहे को होती। राजा बनारस के अधिकार के विषय में जब कौंसिल में चर्चा हुई तो हेस्टिंग्स साहिब ने रेजिडेंट लोगों के विषय में बहुत ठीक कहा था कि "और इलाके में रेजिडेंट न मुकर्रर हों, वे कंपनी को पटने के इलाके में मालगुजारी दिया करें। क्योंकि रेजिडेंट मुकर्रर होने से वह राजा और राज्य पर अपना अखतियार जारी करने की कोशिश करेगा और इससे राजा के साथ उसका विवाद होने से कौंसिल में हमेशा नालिशें आवेंगी, जिसमें कि निस्सदेह रेजिडेंट की बात पर विश्वास करके राजा के विपक्ष फैसला होगा और पश्चात् एतद्द्वारा उनका सब नुकसान होकर उनको साधारण जमींदारी की अवस्था भोगनी पड़ेगी"†। सो उन्हीं रेजिडेंट से मलहर ने बिगाड़ कर लिया। ठीक है ठीक है; अरे भाई अपने हिंदुस्तानियों का चाल व्यवहार

---

* हे संजय, सुना है कि पूर्ण-कला-युक्त भगवान वासुदेव पांडवों के लिए ही अवतरित हुए हैं जिनका विक्रम अद्वितीय है, इससे विजय में शंका ही क्या है।

† सन् १७७५ ई० के जून की १२ तारीख की गवर्नर-जेनरल की मिनट देखो।

जितना हिंदुस्तानी समझेंगे उतना और कोई क्या समझेगा ? वरंच ऐसे मामलों का अंतःसार हिंदुस्तानी ही लोग जानते हैं, 'सहवासी विजानीयात् चरित्रं सहवासिनः" ।* हाय ! ऐसे बड़े वंश की यह दुर्दशा ! सच है, कुपुत्र बुरा होता है। इनका पुरखा दमाजी गायकवाड़ कैसा प्रतापी था, जिसके बल से पेशवा रघुनाथराव निःशंक रहता था। सन् १७६८ में जब माधवराव रघुनाथराव से जूती उछली थी तो इसी दमा ने अपने बेटे गोविंदराव को भेजा था। सुना है कि दमा के ४ बेटे थे—बड़ा पर छोटी रानी से तो सियाजी, छोटा पर बड़ी रानी से गोविंदराव। सबसे छोटकी रानी से फतेसिंह और माणिकजी ।+ यही गोविंदराव बाप के मरने पर साढ़े पचास लाख रुपए देकर और हर साल उनहत्तर हजार रुपया और तीन हजार सवार, समय पड़े पाँच हजार सवार देने के करार पर सैना-खास-खेल हुआ। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? फतेसिंह भी तो लड़ा था ? हाँ, सियाजी को राजा बनाकर वह लड़ता-भिड़ता रहा, पर बाजीराव ने पेशवा होकर गोविंदराव को पक्का न कर दिया, वरंच हरि फड़के के चढ़ाव के समय फौज लेकर आप बड़ोदे गया और गोविंदराव को राजा बनाया। सर्कार ही ने तो इन दोनों की कलह मिटाई थी जिसमें तै कर दिया था कि २६ लाख रुपया तो तीन महीने में गायकवाड़ पेशवा रघुनाथ को दे और पेशवा उसको दस लाख की दक्षिण में जागीर दे और दो लाख तेरह हजार की जमीन गायकवाड़ सर्कार को दे। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? कभी कर्नल गाड ने बड़ोदे का भी तो कुछ हिस्सा ले लिया था ? हाँ फतेसिंह ने कुछ गड़बड़ किया था उस पर कर्नल गाड ने हुमाय का शहर ले लिया था। (ऊपर देखकर) क्या कहा कि फिर क्या हुआ ? फिर यह तै हुआ कि माही नदी के उत्तर की पृथ्वी पेशवा फतेसिंह से ले और सर्कार को भरोच, अठाविशी के अठाइसों परगने, शिनोर परगना और

* साथ रहनेवाला ही साथी के चरित्र को जान सकता है।

+ पारसनीस किनकेडस मराठा पीपुल भा० ३ पृ० ११२

कुछ जमीन मिले। यह फतेसिंह से नानाफड़नवीस के दौर-दौरा में साढ़े पंद्रह लाख रुपया पेशवा को और एक लाख दीवान को देकर सैना-खास-खेल हुआ। बिचारा सन् १७६१ ई० में गिरकर मर गया और उसका छोटा भाई माणिकजी सियाजी को नाँव का राजा बनाकर राज चलाने लगा। पर गोविंदराव ने, जो तब खेड़े गाँव में पूने के पास रहता था, पेशवा से कहा कि हमारा राज अब हमको मिले। यह सुनते ही माणिकजी ने तैंतीस लाख तेरह हजार रुपया नजर और ३८ लाख की बाकी देकर फड़नवीस से राज की सनद ले ली और इधर गोबिंदा ने महादजी सेंधिया के पूना आने पर उनके द्वारा सनद पाई। इसी बखेड़े में माणिकराव आप ही मर गया। तब भी नाना ने गोविंदा को पहिली नज़र दिए बिना जाने न दिया। देखो इन्हीं अंगरेजों ने पहिले तै हुई बात के विरुद्ध समझकर उस समय गोविंदा की सहायता की और नाना को समझाया कि सालपी में जो तै हो चुका है उसके बरखिलाफ अब नया ताप्ती के दक्षिण का मुल्क बिचारे गोविंदा से क्यों माँगते हो और इन्हीं की बदौलत बिचारा गोविंदा सन् १७६२ दिसंबर की १६ तारीख को राजा हुआ और सन् १७६६ में बंबई के गवर्नर डंकन साहब से मिलकर शिष्टाचार करके सूरत का चौथाई हिस्सा और चौरासी परगना दिया। (ऊपर देखकर) क्या कहा? हाँ कुछ बड़ोदा का हाल और भी कहो। सुनो, हम तो इस वंश के पुराने पुरोहित हैं सब शाखोच्चार करें। हाँ तो तब से गोविंदराव गद्दी पर बैठे, फिर आबा शेलूकर जो नाना के साथ कैद में पड़ा था सो सेंधिया को दस लाख रुपया देकर छूटा और अहमदाबाद का हाकिम हुआ। बाजीराव ने गोविंदराव से और उससे बिगाड़ कराया, जिससे इन दोनों में रात-दिन धौल-धप्पड़ होती रही पर डंकन साहब से गोविंदराव से मेल होने से आबा मंद पड़ गया। बिचारा गोविंदराव सन् १८०० में मर गया। कुछ मल्हारराव ही पुरुषार्थी नहीं हैं। गोविंदराव के समय से यह बात है; क्योंकि वह चार औरस और सात

दासी-पुत्र छोड़ गए थे। अनंदराव सब में बड़ा था उसी को राजवाले मालिक समझते थे, पर वह बुद्धिमान् नहीं था इससे दूसरे हिस्सेदारों ने अपना तार जमाना चाहा। गोंविंदराव ने दूसरे लड़के कान्होजी को फसादी जानकर अपने सामने से कैद किया था। पर पीछे आनंदराव से बहुत मिन्नत करके और फौज के अफसरों को बीच में डालकर छूटा और मुख्य दीवान हुआ पर उस पर संतोष न करके सारे राज पर सत्ता बढ़ाने लगा। अंत में रावजी आपा परभू पुराने कारिंदे ने प्रबल होकर उसको पदच्युत किया। इन दोनों ने सर्कार से सहायता चाही, जिसमें कान्होजी ने पुराने करार के सिवाय चिखली का परगना देने को कहा। आनंदराव और उसके दीवान आपा की मदद को सात हजार अरब सवार थे क्योंकि आपा का भाई बाबाजी उनका सरदार था। कान्होबा का पक्षपाती कड़ी का जमींदार मल्हारराव गायकवाड़ था और यह मनुष्य शूर-चतुर था। इसने आनंदराव के राज में जब बहुत उपद्रव किया और बहुत से किले भी ले लिए तब आपा ने बंबई के गवर्नर को मदद के वास्ते लिखा और पाँच पल्टन इस शर्त पर माँगी कि उनका खर्च वह देगा। बंबई के गवर्नर ने बिना गवर्नर-जेनरल से पूछे पूरी मदद कैसे दें यह सोचकर मेजर वाकर साहब की मुहतमी में १६०० आदमी भेजे, जो आनंदराव की पल्टन से मिलके कड़ी पर चढ़ दौड़े। उस समय मल्हारराव ने, मुझसे चूक हुई हम सब फेर देंगे, यह कहके मेल का पैगाम डाला। पर उसके जी में छल था। इसी से जब ये लोग बेखबर थे तब छापा मारा पर वाकर साहब की बुद्धिमानी से फौज बच गई। थोड़े दिन में मालूम हुआ कि मल्हार ने आनंदराव के बहुत से लोग मिला लिए जिससे वाकर साहब को उस समय अपनी रक्षा के सिवा और कुछ न सूझी और बंबई कुमक भेजने को लिखा। एप्रिल की २३ तारीख को बंबई से कुछ लोगों की मदद आ गई और वे लोग खाईं खोदकर कड़ी का किला घेरकर पड़े रहे गायकवाड़ और

सर्कार की फौज ने मिलकर कड़ी जीत लिया, जिसमें ११३ सर्कारी आदमी मरे, मल्हारराव सर्कार के अधीन हुआ और सवा लाख रुपया साल नरियाद की आमदनी में से देकर वहीं नज़रबंद रक्खा गया और कड़ी का किला गायकवाड़ के अधिकार में आया। मल्हारराव का पक्षपाती गणपतराव गायकवाड़ बड़ोदे के पास लड़ता था सो संकरे के किले में बंद हुआ। सर्कार ने वह किला भी छीन लिया और गणपतराव और गोविंदराव का दासीपुत्र मुरारराव ये दोनों धार भाग गए और यहाँ के पवाँर राजा के आश्रय में रहे, थोड़े दिन पीछे अरब लोगों ने अपनी तनखाह न मिलने के बहाने बड़ा उपद्रव किया, आनंदराव को कैद कर लिया और कान्होबा को कैद से छोड़ दिया। मेजर वाकर ने पहिले तो उन्हें बहुत समझाया फिर दस दिन तक खूब लड़े और अंत में जब किले की दीवार तोड़ी तब अरब लोगों ने हारकार मेल करना चाहा। इस लड़ाई में अच्छे-अच्छे अँगरेजी सरदार मारे गए। सवा सत्रह लाख तनखाह बाकी देकर इस करार पर मेल हुआ कि वे लोग अपने देश या राज के बाहर चले जायँ। उसमें बहुत तो चले गए पर आबू जमादार राजपिपली गाँव में कान्होबा से जा मिला। कान्होबा ने फिर मार-धाड़ लूट-खसोट शुरू की, पर अंत में होम्स साहब से हारकर उज्जैन में जा रहा। हाँ हाँ इसके सिवा एक बात और भी है। एक दफे बड़ोदा के वकील बापू मैराल को बाजीराव ने कहा कि बड़ोदावालों के यहाँ हमारा एक करोड़ रुपया बाकी है सो उसमें से सत्रह लाख हम छोड़ देते हैं बाकी इनसे दिलवा दो। बाजीराव ने केवल दगाबाजी से बड़ोदे पर हाथ डालने को यह युक्ति की थी। बड़ोदेवाले कहते थे कि हमने जो बहुत से पेशवा के काम किए हैं उसके बदले हमी को अभी कुछ चाहिए, गंगाधर शास्त्री पटबर्धन को गायकवाड़ ने सर्कार की रक्षा में पेशवा के यहाँ भेजा। पेशवा ने कुछ बात तै नहीं की और शिष्टाचार में लगाकर शास्त्री को लेकर वह अपने सलाहो त्र्यंबकजी डगला

के साथ पंढ़रपुर गया और वहाँ छल से १८१५ की चौदहवीं जुलाई को शास्त्री को किसी सिपाही से मरवा डाला। सरकार ने इस बात पर अत्यंत क्रोध किया और चारों ओर से पेशवा पर फौज भेजी जिससे पेशवा ने अंत में हारकर त्र्यंबक को सरकार के हवाले किया और आगे से बड़ोदावालों को छेड़ने से हाथ उठाया। हा! यह वही बड़ोदा है जिस पर सरकार की सदा से ऐसी छाया रही।

(ऊपर देखकर) क्या कहा? "हाँ कहे चलो" जाने दो। इन पुराने पचड़ों को लेकर कौन रोवे पर भाई एचिसन साहब ने अपने अहदनामों में लिखा है कि खंडेराव और मल्हारराव के सिवाय पीलजी गायकवाड़ के असली और नसली वंश में और कोई नहीं है; तब मल्हारराव का वंश राज पर बैठने से रोका जाय यह तनिक अनुचित मालूम होता है। अनुचित काहे को है? सन् १८०२ में जो अहदनामे हुए हैं उनसे तो सरकार को गायकवाड़ की खानगी बातों में बिलकुल अधिकार है। फिर यह रोना क्या? हम तो जानते हैं कि जब मल्हारराव ने लक्ष्मीबाई से विवाह किया तभी से उसकी बड़ी बहिन दरिद्राबाई भी इनके ताक में थी और समय पाकर अपनी बहिन के पास आ गई। शास्त्रों में लिखा है कि लक्ष्मी दरिद्रा दोनों बहिन हैं। पर भाई! यह कन्या फली नहीं, मुद्राराक्षस की विष-कन्या हो गई। अन्त भी तो बड़ी भई। सुना है कि जब महाराज शहर के अमीरों के घर में जाते थे तो उनके डर के मारे औरतें कुएँ में उतारी जाती थीं। क्या हुआ सनातन से चली आई है। अग्निवर्ण भी तो ऐसा ही था।

"अंकमंकपरिवर्त्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे।
वल्लकी च हृदयंगमस्वना वल्गुवागपि च बामलोचना" ॥*

और नहीं तो क्या? या बगल में माहताब हो या

---

* अंक ही में लेटने में पटु मनोहर शब्द वाली वीणा तथा मीठा बोलने वाली बामा दोनों गोद की शून्यता को दूर करें।

आफताब, या साकी हो या शराब। भला रावण इनसे बढ़के था कि ये रावण से बढ़के ?- एक बात में तो ये रावण से बढ़ गए कि ऐसे काल में और सरकार के राज्य में इन्होंने ऐसा उपद्रव किया ! धन्य भारतभूमि ! तुझे ऐसे ही पुत्र प्रसव करने थे ! हाय ! मुहम्मदशाह और वाजिदअलीशाह तो मुसलमान होके छूटे पर मल्हारराव का कलंक हिंदुओं से कैसे छूटेगा। विधवा-विवाह सब कराया चाहते हैं पर इसने सौभाग्यवती-विवाह निकाला। भला मुसलमान होता तो तिलाक दिलवा के भी हलाल कर लेता। पर तिलाक कहाँ, लक्ष्मीबाई के खसम ने तो नालिश की थी। सच है, यह ऐसे ही हजरत थे। हमारी सरकार के विरुद्ध जो कुछ कहे वह झख मारे। यदि ऐसे लोगों के उचित दंड न हो तो ये लोग न-जाने क्या अनर्थ करें। कहा भी तो है।

"अदंड्यान् दंडयन् राजा दंड्यानेवाभिनंदयन्।
अयशो महदाप्नोति नारकीं च गतिं पराम् ॥ १ ॥"*

(ऊपर देखकर) क्या कहा ? और खानदेश का एक कुमार गद्दी पर बैठा भी तो दिया गया। लो भया तब क्या ? हहाहा ! भला तब हम क्या इतना झँखते थे। अहा धन्य है सर्कार ! यह बात कहीं नहीं है। दूध का दूध पानी का पानी। और कोई बादशाह होता तो राज जप्त हो जाता। यह इन्हीं का कलेजा है। हे ईश्वर, जब तक गंगा-यमुना में पानी है तब तक इनका राज स्थिर रहे। अहा ! हमारी तो पुरोहिती फिर जगी। हमें मल्हारराव से क्या काम, हमें तो उस गद्दी से काम है "कोउ नृप होउ हमैं का हानी"। धन्य अँगरेज ! राम और युधिष्ठिर का धर्मराज्य इस काल में प्रत्यक्ष कर दिखाया, अहाहा ! (ऊपर देखकर) क्या कहा ? कहो और क्या चाहते हो। भला और क्या चाहेंगे, हमारा भंडपना जारी ही रहा, बड़ोदा का राज फिर सुख से बसा तो अब और क्या

* न दंड देने योग्य को दंड देता हुआ और दंड देने योग्य पर कृपा रखता हुआ राजा बड़ी कुकीर्ति को प्राप्त होता है तथा अंत में नरक में जाता है।

चाहिए। और मल्हारराव का जो कहो तो उसका कौन सोच है, जैसे व्रत वैसे उद्यापन, विषस्य विषमौषधं, तो भी यह भरत-वाक्य सफल हो।

परतिय परधन देखि न नृपगन चित्त चलावैं।
गाय दूध बहु देहिं, मेघ सुभ जल बरसावैं॥
हरि-पद में रति होइ, न दुख कोऊ कहँ व्यापै।
अँगरेजन को राज ईस इत थिर करि थापै॥
श्रुति-पंथ चलैं सज्जन सबै सुखी होहिं तजि दुष्ट-भय।
कबिबानी थिर रस सों रहै भारत की नित होइ जय॥

(जवनिका गिरती है)

कर्पूर मंजरी

सट्टक

१९३३

कविवचनसुधा में चैत्र शुक्ल ९ सं. १९३३ से
प्रकाशित होना आरंभ। सं. १९३९ में बनारस
आर्य यंत्रालय से तीसरा संस्करण निकला।

कर्पूर-मंजरी

सट्टक

—❀—

दोहा।

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥

(सूत्रधार आता है)

सूत्रधार—(घूमकर) हैं क्या हमारे नटलोग गाने बजाने लगे? यह देखो कोई सखी कपड़े चुनती है, कोई माला गूँधती है, कोई परदे बाँधती है, कोई चंदन घिसती है; यह देखो बंसी निकली, यह बीन की खोल उतरी, यह तीन मृदंग मिलाए गए, यह मँजीरा झनका, यह धुरपद गाया गया। (कुछ ठहरकर) किसी को बुलाकर पूछें तो। (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे कोई है?

(पारिपार्श्वक आता है)

पारि०—कहो, क्या आज्ञा है?

सूत्र०—(सोचकर) क्या खेलने की तय्यारी हुई?

पारि०—हाँ आज सट्टक न खेलना है।

सूत्र०—किसका बनाया?

पारि०—राज्य की शोभा के साथ अंगों की शोभा का; और राजाओं में बड़े दानी का अनुवाद किया।

सूत्र०—(विचारकर) यह तो कोई कूट सा मालूम पड़ता है। (प्रकट) हाँ हाँ राजशेखर का और हरिश्चंद्र का।

पारि०—हाँ उन्हीं का।

सूत्र०—ठीक है, सट्टक में यद्यपि विष्कंभक प्रवेशक नहीं होते तो भी यह नाटकों में अच्छा होता है (सोचकर) तो भला कवि ने इसको संस्कृत ही में क्यों न बनाया, प्राकृत में क्यों बनाया * ?

पारि०—आपने क्या यह नहीं सुना है ?

जामैं रस कछु होत है, पढ़त ताहि सब कोय।
बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय॥

और फिर

कठिन संस्कृत अति मधुर भाषा सरस सुनाय।
पुरुष नारि अंतर सरिस इन में बीच लखाय॥

सूत्र०—तो क्या उस कवि ने अपना कुछ वर्णन नहीं किया ?

पारि०—क्यों नहीं, उस समय के कवियों के चंद्रमा अपराजित ही ने उसका बड़ा बखान किया है।

निरभर बालक राज कवि आदि अनेक कबीस।
जाके लिखएँ तें भए अति प्रसिद्ध अवनीस॥
धवल करत चारहु दिसा जाको सुजस अमंद।
सो शेखर कवि जग विदित निज कुल कैरव चंद॥

सूत्र०—पर भला आज तुमको किसने खेलने की आज्ञा दी है ?

पारि०—अवंती देश के राजा चारुधान की बेटी उसी कवि की प्यारी स्त्री ने, और यह भी जान रक्खो कि इस सट्टक में कुमार चंद्रपाल कुंतल देश की राजकुमारी को ब्याहेगा। तो अब चलो अपने अपने स्वाँग सजें। देखो तुम्हारा बड़ा भाई देर से राजा की रानी का भेस धरकर परदे की आड़ में खड़ा है।

(दोनों जाते हैं)

---

* कर्पूर-मंजरी नाटक संपूर्ण प्राकृत भाषा ही में है।

पहिला अंक

स्थान राजभवन

(राजा, रानी, विदूषक और दरबारी लोग दिखाई पड़ते हैं)

राजा—प्यारी, तुम्हें वसंत के आने की बधाई है, देखो अब पान बहुत नहीं खाया जाता, न सिर में तेल देकर चोटी कसके गूँधी जाती है, वैसे ही चोली भी कसके नहीं बाँधी जाती, न केसर का तिलक दिया जा सकता है, इसी से प्रकट है कि बसंत ने अपने बल से सरदी को अब जीत लिया।

रानी—महाराज! आपको भी बधाई है, देखिये कामीजन चंदन लगाने और फूलों की माला पहिरने लगे, और दोहर पयते रक्खी रहती है, तो भी अब ओढ़ने की नौबत नहीं आती :

(नेपथ्य में दो बैतालिक गाते हैं।)

जै पूरब दिसि कामिनी कंत।
चंपावति नगरी सुख समत॥
खेलत जीत्यौ जिन राढ देस।
मोहत अनंग लखि जासु भेस॥
क्रीड़ा मृग जाको सारदूल।
तन बरन कांति मनु हेम फूल॥
सब अंग मनोहर महाराज।
यह सुखद होइ रितुराज साज॥

मंद मद लै सिरसि सुगंधहि सरस पवन यह आवै।
करि संचार मलय पर्वत पै बिरहिन ताप बढ़ावै॥
कामिनि जन के बसन उड़ावत काम धुजा फहरावै।
जीवन प्रान दान सो बितरत वायु सबन मन भावै॥ १॥

देखहु लहि रितुराजहि उपवन फूली चारु चमेली।
लपटि रहीं सहकारन सों बहु मधुर माधवी बेली॥

फूले बर बसंत बन बन मैं कहुँ मालती नबेली।
तापैं मदमाते से मधुकर गूँजत मधुरस रेली॥ २॥

राजा—प्यारी, हम लोग तो आपस में वसंत की बधाई एक दूसरे को देते ही थे अब इन दोनों कांचनचंद्र और रत्नचंद्र बंदियों ने हम दोनों को बधाई दी। अब तुम इस वसंतोत्सव की ओर दृष्टि करो। देखो कोयल कैसे पंचम सुर में बोलती है, हवा के झोंके से लता कैसी नाच रही हैं, तरुण स्त्रियों के जी में कैसा इसका उत्साह छा रहा है और सारी पृथ्वी इस वसंत की वायु से कैसी सुहानी हो रही है!

रानी—महाराज! बंदी ने जैसा कहा है हवा वैसी ही बह रही है। देखिए यह पवन लंका के कँगूरों की पंगति में यद्यपि कैसा चंचल है पर अगस्त मुनि के आश्रम में उनके भय से धीरा चलता है, इसके झोंके से चंदन, कपूर, कंकोल और केले के पत्ते कैसे झोंका खा रहे हैं; जंगलों में जहाँ तहाँ साँप नाचते हैं और ताम्रपर्णी नदी की लहरों को यह स्पर्श करता है तो उन्हें दूना कर देता है। देखिए, कोयल मानो कामदेव की आज्ञा से इस चैत के त्योहार में पुकार रही है कि तरुणिओ झूठा मान छोड़ो, अपने प्यारे को प्यार की चितवन से देखो, और दौड़-दौड़ के प्रीतम को गले लगाओ, यह चार दिन की जवानी तो बहती नदी है, फिर यह दिन कहाँ और यह समय कहाँ?

विदूषक—अरे कोई मुझे भी पूछो, मैं भी बड़ा पंडित हूँ। जब मैंने अपना मकान बनाया था तो हजारों गदहों पर लाद-लादकर पोथियाँ नेव में भरवाई गई थीं और हमारे ससुर जनम भर हमारे यहाँ पोथी ही ढोते-ढोते मरे, काले अच्छर दूसरों को तो कामधेनु हैं पर हमको भैंस हैं।

विचक्षणा—इसी से तो तुम्हारा नाम लबार पाँड़े है।

विदू०—(क्रोध से) हत् तेरी की, दाई माई कुटनी लुच्ची मूर्ख! अब हम ऐसे हो गए कि मजदूरिनें हमें हँसें!

विच०—तुम्हारी माई कुटनी है तभी तुम ऐसे सपूत हुए, तुमसे तो वे भाट अच्छे जो अभी गीत गा गए हैं, तुम्हें इतनी भी समझ नहीं है कि कुछ बनाओ और गाओ, यह सेखी और तीन काने।

विदू०—अब हम इनके सामने गावेंगे, इनका मुँह है कि हमारी कविता सुनें, हाँ अगर हमारे दोस्त महाराज कुछ कहें तो अलबत्ते गाऊँ।

राजा—हाँ हाँ, मित्र पढ़ो, हम सुनते हैं।

विदू०—(लाठी पर तमूरा बजाकर गाता है)

आयो आयो बसत आयो आयो बसत। बन में महुआ टेसू फुलंत॥
नाचत है मोर अनेक भाँति, मनु भैंसा का पड़वा फूलफालि।
बेला फूले बन बीच बीच, मानो दही जमायो सींच सींच॥
बहि चलत भयो है मद पोन, मनु गदहा को छान्यो पैर।

तारीफ और वाह वाह करते जाइए नहीं न गाया जायगा, देखिए संगीत साहित्य दोनों एक ही साथ करना मेरा ही काम है।

(गाता है)

गेंदा फूले जैसे पकौरि। लड्डु से फले फल बौरि बौरि॥
खेतन में फूले मोतदाल। घर में फूले हम कुल के पाल॥
आयो आयो बसंत आयो आयो बसंत॥

हम बसत, राजा बसत, रानी बसंत, यह दाई भी बसंत॥

(सब लोग हँसते हैं)

राजा—भला इसकी कविता तो हो चुकी अब विचक्षणे! तुम भी कुछ पढ़ो।

विदू०—हाँ हाँ, हमारी बोली पर हँसती है तो यह पढ़े बड़ी बोलने-वाली। इसको सिवाय टें टें करने के और आता क्या है? क्या ऐसी बदमाश स्त्री राजा के महल में रहने के योग्य है? यह रात दिन महारानी का गहना चुरा कर अपने मित्रों को दिया करती है और उस पर हमारे काव्य पर हँसती है। सच

है बंदर आदी का स्वाद क्या जाने ! हमारे काव्य पर रीझने-वाले महाराज हैं, तू क्या रीझेगी, अब देखते न हैं तू कैसा काव्य पढ़ती है।

रानी—हाँ हाँ, सखी विचक्षणे ! हम लोगो के आगे तो तूने अपना बनाया काव्य कई बेर पढ़ा है, आज महाराज के सामने भी तो पढ़, क्योंकि विद्या वही जिसकी सभा में परीक्षा ली जाय और सोना वही जो कसौटी पर चढ़े और शस्त्र वही जो मैदान में निकले।

विच०—महारानी को जो आज्ञा। (पढ़ती है)

फूलैंगे पलास बन आगि सी लगाइ क्रूर,
कोकिल कुहूकि कल सबद सुनावैगो।
त्यौंही सखी लाग सबै गावैगो धमार धीर,
हरन अबीर बीर सब ही उड़ावैगा॥
सावधान होहु रे वियोगिनी सम्हारि तन,
अतन तनक हीं मै तापन तें तावैगा।
धीरज नसावत बढ़ावत बिरह काम,
कहर मचावत बसत अब आवैगो॥

राजा—वाह वाह ! सचमुच विचक्षणा बड़ी ही चतुर है और कविता-समुद्र के पार हो गई है, यह तो सब कवियों की राजा होने योग्य है।

रानी—(हँसकर) इसमें कुछ संदेह है। हमारी सखी सब कवियों की सिरताज तो हुई।

विदू०—(क्रोध से) तो महारानी स्पष्ट क्यों नहीं कहतीं कि यह दासी विचक्षणा बहुत अच्छी है और कपिंजल ब्राह्मण बहुत निकम्मा है ?

विच०—हैं हैं ! एकबारगी इतने लाल पीले हो गए, जो जैसा है उसका गुण तो उसके काव्य ही से प्रगट हो गया। तुम्हारे काव्य की उपमा तो ठीक ऐसी है जैसे लंबस्तनी के गले में मोती की माला, बड़े पेटवाली को कामदार कुरती, सिर-मुँडी को फूलों की चोटी और कानी को काजल।

विदू०—सच है, और तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे सफ़ेद फ़र्श पर गोबर का चौंथ, सोने की सिकड़ी में लोहे की घंटी और दरियाई की अँगिया में मूँज की बखिया।

विच०—खफा मत हो, अपनी ओर देखो, आप आप ही हो, एक अक्षर नहीं जानते तिस पर भी हीरा तौलते हो, और हम सब पढ़-लिखकर भी अब तक कपास ही तौलती हैं।

विदू०—बकबक किए ही जायगी तो तेरा दाहिना और बायाँ युधिष्ठिर का बड़ा भाई उखाड़ लेंगे।

विच०—और तुम भी जा टें टें किए ही जाओगे तो तुम्हारी भी स्वर्ग काट के एक ओर के पोंछ की अनुप्रास मूड़ देंगे और लिखने की सामग्री मुँह में पोतकर पान के मसाले का टीका लगा देंगे।

राजा—मित्र! इसके मुँह मत लगो, यह कविताई में बड़ी पंक्की है।

विदू०—(क्रोध से) तो साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि हरिश्चंद्र और पद्माकर इसके आगे कुछ नहीं हैं?

(क्रोध करके इधर-उधर घूमता है)

विच०—चल, उसी खूँटी पर लटक जिस पर मेरा लहँगा रखा है।

विदू०—(क्रोध कर और सिर हिलाके) और तू भी वहाँ जा जहाँ मेरी बुड्ढी माँ के दाँत गए। छिः! हम भी बड़े बड़े दरबार से निकाले गए पर ऐसी अंधेर नगरी और चौपट राजा कहीं नहीं देखा। यहाँ चरणामृत और शराब एक ही बरतन में भरे जाते हैं।

विच०—भगवान करे इस दरबार से तुझे वह मिले जो महादेवजी के सिर पर है और तुझे वह शास्त्र पढ़ाया जाय जो काँटों को मर्दन करता है।

विदू०—लौंडिया फिर टें टें किए ही जाती है, खजाना लूट लूट के खाली कर दिया, इस पर भी मोढ़े पर बैठनेवाली और गलियों में मारी मारी फिरने वाली, हम कुलीन ब्राह्मणों के मुँह लगती है। जा तुझको सर्वदा वही फाँकना पड़े जो महादेवजी अंग

में पोत्ते हैं और तेरे हाथ सदा वही लगे जिसमें धरम बँधता है।

विच०—तेरे इस बोलने पर तो ऐसा जी चाहता ह कि पान के बदले चरनदासजी से तेरा मुँह लाल कर दूँ। फिट्।

विदू०—(बड़े क्रोध से ऊँचे स्वर से) ऐसे दरबार को दूर ही से नमस्कार करना चाहिए जहाँ लौंडियाँ पंडितों के मुँह आवें। यदि हमें इसी उचक्की की बातें सहनी हों तो हम बसुंधरा नाम की अपनी ब्राह्मणी ही की न चरनसेवा करें जो अच्छा अच्छा और गर्म-गर्म खाने को खिलावे। (ऐसा कहता हुआ क्रोध से चला जाता है। सब लोग हँसते हैं।)।

रानी—महाराज, कपिंजल बिना सभा ऐसी हो गई जैसे बिना काजल का शृंगार।

(नेपथ्य में)

नहीं नहीं, हम नहीं आवेंगे। विचक्षणा को खसम और राजा को मुसाहब कोई दूसरा खोज लो या आज से हमारा काम वही गलितयौवना और चिपटे नाक कानवाली करेगी।

विच०—महारानी! आपके आग्रह से यह कपिंजल और भी अकड़ा जाता है, जैसे सन की गाँठ भिगाने से उलटी कड़ी होती है। उसको जाने दीजिए। इधर देखिए यह गवाँरिनों के गीतों और चाँचर से मोहित सूर्य्य यद्यपि धीरे चलता है तौ भी अब कितना पास आ गया है।

(विदूषक घबड़ाया हुआ आता है)

विदू०—आसन! आसन!!

राजा—क्यों?

विदू०—भैरवानंदजी आते हैं।

राजा—क्या वही भैरवानंद जो आजकल के बड़े प्रसिद्ध सिद्ध हैं?

विदू०—हा, हाँ।

(भैरवानंद आते हैं)

भै०—जंत्र न मंत्र, न ज्ञान न ध्यान, न जोग न भोग, केवल गुरु का प्रसाद, पीने को मदिरा और खाने को मांस, सोने को स्त्री, मसान का बास, लाख लाख दासी सब कड़े-कड़े अंग, सेवा में हाजिर रहें पीए मद्य भंग, भिच्छा का भोजन औ चमड़े का बिछौना, लंका-पलंका सातो दीप नवो खंड गौना, ब्रह्मा विष्णु महेश पीर पैगंबर जोगी जती सती बीर महाबीर हनुमान रावन महिरावन अकाश पताल जहाँ बाँधूँ तहाँ रहे, जो जो कहूँ सो सो करे, मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाच, दोहाई पशुपतिनाथ की, दोहाई गोरखनाथ की।

राजा—महाराज! प्रणाम।

भै०—राजा! विष्णु और ब्रह्मा तप करते थक गए पर सिद्धि मद्य और स्त्री ही में है यह महादेव जी ही ने जाना है सो वह कापालिकों के परम कुल-गुरु शिव तेरा कल्याण करें।

राजा—महाराज आसन पर बिराजिए।

भै०—हम रमते लोगों को बैठने से क्या काम तब भी तेरी खातिर से बैठते हैं। (बैठता है) बोल क्या दिखावें।

राजा—महाराज आसन कुछ आश्चर्य दिखाइए।

भै०—क्या आश्चर्य दिखलावें।

सूरज बाँधूँ चदर बाँधूँ बाँधूँ अगिन-पताल।
सेस समुंदर इंदर बाँधूं औ बाँधूँ जम-काल॥
जच्छ रच्छ देवन की कन्या बल से लाऊँ बाँध।
राजा इदर का राज डोलाऊँ तो मैं सच्चा साध॥

नहीं तो जोगड़ा। और क्या।

राजा—(विदूषक के कान में) मित्र, तुमने कहीं कोई बड़ी सुंदर स्त्री देखी हो तो बुलवावें।

विदू०—(स्मरण करके) हाँ! दक्षिण देश में विदर्भ नामक नगर है वहाँ मैंने एक लड़की बड़ी सुंदर देखी थी वही बुलाई जाय।

भै०—बोल! बुलाई जाय।

राजा—हाँ ! महाराज ! पूर्णमासी का चंद्रमा पृथ्वी पर उतारा जाय।

मै०—(ध्यान करता है)।

(परदे के भीतर से खिंची हुई की भाँति एक सुन्दर स्त्री आती है और सब लोग बड़ा ही आश्चर्य करते हैं)

राजा—(आश्चर्य से) अहाहा ! जैसे रूप का खजाना खुल गया, नेत्र कृतार्थ हो गए, यह रूप, यह जोबन, यह चितवन, यह भोलापन,—कुछ कहा नहीं जाता। मालूम होता है कि यह नहा कर बाल सुखा रही थी उसी समय पकड़ आई है। अहा ! धन्य है इस का रूप !!! इस की चितवन कलेजे में से चित्त को जोराजोरी निकाले लेती है, इसकी सहज शोभा इस समय कैसी भली मालूम पड़ती है, अहा इस के कपड़े से जो पानी की बूँदें टपकती हैं वह ऐसी मालूम होती हैं मानो भावी वियोग के भय से वस्त्र रोते हैं। काजल आँखों से धो जाने से नेत्र कैसे सुहाने हो रहे हैं. और बहुत देर तक पानी में रहने से कुछ लाल भी हो गए हैं। बाल हाथों में लिए है उससे पानी की बूँदें ऐसी टपकती हैं मानो चंद्रमा का अमृत पी जाने से दो कमलों ने नागिनी को ऐसा दबाया है कि उनकी पोंछ से अमृत बहा जाता है। भीगे वस्त्र से छोटे छोटे इस के कठोर कुच अपनी ऊँचाई और श्यामताई से यद्यपि प्रत्यक्ष हो रहे हैं तौभी यह उन्हें बाँह से छिपाना चाहती है, और वैसेही गोरी गोरी जाँघें इसकी चिपके हुए भींगे वस्त्र से यद्यपि चमकती हैं तौ भी यह उनको दबाए देती है, वरंच इसी अंग उघरने से यह लजाकर सकपकानी सी भी हो रही है, और योगबल से खिंच आने से जो कुछ डर गई है, इस से और भी चौकन्नी हो होकर भूले हुए मृग-छौने की भाति अपने चंचल नेत्र नचाती है।

स्त्री—(चकपकानी सी होकर एक एक को देखती है, आप ही आप) यह कौन पुरुष है जिसका देह गंभीर और मधुर छबि का मानों पुंज है। निश्चय यह कोई महाराज है और यह भी महादेव के अंग में पार्वती की भाँति निश्चय इसकी

प्यारी महारानी है और यह कोई बड़ा जोगी है। हो न हो सब इसीका खेल है। (विचार करके) यद्यपि यह एक स्त्री के बगल में बैठा है तौ भी मुझे ऐसी गहरी और तीखी दृष्टि से क्यों देखता है? (राजा की ओर देखती है)

राजा—(विदूषक से कान में) मित्र! अभी जो इसने अपने कानों को छूनेवाली चंचल चितवन से मुझे देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि मानों मुझ पर किसी ने अमृत की पिचकारी चलाई वा कपूर बरसाया वा चाँदनी से एक साथ नहला दिया या मोती का बुक्का छिड़क दिया।

विदूषक—सच है, अहाहा! वाहरे इसके रूप की छबि, इसकी कमर एक लड़का भी अपनी मुट्ठी में पकड़ सकता है, और नेत्र की चंचलता देख कर पुरुष क्या स्त्री भी मोह जाती हैं। देखो यद्यपि इसने स्नान के हेतु गहना उतार दिया है तौ भी कैसी सुहानी दिखाई पड़ती है। सच है सुंदर रूप को तो गहना ऐसा है जैसे निर्मल जल को काई।

राजा—ठीक है इसकी छबि तो आप ही कुंदन की निंदा करती है तो गहने से इसे क्या? इसका दुबला शरीर काम की परतंचा उतारी हुई कमान है और इसके गोरे गोरे गोल गालों में कनफूल की परछाहीं ऐसी दिखाती है जैसे चाँदी की थाली में भरे हुए मजीठ के रंग में चन्द्रमा का प्रतिबिंब। इसके कर्णावलम्बी नेत्र मेरे मन को अपनी ओर खींचे ही लेते हैं।

विदूषक—(हँस कर) जाना जाना! बहुत बड़ाई मत करो।

राजा—(हँस कर) मित्र हम कुछ झूठ नहीं कहते, तुम्ही देखो, यह बिना आभूषण भी अपने गुणों से भूषित है। जो स्त्रियाँ ऐसी सुंदर हैं उनपर पुरुष को आसक्त कराने में कामदेव को अपना धनुष नहीं चढ़ाना पड़ता। देखो इसकी चितवन में मिठास के साथ स्नेह भी झलकता है। इसके कान में नीले कमल के फूल झूलते हुए ऐसे सुहाते हैं मानो चंद्रमा में से दोनों ओर से कलंक निकला जाता है।

रानी—अजी कपिंजल! इनसे पूछो तो यह कौन हैं या मैं ही पूछती

हूँ। (स्त्री से) सुन्दरी, यहाँ आओ, मेरे पास बैठो और कहो तुम कौन हो।

राजा—आसन दो।

विदू० -यह मैं ने अपना दुपट्टा बिछा दिया है, बिराजो। (स्त्री बैठती है) हाँ अब कहो।

स्त्री—कुंतल देश में जो विदर्भनगर है, वहाँ की प्रजा का वल्लभ बल्लभराज नामक राजा है।

रानी—(आप ही आप) वह तो मेरा मौसा है।

स्त्री—उसकी रानी का नाम शशिप्रभा है।

रानी—(आप ही आप) और यही तो मेरी मौसी का भी नाम है।

स्त्री—(आँख नीची करके) मैं उन्हीं की बेटी हूँ।

रानी—(आप ही आप) सच है बिना शशिप्रभा के और ऐसी सुंदर लड़की किस की होगी। सीप बिना मोती और कहाँ हो (प्रगट) तो क्या कर्पूरमंजरी तुही है ?

स्त्री—(लाज से सिर झुका कर चुप रह जाती है)

रानी—तो आओ आओ बहिन मिल तो लें।

(कर्पूर-मजरी को गले लगाकर मिलती है)

कर्पूर०—बहिन यह आज हमारी पहली भेंट है।

रानी—भैरवानंद जी की कृपा से कर्पूरमंजरी का देखना हमें बड़ा ही अलभ्य लाभ हुआ। अब यह पंद्रह दिन तक यहीं रहे, फिर आप जोगबल से पहुँचा दीजिएगा।

भै०—महारानी की जो इच्छा।

विदू०—मित्र ! अब हम तुम दोही मनुष्य यहाँ बेगाने निकले, क्योंकि ये दोनों तो बहिन ही हैं और भैरवानंदजी इन दोनों के मिलाने वाले ठहरे। यह सरस्वती की दूसरी कुटनी भी एक प्रकार की रानी ही ठहरी, गए हम।

रानी—विचक्षणा ! अपनी बड़ी बहन सुलक्षणा से कह कि भैरवानन्द जी की पूजा करके उनको यथायोग्य स्थान दे।

विच०—जो आज्ञा।

रानी०—महाराज अब हम महल में जाती हैं क्योंकि बहिन को अभी कपड़ा पहराना और सिंगार करना है।

राजा—इसको सिंगारना तो मानो चंपे की थाल में कस्तूरी भरना है, पर साँझ हो चुकी है अब हम भी तो चलते हैं।

(नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं। राग गौरी)

प० वै०—भई यह साँझ सबन सुखदाई।
मानिक-गोलक-सम दिनमनि मनु संपुट दियो छिपाई॥
अलसानी दृग मूँदि मूँदि कै कमल लता मनभाई।
पंछी निज निज चले बसेरन गावत काम बधाई॥

(राग पूरबी)

दू० वै०—देखो बीत चल्यौ दिन प्यारे, आइ गई रतियाँ हो रामा॥
दीपक बरे निकसि चले तारे हो, हिलत नहीं पतिया हो रामा॥
दासिन महलन सेज बिछाई हो, मान मई मतियाँ हो, रामा॥
काम छोड़ि घर फिरे सबै नर हो, लगीं तिय छतियाँ हो रामा॥

(जवनिका गिरती है)

पहिला अंक समाप्त

———

दूसरा अंक

स्थान राज-भवन

(राजा और प्रतिहारी आते हैं)

प्रति०—इधर महाराज इधर।

राजा—(कुछ चलकर सोच से) हा ! उस समय वह यद्यपि कुच-नितंबभार से तनिक भी न हिली परंतु त्रिवली के तरंग भय-श्वास से चंचल थे, और गला तिरछा था, मुखचंद्र हिलने से वेणी ने कंचुकी का आलिंगन किया था, सो छबि तो भुलाए भी नहीं भूलती।

प्रति०—(आप ही आप) क्या अब तक वही गेंद वही चौगान ! अच्छा देखो, हम इनका चित्त वसंत के वर्णन से लुभाते हैं। (प्रत्यक्ष) महाराज ! इधर देखिए, कोकिल के कंठ खोलने-वाले, भ्रमरों की झंकार में माधुर्य्य उत्पन्न करने वाले और विरहियों के चित्त पंचम स्वर से घूर्णित करने वाले चैत के दिन अब कुछ बड़े होने लगे।

राजा—(सुनकर अनुराग से) सच है, तभी न लावन्य-जल से पूरित, अनेक विलास हास से छके, सब की सुंदरता जीतने वाले उसके नील कमल से नेत्रों को स्मरण करके शृंगार को जगाते हुए कामदेव ने वियोगियों पर यह कठिन धनु कान तक तान कर तीर चढ़ाया है। (पागल की भाँति) हा ! वह हरिनन-यनी मानो चित्त में घूमती है, उस के गुण नहीं भूलते, सेज पर मानो सोई हुई है, और मेरे साथ ही साथ चलती है, प्रतिशब्द में मानो बोलती है, और काव्यों से मानों मूर्तिमान प्रगट होती है। हा ! जिसको उसने नेत्र भर के नहीं देखा है जब वे बसंत ऋतु के पंचम गान से मरे जाते हैं तो जिन्हें उसने पूर्ण-दृष्टि से देखा है उन्हें तो तिलांजुलि ही देना योग्य है। हाथ उसके दूध के धोए सफेद कोए में काली भँवरे सी पुतली कैसी

शोभित हैं, जिनकी दृष्टि के साथ ही कामदेव भी हृदय में प्रविष्ट हो जाता है। (विचार कर के) प्यारे मित्र ने क्यों देरी लगाई।

(विचक्षणा और विदूषक आते हैं)

विदू०—तो विचक्षणा तुम सच कहती हो न ?

विच०—हाँ हाँ सच है, वाह सच नहीं तो क्या झूठ कहूँगी ?

विदू०—हम को तुम्हारी बात का विश्वास इस से नहीं आता कि तुम बड़ी हँसोड़ हो ।

विच०—वाह हँसी की जगह हँसी होती है, काम की बात में हँसी कैसी ?

विदू०—(राजा को देख कर) अहा ! प्यारे मित्र यह बैठे हैं, हा ! बिना हंस के मानस, बिना मद के हाथी; तुषार के कमल, दिन के दीपक, और प्रातःकाल के पूर्ण चंद्र की भाँति महाराज कैसे तन छीन मन मलीन हो रहे हैं ।

दोनों—(सामने जा कर) महाराज की जय हो ।

राजा—कहो मित्र तुम्हें विचक्षणा कहाँ मिली ।

विदू०—महाराज, आज विचक्षणा मुझसे मित्रता करने आई थी, इन्हीं बातों में तो इतनी देर लगी ।

राजा—क्या, विचक्षणा तुम से क्यों मित्रता करेगी ?

विदू०—क्योंकि आज यह किसी बड़े प्यारे मनुष्य की पत्री हाथ में लिए है।

राजा—और भला यह केवड़ा कहाँ से आया ?

विच०—केवड़े ही के पत्र पर पत्री लिखी है ।

राजा—वसंत ऋतु में केवड़ा कहाँ से आया ?

विच०—भैरवानंदजी ने अपने मंत्र के प्रभाव से महारानी के महल के सामने एक लाठी को केवड़े का पेड़ बना दिया। महारानी ने भी आज हिंडोलनर्तनी चतुर्थी के पर्व्व में उन्हीं पत्तो से महादेव जी की पूजा की और दो पत्ता अपनी छोटी बहिन

कर्पूरमंजरी को दिया। उसने भी एक पत्ता मंगला गौरी को चढ़ाया और दूसरे पत्ते की पुड़िया यह आप के भेंट है, जिसमें कस्तूरी के अक्षरों से छंद लिखे हैं।

(पत्र राजा को देती है)

राजा—(खोल कर पढ़ता है)

जिमि कपूर के हस सो हंसी धोखा खाय।
तिमि हम तुम सो नेह करि रहे हाय पछिताय॥

(इसको बारंबार पढ़ कर) अहा, यह वही मदन के रसायन अक्षर हैं।

विच०—महाराज ! दूसरा छंद मैंने अपनी प्यारी सखी की दशा में बना के लिखा है, उसे भी पढ़िए।

राजा—(पढ़ता है)

बिरह-अनल दहकत नित छाती।
दुखद उसास बढ़त दिन राती॥
गिरत आँसु सँग सखि कर चूरी।
तृन सम जियन आस भई झूरी॥

विच०—और अब मेरी बहिन ने जो उसका हाल लिखा है वह पढ़िए।

राजा—(पढ़ता है)

तुम बिन तासु उसास गुरु भए हार के तार।
तन चंदन तपि जात है बिरह-अनल-संचार॥
तन पीरो दिन-चंद सम, निस दिन रोअत जात।
कबहुँ न ताको मुख-कमल मृदु मुसकनि बिकसात॥

राजा—(लंबी साँस लेकर) भला कविता में तो वह तुम्हारी बहिन ही है, इसका क्या कहना है।

विदू०—महाराज ! विचक्षणा पृथ्वी की सरस्वती और इसकी बहिन त्रैलोक्य की सरस्वती, भला इसका क्या पूछना है, पर हम भी अपने मित्र के सामने कुछ पढ़ना चाहते हैं।

जबसों देखी मृगनयनि भूल्यो भोजन-पान।
निसदिन जिय चिंतन वहै, रुचत और नहिं आन॥
मलय-पवन तापत तनहिं, फूल-माल न सुहात।
चंदन-लेप, उसीर-रस उलटो जारत गात॥
हार धार तरवार से, सूरज सों बढ़ि चंद।
सबही सुख दुख-मय भयो, परे प्रान हू मंद॥

राजा—प्रान न मंद होंगे, अभी थोड़ी ही देर में लड्डू से जिला दिए जायँगे। अब यह कहो कि रनिवास में फिर क्या क्या हुआ?

विदू०—विचक्षणा कहो न क्या क्या हुआ?

विच०—महाराज स्नान कराया, वस्त्र पहिनाया, तिलक लगाया, आभूषण साजे और मनाकर प्रसन्न किया।

राजा—कैसे?

विच०—गोरे तन कुंकुम सुरँग प्रथम न्हवाई बाल।
राजा—सो तो जनु कंचन तप्यो होन पीत सों लाल॥
विच०—इंद्रनीलमनि पैंजनी ताहिं दई पहिराय।
राजा—कमल कली जुग घेरि कै अलि मनु बैठे आय॥
विच०—सजी हरित सारी सरस जुगल जंघ कह घेरि।
राजा—सो मनु कदली पात निज खंभन लपट्यो फेरि॥
विच०—पहिराई मनि किंकिनी छीन सुकटि तट लाय।
राजा—सो सिंगार मंडप बँधी वंदनमाल सुहाय॥
विच०—गोरे कर कारी चुरी चुनि पहिराई हाथ।
राजा—सो सौंपिन लपटी मनहुँ चंदन साखा साथ।
विच०—निज कर सों बाँधन लगी चोली तब वह बाल।
राजा—सो मनु खींचत तीर भट तरकस से तेहि काल॥
विच०—लाल कंचुकी मैं उगे जोबन जुगल लखात।
राजा—सो मानिक-संपुट बने मन चोरी हित गात॥

विच०—बड़े बड़े मुक्तान सों गल अति सोभा देत।
राजा—तारागन आए मनौ निज पति ससि के हेत॥
विच०—करनफूल जुग करन में अतिही करत प्रकास।
राजा—मनु ससि लै द्वै कुमुदिनी बैठ्यो उतरि अकास॥
विच०—बाला के जुग कान मैं बाला सोभा देत।
राजा—स्रवत अमृत ससि दुहुँ तरफ पियत मकर करि हेत॥
विच०—जिअ-रजन खंजन दृगनि अंजन दियो बनाय।
राजा—मनहु सान फेरचौ मदन जुगल बान निज लाय॥
विच०—चोटी गुथि पाटी सरस करिकै बाँधे केस।
राजा—मनहुं सिंगार इकत्र ह्वै बँध्यौ बार के बेस॥
विच०—ग्रहुरि उढ़ाई ओढ़नी अतर सुबास बसाय।
राजा—फूल लता लपटी किरन रबि ससि की मनु आय॥
विच०—एहि बिधि सो भूषित करी भूषन बसन बनाय।
राजा—कामबाग झालरि लई मनु बसत ऋतु पाय॥

विदू०—महाराज! मैं सच कहता हूँ।

दृग काजर लहि हृदय वह मनिमय हारन पाय।
कंचन किंकिनि सो सुभग ता जुग जंघ सुहाय॥

राजा—(उसकी बात का अनादर करके) छिः—

दृग-पग पोछन को किए भूषन पायंदाज।

विदू०—(क्रोध से) वाह! हम तो गहने का वर्णन करते हैं और आप उसकी निंदा करते हैं।

अति सुदर हू कामिनी बिनु भूषन न सुहाय।
फूल बिना चम्पकलता केहि भावत मनभाय॥

राजा—(हँसकर) मूढ़!

बिनु भूषन ही सोहही चतुर नारि करि भाव।
चहियत नहिं अंगूर को मिश्री मधुर मिलाव॥

विच०—महाराज ठीक है, जो नेत्र कान को छूए लेते हैं उनमें अंजन क्या, और जो मुख चंद्रमा की भी निंदा करता है उसको तिलक

क्या ? वैसे ही यद्यपि रूप के समुद्र से शरीर में काहे से गहनों की कौन आवश्यकता है पर यह केवल लोक की चाल है। फूली हुई पीत चमेली को किसने गहने से सजा है।

राजा—कपिंजल सुनो, गहना और कपड़ा तो नाचनेवालियों का भूषण है, रूप वही है जो सहज ही चित्त चुरावे, सुभाव ही स्त्री की शोभा है और गुण ही उसका भूषण है, रसिक लोग कभी ऊपर की बनावट नहीं देखते।

विच०—महाराज ! मैं रानी की आज्ञा से केवल उसकी सेवा ही नहीं करती, कर्पूरमंजरी को मेरे प्रेम से मुझ पर विश्वास भी है, इसी से मैं भी उसे बहुत चाहती हूँ और आप से सच निवेदन करती हूँ कि वह निस्संदेह विरह से बहुत ही दुखी है। क्योंकि—

मदन दहन दहकत हिए, हाथ धरयौ नहिं जात।
कर सों ससि की ओट कै बितवत सो नित रात॥

मैं तो इतना ही कहे जाती हूँ, बाकी सब कपिंजल कहेगा।

(जाती है)

राजा—कहो मित्र और कौन काम है ?

विदू०—आज हिंडोल चतुर्थी के दिन रानी और कर्पूरमंजरी झूला झूलने आवेंगी और महाराज इसी केले के कुंज में छिपकर देखेंगे, यही काम है। (कुछ सोच कर) अहा, महारानी बड़ी चतुर हैं तो भी हम ने कैसा छकाया, पुरानी बिल्ली को भी दूध के बदले मट्ठा पिलाया।

राजा—मित्र तुम्हारे बिना और कौन हमारा काम ऐसा जी लगा के करे, समुद्र को चंद्रमा के सिवाय और कौन बढ़ा सकता है।

(दोनों केले के कुञ्ज में जाते हैं)

विदू०—मित्र इस ऊँचे चबूतरे पर बैठो।

राजा—अच्छा।

(दोनों बैठते हैं)

विदू०—कहो पूर्णिमा का चंद्र दिखाई पड़ा। (एक ओर हाथ से दिखाता है)

राजा—(देख करके) आहा! यह तो सचमुच प्यारी का मुखचंद्र दिखाई पड़ा।

गयो जगत रमनी-गरब, पर्‌यो मंद नभ चंद।
सकुचि कमल जल मैं दुरे, भई कुमुद-छबि मंद॥

झूलनि मैं किंकिनि बजन, अंचल पट फहरान।
को जोहत मोहत नहीं प्यारी छबि इहि आन॥

विदू०—आप सूत्रकार थे इससे आप ने बहुत थोड़े में कहा। हम भाष्यकार हैं इससे हम विस्तारपूर्वक कहते हैं।

"फूली फूलबेली सी नवेली अलबेली बधू
झूलत अकेली काम केली सी बढ़ति है।
कहै 'पदमाकर' झमंक की झकोरन सो
चारों ओर सोर किंकिनींन को कढ़ति है॥
उर उचकाइ मचकीन की मचामच सो,
लंकहि लचाय चाय चौगुनी चढ़ति है।
रति विपरीत की पुनीत परिपाटी सु तौ,
हौंसनि हिंडोरे की सुपाटी मैं पढ़ति है॥ १॥

"गाइहौं मलारै औ जनाइहौं हिये मै छबि,
छाइहौं छिगुनि कुञ्ज कुञ्ज ही के कोरै में।
कहै 'पदमाकर' पियाइहौं पियाला मुख,
मुख सा मिलाइहौं सुगंध के झकोरै मैं॥
नेह सरसाइहौं सिखाइहौं जो सासनं मै,
पाइहौं परी सो सुख मैन के मरोरै मै।
उर उरझाइहौं हिए सों हिए लाइहौं,
झुलाइहौं कबैंधौं प्रानप्यारी को हिंडोरै मैं॥ २॥"

रहसि रहसि हँसि हँसि के हिंडोरे चढ़ी,
लेत खरी पेंगें छबि छाजैं उसकन मैं।
उड़त दुकूल उघरत भुज मूल बढ़ी,
सुखमा अतूल केस-फूलन खसन मैं॥
बोझल ह्वै देखि देखि भये अनमेख लाल,
रीझत बिसूर श्रम सीकर मसन मै।

ज्यौं ज्यौं लचि लचि लंक लचकेत भावती की,
त्यों त्यों पिय प्यारो गहै आँगुरी दसन मैं ॥ ३ ॥

"झूलत पाट की डोरी गहे पटुली पर बैठन' ज्यौं उकुरू की।
'देवजू' दै मचकी कटि बाजत किंकिनि केहर गोल उरू की ॥
सीखन को विपरीति मनो रितु पावस ही चटसार सुरू की।
खोटी पटैं उचटैं तिय चोटी चमोटी लगै मानो काम-गुरू की ॥ ४ ॥"

"भूलति ना वह झूलनि बाल की, फूलनि भाल की लालपटी की।
'देव' कहैं लचकै कटि चंचल चोलि दृगंचलचाल नटी की ॥
अचल की फहरान हिये, रहि जान पयोधर पीन तटी की।
किंकिनि की झमकानि झुलावनि, झूँकनि सो झुकि जानि कटी की ॥ ५ ॥"

राजा—हाय हाय! कर्पूरमंजरी झूले से क्यों उतरी? झूला क्या खाली भया हमारे मन के साथ देखनेवालों के नेत्र भी खाली भये।

विदू०—क्या बिजली की भाँति चमक कर छिप गई?

राजा—नहीं बरन छलावे की भाँति दिखाई पड़ी और फिर अंतर्धान हो गई। (स्मरण करके)

गोरो सो रंग उमग भरयो चित, अग अनंग को मंत्र जगाए।
काजर रेख खुभी दृग मैं दोउ भौंहन काम कमान चढ़ाए।
आवनि बोलनि डोलनि ताकी चढ़ी चित में अति चोप बढ़ाए।
सुदर रूप सो नैनन में बस्यो भूलत नाहिंनै क्यों हूँ भुलाए ॥

विदू०—मित्र, यही पन्ने का कुंज है, यहाँ बैठ के आप आसरा देखिए, अब साँझ भी हुआ चाहती है।

(दोनो बैठते हैं)

राजा—मित्र, अब तो उसका बिरह बहुत ही तपाता है।

विदू०—तो हमारी लाठी पकड़े दम भर बैठे रहो तब तक ठंडाई की तयारी लावें।

(कुछ आगे बढ़ कर) वाह! क्या विचक्षणा यहीं आती है?

राजा—ज्यों ज्यों संकेत का समय पास आता है, त्यों त्यों उत्कंठा कैसी बढ़ती जाती है!

(लंबी साँस लेकर)

ससि-सम मुख-दृग कुमुद से, कर-पद कमल-समान।
चपा सो तन तदपि वह दाहत मोहि सुजान॥

विदू०—अहा! विचक्षणा तो ढंढाई लिए ही आती है।

(विचक्षणा आती है)

विच०—आहा! प्यारी सखी को बिरह का ताप कैसा सता रहा है?

विदू०—(पास जाकर) यह क्या है?

विच०—ठंढाई।

विदू०—किसके लिए?

विच०—प्यारी सखी के वास्ते।

विदू०—तो आधी हमको दो।

विच०—क्यों?

विदू०—महाराज के वास्ते।

विच०—कारण?

विदू०—"कर्पूरमंजरी के वास्ते" कारण।

विच०—तुम क्या नहीं जानते महाराज का वियोग?

विदू०—तो तुम क्या नहीं जानती कर्पूरमञ्जरी का वियोग?

(दोनों हँसते हैं)

विच०—तो महाराज कहाँ हैं?

विदू०—तुम्हारी आज्ञानुसार पन्ने के कुंज में।

विच०—तो तुम भी वहाँ जाके बैठो! दम भर में ठंढाई के बदले दोनों को दर्शन ही से तरावट पहुँच जायगी।

विदू०—तो वहाँ जाओ जहाँ से फिर न बहुरो।

(विचक्षणा को ढकेलता है)

(दोनो आपस में धक्का-मुक्की करते हैं)

विच०—छोड़ो छोड़ो! रानी की आज्ञानुसार कर्पूरमंजरी आती होगी।

विदू०—रानी जी की क्या आज्ञा है ?

विच०—महारानी ने तीन पेड़ लगाए हैं।

विदू०—किसके ?

विच०—कुरवक, तिलक और अशोक के।

विदू०—फिर ?

विच०—महारानी ने कहा है कि सुंदर स्त्रियों के आलिंगन से कुरवक, देखने से तिलक और पैर के छूने से अशोक फूलता है, इससे तुम जाकर मेरे कहे अनुसार सब काम अभी करो, सो वह आती होगी।

विदू०—तो पन्ने के कुंज से प्यारे मित्र को लाकर इन तमालों की आड़ में बैठावें।

(राजा को लाकर तमाल के पास बैठाता है)

विदू०—मित्र, सावधान होकर अपने मन रूपी समुद्र के चंद्रमा को देखो।

राजा—(देखता है)।

(सजी सजाई कर्पूर-मंजरी आती है)

कर्पूर०—कहाँ है विचक्षणा ?

विच०—(पास जाकर) सखी, रानी की आज्ञा पूरी करो।

राजा—मित्र, कौन सी आज्ञा ?

विदू०—घबराओ मत, चुप चाप बैठे बैठे देखा करो।

विच०—यह कुरवक का पेड़ है।

कर्पूर०—(आलिंगन करती है)

राजा—करत अलिंगनही अहो कुरवत तरु इक साथ।
फूल्यो उमगि अनंद सो परसि पियारी हाथ॥

विदू०—मित्र यह अद्भुत इंद्रजाल देखो, जिससे छोटा सा कुरवक का पेड़ कैसा एक साथ फूल उठा! सच है दोहदक्ष के ऐसे ही विचित्र गुण होते हैं।

विच०—और सखी यह तिलक का पेड़ है।

कर्पूर०—(देर तक उसी की ओर देखती है)।

---

* वृक्ष में विचित्र फूल फलादिक उत्पन्न करने का तंत्र।

राजा—अहा, काजर भीनी काम निधि दीठि तिरीछी छाय।
भरयो मंजरिन तिलक तरु मनहुँ रोम उलहाय॥

विच०—सखी अब इस अशोक की पारी है।

कर्पूर०—(वृक्ष को लात मारती है)।

विच०—नूपुर बाजत पद-कमल परसत तुरत अशोक।
फूल्यौ तजि सब सोक निज प्रगटि कुसुम कल थोक॥

विदू०—मित्र, महारानी ने यह दोहद आपही क्यों न किया, आप इसका कारण कुछ कह सकते हैं?

राजा—तुम्हीं जानो।

विदू०—मैं कहूँ, पर जो आप रूठ न जायँ?

राजा—भला इसमें रूठने की कौन बात है, निस्संदेह जो जी में आवे कह डालो।

विदू०—जदपि उतै रूपादि गुन सुंदर मुख तन केस।
पै इत जोबन नृपति की महिमा मिली बिसेस॥

राजा—जदपि इतै जोबन नवल, मधुर लरकई चारु।
पै उत चतुराई अधिक प्रगटन रस ब्यौहारु॥

विदू०—सच है जवानी और चतुराई में बड़ा बीच है।

(नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं)

(राग चैती गोरी)

मन भावनि भई साँझ सुहाई।
दीपक प्रकट कमल सकुचाने प्रफुलित कुमुदिनि निसि ढिग आई॥
ससि प्रकास पसरित तारागन उगन लगे नभ में अकुलाई।
साजत सेज सबै जुवती-जन पीतम-हित हिय हेत बढ़ाई॥
फूले रैन फूल बागन में सीतल पौन चली सुखदाई।
गौरी राग सरससुर सब मिलि गावत कामिनि काम बधाई॥

राजा—मित्र, देखो संध्या भई।

विदू०—तभी न बन्दियों ने साँझ के गीत गाए।

कर्पूर०—सखी, अँधेरा होने लगा, अब चलो।

विच०—हाँ चलना चाहिए।

(जवनिका गिरती है)

इति द्वितीय अंक

तीसरा अंक

स्थान राजभवन

(राजा और विदूषक आते हैं)

राजा—(स्मरण करके) उसकी मधुर छबि के आगे नया चद्रमा, चंपे की कली, हलदी की गाँठ, तपाया सोना और केसर के फूल कुछ नहीं हैं, पन्ने के हार और मालती की माला से शोभित उसका कंठ जी से नहीं भूलता और उसके कर्णावलंबी नेत्र मेरे जी में अब तक खटकते हैं।

विदू०—मित्र, स्त्रीजितों की भाँति तुम क्यों व्यर्थ बकते हो ?

राजा—मित्र, स्वप्न में हमने ऐसा ही मनुष्य-रत्न देखा है।

विदू०—कैसा ?

राजा—मैंने देखा है कि वह कमलवदनी हँसती हुई मेरी सेज के पास आकर नीलकमल घुमाकर मुझे मारने चाहती है और जब मैंने उसका अंचल पकड़ा है तो वह चंचल नेत्रों को नचा कर अंचल छुड़ाकर भाग गई और मेरी नींद भी खुल गई।

विदू०—(आप ही आप) तो कुछ हम भी कहैं (प्रगट) मित्र मैंने भी एक सपना देखा है !

राजा—(आशा से) हाँ मित्र, कहो कहो।

विदू०—हमने देखा है कि देवगंगा के सोते में सोते सोते हम महादेव जी के सिर पर खेलने वाली नदी में जा पहुँचे हैं और फिर शरद ऋतु के मेघों ने हमको पेट भर के पीया है और तब हम हवा के घोड़े पर आकाश की सैर करते फिरते हैं।

राजा—(आश्चर्य से) हाँ फिर ?

विदू०—फिर उसी मेघ में गुब्बारे की भाँति बैठे बैठे ताम्रपर्णी नदी में पहुँचे हैं और जब सूर्य्य चित्रा नक्षत्र में गए तब समुद्र के

ऊपर जाके वह मेघ बड़ी बड़ी बूंद से बरसने लगा और एक सीप ने मुँह खोल कर हमें भली-भाँति पिया है और उसके पेट में जाते ही हम छमाशे के मोती हो गये।

राजा—(आश्चर्य से) फिर ?

विदू०—फिर हम समुद्र की लहरों से टक्कर लड़े और सैकड़ों सीपों में घूमते फिरे। अंत में घिस घिसा कर सुंदर गोल मटोल चमकीले मोती बन गए और हमको पूर्व जन्म का स्मरण ज्यों का त्यों बना रहा।

राजा—(आश्चर्य से) फिर क्या हुआ।

विदू०—फिर समुद्र से वह सीप निकालकर फाड़ी गई तब हम एक दाने से चौंसठ होकर बाहर निकले और लाख अशरफी पर एक सेठ के हाथ बिके और जब उसने उन मोतियों को बिधवाया तो हमको बड़ी पीड़ा हुई।

राजा—(आश्चर्य से) हाँ तब ?

विदू०—फिर उस सेठ ने दस दस छोटे मोतियों के बीच में हमें पिरोकर एक माला बनाई, तब हमारा दाम करोड़ों अशरफी से भी बढ़ गया और सोने के डिब्बे में रख के सागरदत्त सेठ ने पंजाब देश में कर्णउरू नगर के राजा श्री बज्रायुध के हाथ हमें बेच डाला।

राजा—(घबड़ाकर) फिर क्या हुआ।

विदू०—फिर उसकी रानी के सुंदर गले में थोड़ी देर तक हम मूला झूलते रहे पर जब राजा ने उसका आलिंगन किया तो कठोर स्तन के धक्कों से पिस कर हम ऐसे चिल्लाये कि नींद खुल गई।

राजा—(हँसता है) समझा, यह तुम हमारा परिहास करते हो।

विदू०—परिहास नहीं, ठीक कहते हैं, राज्य से छूटा हुआ राजा, कुटुंब में फँसी बालरंडा, भूखा गरीब ब्राह्मण और बिरह से पागल प्रेमी लोग मन के ही लड्डू से भूख बुझा लेते हैं, भला मित्र हम यह पूछते हैं कि यह सब किसका प्रभाव है।

राजा—प्रेम का।

विदू०—भला रानी से इतना स्नेह होते भी कर्पूरमंजरी पर इतना प्रेम क्यों करते हो और फिर रानी रूप आदिक में किससे कमती है ?

राजा—यह मत कहो, किसी किसी मनुष्य से ऐसी प्रेम की गाँठ बँध जाती है कि उसमें रूप कारण नहीं होता। ऐसे प्रेम में रूप औ गुण तो केवल चवाइयों के मुँह बंद करने के काम आता है।

विदू०—तो प्रेम नाम आप के मत से किसका ?

रानी—नवयौवन वाले स्त्री-पुरुषों के परस्पर अनेक मनोरथों से उत्पन्न सहज चित्त के विकार को प्रेम कहते हैं।

विदू०—और उस में गुण क्या क्या हैं ?

राजा—परस्पर सहज स्नेह अनुराग के उमंगों का बढ़ना, अनेक रसों का अनुभव, संयोग का विशेष सुख, संगीत-साहित्य और सुख की सामग्री मात्र को सुहाना कर देना और स्वर्ग का पृथ्वी पर अनुभव कराना।

विदू०—और वह जाना कैसे जाता है ?

राजा—लगावट की दृष्टि, नेत्रों का चंचल और चोर होना, अंग के अनेक भाव और मुख की आकृति से।

विदू०—हमारी जान में चित्त में जो बिहार के उत्साह होते हैं, उसी का नाम प्रेम है। और उसको रूप नहीं है तो भी मनुष्य में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। जहाँ कामदेव का इंद्रजाल यह प्रेम स्थिर है वहाँ आभूषण और द्रव्य से क्या ?

राजा—(हँसकर) इसको द्रव्य और आभूषण ही की पड़ी रहती है। अरे !

कहा अभूषन, कह बसन, का अनेक सिंगार।
तिय तन सो कछु औरही जो मोहत संसार।
खंजन-मद-गंजन करन जग-रंजन जे आहिं॥
मदन-लुकंजन सरिस दृग, कह अंजन तिन माहि॥

धन कुल की मरजाद कछु प्रेम-पंथ नहिं होत।
राव रंक सब एक से लगत प्रनय रस सोत॥
धनिक-बधू जो छबि लहत बेंदी रतन जराय।
ग्राम-बधूटीहू सोई कुंकुम तिलक लगाय॥
"अनियारे तीखे दृगनि किती न तरुनि जहान।
यह चितवनि कछु और ही जिहि बस होत सुजान"

विदू०—यह ठीक है पर लड़कई में जो रूप होता है, जवानी के सौंदर्य्य से उससे कोई सम्बन्ध नहीं। यह क्यों?

राजा—हमारे जान में जन्म देनेवाला विधि दूसरा है और उन्नत कुच उत्पन्न करने वाला दूसरा है। सुंदरता से भरा अंग, कर्णावलम्बी नेत्र, हारशोभी स्तन, क्षीण मध्य देश और गोल नितम्ब यही पाँच अंग कामदेव के मुख्य सहायक होते हैं।

(नेपथ्य में)

हाय! इस ठंढे घर में भी कर्पूरमंजरी पसीने से तर हुई जाती है, इससे इसे पंखा झलें।

सखी कुरंगिके! यह हिम उपचार तो मुझ कमल की लता को और भी मुरझा देगा।

कमलनाल विष-जाल सम, हार-भार अहि भोग।
मलय प्रलय, जल अनल मोहि, वायु आयु-हर रोग॥

विदू०—प्यारे मित्र ने सुना! तो अब इस अमृत के प्याले की उपेक्षा कब तक करोगे। चलो, धूप से सूखती कमलिनी, बिना पानी की केसर की क्यारी, बालक के हाथ में रोली की पुतली, हरने के सींग में फँसी हुई चंदन की डाल और अनाड़ी के हाथ पड़ी मोती की सी कर्पूरमंजरी की दशा है, इससे चलकर शीघ्र ही उसको प्राणदान दो। लो न तुम्हारा सपना तो सच हुआ, चलो काम की पताका उड़ाओ, मदनमंत्र के हुँकार के साथ ही स्वेद का अभिषेक भी होय, चलो इसी खिड़की से चलें। (खिड़की की ओर चलना नाट्य करते हैं)

(भीतरी परदा उठता है और एक घर में कुरंगिका और कर्पूरमंजरी बैठी दिखाई देती हैं)

कर्पूर०—(राजा को देखकर घबड़ा के) अहा ! क्या पूर्णिमा का चंद्र आकाश से उतर आया या भगवान शिव जी ने रति की अधीनता पर प्रसन्न होकर फिर से कामदेव को जिला दिया या वही छलिया आता है जिसने चित्त चुरा कर ऐसा धोखा दिया। सखी ! यह कुछ इंद्रजाल तो नहीं है ?

विदू०—(राजा को दिखाकर) हाँ सचमुच यह इंद्रजाल का तमाशा है।

कर्पूर०—(लाज से सिर नीचे कर लेती है)

कुरंगि०—सखी ! महाराज खड़े हैं और तू आदर करने को नहीं उठती ?

कर्पूर०—(उठा चाहती है)

राजा—बस बस, प्यारी तुम अपने कोमल अंगों को क्यों दुख देती हो ! जहाँ की तहाँ बैठी रहो।

कुच-नितंब के भार सों लचि न जाय कटि छीन ॥
रहो रहो बैठी रहो, करौ न आज नवीन ॥

विदू०—हाय हाय ! कर्पूरमंजरी को बड़ा पसीना हो रहा है। अच्छा पंखा झलूँ। (अपने दुपट्टे से पंखा झलता हुआ जान बूझ कर दिया बुझा देता है) हहहह ! बड़ा आनंद हुआ। दिया गुल पगड़ी गायब। अब बड़ा आनंद होगा। महाराज ! देखिए कुछ अंधेर न हो।

राजा—तो सब लोग छत पर चल। आओ प्यारी तुम हमारा हाथ पकड़ लो और अपनी मंद चाल से हंसी को लजाओ। (स्पर्श-सुख नाट्य करके) अहा ! तुम्हारे अंग से छू जाते ही कदंब की भाँति हमारा अंग पुष्पित हो गया।

(सब लोग चलना दिखाते हैं)

(नेपथ्य में प्रथम बैतालिक)

नव ससि उदय होइ सुखदायक।
कुमकुम मुख मंडित तिय मुख सम देखहु उग्यो जामिनी-नायक ॥

अरुन दिसा प्राची रँग राची, तरुन करुन बिरही जन घातक।
रजनी लखि सजनी अनंग अब, तजत किरिन मिस तकि तकि सायक॥
पत्र-रंध्र तें छनि छनि आवत, चाँदनि रस सिँगार की वायक।
तारागन प्रगटित नभ-मंडल, ससि राजा के सँग जनु पायक॥
विहरत तरुनि सँजोगिन सो मिलि, लहि सब सुख रसिकन के लायक।
प्रफुलित कुमुद देखि सरवर महँ, गावत काम बधाई गायक॥

(नेपथ्य में चद्रमा का प्रकाश होता है)

विदू०—कनकचंद्र गा चुका, अब माणिक्य चंद्र गावै।

(नेपथ्य में दूसरा बैतालिक गाता है)

रैन सँजोगिन को सुखदाई।
तजत मानिनी मान चंद लखि, दूती तिन कहँ चलत लिवाई॥
कोमल सेज तमोल फूल मधु, सुखद साज सब धरे सजाई।
बिहरहिं कामिनि कामी जन संग, लूटहिं सुख पीतम ढिग पाई॥

विदू०— दिसावधू चंदन तिलक, नभ सरवर कों हंस।
काम कंद सम नभ उदित, यह ससि जगत-प्रसंस॥

कुरं०—चंद उदय लखि कै मदन, कानन लो धनु तानि।
जीत्यो जग जुव-जन सबैं, निसि निज अति बल जानि॥

(कर्पूर मंजरी से) सखी! अब तेरा बनाया चंद्रमा का वर्णन महाराज को सुनाती हूँ।

कर्पूर०—(लज्जा नाट्य करती है)।

कुरं०—ससि अति सुंदर ताहि कहुँ दृष्टि नाहिं लगि जाय।
तातें दैव कलंक मिस दियो दिठौना लाय॥

राजा०—वाह वाह! जैसा छंद वैसे ही बनाने वाली, फिर क्या पूछना है, कोमल मुख से जो अक्षर निकलेंगे वह क्यों न कोमल होंगे, पर—

सिर दै कस्तूरी-तिलक सब बिधि ससि-छबि धारि।
तुमहू तौ मम मन-कुमुद विकसावति सुकुमारि।

(चंद्रमा की ओर)

तजौ गरब अब चंद तुम, भूलौ मत मन माहिं ।
क्रोध-हँसनि-भ्रूभंग-छबि, तुम मैं सपनेहु नाहिं ॥

(नेपथ्य में कोलाहल)

राजा—यह क्या कोलाहल है ।

कर्पूर०—(भयसे) कुरंगिके देखो तो यह क्या है ?

(कुरंगिका बाहर होकर आती है)

विदू०—जान पड़ता है कि यह सब बात रानी ने जान ली ।

कुरं०—हाँ ठीक है, महारानी हम लोगों को पकड़ने यहाँ आती हैं, यही कोलाहल है ।

कर्पूर०—(डर कर) तो हम लोग अब इस सुरंग की राह से महल में जाते हैं, जिसमें रानी महाराज के साथ हमें न देखें ।

(सब जाना चाहते हैं । जवनिका गिरती है)

इति तृतीय अंक ।

चौथा अंक

(राजा और विदूषक आते हैं)

राजा०—आहा ! ग्रीष्म ऋतु भी कैसा भयानक होता है। इस ऋतु में दो बातें अत्यंत असह्य हैं, एक तो दिन की प्रचंड धूप, दूसरे प्यारे मनुष्य का वियोग।

विदू०—संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं, एक सुखी, एक दुखी। हम अच्छे, न सुखी न दुखी, न संयोगी न वियोगी।

(नेपथ्य में मैना बोलती है)

तो तेरा सिर टूटे बेल सा क्यों नहीं गिर पड़ता ?

राजा०—मित्र, खिलवाड़िन मैना क्या कहती है, सुनो।

विदू०—(क्रोध से) अच्छा दुष्ट दासी देख अभी तुझको पकड़ कर मरोड़ डालते हैं।

(नेपथ्य में मैना बोलती है)

हाँ हाँ निपूते, जो हमें पर न होते तो तू सब करता।

राजा—(देखकर) क्या मैना उड़ गई ? (विदूषक से) कामी जनों की प्यारी इस गरमी के ऋतु में जब निशारूपी मैना जल्दी से उड़ जाती है, तो यह मैना क्यों न उड़े। क्यों न हो, वा संयोगियों को तो ग्रीष्म भी सुखद ही है। दो पहर तक ठंढे चंदन का लेप, तीसरे पहर महीन गीले कपड़े, फुहारे, खसखाने और साँझ को जल-बिहार और हिम से ठंढी की हुई मदिरा और पिछली रात की ठंढी हवा में बिहार इत्यादि इस ऋतु में भी सुख के सभी साज हैं, पर जो करने वाला हो ?

विदू०—ऐसा नहीं, मुँह भर के पान, पानी से फूली हुई सुपारी और कपूर की धूर और मीठा मीठा भोजन ही गर्मी में सुखद होता है।

राजा०—छिः, इस गर्मी में भी तुझे पान और मीठे भोजन को पड़ी है। गर्मी में तो वायु के संयोग से जल, हिम में रखने से मदिरा, चंदन-लेप करने से स्त्री, सुंदर कंठ पाकर फूल और पंचम स्वर से पूरित होकर बंशी यही पाँच वस्तु ठंढी हैं। तथा सिरीस के फूल के गहने, बेले की चोटी, मोतिया के हार, चंपे की चंपाकली, नेवारी के गजरे, जल भरी कुमुद की बिना डोरे की माला और हाथ में कमलनाल के कंकण यही सुंदरियों को रत्नाभरण के बदले योग्य शृंगार हैं।

विदू०—हम तो यही कहेंगे कि दो पहर को चंदन लगाए, साँझ को नहाए, मंदवायु से कान का फूल हिलानेवाली स्त्री ही गरमी में सुखद होती है।

राजा—(याद करके) देखो, जिनके प्यारे पास हैं उनको गरमी के बड़े बड़े दिन एक क्षण से बीतते हैं, पर जो अपने प्यारे से दूर पड़े हैं उनको तो ये दिन पहाड़ से भी बड़े हो जाते हैं। (विदूषक) मित्र, कुछ उसी की बात कहो।

विदू०—हाँ मित्र सुनो, बहुत अच्छी अच्छी बात कहेंगे। जब से कर्पूरमंजरी को गुप्त घर की सुरंग के दरवाजे पर महारानी ने देख लिया है, तब से सुरंग का मुँह बंद करके अनंगसेना, कलिंगसेना, बसंतसेना और विभ्रमसेना नामक चार सखियों को नंगी तलवार लेकर पूरब में; अनंगलेखा, चंदनलेखा, चित्रलेखा, मृगांकलेखा और विभ्रमलेखा इन पाँच सखियों को धनुष देकर दक्षिण में; कुंदमाला, चंदनमाला, कुवलयमाला, काचनमाला, बकुलमाला, मंगलमाला और माणिक्यमाला इन सात सखियों को चोखे भाले देकर पश्चिम दरवाजे पर; अनंगकेलि, कर्पूरकेलि, कंदर्पकेलि और सुंदरकेलि, इन चार सखियों को खड्ग देकर उत्तर की ओर पहरे के वास्ते रक्खा है। और भी हजारों हथियारबंद सखी चारों ओर फिरा करती हैं, और मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरंगवती और तांबूलवती ये पाँच सोने की छड़ी हाथ में लेकर उस सेना की रक्षा करती हैं।

राजा—वाहरे ठाट बाट ! महारानी सचमुच अपने महारानी-पन पर आ गईं ।

विदू०—मित्र, महारानी के यहाँ से सारंगिका नाम की सखी कुछ कहने को आती है ।

(सारंगिका आती है)

सारंगिका—महाराज की जय हो । महाराज ! महारानी ने निवेदन किया है कि आज बटसावित्री का उत्सव होगा सो महाराज छत पर से देखें ।

राजा—महारानी की जो आज्ञा ।

(सारंगिका जाती है । राजा और विदूषक छत पर चढ़ना नाट्य करते हैं)

विदू०—देखिए देखिए, मोतियों के गहने से लदी हुई नृत्य में वस्त्र फहरानेवाली स्त्रियाँ हीरे के नगीने से जलकणों से कैसा परस्पर खेल रही हैं, इधर विचित्र प्रबंध से घूमनेवाली, फिरकी की भाँति नाचनेवाली और सम पर पाँव रखनेवाली स्त्रियाँ कैसा परस्पर नाच रही हैं, कोई मंडल बाँध कर पंक्ति से, कोई दूसरी का हाथ पकड़कर और कोई अकेली ही नाचती है । नृत्य के श्रम-श्वास से कुचों पर हार कंपित होकर देखनेवालों के नेत्र और मन को जबरदस्ती अपनी ओर खींचते हैं । सब देश की स्त्रियों के स्वाँग बनकर कुछ स्त्रियाँ अलग ही कौतुक कर रही हैं । यह देखिए, जिसने भीलनी का स्वाँग लिया है वह कैसी निर्लज्ज और मत्तचेष्टा करती है ! वैसे ही जो गँवारिन बनी है वह अपनी सहज सीधी और भोली चितवन से अलग चित्त चुराती है; कोई गाती है, कोई हँसती है, कोई नकल करती है, सब अपने-अपने रंग में मस्त हैं ।

(सारंगिका आती है)

सारं०—(आप ही आप) अहा ! महाराज तो छत पर पन्ने के बँगले में बैठे हैं । (प्रगट) महाराज की जय हो । महाराज ! महारानी कहती हैं कि हम साँझ को महाराज का ब्याह करेंगे ।

विदू०—ह हा ह हा ! वाह ! क्या अच्छी बे-समय की रागिनी छेड़ी गई है ।

राजा—सारंगिके ! सविस्तर कहो, तुम्हारी बात हमारी समझ में नहीं आती ।

सारं०—विगत चतुर्दशी को महारानी ने मानिक्य की गौरी बनाकर भैरवानंदजी के हाथ से प्रतिष्ठा कराई थी, सो जब महारानी ने भैरवानंदजी से कहा कि आप कुछ गुरुदक्षिणा माँगिए तब उन्होंने कहा "ऐसी गुरुदक्षिणा दो जिसमें महाराज का कल्याण भी हो और वे प्रसन्न भी हों अर्थात् लाट देश के राजा चंद्रसेन की कन्या घनसारमंजरी को ज्योतिषियों ने बताया है कि जिससे इसका ब्याह होगा वह चक्रवर्ती होगा। उसका महाराज से विवाह कर दो। यही हमें गुरुदक्षिणा दो।" महारानी ने भी स्वीकार किया और इसी हेतु मुझे आपके पास भेजा है ।

विदू०—वाह वाह ! सिर पर साँप और काबुल में वैद्य, आज ब्याह और लाट देश में घनसारमंजरी ।

राजा—इससे क्या ? भैरवानंद के प्रभाव से सब निकट है ।

सारं०—महाराज, आम की बारीवाले चामुंडा के मंदिर में महारानी और भैरवानंदजी आपका ब्याह करेंगे सो आप यहाँ से कहीं मत टलिएगा ।

(जाती है)

राजा—यह सब भैरवानंदजी का प्रभाव है ।

विदू०—सच है, चंद्र बिना चंद्रकांतमणि को और कौन द्रवावे ?

(एक ओर बगीचे और मंदिर का दृश्य । भैरवानंद आते हैं)

भरवानंद—इस बट के मूल में सुरंग के दरवाजे पर चामुंडा की मूर्ति है तो यहीं ठहरें । (हाथ जोड़कर) कल्पांत महाश्मशान-रूपी क्रीड़ा-मंदिर में ब्रह्मा की खोपड़ी के कटोरे में राक्षसों का उष्ण रुधिर रूपी मद्यपान करनेवाली कराली काली को नमस्कार है । (आगे बढ़कर) अभी तक कर्पूरमंजरी नहीं आई ?

(सुरंग का मुँह खुलता है और उसमें से कर्पूरमंजरी निकलती है)

पकर०—महाराज, प्रणाम करती हूँ ।

भै०—योग्य वर पाओ ! आओ, यहाँ बैठो।

कर्पूर०—(बैठती है)

भै०—अब तक रानी नहीं आईं ?

(रानी आती है)

रानी—(आगे देखकर) अरे यही चामुंडा हैं ? और कर्पूरमंजरी भी बैठी है ? (भैरवानंद से) महाराज, ब्याह की सामग्री ले आवें ?

भै०—हाँ रानी।

रानी—(आगे बढ़ती है)

भै०—(हँसकर) यह खोजने गई है कि हमारे पहरे में से कर्पूरमंजरी कैसे चली आई ? तो अच्छा बेटी कर्पूरमंजरी, तुम सुरंग की राह से जाकर अपनी जगह पर बैठो, जब रानी देख ले तब चली आना।

कर्पूर०—जो आज्ञा। (उसी भाँति जाती है)

रानी—(आगे एक घर में झाँककर) अरे कर्पूरमंजरी तो यहीं है, वह कोई दूसरी होगी। बेटी कर्पूर मंजरी, जी कैसा है ?
(नेपथ्य में) सिर में कुछ दर्द है।

रानी—तो चलें। (आगे बढ़कर) लाओ जल्दी तयारी करो।

(कर्पूरमंजरी सुरंग की राह से आकर अपनी जगह पर बैठती है)

रानी—(देखकर) अरे ! यहाँ भी कर्पूरमंजरी !

भै०—बेटी विभ्रमलेखे ! ब्याह की सामग्री ले आईं ?

रानी—हाँ लाई सही, पर कर्पूरमंजरी के लायक आभूषण लाना भूल गई।

भै०—तो जाओ जल्दी ले आओ।

रानी—जो आज्ञा। (आगे बढ़कर उसी घर की ओर जाती है)

भै०—बेटी कर्पूरमंजरी, फिर वैसा ही करो।

कपर०—जो आज्ञा। (वैसे ही जाती है)

रानी—(उसी घर के दरवाजे से झाँककर) आहा ! मैं निस्संदेह ठगी गई। (प्रगट) अरे व्याह की सामग्री लाओ। (कर्पूरमंजरी वैसे ही आती है। फिर भैरवानंद के पास आकर और कर्पूर-मंजरी को देखकर) यह क्या चरित्र है ! हा ! हमारी चेष्टा इस योगीश्वर ने ध्यान से सब जानी होगी।

भै०—रानी ! बैठो, महाराज भी आते होंगे।

(राजा और विदूषक ऊपर से उतरते हैं और कुरंगिका आती है)

भै०—महाराज विराजिए। (सब बैठते हैं)

राजा—(कपूरमंजरी को देखकर) यह कामदेव की मूर्तिमान् शक्ति है, वा शृंगार की साक्षात् लता है, वा सिमटी हुई चंद्रमा की चाँदनी है, वा हीरे की पुतली है, वा बसंतऋतु की मूल कला है, जिसको इसने एक बार देखा उसके चित्तरूपी देश में कामदेव का निष्कंटक राज हुआ।

विदू०—(धीरे से) वाह रे जल्दी ! अरे अब तो क्षण भर में गोद ही में आई जाती है। अब क्या बक-बक लगाए हो, कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?

रानी—(कुरंगिका से) तुम महाराज को गहिना पहिनाओ और सुरंगिका घनसारमंजरी को। (दोनों सखियाँ वैसा ही करती हैं)

भै०—उपाध्याय को बुलाओ।

रानी—महाराज का पुरोहित आर्य्य कपिंजल बैठा ही है फिर किसकी देर है ?

विदू०—हाँ हाँ, हम तो तय्यार[1] ही हैं। मित्र, हम गँठबंधन करते हैं, तुम कर्पूरमंजरी का हाथ पकड़ो और कर्पूरमंजरी, तुम महाराज का पकड़ो। (मूठमूठ के अशुद्ध मंत्र पढ़ता है और वैदिकों सी चेष्टा करता है)

भै०—तुम निरे वही हौ, कर्पूरमंजरी का घनसार मंजरी नाम हुआ।

पाठा०—तयारी।

राजा—(कर्पूरमंजरी का हाथ पकड़कर आप ही आप) आहा! इसके कोमल करस्पर्श से कदंब और केवड़े की भाति मेरा शरीर एक साथ रोमांचित हो गया।

विदू०—अग्नि प्रगटाओ और लावा का होम करो। (राजा और कर्पूरमंजरी अग्नि की फेरी करते हैं। कर्पूरमंजरी धुएँ से मुँह फेरना नाट्य करती है)

रानी—अब विवाह हो गया, हम जाते हैं। [जाती है

भै०—विवाह की आचार्य्य-दक्षिणा दीजिए।

राजा—(विदूषक से) हाँ मित्र! सौ गाँव तुमको दिया।

विदू०—स्वस्ति, स्वस्ति। (उठकर बंगल बजाकर नाचता है)

भै०—महाराज, कहिए और क्या होय?

राजा—(हाथ जोड़कर) महाराज! अब क्या बाकी है?

कुंतल-नृपकन्या मिली चक्रवर्त्ति पद साथ।
सब पूरे मनकाज मम तुव पद-बल ऋषिनाथ॥

तब भी यह भरतवाक्य सत्य हो—

उन्नत चित ह्वै आर्य्य परस्पर प्रीति बढ़ावैं।
कपट नेह तजि सहज सत्य व्यौहार चलावैं॥
जवन-संसरग-जात दोसगन इनसों छूटैं।
सबै सुपथ पथ चलैं नितहि सुख संपति लूटैं॥

तजि बिबिध-देव रति कर्म-मति एक भक्ति पथ सब गहैं।
हिय भोगवती सम गुप्त हरि-प्रेम धार नितही बहै॥*

(जवनिका गिरती है)

इति चतुर्थ अंक

---

* तृतीय आवृत्ति में 'खलगनन सों सज्जन दुखी' पद है।

श्रीचंद्रावली

नाटिका

संवत् १९३३

काव्य, सुरस सिंगार के दोउ दल, कविता नेम ।
जग-जन सों कै ईस सों कहियत जेहि पर प्रेम ॥
हरि उपासना, भक्ति, वैराग, रसिकता, ज्ञान ।
सोधैं जग-जन मानि या चंद्रावलिहि प्रमान ॥

समर्पण

प्यारे !

लो, तुम्हारी चंद्रावली तुम्हें समर्पित है। अंगीकार तो किया ही है, इस पुस्तक को भी उन्हीं की कानि से अंगीकार करो ! इसमें तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो संसार में प्रचलित है। हाँ, एक अपराध तो हुआ जो अवश्य क्षमा करना होगा। वह यह कि यह प्रेम की दशा छापकर प्रसिद्ध की गई। वा प्रसिद्ध करने ही से क्या जो अधिकारी नहीं है उनकी समझ ही में न आवेगा।

तुम्हारी कुछ विचित्र गति है। हमीं को देखो। जब अपराधों को स्मरण करो तब ऐसे कि कुछ कहना ही नहीं। क्षण भर जीने के योग्य नहीं। पृथ्वी पर पैर धरने को जगह नहीं। मुँह दिखाने के लायक नहीं। और जो यों देखो तो ये लंबे-लंबे मनोरथ। यह बोलचाल। यह ढिठाई की तुम्हारा सिद्धांत कह डालना। जो हो, इस दूध खटाई की एकत्र स्थिति का कारण तुम्हीं जानो। इसमें कोई संदेह नहीं कि जैसे हौं तुम्हारे बनते हैं। अतएव क्षमासमुद्र ! क्षमा करो। इसी में निर्वाह है। बस—

भाद्रपद कृष्ण १४
सं०१९३३

हरिश्चंद्र

———

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका खं० ४ सं० १–३ सन् १६७६
बनारस प्रिंटिंग प्रेस में सन् १८७७ में छपा

श्रीचंद्रावली

नाटिका

स्थान—रंगशाला

(ब्राह्मण आशीर्वाद पाठ करता हुआ आया)

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अलौकिक घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥

और भी

नेति नेति तत्-शब्द-प्रतिपाद्य सर्व भगवान।
चद्रावली-चकोर श्रीकृष्ण करौ कल्यान॥

(सूत्रधार आता है)

सूत्र—बस बस, बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं। मारिष मारिष, दौड़ो दौड़ो, आज ऐसा अच्छा अवसर फिर न मिलेगा, हम लोग अपना गुण दिखाकर आज निश्चय कृतकृत्य होंगे।

(पारिपार्श्वक आकर)

पारि०—कहो कहो, आज क्यों ऐसे प्रसन्न हो रहे हो? कौनसा नाटक करने का विचार है और उसमें ऐसा कौन सा रस है कि फूले नहीं समाते?

सूत्र०—आः, तुमने अबतक न जाना? आज मेरा विचार है कि इस समय के बने एक नए नाटक की लीला करूँ, क्योंकि संस्कृत नाटकों को अपनी भाषा में अनुवाद करके तो हम लोग अनेक बार खेल चुके हैं, फिर बारंबार उन्हीं के खेलने को जी नहीं चाहता।

पारि०—तुमने बात तो बहुत अच्छी सोची, वाह क्यों न हो, पर यह तो कहो कि वह नाटक बनाया किसने है ?

सूत्र—हम लोगों के परम मित्र हरिश्चंद्र ने।

पारि०—(मुँह फेर कर) किसी समय तुम्हारी बुद्धि में भी भ्रम हो जाता है। भला वह नाटक बनाना क्या जाने। वह तो केवल आरंभशूर है। और अनेक बड़े-बड़े कवि हैं, कोई उनका प्रबंध खेलते।

सूत्र०—(हँसकर) इसमें तुम्हारा दोष नहीं, तुमतो उससे नित्य नहीं मिलते। जो लोग उसके संग में रहते हैं वे तो उसको जानते ही नहीं, तुम बिचारे क्या हो।

पारि०—(आश्चर्य से) हाँ, मैं तो जानता ही न था, भला कहो उनके दो-चार गुण मैं भी सुन सकता हूँ ?

सूत्र०—क्यों नहीं, पर जो श्रद्धा से सुनो तो।

पारि०—मैं प्रति रोम को कर्ण बना कर महाराज पृथु हो रहा हूँ, आप कहिए।

सूत्र०—(आनंद से) सुनो—

परम-प्रेमनिधि रसिक बर, अति-उदार गुन-खान।
जग-जन-रंजन आशु-कवि, को हरिचंद-समान॥
जिन श्रीगिरिधरदास कबि, रचे ग्रन्थ चालीस।
ता-सुत श्रीहरिचन्द कों, को न नवावै सीस॥
जग जिन तृन-सम करि तज्यौ, अपने प्रेम-प्रभाव।
करि गुलाब सों आचमन, लीजत वाको नाँव॥
चंद टरै सूरज टरै, टरैं जगत के नेम।
यह दृढ़, श्रीहरिचंद को, टरै न अविचल प्रेम॥

पारि०—वाह-वाह ! मैं ऐसा नहीं जानता था, तब तो इस प्रयोग में देर करनी ही भूल है।

(नेपथ्य में)

स्रवन-सुखद भव-भय-हरन, त्यागिन को अत्याग।
नष्ट-जीव बिनु कौन हरि-गुन सो करै विराग ?

हम साहू तजि जात नहिं, परम पुन्य फल जौन।
कृष्णकथा सौं मधुरतर जग मैं भाखौ कौन?

सूत्र०—(सुनकर आनंद से) अहा! वह देखो मेरा प्यारा छोटा भाई शुकदेव जी बनकर रंगशाला में आता है और हम लोग बातों ही से नहीं सुलझे। तो अब मारिष! चलो, हम लोग भी अपना-अपना वेष धारण करें।

पारि०—क्षण भर और ठहरो, मुझे शुकदेव जी के इस वेष की शोभा देख लेने दो, तब चलूँगा।

सूत्र०—सच कहा, अहा कैसा सुंदर बना है, वाह मेरे भाई वाह! क्यों न हो, आखिर तो मुझ रंगरंजक का भाई है।

अति कोमल सब अंग रंग साँवरो सलोना।
घूँघरवाले बालन पै बलि वारौं टोना॥
भुज बिसाल, मुख चंद झलमले, नैन लज़ौंहैं।
भ्रुग कमान सी खिंची गड़त हिय में दोउ भौंहैं।
छबि लखत नैन छिन नहिं टरत शोभा नहि कहि जात है।
मनु प्रेमपुंज ही रूप धरि आवत आजु लखात है॥

तो चलो, हम भी अपने-अपने स्वाँग संजकर आवें।

(दोनों जाते हैं)

अथ विष्कम्भक

(आनंद में झूमते हुए डगमगी चाल से शुकदेव जी आते हैं)

शुक०—(स्रवन-सुखद इत्यादि फिर से पढ़कर) अहा! संसार के जीवों की कैसी विलक्षण रुचि है, कोई नेम धर्म में चूर है, कोई ज्ञान के ध्यान में मस्त, कोई मत-मतांतर के झगड़े में मतवाला हो रहा है, एक दूसरे को दोष देता है, अपने को अच्छा समझता है, कोई संसार को ही सर्वस्व मानकर परमार्थ से चिढ़ता है, कोई परमार्थ ही को परम पुरुषार्थ मान कर घर-बार तृण सा छोड़ देता है। अपने-अपने रंग में सब रँगे हैं। जिसने जो सिद्धांत कर लिया है वही उसके जी में गड़ रहा है और उसी के खंडन-मंडन में जन्म बिताता है, पर वह जो परम प्रेम अमृत-मय एकांत भक्ति है, जिसके उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह-स्वरूप ज्ञान-विज्ञानादिक अंधकार नाश हो जाते हैं और जिसके चित्त में आते ही संसार का निगड़ आपसे आप खुल जाता है—वह किसी को नहीं मिली; मिले कहाँ से? सब उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं। और भी, जो लोग धार्मिक कहाते हैं उनका चित्त, स्वमत-स्थापन और पर-मत-निराकरण-रूप वादविवाद से, और जो विचारे विषयी हैं उनका अनेक प्रकार की इच्छा-रूपी तृष्णा से, अवसर तो पाता ही नहीं कि इधर झुके। (सोचकर) अहा! इस मदिरा को शिवजी ने पान किया है और कोई क्या पिएगा? जिसके प्रभाव से अर्द्धांग में बैठी पार्वती भी उनको विकार नहीं कर सकतीं, धन्य हैं, धन्य हैं और दूसरा ऐसा कौन है। (विचारकर) नहीं नहीं, व्रज की गोपियों ने उन्हें भी जीत लिया है। अहा! इनका कैसा विलक्षण प्रेम है कि अकथनीय और अकरणीय है; क्योंकि जहाँ माहात्म्य-ज्ञान होता है वहाँ प्रेम नहीं होता और जहाँ पूर्ण प्रीति होती है वहाँ माहात्म्य-ज्ञान नहीं होता। ये धन्य हैं कि इनमें दोनों बातें एक संग मिलती हैं, नहीं तो मेरा सा

निवृत्त मनुष्य भी रात-दिन इन्हीं लोगों का यश क्यों गाता।

(नेपथ्य में वीणा बजती है)

(आकाश की ओर देखकर और वीणा का शब्द सुनकर)

आहा! यह आकाश कैसा प्रकाशित हो रहा है और वीणा के कैसे मधुर स्वर कान में पड़ते हैं। ऐसा संभव होता है कि देवर्षि भगवान् नारद यहाँ आते हैं। आहा! वीणा कैसे मीठे सुर से बोलती है। (नेपथ्य-पथ की ओर देखकर) अहा वही तो हैं, धन्य हैं, कैसी सुंदर शोभा है।

सिंग जटा को भार सीस पै सुंदर सोहत।
गल तु-सी की माल बनी जोहत मन मोहत॥
कटि मृगपति को चरम चरन मैं घुँघरू धारत।
नारायण गोविंद कृष्ण यह नाम उचारत॥

लै बीना कर बादन करत तान सात सुर सों भरत।
जग अघ छिन मैं हरि कहि हरत जेहि सुनि नर भवजल तरत॥

जुग तूँबन की बीन परम सोभित मनभाई।
लय अरु सुर की मनहुँ जुगल गठरी लटकाई॥
आरोहन अवरोहन के कै द्वै फल सोहैं।
कै कोमल अरु तीव्र सुर भरे जग-मन मोहैं॥

कै श्रीराधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रगट।
यह अगम खजाने द्वै भरे नित खरचत तो हू अघट॥

मनु तीरथ-मय कृष्णचरित की काँवरि लीने।
कै भूगोल खगोल दोउ कर-अमलक कीने॥
जग-बुधि तौलन हेत मनहुँ यह तुला बनाई।
भक्ति-मुक्ति की जुगुल पिटारी कै लटकाई॥

मनु गावन सों श्रीराग के बीना हू फलती भई।
कै राग-सिंधु के तरन हित, यह दोऊ तूँबी लई॥

ब्रह्म-जीव, निरगुन-सगुन, द्वैताद्वैत-बिचार।
नित्य-अनित्य विवाद के द्वै तूँबा निरधार॥
जो इक तूँबा लै कढ़ै, सा बैरागी होय।
क्यों नहिं ये सबसों बढ़ैं, लै तूँबा कर दोय॥

तो अब इनसे मिलके आज मैं परमानंद लाभ करूँगा।

(नारदजी आते हैं)

शुक०—(आगे बढ़कर और गले से मिलकर) आइए आइए, कहिए कुशल तो है ? किस देश को पवित्र करते हुए आते हैं ?

नारद—आप से महापुरुष के दर्शन हों और फिर भी कुशल न हो, यह बात तो सर्वथा असंभव है ; और आप से तो कुशल पूछना ही व्यर्थ है।

शुक०—यह तो हुआ, अब कहिए आप आते कहाँ से हैं ?

नारद—इस समय तो मैं श्रीवृंदावन से आता हूँ।

शुक०—अहा ! आप धन्य हैं जो उस पवित्र भूमि से आते हैं। (पैर छूकर) धन्य है उस भूमि की रज, कहिए वहाँ क्या-क्या देखा ?

नारद—वहाँ परम प्रेमानंदमयी श्रीव्रजवल्लभी लोगों का दर्शन करके अपने को पवित्र किया और उनकी विरहावस्था देखता बरसों वहीं भूला पड़ा रहा। अहा, ये श्रीगोपीजन धन्य हैं। इनके गुणगण कौन कह सकता है—

गोपिन की सरि कोऊ नाहीं।
जिन तृन-सम कुल-लाज-निगड़ सब तोरयो हरिरस माहीं॥
जिन निज बस कीने नँदनदन बिहरीं दै गलबाँहीं।
सब संतन के सीस रहौ इन चरन-छत्र की छाँहीं॥

व्रज की लता पता मोहिं कीजै।
गोपी-पद-पंकज-पावन की रज जामैं सिर भीजै॥
आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै।
श्रीराधे राधे मुख, यह बर मुँहमाँग्यौ हरि दीजै॥

(प्रेम-अवस्था में आते हैं और नेत्रों से आँसू बहते हैं)

शुक०—(अपने आँसू पोंछकर) अहा धन्य हैं आप, धन्य हैं, अभी जो मैं न सम्हालता तो वीणा आपके हाथ से छूटके गिर पड़ती। क्यों न हो, श्रीमहादेवजी की प्रीति के पात्र होकर आप ऐसे प्रेमी हों इसमें आश्चर्य नहीं।

नारद—(अपने को सम्हालकर) अहा ! ये क्षण कैसे आनंद से बीते हैं, यह आप से महात्मा की संगत का फल है।

शुक०—कहिए, उन सब गोपियों में प्रेम विशेष किसका है ?

नारद—विशेष किसका कहूँ और न्यून किसका कहूँ, एक से एक बढ़कर हैं। श्रीमती की कोई बात ही नहीं, वे तो श्रीकृष्ण ही हैं, लीलार्थ दो हो रही हैं; तथापि सब गोपियों में श्रीचंद्रावलीजी के प्रेम की चर्चा आजकल व्रज के डगर-डगर में फैली हुई है। अहा! कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता-पिता, भाई-बन्धु सब निषेध करते हैं और उधर श्रीमतीजी का भी भय है, तथापि श्रीकृष्ण से जल में दूध की भाँति मिल रही हैं। लोकलाज—गुरुजन कोई बाधा नहीं कर सकते। किसी उपाय से श्रीकृष्ण से मिल ही रहती हैं।

शुक०—धन्य हैं, धन्य हैं ! कुल को, वरन् जगत् को अपने निर्मल प्रेम से पवित्र करनेवाली हैं।

(नेपथ्य में वेणु का शब्द होता है)

अहा ! यह वंशी का शब्द तो और भी व्रजलीला की सुधि दिलाता है। चलिए, चलिए अब तो व्रज का वियोग सहा नहीं जाता; शीघ्र ही चलके उनका प्रेम देखें, उस लीला के बिना देखे आँखें व्याकुल हो रही हैं।

(दोनो जाते हैं)

इति प्रेममुख नामक विष्कंभक

———

पहिला अंक

(जवनिका उठी)

स्थान—श्रीवृंदावन, गिरिराज दूर से दिखाता है

(श्रीचंद्रावली और ललिता आती हैं)

ललिता—प्यारी, व्यर्थ इतना शोच क्यों करती है ?

चंद्रा०—नहीं सखी ! मुझे शोच किस बात का है।

ललिता—ठीक है, ऐसी ही तो हम मूर्ख हैं कि इतना भी नहीं समझतीं।

चंद्रा०—नहीं सखी ! मैं सच कहती हूँ, मुझे कोई शोच नहीं।

ललिता—बलिहारी सखी ! एक तू ही तो चतुर है, हम सब तो निरी मूर्ख हैं !

चंद्रा०—नहीं सखी ! जो कुछ शोच होता तो मैं तुझसे कहती न। तुझसे ऐसी कौन बात है जो छिपाती ?

ललिता—इतनी ही तो कसर है, जो तू मुझे अपनी प्यारी सखी समझती तो क्यों छिपाती ?

चंद्रा०—चल मुझे दुख न दे, भला मेरी प्यारी सखी तू न होगी तो और कौन होगी ?

ललिता—पर यह बात मुख से कहती है, चित्त से नहीं।

चंद्रा०—क्यों ?

ललिता—जो चित्त से कहती तो फिर मुझसे क्यों छिपाती ?

चंद्रा०—नहीं सखी, यह केवल तेरा झूठा संदेह है।

ललिता—सखी, मैं भी इसी व्रज में रहती हूँ और सब के रंग-ढंग देखती ही हूँ। तू मुझसे इतना क्यों उड़ती है ? क्या तू यह समझती है कि मैं यह भेद किसी से कह दूँगी ? ऐसा कभी न समझना। सखी, तू तो मेरी प्राण है। मैं तेरा भेद किससे कहने जाऊँगी ?

चंद्रा०—सखी, भगवान् न करे कि किसी को किसी बात का संदेह पड़ जाय ; जिसको जो संदेह पड़ जाता है वह फिर कठिनता से मिटता है।

ललिता—अच्छा, तू सौगंद खा।

चंद्रा०—हाँ सखी, तेरी सौगंद।

ललिता—क्या मेरी सौगंद ?

चंद्रा०—तेरी सौगंद कुछ नहीं है।

ललिता—क्या कुछ नहीं है, फिर तू चली न अपनी चाल से ? तेरी छलविद्या कहीं नहीं जाती। तू व्यर्थ इतना क्यों छिपाती है ! सखी, तेरा मुखड़ा कहे देता है कि तू कुछ सोचा करती है।

चंद्रा०—क्यों सखी, मेरा मुखड़ा क्या कहे देता है ?

ललिता—यही कहे देता है कि तू किसी की प्रीति में फँसी है।

चंद्रा०—बलिहारी सखी, मुझे अच्छा कलंक दिया।

ललिता—यह बलिहारी कुछ काम न आवेगी, अंत में फिर मैं ही काम आऊँगी और मुझी से सब कुछ कहना पड़ेगा, क्योंकि इस रोग का वैद्य मेरे सिवा दूसरा कोई न मिलेगा।

चंद्रा०—पर सखी जब कोई रोग हो तब न ?

ललिता—फिर वही बात कहे जाती है। अब क्या मैं इतना भी नहीं समझती ! सखी, भगवान् ने मुझे भी आँखें दी हैं और मेरे भी मन है और मैं कुछ ईंट-पत्थर की नहीं हूँ।

चंद्रा०—यह कौन कहता है कि तू ईंट-पत्थर की बनी है, इससे क्या ?

ललिता—इससे यह कि इस व्रज में रहकर उससे वही बची होगी जो ईंट-पत्थर की होगी।

चंद्रा०—किससे ?

ललिता—जिसके पीछे तेरी यह दशा है।

चंद्रा०—किसके पीछे मेरी यह दशा है ?

ललिता—सखी, तू फिर वही बात कहे जाती है। मेरी रानी, ये आँख ऐसी बुरी हैं कि जब किसी से लगती हैं तब कितना भी

छिपाओं नहीं छिपतीं।

छिपाये छिपत न नैन लगे।
उघरि परत, सब जानि जात हैं घूँघट मैं न खगे॥
कितनो कौ दुराव, दुरत नहीं जब ये प्रेम-पगे।
निडर भए उघरे से डोलत मोहनरंग रँगे॥

चंद्रा०—वाह सखी क्यों न हो, तेरी क्या बात है। अब तू ही तो एक पहेली बूझनेवालों में बची है। चल, बहुत झूठ न बोल, कुछ भगवान् से भी डर।

ललिता—जो तू भगवान् से डरती तो झूठ क्यों बोलती? वाह सखी! अब तो तू बड़ी चतुर हो गई ह। कैसा अपना दोष छिपाने को मुझे पहिले ही से झूठी बना दिया। (हाथ जोड़ कर) धन्य है, तू दंडवत् करने के योग्य है। कृपा करके अपना बाँयाँ चरण निकाल तो मैं भी पूजा करूँ। चल मैं आज पीछे तुझसे कुछ न पूछूँगी।

चंद्रा०—(कुछ सकपकानी सी होकर) नहीं सखी, तू क्यों झूठी है, झूठी तो मैं हूँ, और जो तू ही बात न पूछेगी तो कौन बात पूछेगा? सखी, तेरे ही भरोसे तो मैं ऐसी निडर रहती हूँ और तू ऐसी रूसी जाती है!

ललिता—नहीं, बस अब मैं कभी कुछ नहीं पूछने की। एक बेर पूछ कर फल पा चुकी।

चंद्रा०—(हाथ जोड़कर) नहीं सखी, ऐसी बात मुँह से मत निकाल। एक तो मैं आप ही मर रही हूँ, तेरी बात सुनने से और भी अधमरी हो जाऊँगी। (आँखों में आँसू भर लेती है)

ललिता—प्यारी, तुझे मेरी सौगंध। उदास न हो, मैं तो सब भाँति तेरी हूँ और तेरे भले के हेतु प्राण देने को तैयार हूँ। यह तो मैंने हँसी की थी। क्या मै नहीं जानती कि तू मुझसे कोई बात न छिपावेगी और छिपावेगी तो काम कैसे चलेगा, देख!

हम भेद न जानिहैं जो पै कछू
औ दुराव सखी हम मैं परिहै।

कहि कौन मिलैहै पियारे पियैं
पुनि कारज कासों सबै सरिहै॥
बिन मोसों कहै न उपाय कछू
यह बेदन दूसरी को हरिहै।
नहिं रोगी बताइहै रोगहि जौ
सखी बापुरो बैद कहा करिहै॥

चंद्रा०—तो सखी, ऐसी कौन बात है जो तुझसे छिपी है? तू जान-बूझ के बार-बार क्यों पूछती है? ऐसे पूछने को तो मुँह चिढ़ाना कहते हैं और इसके सिवा मुझे व्यर्थ याद दिलाकर क्यों दुःख देती है? हा!

ललिता—सखी, मैं तो पहिले ही समझी थी, यह तो केवल तेरे हठ करने से मैंने इतना पूछा, नहीं तो मैं क्या नहीं जानती?

चंद्रा०—सखी, मैं क्या करूँ, मैं कितना चाहती हूँ कि यह ध्यान भुला दूँ, पर उस निठुर की छबि भूलती नहीं, इसी से सब जान जाते हैं।

ललिता—सखी, ठीक है।

लगौंही चितवनि औरहि होति।
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति॥
घूँघट मैं नहिं थिरत तनिक हूँ अति ललचौंहीं बानि।
छिपत न कैसहूँ प्रीति निगोड़ी अंत जात सब जानि॥

चंद्रा०—सखी, ठीक है। जो दोष है वह इन्हीं नेत्रों का है। यही रीझते, यही अपने को छिपा नहीं सकते और यही दुष्ट अंत में अपने किए पर रोते हैं।

सखी ये नैना बहुत बुरे।
तब सों भए पराये, हरि सों जब सों जाइ जुरे॥
मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरे॥
मेरी सीख प्रीति सब छोंड़ी ऐसे ये निगुरे॥
जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहिं हठ सों तनिक मुरे।
अमृत-भरे देखत कमलन से विष के बुते छुरे॥

ललिता—इसमें क्या संदेह है। मुझ पर तो सब कुछ बीत चुकी है।

मैं इनके व्यवहारों को अच्छी रीति से जानती हूँ। ये निगोड़े नैन ऐसे ही होते हैं।

होत सखि ये उलझौंहैं नैन।
उरझि परत, सुरझ्यौ नहि जानत, सोचत समुझत हैं न॥
कोऊ नहिं बरजै जो इनको बनत मत्त जिमि गैन।
कहा कहौं इन बैरिन पाछे होत लैन के दैन॥

चंद्रा०—और फिर इनका हठ ऐसा है कि जिसकी छबि पर रीझते हैं उसे भूलते नहीं, और कैसे भूलें, क्या वह भूलने के योग्य है, हा!

नैना वह छबि नाहिंन भूले।
दया-भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले॥
वह आवनि, वह हँसनि छबीली, वह मुसकनि चित चोरैं।
वह बतरानि, मुरनि हरि की वह, वह देखन चहु कोरैं॥
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे॥
परबस भए फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे।
हरि-ससि-मुख ऐसी छबि निरखत तनमन धन सब हारे॥

ललिता—सखी मेरी तो यह बिपति भोगी हुई है, इससे मैं तुझे कुछ नहीं कहती; दूसरी होती तो तेरी निंदा करती और तुझे इससे रोकती।

चंद्रा०—सखी, दूसरी होती तो मैं भी तो उससे यों एक संग न कह देती। तू तो मेरी आत्मा है। तू मेरा दुःख मिटावेगी कि उलटा समझावेगी?

ललिता—पर सखी, एक बड़े आश्चर्य की बात है कि जैसी तू इस समय दुखी है वैसी तू सर्वदा नहीं रहती।

चंद्रा०—नहीं सखी, ऊपर से दुखी नही रहती पर मेरा जी जानता है जैसे रातें बीतती हैं।

मनमोहन तें बिछुरी जब सों
तन आँसुन सों सदा धोवती हैं।
'हरिचंद जू' प्रेम के फंद परी
कुल की कुल लाजहि खोवती हैं॥

दुख के दिन कों कोऊ भाँति बितै
बिरहागम रैन सँजोवती हैं।
हमहीं अपुनी दशा जानैं सखी,
निसि सोवती हैं किधौं रोवती हैं॥

ललिता—यह हो पर मैंने तुझे जब देखा तब एक ही दशा में देखा और सर्वदा तुझे अपनी आरसी वा किसी दर्पण में मुँह देखते पाया पर वह भेद आज खुला।

हौं तो याही सोच मैं बिचारत रही री काहे
दरपन हाथ तें न छिन बिसरत है।
त्यौंहीं 'हरिचंद जू' बियोग औ सँजोग दोऊ
एक से तिहारे कछु लखि न परत हैं॥
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात
तू तौ परम पुनीत प्रेम पथ बिचरत है।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसति, ताहि
आरसी मैं रैन-दिन देखिबो करत है॥

सखी! तू धन्य है, बड़ी भारी प्रेमिन है और प्रेम शब्द साथ करनेवाली और प्रेमियों की मंडली की शोभा है।

चंद्रा०—नहीं सखी! ऐसा नहीं है। मैं जो आरसी देखती थी उसका कारण कुछ दूसरा ही है। हा! (लंबी साँस लेकर) सखी! मैं जब आरसी में अपना मुँह देखती और अपना रंग पीला पाती थी तब भगवान् से हाथ जोड़कर मनाती थी कि भगवान्, मैं उस निर्दयी को चाहूँ पर वह मुझे न चाहे, हा! (आँसू टपकते हैं)

ललिता—सखी, तुझे मैं क्या समझाऊँगी, पर मेरी इतनी बिनती है कि तू उदास मत हो। जो तेरी इच्छा हो, पूरी करने को उद्यत हूँ।

चंद्रा०—हा! सखी यही तो आश्चर्य है कि मुझे कुछ इच्छा नहीं है और न कुछ चाहती हूँ। तौ भी मुझको उसके वियोग का बड़ा दुख होता है।

ललिता—सखी, मैं तो पहिले ही कह चुकी कि तू धन्य है। संसार में जितना प्रेम होता है, कुछ इच्छा लेकर होता है और सब लोग

अपने ही सुख में सुख मानते हैं, पर उसके विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती है और प्रीतम के सुख से सुख मानती है। यह तेरी चाल संसार से गिराली है। इसी से मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मंडल को पवित्र करने वाली है।

(चंद्रावली नेत्रों में जल भर कर मुख नीचा कर लेती है)

(दासी आकर)

दासी—अरी, मैया खीझ रही है के वाहि घर के कछू और हू काम-काज हैं के एक हाहा ठीठी ही है, चल उठि, भोर सों यहीं पड़ी रही।

चंद्रा०—चल आऊँ, बिना बात की बकवाद लगाई। (ललिता से) सुन सखी, इसकी बातें सुन, चल चलें। (लंबी साँस लेकर उठती है)

(तीनों जाती हैं)

स्नेहालाप नामक पहिला अंक समाप्त।

———

दूसरा अंक

स्थान—केले का बन

समय संध्या का, कुछ बादल छाए हुए

(वियोगिनी बनी हुई श्री चंद्रावलीजी आती हैं)

चंद्रा०—(एक वृक्ष के नीचे बैठकर) वाह प्यारे ! वाह ! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनों विलक्षण हैं; और निश्चय बिना तुम्हारी कृपा के इसका भेद कोई नहीं जानता; जानें कैसे ? सभी उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं। जिसने जो समझा है उसने वैसा ही मान रखा है। हा ! यह तुम्हारा जो अखंड परमानंदमय प्रेम है और जो ज्ञान वैराग्यादिकों को तुच्छ करके परम शांति देने वाला है उसका कोई स्वरूप ही नहीं जानता, सब अपने ही सुख में और अभिमान में भूले हुए हैं; कोई किसी स्त्री से वा पुरुष से उसको सुन्दर देखकर चित्त लगाना और उससे मिलने के अनेक यत्न करना इसी को प्रेम कहते हैं, और कोई ईश्वर की बड़ी लंबी-चौड़ी पूजा करने को प्रेम कहते हैं—पर प्यारे ! तुम्हारा प्रेम इन दोनों से विलक्षण है, क्योंकि यह अमृत तो उसी को मिलता है जिसे तुम आप देते हो। (कुछ ठहरकर) हाय ! किससे कहूँ, और क्या कहूँ, और क्यों कहूँ, और कौन सुने और सुने भी तो कौन समझे—हा !

जग जानत कौन है प्रेम-बिथा,
केहि सों चरचा या बियोग की कीजिए।
पुनि को कही मानै कहा समुझै कोउ
क्यौं बिन बात की रारहि लीजिए॥
नित जो 'हरिचंद जू' बीतै सहै,
बकिकै जग क्यौं परतीतहि छीजिए।
सब पूछत मौन क्यौं बैठि रही,
पिय प्यारे कहा इन्हैं उत्तर दीजिए॥

क्योंकि—

मरम की पीर न जानत कोय।
कासों कहौं कौन पुनि मानैं बैठि रहीं घर रोय॥
कोऊ जरनि न जाननहारी वे-महरम सब लोय।
अपुनी कहत सुनत नहिं मेरी केहि समुझाऊँ सोय॥
लाक-लाज कुल की मरजादा दीनी है सबै खोय।
'हरीचद' ऐसेहि निबहैगी होनी होय सो होय॥

परंतु प्यारे, तुम तो सुननेवाले हो? यह आश्चर्य है कि तुम्हारे होते हमारी यह गति हो। प्यारे! जिनको नाथ नहीं होते वे अनाथ कहाते हैं। (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) प्यारे! जो यही गति करनी थी तो अपनाया क्यों?

पहिले मुसुकाइ लजाइ कछू
क्यौं चितै मुरि मो तन छाम कियो।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइकै प्रीति
निबाहन को क्यौं कलाम कियो॥
'हरिचंद' भए निरमोही इतै निज
नेह को यों परिनाम कियो।
मन माँहि जो तोरन ही की हुती,
अपनाइकै क्यो बदनाम कियो॥

प्यारे, तुम बड़े निरमोही हो। हा! तुम्हें मोह भी नहीं आता? (आँख में आँसू भरकर) प्यारे, इतना तो वे नहीं सताते जो पहिले सुख देते हैं; तो तुम किस नाते इतना सताते हो? क्योंकि—

जिय सूधी चितौन की साधै रही,
सदा बातन मैं अनखाय रहे।
हँसिकै 'हरिचंद' न बोले कभूँ,
जिय दूरहि सों ललचाय रहे॥
नहिं नेकु दया उर आवत है,
करिके कहा ऐसे सुभाय रहे।
सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले,
जिहिके बदले यो सताय रहे॥

हा ! क्या तुम्हें लाज भी नहीं आती ? लोग तो सात पैर संग चलते हैं उसका जन्म भर निबाह करते हैं और तुमको नित्य की प्रीति का निबाह नहीं है ! नहीं नहीं, तुम्हारा तो ऐसा सुभाव नहीं था, यह नई बात है, यह बात नई है या तुम आप नये हो गए हो ? भला कुछ तो लाज करो।

कित कों ढरिगो वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।
'हरिचंद' भए हौ कहा के कहा,
अनबोलिबे में नहिं छाजत हौ॥
नित को मिलनो तो किनारे रह्यो,
मुख देखत ही दुरि भाजत हौ।
पहिले अपनाइ बढ़ाइकै नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ॥

प्यारे, जो यही गति करनी थी तो पहिले सोच लते। क्योंकि—

तुम्हरे तुम्हरे सब कोऊ कहैं,
तुम्हें सों कहा प्यारे सुनात नहीं।
बिरुदावली आपुनी राखौ मिलौ,
मोहि सोचिबे की कोउ बात नहीं॥
'हरिचंद जू' होनी हुती सो भई,
इन बातन सो कछू हात नहीं।
अपनावते सोच बिचारि तबै,
जलपान कै पूछनी जात नहीं॥

प्राणनाथ !—(आँखों में आँसू उमड़ उठे) अरे नेत्रो ! अपने किए का फल भोगो।

धाइकै आगे मिलीं पहिले तुम,
कौन सों पूछिकै सो मोहि भाखौ।
त्यौं सब लाज तजी छिन मैं,
केहिके कहे एतौ कियो अभिलाखौ॥
काज बिगारि सबै अपनो
'हरिचंद जू' धीरज क्यौं नहिं राखौ।

क्यौं अब रोइकै प्रान तजौ,
अपुने किए को फल क्यौं नहिं चाखौ॥

हा!

इन दुखियान को न सुख सपने हू मिल्यौ,
योही सदा व्याकुल बिकल अकुलायँगी।
प्यारे 'हरिचंद जू' की बीती जानि औध जौ पैं
जैहैं प्रान तऊ ये तो साथ न समायँगी॥
देख्यौ एक बार हू न नैन भरि तोहि यातें
जौन-जौन लोक जैहैं तहीं पछितायँगी।
बिना प्रानप्यारे भए दरस तुम्हारे हाय,
देखि लीजौ आँखें ये खुली ही रहि जायँगी॥

परंतु प्यारे, अब इनको दूसरा कौन अच्छा लगेगा जिसे देखकर यह धीरज धरेंगी, क्योंकि अमृत पीकर फिर छाछ कैसे पीयेंगी।

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो,
अब का करिए कहि पेखिए का।
सुख छाँड़िके संगम को तुम्हरे,
इन तुच्छन को अब लेखिए का॥
'हरिचद जू' हीरन को व्यवहार कै
काँचन कों लै परेखिए का।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो,
उन आँखिन सो अब देखिए का॥

इससे नेत्र! तुम तो अब बंद ही रहो। (आँचल से नेत्र छिपाती है)

(बनदेवी *, सध्या † और वर्षा ÷ आती हैं)

संध्या—अरी बनदेवी! यह कौन आँखिनें मूँदिकै अकेली या निर्जन बन में बैठि रही है?

---

* हरा कपड़ा, पत्ते का किरीट, फूलो की माला।

† गहिरा नारजी कपड़ा।

÷ रंग साँवला, लाल कपड़ा।

बन०—अरी का तू याहि नाँयँ जानै ? यह राजा चंद्रभानु की बेटी चंद्रावली है।

वर्षा—तौ यहाँ क्यों बैठी है ?

बन०—राम जानै। (कुछ सोचकर) अहा जानी ! अरी, यह तो सदा ह्याँई बैठी बक्यौ करैहै और यह तो या बन के स्वामी के पीछे बावरी होय गई है।

वर्षा—तौ चलौ यासूँ कछू पूछैं।

बन०—चल।

(तीनो पास जाती हैं)

बन०—(चंद्रावली के कान के पास) अरी मेरी बन की रानी चंद्रावली ! (कुछ ठहरकर) राम ! सुनैहू नहीं है ! (और ऊँचे सुर से) अरी मेरी प्यारी सखी चंद्रावली ! (कुछ ठहर कर) हाय ! यह तो अपुने सों बाहर होय रही है। अब काहें कों सुनैगी। (और ऊँचे सुर से) अरी ! सुनै नाँयनै री मेरी अलख लड़ैती चंद्रावली !

चंद्रा०—(आँख बंद किए ही) हाँ हाँ अरी क्यों चिल्लाय है ? चोर भाग जायगो—

बन०—कौन सो चोर ?

चंद्रा०—माखन को चोर, चीरन को चोर और मेरे चित्त को चोर।

बन०—सो कहाँ सों भाग जायगो ?

चंद्रा०—फेर बके जाय है, अरी मैंने अपनी आँखिन में मूँदि राख्यौ है सो तू चिल्लायगी तो निकसि भागैगो।

(बनदेवी चंद्रावली की पीठ पर हाथ फेरती है)

चंद्रा०—(जल्दी से उठ, बनदेवी का हाथ पकड़कर) कहो प्राणनाथ ! अब कहाँ भागोगे ?

(बनदेवी हाथ छुड़ाकर एक ओर वर्षा-संध्या दूसरी ओर वृक्षो के पास हट जाती हैं)

चंद्र०—अच्छा क्या हुआ, योंही हृदय से भी निकल जाओ तो जानूँ, तुमने हाथ छुड़ा लिया तो क्या हुआ मैं तो हाथ नहीं छोड़ने की। हा! अच्छी प्रीति निबाही!

(बनदेवी सीटी बजाती है)

चंद्रा०—देखो दुष्ट का, मेरा तो हाथ छुड़ाकर भाग गया, अब न-जानें कहाँ खड़ा बंसी बजा रहा है। अरे छलिया कहाँ छिपा है? बोल बोल कि जीते जी न बोलेगा! (कुछ ठहरकर) मत बोल, मैं आप पता लगा लूँगी। (बन के वृक्षों से पूछती है) अरे वृक्षो, बताओ तो मेरा लुटेरा कहाँ छिपा है? क्यों रे मोरो, इस समय नहीं बोलते? नहीं तो रात को बोल-बोल के प्राण खाए जाते थे। कहो न वह कहाँ छिपा है? (गाती है)

अहो अहो बन के रूख कहूँ देख्यौ पिय प्यारो।
मेरो हाथ छुड़ाइ, कहौ वह कितै सिधारो॥
अहो कदंब अहो अंब-निंब अहो बकुल-तमाला।
तुम देख्यौ कहुँ मनमोहन सुंदर नँदलाला॥
अहो कुंज बन लता बिरुध तृन पूछत तोसो।
तुम देखे कहुँ श्याम मनोहर कहहु न मोसो॥
अहो जमुना अहो खग मृग हो अहो गोबरधन गिरि।
तुम देखे कहुँ प्रानपियारे मनमोहन हरि॥

(एक एक पेड़ से जाकर गले लगती है। बनदेवी फिर सीटी बजाती है)

चंद्रा०—अहा! देखो उधर खड़े प्राणप्यारे मुझे बुलाते हैं, तो चलो उधर ही चलें। (अपने आभरण सँवारती है)

(वर्षा और संध्या पास आती हैं)

व०—(हाथ पकड़कर)
कहाँ चली सजि कै?—

चंद्रा०— पियारे सों मिलन काज,—

व०— कहाँ तू खड़ी है?—

चंद्रा०— प्यारे ही को यह धाम है।

व०—कहा कहै मुख सों?—

चंद्रा०-- पियारे प्रान प्यारे—

व०-- कहा काज है ?

चंद्रा०-- पियारे सों मिलन मोहि काम है ॥

व०—मैं हूँ कौन बोल तौ ?--

चंद्रा०— हमारे प्रानप्यारे हौ न ?—

व०—तू है कौन ?—

चंद्रा—० पीतम पियारो मेरो नाम है ।

संध्या--(आश्चर्य्य से) पूछत सखी एकै कै उत्तर बतावति जकी सी
एक रूप आज श्यामा भई श्याम है ॥

(बनदेवी आकर चंद्रावली की पीछे से आँख बंद करती है)

चंद्रा०—कौन है कौन है ?

बन०—मैं हूँ ।

चंद्रा०—कौन तू है ?

बन०—(सामने आकर) मैं हूँ, तेरी सखी वृंदा ।

चंद्रा० तो मैं कौन हूँ ?

बन०—तू तो मेरी प्यारी सखी चंद्रावली है न ? तू अपने हू को
भूल गई ।

चंद्रा०—तो हम लोग अकेले बन में क्या कर रही हैं ?

बन०—तू अपने प्राणनाथै खोजि रही है न ?

चंद्रा०—हा ! प्राणनाथ ! हा ! प्यारे ! प्यारे अकेले छोड़के कहाँ चले
गए ? नाथ ! ऐसी ही बदी थी ! प्यारे यह बन इसी विरह का
दुःख करने के हेतु बना है कि तुम्हारे साथ बिहार करने को ? हा !

जो पै ऐसिहि करन रही ।
तो फिर क्यों अपने मुख सों तुम रस की बात कही ॥
हम जानी ऐसिहि बीतैगी जैसी बीति रही ।
सो उलटी कीनी बिधिना ने कछू नाहिं निबही ॥
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन औरै चाल गही ।
'हरीचंद' कहा को कहा ह्वै गयो कछु नहिं जात कही ॥

(रोती है)

बन०—(आँखों में आँसू भरके) प्यारी ! अरी इतनी क्यों घबराई जाय है, देख तौ यह सखी खड़ी हैं सो कहा कहैंगी ।

चंद्रा०—ये कौन हैं ?

बन०—(वर्षा को दिखाकर) यह मेरी सखी वर्षा है ।

चंद्रा०—यह वर्षा है तो हा ! मेरा वह आनंद का घन कहाँ है ? हा ! मेरे प्यारे ! प्यारे कहाँ बरस रहे हौ ? प्यारे गरजना इधर और बरसना और कहीं ?

बलि साँवरी सूरत मोहनी मूरत
आँखिन को कबौ आइ दिखाइए ।
चातक सी मरैं प्यासी परीं
इन्हैं पानिप रूप सुधा कबौं प्याइए ॥
पीत पटै बिजुरी से कबौ
'हरिचंद जू' धाइ इतै चमकाइए ।
इतहू कबौं आइकै आनँद के घन
नेह को मेह पिया बरसाइए ॥

प्यारे ! चाहे गरजो चाहे लरजो, इन चातकों की तो तुम्हारे बिना और गति ही नहीं है, क्योंकि फिर यह कौन सुनेगा कि चातक ने दूसरा जल पी लिया ; प्यारे ! तुम तो ऐसे करुणा के समुद्र हो कि केवल हमारे एक जाचक के माँगने पर नदी-नद भर देते हो तो चातक के इस छोटे चंचु-पुट भरने में कौन श्रम है क्योंकि प्यारे हम दूसरे पक्षी नहीं हैं कि किसी भाँति प्यास बुझा लेंगे हमारे तो हे श्याम घन, तुम्ही अवलंब हौ ; हा !

(नेत्रो में जल भर लेती है और तीनों परस्पर चकित होकर देखती हैं)

बन०—सखी, देखि तौ कछू इनकी हू सुन कछू इनकी हू लाज कर । अरी, यह तो नई आई है ये कहा कहैंगी ?

संध्या—सखी, यह कहा कहैहै हम तौ याको प्रेम देखि बिन मोल की दासी होय रहीं हैं और तू पंडिताइन बनिकै ज्ञान छाँटि रही है।

चंद्रा०—प्यारे ! देखो ये सब हँसती हैं—तो हँसें, तुम आओ, कहाँ बन में छिपे हो ? तुम मुँह दिखलाओ, इनको हँसने दो।

धारन दीजिए धीर हिए कुलकानि को आजु बिगारन दीजिए।
मारन दीजिए लाज सबै 'हरिचंद' कलंक पसारन दीजिए॥
चार चवाइन-को चहुँ ओर सो सोर मचाइ पुकारन दीजिए।
छाँड़ि सँकोचन चंद-मुखै भरि लोचन आजु निहारन दीजिए॥

क्याकि—

ये दुखियाँ सदा रोयो करैं बिधना इनको कबहूँ न दियो सुख।
झूठही चार चवाइन के डर देख्यौ कियो उनहीं को लिये रुख॥
छोंड़्यौ सबै 'हरिचंद' तऊ न गयो जिय सो यह हाय महा दुख।
प्रान बचैं केहि भाँतिन सो तरसैं जब दूर सों देखिबे को मुख॥

(रोती है)

बन०—(आँसू अपने आँचल से पोंछकर) तो ये यहाँ नाँय रहिबे की, सखी एक घड़ी धीरज धर जब हम चली जाँय तब जो चाहियो सो करियो।

चंद्रा०—अरी सखियो मोहि छमा करियो, अरी देखौ तो तुम मेरे पास आईं और हमने तुमारो कछू सिस्टाचार न कियो। (नेत्रों में आँसू भरकर हाथ जोड़कर) सखी, मोहि छमा करियो और जानियो कि जहाँ मेरी बहुत सखी हैं उनमैं एक ऐसी कुलच्छिनी हू है।

संध्या और वर्षा—नहीं नहीं सखी, तू तो मेरी प्रानन सों हू प्यारी है, सखी हम सच कहैं तेरी सी साँची प्रेमिन एक हू न देखी, ऐसे तो सबी प्रेम करैं पर तू सखी धन्य है।

चंद्रा०—हाँ सखी, और (संध्या को दिखाकर) या सखी को नाम का है ?

बन०—याको नाम संध्या है।

चंद्रा०—(घबड़ाकर) संध्यावली आई ? क्या कुछ सँदेसा लाई ? कहो कहो प्राणप्यारे ने क्या कहा ? सखी बड़ी देर लगाई। (कुछ ठहर कर) संध्या हुई ? संध्या हुई ? तो वह बन से

आते होंगे। सखियो, चलो झरोखों में बैठें, यहाँ क्यों बैठी हौ।

(नेपथ्य में चद्रोदय होता है; चंद्रमा को देखकर)

अरे अरे वह देखो आया

(उँगली से दिखाकर)

देख सखी देख अनमेख ऐसो भेख यह
जाहि पेख तेज रबिहू को मंद ह्वै गयो।
'हरीचंद' ताप सब जिय को नसाइ चित
आनँद बढ़ाइ भाइ अति छबि सों छयो॥
ग्वाल-उडुगन बीच बेनु को बजाइ सुधा-
रस बरखाइ मान कमल लजा दयो।
गोरज-समूह घन-पटल उघारि वह
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदै भयो॥

चलो चलो उधर चलो। (उधर दौड़ती है)

बन०—(हाथ पकड़कर) अरी बावरी भई है, चंद्रमा निकस्यो है कै वह बन सों आवै है?

चंद्रा०—(घबड़ाकर) का सूरज निकस्यो? भोर भयो। हाय! हाय! हाय! या गरमी में या दुष्ट सूरज की तपन कैसें सही जायगी। अरे भोर भयो, हाय भोर भयो! सब रात ऐसे ही बीत गई, हाय फेर वही घर के ब्यौहार चलेंगे, फेर वही नहानो, वही खानो, वेई बातें हाय!

केहि पाप सो पापी न प्रान चलैं,
अटके कित कौन बिचार लयो।
नहिं जानि परै 'हरिचंद' कछू
बिधि ने हम सो हठ कौन ठयो॥
निसि आजहू की गई हाय बिहाय
पिया बिनु कैसे न जीव गयो।
हत-भागिनी आँखिन को नित के
दुख देखिबे कों फिर भोर भयो॥

तो चलो घर चलें। हाय हाय! माँ सों कौन बहाना करूँगी, क्योंकि वह जात ही पूछैगी कि सब रात अकेली बन मैं

कहा करती रही। (कुछ ठहर कर) पर प्यारे! भला यह तो बताओ कि तुम आज की रात कहाँ रहे? क्यों देखो तुम हमसे झूठ बोले न! बड़े झूठे हौ, हा! अपनों से तो झूठ मत बोला करो, आओ आओ अब तो आओ।

आओ मेरे झूठन के सिरताज।
छल के रूप कपट की मूरत मिथ्यावाद-जहाज॥
क्यों परतिज्ञा करी रह्यौ जो ऐसो उलटो काज।
पहिले तो अपनाइ न आवत तजिबे में अब लाज॥

चलो दूर हटो बड़े झूठे हो।

आओ मेरे मोहन प्यारे झूठे।
अपनी टारि प्रतिज्ञा कपटी उलटे हम सों रूठे॥
मति परसौ तन रँगे और के रंग अधर तुव जूठे।
ताहू पै तनिकौ नहिं लाजत निरलज अहो अनूठे॥

पर प्यारे बताओ तो तुम्हारे बिना रात क्यों इतनी बढ़ जाती है?

काम कछू नहिं यासों हमैं,
सुख सों जहाँ चाहिए रैन बिताइए।
पै जो करैं बिनती 'हरिचन्द जू'
उत्तर ताको कृपा कै सुनाइए॥
एक मतो उनसों क्यौं कियो तुम
सोऊ न आवै जो आप न आइए।
रूसिबे सो पिय प्यारे तिहारे
दिवाकर रूसत है क्यों बताइए॥

जाओ जाओ मैं नहीं बोलती। (एक वृक्ष की आड़ में दौड़ जाती है)

तीनों—भई यह तो बावरी सी डोलै, चलौ हम सब वृक्ष की छाया में बैठें। (किनारे एक पास ही तीनों बैठ जाती हैं)

चंद्रा०—(घबड़ाई हुई आती है, अंचल केश इत्यादि खुल जाते हैं) कहाँ गया, कहाँ गया? बोल! उलटा रूसना, भला अपराध मैंने किया कि तुमने? अच्छा मैंने किया सही, क्षमा करो,

आओ; प्रगट हो, मुँह दिखाओ। भई, बहुत भई, गुदगुदाना वहाँ तक जहाँ तक रुलाई न आवै। (कुछ सोचकर) हा! भगवान् किसी को किसी की कनौड़ी न करै, देखो मुझको इसकी कैसी बातैं सहनी पड़ती हैं। आप ही नहीं भी आता उलटा आप ही रूसता है, पर क्या करूँ अब तो फँस गई; अच्छा यों ही सही। ('अहो अहो बन के रूख' इत्यादि गाती हुई वृक्षों से पूछती है) हाय! कोई नहीं बतलाता। अरे मेरे नित के साथियो, कुछ तो सहाय करो।

अरे पौन सुख-भौन सबै थल गौन तुम्हारो।
क्यौं न कहौ राधिकारौन सों मौन निवारो॥
अहे भँवर तुम श्याम रंग मोहन व्रत-धारी।
क्यौं न कहौ वा निठुर श्याम सों दसा हमारी॥
अहे हंस तुम राजहंस सरवर की सोभा।
क्यौं न कहो मेरे मानस सों या दुख के गोभा॥
हे सारस तुम नीकें बिछुरन बेदन जानौ।
तौ क्यो पीतम सो नहिं मेरी दसा बखानौ॥
हे कोकिल-कुल श्याम रंग के तुम अनुरागी।
क्यौं नहिं बोलहु तहीं जाय जहँ हरि बड़भागी॥
हे पपिहा तुम पिउ पिउ पिय पिय रटत सदाई।
आजहु क्यौं नहिं रटि रटि के पिय लेहु बुलाई॥
अहे भानु तुम तो घर-घर में किरिन प्रकासो।
क्यौं नहिं पियहिं मिलाइ हमारो दुख-तम नासो॥

हाय!

कोउ नहिं उत्तर देत भए सबही निरमोही।
प्रानपियारे अब बोलौ कहाँ खोजौं तोही।

(चंद्रमा बदली की ओट हो जाता है और बादल छा जाते हैं)

(स्मरण करके) हाय! मैं ऐसी भूली हुई थी कि रात को दिन बतलाती थी, अरे मैं किसको ढूँढ़ती थी? हा! मेरी इस मूर्खता पर उन तीनों सखियों ने क्या कहा होगा। अरे यह तो चंद्रमा था जो बदली की ओट में छिप गया। हा! यह

हत्यारिन बरषा रितु है, मैं तो भूल ही गई थी। इस अँधेरे में मार्ग तो दिखाता ही नहीं, चलूँगी कहाँ और घर कैसे पहुँचूँगी? प्यारे देखो, जो-जो तुम्हारे मिलने में सुहावने ज़ान पड़ते थे वही अब भयावने हो गए। हा! जो बन आँखों से देखने में कैसा भला दिखाता था वही अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है। देखो सब कुछ है एक तुम्हीं नहीं हो। (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) प्यारे! छोड़ के कहाँ चले गए? नाथ! आँखें बहुत प्यासी हो रही हैं इनको रूप-सुधा कब पिलाओगे? प्यारे, बेनी की लट बँध गई है इन्हें कब सुलझाओगे? (रोती है) नाथ, इन आँसुओं को तुम्हारे बिना और कोई पोंछनेवाला भी नहीं है। हा! यह गत तो अनाथ की भी नहीं होती। अरे बिधिना! मुझे कौन सा सुख दिया था जिसके बदले इतना दुःख देता है, सुख का तो मैं नाम सुनके चौंक उठती थी और धीरज धर के कहती थी कि कभी तो दिन फिरेंगे सो अच्छे दिन फिरे। प्यारे, बस बहुत भई अब नहीं सही जाती। मिलना हो तो जीते जी मिल जाओ। हाय! जो भर आखों देख भी लिया होता तो जी का उमाह निकल गया होता। मिलना दूर रहे, मैं तो मुँह देखने को तरसती थी, कभी सपने में भी गले न लगाया, जब सपने में देखा तभी घबड़ा कर चौंक उठी। हाय! इन घरवालों और बाहरवालों के पीछे कभी उनसे रो-रोकर अपनी बिपत भी न सुनाई कि जी भर जाता। लो घरवालो और बाहरवालो! ब्रज को सम्हालो मैं तो अब यहीं...(कंठ गद्गद होकर रोने लगती है) हाय रे निठुर! मैं ऐसा निरमोही नहीं समझी थी, अरे इन बादलों की ओर देख के तो मिलता। इस ऋतु में तो परदेसी भी अपने घर आ जाते हैं पर तू न मिला। हा! मैं इसी दुख

को देखने को जीती हूँ कि बरषा आवे और तुम न आओ। हाय! फेर बरषा आई, फेर पत्ते हरे हुए, फेर कोइल बोली, पर प्यारे तुम न मिले। हाय! सब सखियाँ हिंडोले झूलती होंगी, पर मैं किसके संग झूलूँ, क्योंकि हिंडोला झुलाने वाले मिलेंगे, पर आप भींजकर मुझे बचाने वाला और प्यारी कहनेवाला कौन मिलेगा? (रोती है) हा! मैं बड़ी निर्लज्ज हूँ। अरे प्रेम! मैंने प्रेमिन बनकर तुझे भी लज्जित किया कि अब तक जीती हूँ, इन प्रानों को अब न जाने कौन लाहे लूटने हैं कि नहीं निकलते। अरे कोई देखो, मेरी छाती वज्र की तो नहीं है कि अब तक....(इतना कहते ही मूर्छा खाकर ज्योंही गिरा चाहती है उसी समय तीनों सखियाँ आकर सम्हालती है)

(जवनिका गिरती है)

प्रियान्वेषण नामक दूसरा अंक समाप्त

दूसरे अंक के अंतर्गत

अंकावतार

स्थान—बीथी, वृक्ष

(संध्यावली दौड़ी हुई आती है)

संध्या०—राम राम ! मैं तो दौरत-दौरत हार गई, या ब्रज की गऊ का हैं साँड़ हैं; कैसी एक साथ पूँछ उठाय कै मेरे सग दौरी हैं, तापैं वा निपूते सुबल को बुरो होय, और हू तूमड़ी बजाय कै मेरी ओर उन सबन को लहकाय दीनो, अरे जो मैं एक संग प्रान छोड़ि कै न भाजती तो उनके रपट्टा में कब की आय जाती। देखि आज वा सुबल की कौन गति कराऊँ, बड़ो ढीठ भयो है, प्रानन की हाँसी कौन काम की। देखौ तौ आज सोमवार है नंदगाँव में हाट लगी होयगी मैं वहीं जाती, इन सबन ने बीच ही आय धरी, मैं चद्रावली की पाती वाके यारैं सौंप देती तो इतनो खुटकोऊ न रहतो। (घबड़ाकर) अरे आईं ये गौवें तो फेर इतैहीं कू अरराईं।

(दौड़कर जाती है और चोली मे से पत्र गिर पड़ता है। चंपकलता आती है)

चंपक०—(पत्र गिरा हुआ देखकर) अरे ! यह चिट्ठी किसकी पड़ी है, किसी की हो देखूँ तो इसमें क्या लिखा है। (उठाकर देखती है) राम राम ! न जाने किस दुखिया की लिखी है कि आँसुओं से भींजकर ऐसी चिपट गई है कि पढ़ी ही नहीं जाती और खोलने में फटी जाती है। (बड़ी कठिनाई से खोलकर पढ़ती है)

"प्यारे !

क्या लिखूँ ! तुम बड़े दुष्ट हो, चलो, भला सब अपनी वीरता हमीं पर दिखानी थी। हाँ ! भला मैंने तो लोक-वेद, अपना-बिराना सब छोड़कर तुम्हे पाया, तुमने हमें छोड़ के क्या पाया ? और जो धर्म उपदेश करो तो धर्म से फल होता है, फल से धर्म नहीं होता। निर्लज,

लाज भी नहीं आती, मुँह ढकौ फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हो। चलो वाह! अच्छी प्रीति निबाही। जो हो, तुम जानते ही हौ, हाय कभी न करूँगी योहीं सही, अंत मरना है, मैंने अपनी ओर से खबर दे दी, अब मेरा दोष नहीं, बस।

"केवल तुम्हारी"

(लंबी साँस लेकर) हा! बुरा रोग है, न करै कि किसी के सिर बैठे-बिठाए यह चक्र घहराय। इस चिट्ठी के देखने से कलेजा काँपा जाता है। बुरा! तिसमें स्त्रियों की बड़ी बुरी दशा है, क्योंकि कपोतव्रत बुरा होता है कि गला घोंट डालो मुँह से बात न निकले। प्रेम भी इसी का नाम हैं। राम राम! उस मुँह से जीभ खींच लो जाय जिससे हाय निकले। इस व्यथा को मैं जानती हूँ और कोई क्या जानेगा क्योंकि "जाके पाँव न भई बिवाई सो क्या जाने पीर पराई"। यह तो हुआ पर यह चिट्ठी है किसकी? यह न जान पड़ी, (कुछ सोचकर) अहा जानी! निश्चय यह चंद्रावली ही की चिट्ठी है, क्योंकि अक्षर भी उसी के से हैं और इस पर चंद्रावली का चिह्न भी बनाया है। हा! मेरी सखी बुरी फँसी। मैं तो पहिले ही उसके लच्छनों से जान गई थी, पर इतना नहीं जानती थी; अहा गुप्त प्रीति भी विलक्षण होती है, देखो इस प्रीति में संसार की रीति से कुछ भी लाभ नहीं। मनुष्य न इधर का होता न उधर का। संसार के सुख छोड़कर अपने हाथ आप मूर्ख बन जाता है। जो हो, यह पत्र तो मैं आप उन्हें जाकर दे आऊँगी और मिलने की भी विनती करूँगी।

(नेपथ्य में बूढ़ी के से सुर से)

हाँ तू सब करेगी।

चंप०— (सुनकर और सोचकर) अरे यह कौन है। (देखकर) न जानै कोऊ बूढ़ी फूस सी डोकरी है। ऐसो न होय कै यह बात फोड़ि कै उलटी आग लगावै, अब तो पहिलै याहि समझावनो परयो, चलूँ। [जाती है

भेद प्रकाशन नामक अङ्कावतार

तीसरा अंक

स्थान—तालाब के पास एक बगीचा

(समय तीसरा पहर, गहिरे बादल छाए हुए)

[झूला पड़ा है, कुछ सखी झूलती, कुछ इधर-उधर फिरती हैं]

(चंद्रावली, माधवी, काममंजरी, विलासिनी इत्यादि एक स्थान पर बैठी हैं, चद्रकांता, वल्लभा, श्यामला, भामा झूले पर हैं, कामिनी और माधुरी हाथ में हाथ दिए घूमती हैं।)

कामिनी—सखी, देख बरसात भी अब की किस धूमधाम से आई है मानो कामदेव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इनके जीतने को अपनी सेना भिजवाई है। धूम से चारों ओर से घूम-घूमकर बादल परे के परे जमाए बगपंगति का निशान उड़ाए लपलपाती नंगी तलवार सी बिजली चमकाते गरज-गरज कर डराते बान के समान पानी बरखा रहे हैं और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखा सा कुछ अलग पुकार-पुकार गा रहे हैं। कुल की मरजाद ही पर इन निगोड़ों की चढ़ाई है। मनोरथों से कलेजा उमगा आता है और काम की उमंग जो अंग अंग में भरी हैं उनके निकले बिना जी तिलमिलाता है। ऐसे बादलों को देखकर कौन लाज की चद्दर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है!

माधुरी—विशेष कर वह जो आप कामिनी हो। (हँसती है)

कामिनी—चल तुझे हँसने ही की पड़ी है। देख, भूमि चारों ओर हरी-हरी हो रही है। नदी-नाले बावली-तालाब सब भर गए। पच्छी लोग पर समेटे पत्तों की आड़ में चुपचाप सकपके से होकर बैठे हैं। बीरबहूटी और जुगुनूँ पारी-पारी रात और दिन को इधर-उधर बहुत दिखाई पड़ते हैं। नदियों के करारे धमाधम टूटकर गिरते हैं। सर्प निकल-निकल कर अशरण से इधर-उधर भागे फिरते हैं। मार्ग बंद हो रहे हैं। परदेसी जो

जिस नगर में हैं वहीं पड़े-पड़े पछता रहे हैं, आगे बढ़ नहीं सकते। वियोगियों को तो मानो छोटा प्रलय-काल ही आया है।

माधुरी—छोटा क्यों बड़ा प्रलयकाल आया है। पानी चारों ओर से उमड़ ही रहा है। लाज के बड़े-बड़े जहाज गारद हो चुके, भया फिर वियोगियों के हिसाब से तो संसार डूबा ही है, तो प्रलय ही ठहरा।

कामिनी—पर तुझको तो बटेकृष्ण का अवलंब है न, फिर तुझे क्या, भांडीर वट के पास उस दिन खडी बात कर ही रही थी, गए हम—

माधुरी—और चंद्रावली ?

कामिनी—हाँ, चद्रावली बिचारी तो आप ही गई बीती है, उसमें भी अब तो पहरे में है, नजरबन्द रहती है, झलक भी नहीं देखने पाती, अब क्या—

माधुरी—जाने दे नित्य का झंखना। देख, फिर पुरवैया झकोरने लगी और वृक्षों से लपटी लताएँ फिर से लरजने लगीं। साड़ियों के आँचल और दामन फिर उड़ने लगे और मोर लोगों ने एक साथ फिर शोर किया। देख यह घटा अभी गरज गई थी पर फिर गरजने लगी।

कामिनी—सखी वसंत का ठंढा पवन और सरद की चाँदनी से राम राम करके वियोगियों के प्राण बच भी सकते हैं, पर इन काली-काली घटा और पुरवैया के झोंके तथा पानी के एकतार झमाके से तो कोई भी न बचेगा।

माधुरी—तिसमें तू तो कामिनी ठहरी, तू बचना क्या जाने।

कामिनी—चल ठठोलिन। तेरी आँखों में अभी तक उस दिन की खुमारी भरी है, इसी से किसी को कुछ नहीं समझती। तेरे सिर बीते तो मालूम पड़े।

माधुरी—बीती है मेरे सिर। मैं ऐसी कच्ची नहीं कि थोड़े में बहुत उबल पड़ूँ।

कामिनी—चल, तू हई है क्या कि न उबल पड़ेगी। स्त्री की बिसात ही कितनी बड़े-बड़े जोगियों के ध्यान इस बरसात में छूट जाते हैं, कोई जोगी होने ही पर मन ही मन पछताते हैं, कोई जटा पटककर हाय-हाय चिल्लाते हैं, और बहुतेरे तो तूमड़ी तोड़-तोड़कर जोगी से भोगी हो ही जाते हैं।

माधुरी—तो तू भी किसी सिद्ध से कान फुँकवाकर तुमड़ी तोड़वा ले।

कामिनी—चल! तू क्या जाने इस पीर को। सखी, यही भूमि और यही कदम कुछ दूसरे ही हो रहे हैं और यह दुष्ट बादल मन ही दूसरा किए देते हैं। तुझे प्रेम हो तब सूझे। इस आनंद की धुनि में संसार ही दूसरा एक विचित्र शोभावाला और सहज काम जगानेवाला मालूम पड़ता है।

माधुरी—कामिनी पर काम का दावा है इसी से हेरफेर उसी को बहुत छेड़ा करता है।

(नेपथ्य में बारंबार मोर कूकते हैं)

कामिनी—हाय-हाय! इस कठिन कुलाहल से बचने का उपाय एक विषपान ही है। इन दईमारों का कूकना और पुरवैया का झकोरकर चलना यह दो बातें बड़ी कठिन हैं। धन्य हैं वे जो ऐसे समय में रंग रंग के कपड़े पहिने ऊँची-ऊँची अटारियों पर चढ़ी पीतम के संग घटा और हरियाली देखती हैं वा बगीचों, पहाड़ों और मैदानों में गलबाहीं डाले फिरती हैं। दोनों परस्पर पानी बचाते हैं और रंगीन कपड़े निचोड़ कर चौगुना रंग बढ़ाते हैं। झूलते हैं, झुलाते हैं, हँसते हैं, हँसाते हैं, भीगते हैं, भिगाते हैं, गाते हैं, गवाते हैं, और गले लगते हैं, लगाते हैं।

माधुरी—और तेरो न कोई पानी बचानेवाला, न तुझे कोई निचोड़ने वाला, फिर चौगुने की कौन कहे ड्योढ़ा सवाया तो तेरा रंग बढ़ेहीगा नहीं।

कामिनी—चल लुच्चिन! जाके पायँ न भई बिवाई सो क्या जानै पीर पराई।

(बात करती-करती पेड़ की आड़ में चली जाती हैं)

माधवी—(चंद्रावली से) सखी, श्यामला का दर्शन कर, देख कैसी सुहावनी मालूम पड़ती है। मुखचंद्र पर चूनरी चुई पड़ती है। लटें सगबगी होकर गले में लपट रही हैं। कपड़े अंग में लपट गए हैं। भींगने से मुख का पान और काजल सबकी एक विचित्र शोभा हो गई है।

चंद्रा०—क्यों न हो। हमारे प्यारे की प्यारी है। मैं पास होती तो दोनों हाथों से इसकी बलैया लेती और छाती से लगाती।

का० मं०—सखी, सचमुच आज तो इस कदंब के नीचे रंग बरस रहा है। जैसा समा बँधा है वैसी ही झूलनेवाली हैं। झूलने में रंग-रंग की साड़ी की अर्द्ध-चंद्राकार रेखा इंद्रधनुष की छवि दिखाती है। कोई सुख से बैठी झूले की ठंढी ठंढी हवा खा रही है, कोई गाँती बाँधे लाँग कसे पेंग मारती है, कोई गाती है, कोई डरकर दूसरी के गले में लपट जाती है, कोई उतरने को अनेक सौगंद देती है, पर दूसरी उसको चिढ़ाने को झूला और भी झोंके से झुला देती है।

माधवी—हिंडोरा ही नहीं झूलता। हृदय में प्रीतम को झुलाने के मनोरथ और नैनों में पिया की मूर्त्ति भी झूल रही हैं। सखी, आज साँवला ही की मेंहदी और चूनरी पर तो रंग है। देख बिजुली की चमक में उसकी मुखछवि कैसी सुंदर चमक उठती है और वैसे पवन भी बार-बार घूँघट उलट देता है। देख—

हूलति हिये में प्रानप्यारे के बिरह-सूल
फूलति उमंगभरी झूलति हिंडोरे पै।
गावति रिझावति हँसावति सबन 'हरि-
चंद' चाव चौगुनो बढ़ाइ घन घोरे पै॥
वारि वारि डारौं प्रान हँसनि मुरनि बत-
रान मुँह पान कजरारे दृग डोरे पै।
ऊनरी घटा मैं देखि दूनरी लगी है आहा
कैसी आजु चूनरी फबी है मुख गोरे पै॥

चंद्रा०—सखियो, देखो कैसो अंधेर और गजब है कि या ऋत में सब अपनो मनोरथ पूरो करैं और मेरी यह दुरगत होय! भलो

काहुवै तो दया आवती। (आँखों में आँसू भर लेती है)

माधवी—सखी, तू क्यों उदास होय है। हम सब कहा करैं, हम तो आज्ञाकारिणी दासी ठहरीं, हमारो का अखत्यार है तऊ हममैं सों तो कोऊ कछू तोहि नायँ कहै।

का०मं०—भलो सखी, हम याहि कहा कहैंगी! याहू तो हमारी छोटी स्वामिनी ठहरी।

विला०—हाँ सखी, हमारी तो दोऊ स्वामिनी हैं। सखी, बात यह है कै खराबी तो हम लोगन की है, ये दोऊ फेर एक की एक होयँगी। लाठी मारवे सों पानी थोरों हूँ जुदा होयगो, पर अभी जो सुन पावैं कि ढिमकी सखी ने चंद्रावलियै अकेलि छोड़ि दीनी तो फेर देखौ तमासा।

माधवी—हम्बै बीर। और केर कामहू तौ हमीं सब बिगारैं। अब देखि कौन नैं स्वामिनी सों चुगली खाई। हमारेई तुमारे में सों वहू है। सखो चद्रावलियै जो दुःख देयगी वह आप दुःख पावैगी।

चंद्रा०—(आप ही आप) हाय! प्यारे, हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते। प्यारे, फिर यह शरीर कहाँ और हम-तुम कहाँ? प्यारे, यह संजोग हमको तो अब की ही बना है, फिर यह बातें दुर्लभ हो जायँगी। हाय नाथ! मैं अपने इन मनोरथों को किसको सुनाऊँ और अपनी उमंगें कैसे निकालूँ! प्यारे, रात छोटी है। और स्वाँग बहुत हैं। जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा। हाय! मुझ सी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं। रात-दिन रोते ही बीतते हैं। कोई बात पूछनेवाला नहीं, क्योंकि संसार में जी कोई नहीं देखता, सब ऊपर ही की बात देखते हैं। हाय! मैं तो अपने-पराए सब से बुरी बनकर बेकाम हो गई। सब को छोड़कर तुम्हारा आसरा पकड़ा था सो तुमने यह गति की। हाय! मैं किसकी होके रहूँ, मैं किसका मुह देखकर जिऊँ। प्यारे, मेरे पीछे कोई ऐसा चाहनेवाला न मिलेगा। प्यारे, फिर दीया लेकर मुझको खोजोगे। हा! तुमने विश्वासघात किया। प्यारे,

तुम्हारे निर्दयीपन की भी कहानी चलेगी। हमारा तो कपोत-व्रत है। हाय स्नेह लगाकर दगा देने पर भी सुजान कहलाते हो। बकरा जान से गया, पर खानेवाले को स्वाद न मिला। हाय! यह न समझा था कि यह परिणाम करोगे। वाह! खूब निबाह किया। बधिक भी बधकर सुध लेता है, पर तुमने न सुध ली। हाय! एक बेर तो आकर अंक में लगा जाओ। प्यारे, जीते जी आदमी का गुन नहीं मालूम होता। हाय! फिर तुम्हारे मिलने को कौन तरसेगा और कौन रोएगा। हाय! संसार छोड़ा भी नहीं जाता। सब दुःख सहती हूँ, पर इसी में फँसी पड़ी हूँ। हाय नाथ! चारों ओर से जकड़कर ऐसी बेकाम क्यों कर डाली है। प्यारे, योंही रोते दिन बीतेंगे। नाथ! यह हौस मन की मन ही में रह जायगी। प्यारे, प्रगट होकर संसार का मुँह क्यों नहीं बंद करते और क्यों शंकाद्वार खुला रखते हो? प्यारे, सब दीनदयालुता कहाँ गई! प्यारे, जल्दी इस संसार से छुड़ाओ। अब नहीं सही जाती। प्यारे, जैसी हैं, तुम्हारी हैं। प्यारे, अपने कनौड़े को जगत की कनौड़ी मत बनाओ। नाथ, जहाँ इतने गुन सीखे वहाँ प्रीति निबाहना क्यों न सीखा? हाय! मँझधार में डुबाकर ऊपर से उतराई माँगते हो; प्यारे सो भी दे चुकी, अब तो पार लगाओ। प्यारे, सबकी हद होती है। हाय! हम तड़पें और तुम तमाशा देखो। जन-कुटुंब से छुड़ाकर यों छितर-बितर करके बेकाम देना यह कौन बात है। हाय! सबकी आँखों में हलकी हो गई। जहाँ जाओ वहाँ दुर दुर, उस पर यह गति। हाय! "भामिनी तें भौंड़ी करी, मानिनी तें मौड़ी करी, कौड़ी करी हीरा तें, कनौड़ी करी कुल तें।" तुम पर बड़ा क्रोध आता है और कुछ कहने को जी चाहता है। बस अब मैं गाली दूँगी। और क्या कहूँ, बस आप आप ही हौ, देखो गाली में भी तुम्हें मैं मर्मवाक्य कहूँगी--झूठे, निर्दय, निर्घृण, "निर्दय हृदय कपाट", बखेड़िये और निर्लज्ज, ये सब तुम्हें सच्ची गालियाँ हैं; भला जो कुछ करना ही नहीं था तो इतना क्यों झूठ बके? किसने बकाया था? कूद-कूदकर प्रतिज्ञा करने बिना क्या डूबी जाती थी? झूठे! झठे!! झूठे!!! झूठे ही नहीं वरंच विश्वास-

घातक! क्यों इतनी छाती ठोंक और हाथ उठा-उठाकर लोगों को विश्वास दिया? आप ही सब मरते चाहे जहन्नुम में पड़ते, और उस पर तुर्रा यह है कि किसी को चाहे कितना भी दुखी देखें आपको कुछ घृणा तो होती ही नहीं। हाय-हाय कैसे-कैसे दुखी लोग हैं—और मजा तो यह है कि सब धान बाइस पसेरी। चाहे आपके वास्ते दुखी हो, चाहे अपने संसार के दुःख से; आपको दोनों उल्लू फँसे हैं। इसी से तो निर्दय हृदय कपाट" यह नाम है। भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया? किसने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था? कुछ न होता, तुम्हीं तुम रहते बस चैन था, केवल आनंद था, फिर क्यों यह विषमय संसार किया। बखेड़िये! और इतने बड़े कारखाने पर बेहयाई परले सिरे की। नाम बिके, लोग झूठा कहें, अपने मारे फिरें, आप भी अपने मुँह झूठे बनें, पर वाह रे शुद्ध बेहयाई और पूरी निर्लज्जता! बेशरमी हो तो इतनी तो हो। क्या कहना है! लाज को जूतों मार के पीट-पीट के निकाल दिया है। जिस मुहल्ले में आप रहते है उस मुहल्ले में लाज की हवा भी नहीं जाती। जब ऐसे हो तब ऐसे हो। हाय! एक बेर भी मुँह दिखा दिया होता तो मत-वाले मतवाले बने क्यों लड़-लड़कर सिर फोड़ते। अच्छे खासे अनूठे निर्लज्ज हो, काहे को ऐसे बेशरम मिलेंगे, हुकमी बेहया हो, कितनी गाली दूँ, बड़े भारी पूरे हो, शरमाओगे थोड़े ही कि माथा खाली करना सुफल हो, जाने दो– हम भी तो वैसी ही निर्लज्ज और झूठी हैं। क्यों न हों। जस दूलह तस बनी बराता। पर इसमें भी मूल उपद्रव तुम्हारा ही है, पर यह जान रखना कि इतना और कोई न कहेगा, क्योंकि सिपारसी नेति नेति कहेंगे, सच्ची थोड़े ही कहेंगे। पर यह तो कहो कि यह दुःखमय पचड़ा ऐसा ही फैला रहेगा कि कुछ तै भी होगा, वा न तै होय। हमको क्या? पर हमारा तो पचड़ा छुड़ाओ। हाय मैं किससे कहती हूँ। कोई सुनने वाला है। जंगल में मोर नाचा किसने देखा। नहीं नहीं, वह सब देखता है, वा देखता होता तो अब तक मेरी खबर न लेता। पत्थर होता तो वह भी पसीजता।

नहीं नहीं, मैंने प्यारे को इतना दोष व्यर्थ दिया। प्यारे, तुम्हारा दोष कुछ नहीं। यह सब मेरे करम का दोष है। नाथ, मैं तो तुम्हारी नित्य की अपराधिनी हूँ। प्यारे छमा करो। मेरे अपराधों की ओर न देखो, अपनी ओर देखो। (रोती है)

माधवी—हाय-हाय सखियो ! यह तो रोय रही है।

काममं०—सखी प्यारी रोवै मती। सखी तोहि मेरे सिर की सौंह जो रोवै।

माधवी—सखी मैं तेरे हाथ जोड़ूँ मत रोवै। सखी हम सबन को जीव भरयो आवै है।

विला०—सखी, जो तू कहैगी हम सब करैंगी। हम भले हो प्रियाजो की रिस सहैंगी, पर तोसूँ हम सब काहू बात सों बाहर नहीं।

माधवी—हाय-हाय ! यह तो मानै ही नहीं। (आँसू पोंछकर) मेरी प्यारी, मैं हाथ जोड़ूँ हा हा खाऊँ मानि जा।

काममं०—सखी यासों मति कछू कहौ। आओ हम सब मिलि कै विचार करैं जासों याको काम होय।

विला०—सखी, हमारे तो प्रान ताई यापैं निछावर हैं पर जो कछू उपाय सूझै।

चंद्रा०—(रोकर) सखी, एक उपाय मुझे सूझा है जो तुम मानो।

माधवी—सखी, क्यों न मानैंगी तू कहै क्यौं नहीं।

चंद्रा०—सखी, मुझे यहाँ अकेली छोड़ जाओ।

माधवी—तो तू अकेली यहाँ का करेगी ?

चंद्रा०—जो मेरी इच्छा होगी।

माधवी—भलो तेरी इच्छा का होयगी हमहूँ सुनैं ?

चंद्रा०—सखी, वह उपाय कहा नहीं जाता।

माधवी—तौ का अपनो प्रान देगी। सखी, हम ऐसी भोरा नहीं हैं कै तोहि अकेली छोड़ जायँगी।

विला०—सखी, तू व्यर्थ प्रान देने को मनोरथ करै है तेरे प्रान तोहि न छोड़ैंगे। जौ प्रान तोहि छोड़ जायँगे तो इनको ऐसो सुंदर शरीर फेर कहाँ मिलैगो।

काममं०—सखी, ऐसी बात हम सूँ मति कहै, और जो कहै सो सो हम करिबे कों तयार हैं, और या बात को ध्यान तू सपने हू मैं मति करि। जब ताईं हमारे प्रान हैं तब ताईं तोहि न मरन देंयगी। पीछे भलेईं जो होय सो होय।

चंद्रा०—(रोकर) हाय! मरने भी नहीं पाती। यह अन्याय!

माधवी—सखी, अन्याय नहीं, यही न्याय है।

काममं०—जान दै माधवी वासों मति कछु पूछै। आओ हम तुम मिलकै सल्लाह करैं के अब का करनो चाहिए।

विला०—हाँ माधवी, तू ही चतुर है तू ही उपाय सोच।

माधवी—सखी, मेरे जी में तौ एक बात आवै। हम तीनि हैं सो तीनि काम बाँटि लें। प्यारीजू के मनाइबे को मेरो जिम्मा। यही काम सबमें कठिन है और तुम दोउन मैं सो एक याके घरकेन सों याकी सफाई करावै और एक लालजू सों मिलिबे की कहै।

काममं०—लालजी सों मैं कहूँगी। मैं विन्नै बहुती लजाऊँगी और जैसे होयगो वैसे यासों मिलाऊँगी।

माधवी—सखी, वेऊ का करैं। प्रियाजी के डर सों कछू नहीं कर सकैं।

विला०—सो प्रियाजी को जिम्मा तेरो हई है।

माधवी०—हाँ हाँ, प्रियाजी को जिम्मा मेरो।

विला०—तौ याके घर को मेरो।

माधवी—भयो, फेर का। सखी काहू बात को सोच मति करै। उठि।

चंद्रा०—सखियो! व्यर्थ क्यों यत्न करती हौ। मेरे भाग्य ऐसे नहीं हैं कि कोई काम सिद्ध हो।

माधवी—सखी, हमारे भाग्य तो सीधे हैं। हम अपने भाग्यबल सों सब काम करैंगी।

काममं०—सखी, तू व्यर्थ क्यों उदास भई जाय है। जब तक साँसा तब तक आसा।

माधवी—तौ सखी बस अब यह सलाह पक्की भई। जब ताईं काम सिद्ध न होय तब ताईं काहुवै खबर न परै।

विला०—नहीं, खबर कैसे परैगी?

काममं०—(चंद्रावली का हाथ पकड़कर) लै सखी, अब उठि। चलि हिंडोरें झूलि।

माधवी— हाँ सखी, अब तौ अनमनोपन छोड़ि।

चंद्रा०—सखी, छूटा ही सा है, पर मैं हिंडोरे न झूलूँगी। मेरे तो नेत्र आप ही हिंडोरे झूला करते हैं।

पल-पटुली पैं डोर-प्रेम की लगाय चारु
आसा ही के खंभ दोय गाढ़ कै धरत हैं।
झुमका ललित काम पूरन उछाह भरयो
लोक बदनामी झूमि झालर झरत हैं॥
'हरीचंद' आँसू दृग नीर बरसाइ प्यारे
पिया-गुन-गान सो मलार उचरत हैं।
मिलन मनोरथ के झोंटन बढ़ाइ सदा
विरह-हिंडोरे नैन झूल्योई करत हैं॥

और सखी, मेरा जी हिंडोरे पर और उदास होगा।

माधवी—तौ सखी, तेरी जो प्रसन्नता होय! हम तौ तेरे सुख की गाहक हैं।

चंद्रा०—हा! इन बादलों को देखकर तो और भी जी दुखी होता है।

देखि घन स्याम घनस्याम की सुरति करि
जिय मैं बिरह घटा घहरि-घहरि उठै।
त्यौंहीं इंद्रधनु-बगमाल देखि बनमाल
मोतीलर पी की जय लहरि लहरि उठै॥
हरीचंद' मोर-पिक-धुनि सुनि बसीनाद
बाँकी छबि बार बार छहरि-छहरि उठै।
देखि-देखि दामिनी की दुगुन दमक पीत-
पट-छोर मेरे हिय फहरि-फहरि उठै॥

हाय! जो बरसात संसार को सुखद है वह मुझे इतनी दुखदायिनी हो रही है।

माधवी—तौ न दुखदायिनी होयगी। चल उठि घर चलि।

काममं०—हाँ चलि। [सब जाती हैं

(जवनिका गिरती है)

वर्षा-वियोग-विपत्ति नामक तृतीय अंक

चौथा अंक

स्थान—चंद्रावलीजी की बैठक

(खिड़की में से यमुनाजी दिखाई पड़ती हैं। पलँग बिछा हुआ, पर पड़े हुए, इतरदान पानदान इत्यादि सजे हुए)

[जोगिन [1] आती है]

जोगिन—अलख ! अलख ! आदेश आदेश गुरू को ! अरे कोई है इस घर में ? कोई नहीं बोलता। क्या कोई नहीं है ? तो अब मैं क्या करूँ ? बैठूँ। क्या चिंता है। फकीरों को कहीं कुछ रोक नहीं। उसमें भी हम प्रेम के जोगी, तो अब कुछ गावें।

(बैठकर गाती है)

"कोई एक जोगिन रूप कियें।
भौंहैं बंक छकोहैं लोयन चलि-चलि कोयन कान छियें॥
सोभा लखि मोहत नारोनर बारि फेरि जल सबहिं पियें।
नागर मनमथ अलख जगावत गावत काँधे बीन लियें [2]" ॥

बनी मनमोहिनी जोगिनियाँ।
गल सेली तन गेरुआ सारी केस खुले सिर बेंदी सोहिनियाँ॥
माते नैन लाल रँग डोरे मद बोरे मोहे सबन छलिनियाँ।
हाथ सरंगी लिए बजावत गाय जगावत बिरह-अगिनियाँ॥[3]

जोगिन प्रेम की आई।
बड़े-बड़े नैन छुए कानन लौं चितवन-मद अलसाई॥
पूरी प्रीति रीति रस-सानी प्रेमी-जन मन भाई।
नेह-नगर मैं अलख जगावत गावत बिरह बधाई॥

---

१ गेरूआ सारी, गहना सब बनाना पहिने, रंग साँवला। सेंदुर का लंबा टीका बेंड़ा। बाल खुले हुए। हाथ में सरंगी लिए हुए। नेत्र लाल। अत्यंत सुंदर। जब-जब गावेगी सरंगी बजाकर गावेगी।

२ काफी।

३ चैती गौरी वा पीलू खेमटा।

जोगिन-आँखन प्रेम-खुमारी।
चंचल लोयन-कोयन खुभि रही काजर रेख ढरारी॥
डोरे लाल लाल रस बोरे फैली मुख उजियारी।
हाथ सरंगी लिए बजावत प्रेमिन-प्रानपियारी॥

जोगिन मुख पर लट लटकाई।
कारी घूँघरवारी प्यारी देखत सब मन भाई॥
छूटे केस गेरुआ बागे सोभा दुगुन बढ़ाई।
साँचे ढरी प्रेम की मूरति अँखियाँ निरखि सिराई॥

(नेपथ्य में से पैंजनी की झनकार सुनकर)

अरे कोई आता है। तो मै छिप रहूँ। चुपचाप सुनूँ। देखूँ यह सब क्या बातें करती हैं।

(जोगिन जाती है, ललिता आती है)

ललिता—हैं अब तक चंद्रावली नहीं आई। साँझ हो गई, न घर में कोई सखी है न दासी, भला कोई चोर-चकार चला आवै तो क्या हो। (खिड़की की ओर देखकर) अहा! जमुनाजी की कैसी शोभा हो रही है। जैसा वर्षा का बीतना और शरद का आरंभ होना वैसा ही वृंदावन के फूलों की सुगंधि से मिले हुए पवन की झकोर से जमुनाजी का लहराना कैसा सुंदर और सुहावना है कि चित्त को मोहे लेता है। आह! जमुनाजी की शोभा तो कुछ कही ही नहीं जाती। इस समय चंद्रावली होती तो यह शोभा उसे दिखाती। वा वह देख ही के क्या करती, उलटा उसका विरह और बढ़ता। (यमुनाजी की ओर देखकर) निस्संदेह इस समय बड़ी ही शोभा है।

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सो जल-परसन-हित मनहुँ सुहाए॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप बारन तीर को सिमिटि सबै छाए रहत।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत॥
कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन॥

मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा।
कै उमगे पिय-प्रिया-प्रेम के अनगिन गोभा॥
कै करिकै कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई॥
कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि भृगन मिस अस्तुति उच्चारत॥
कै ब्रज-तियगन-बदन-कमल की झलकत झाई।
कै ब्रज हरिपद-परस हेत कमला बहु आई॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रजमडल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत॥
तिन पैं जेहि छिन चंद-जोति राका निसि आवति।
जल मै मिलिकै नभ अवनी लौं तानं तनावति॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा॥
सो को कबि जो छबि कहि सकै ता छन जमुना नीर की।
मिलि अवनि और अंबर रहत छबि इकसी नभ तीर की॥
परत चंद्र-प्रतिबिंब कहूँ जल मधि चमकायो।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो॥
मनु हरि-दरसन हेत चंद जल बसत सुहायो।
कै तरंग कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो॥
कै रास-रमन मैं हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिंब लखात है॥
कबहुँ होत सत चद कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन गवन बस बिंब रूप जल मैं बहु साजत॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुनजल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै॥
कै बालगुड़ी नभ मै उड़ी सोहत इत-उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रजरमनी जल आवती।
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल॥
कै कालिंदी नीर तरंग जितो उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासो धावत॥

कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत॥
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत॥

कहूँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई॥
पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाए।
रत्नरासि करि चूर कूल मैं मनु बगराए॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरी स्यामनीर चिकुरन परसि।
सतगुन छायो कै तीर मैं ब्रज निवास लखि हिय हरसि॥

(चंद्रावली अचानक आती है)

चंद्रा०—वाह वाहरी बैहना आजु तो बड़ी कबिता करी। कबिताई की मोट की मोट खोलि दीनो। मैं सब छिपेंछिपें सुनती थी।

(दबे पाँव से जोगिन आकर एक कोने में खड़ी हो जाती है)

ललिता०—भलो-भलो बीर, तोहि कबिता सुनिबे की सुधि तौ आई, हमारे इतनोई बहुत है।

चंद्रा०—(सुनते ही स्मरणपूर्वक लंबी सांस लेकर)

सखी री क्यौं सुधि मोहि दिवाई।
हौं अपने गृह-कारज भूली भूलि रही बिलमाई॥
फेर वहै मन भयो जात अब मरिहौ जिय अकुलाई।
हौं तबही लौं जगत-काज की जब लौं रहौं भुलाई॥

ललिता—चल जान दे, दूसरी बात कर।

जोगिन—(आप ही आप) निस्संदेह इसका प्रेम पक्का है, देखो मेरी सुधि आते ही इसके कपोलों पर कैसी एक साथ जरदी दौड़ गई। नेत्रों में आँसुओं का प्रवाह उमग आया। मुँह सूखकर

छोटा सा हो गया। हाय! एक ही पल में यह तो कुछ की कुछ हो गई। अरे इसकी तो यही गति है—

छरी सी छकी सी जड़ भई सी जकी सी धर
हारी सी बिकी सी सो तो सबही धरी रहै।
बोले तें न बोलै टग खोलै नाहिं डोलै बैठी
एकटक देखै सो खिलौना सी धरी रहै॥
'हरीचंद' औरो घबरात समुझाएँ हाय
हिचकि-हिचकि रोवै जीवतिं मरी रहै!
याद आएँ सखिन रोवावै दुख कहि-कहि
तौ लौ सुख पावै जौ लौ मुरछि परी रहै॥

अब तो मुझसे रहा नहीं जाता। इससे मिलने को अब तो सभी अंग व्याकुल हो रहे हैं।

चंद्रा०—(ललिता की बात सुनी-अनसुनी करके बाएँ अंग का फरकना देखकर आप ही आप) अरे यह असमय में अच्छा सगुन क्यों होता है। (कुछ ठहरकर) हाय आशा भी क्या ही बुरी वस्तु है और प्रेम भी मनुष्य को कैसा अंधा कर देता है। भला वह कहाँ और मैं कहाँ—पर जी इसी भरोसे पर फूला जाता है कि अच्छा सगुन हुआ है तो जरूर आवेंगे। (हँसकर) हँ—उनको हमारी इस बखत फिकिर होगी। "मान न मान मैं तेरा मेहमान," मन को अपने ही मतलब की सूझती है। "मेरो पिय मोहि बात न पूछै तऊ सोहागिन नाम"। (लम्बी साँस लेकर) हा! देखो प्रेम की गति! यह कभी आशा नहीं छोड़ती। जिसको आप चाहो वह चाहे झूठमूठ भी बात न पूछे पर अपने जी को यह भरोसा रहता है कि वे भी जरूर इतना ही चाहते होंगे। (कलेजे पर हाथ रखकर) रहो रहो, क्यों उमगे आते हो, धीरज धरो, वे कुछ दीवार में से थोड़े ही निकल आवेंगे।

जोगिन—(आप ही आप) होगा प्यारी, ऐसा ही होगा। प्यारी मैं तो यहीं हूँ। यह मेरा ही कलेजा है कि अंतर्यामी कहलाकर भी अपने लोगों से मिलने में इतनी देर लगती है। (प्रगट सामने बढ़कर) अलख! अलख!

(दोनों आदर करके बैठाती हैं)

ललिता—हमारे बड़े भाग जो आपुसी महात्मा के दरसन भए।

चंद्रा०—(आप ही आप) न जानें क्यां इस जोगिन की ओर मेरा मन आपसे आप खिंचा जाता है।

जोगिन—भलो हम अतीतन को दरसन कहा, योंही नित्य ही घर-घर डोलत फिरैं।

ललिता—कहाँ तुम्हारो देस है ?

जोगिन— प्रेम नगर पिय गाँव।

ललिता—कहा गुरू कहि बोलहीं ?

जोगिन— प्रेमी मेरो नाँव॥

ललिता—जोग लियो केहि कारनैं ?

जोगिन— अपने पिय के काज।

ललिता—मंत्र कौन ?

जोगिन— पियनाम इक,

ललिता— कहा तज्यो ?

जोगिन— जग-लाज॥

ललिता—आसन कित ?

जोगिन— जितही रमे,

ललिता— पंथ कौन ?

जोगिन— अनुराग।

ललिता—साधन कौन ?

जोगिन— पिया-मिलन,

ललिता— गादी कौन ?

जोगिन— सुहाग॥

नैन कहें गुरु मन दियो बिरह सिद्धि उपदेस।
तब सों सब कुछ छोड़ि हम फिरत देस-परदेस॥

चंद्रा०—(आप ही आप) हाय ! यह भी कोई बड़ी भारी बिया

गिन है तभी इसकी ओर मेरा मन आपसे आप खिंचा जाता है।

ललिता—तौ संसार को जोग तो और ही रकम को है और आप को तो पंथ ही दूसरो है। तो भला हम यह पूछैं कि का संसार के और जोगी लोग वृथा जोग साधैं हैं ?

जोगिन—यामैं का संदेह है, सुनो। (सारंगी छेड़कर गाती है)

पचि मरत वृथा सब लोग जोग सिर धारी।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥
बिरहागिन धूनी चारो ओर लगाई।
बसी धुनि की मुद्रा कानो पहिराई॥
अँसुअन की सेली गल में लगत सुहाई।
तन धूर जमी सोइ अंग भभूत रमाई॥
लट उरझि रहीं सोइ लटकाई लट कारी।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी।
गुरु बिरह दियो उपदेस सुनो ब्रजबाला।
पिय बिछुरन दुख बिछाओ तुम मृगछाला॥
मन के मनके की जपो पिया की माला।
बिरहिन की तो हैं सभी निराली चाला॥
पीतम से लगि लौ अचल समाधि न टारी।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥
यह है सुहाग का रूचल हमारे बाना।
असगुन की मूरति खाक न कभी चढ़ाना॥
सिर सेंदुर देकर चोटी गूँथ बनाना॥
कर चूरी मुख में रग तमोल जमाना॥
पीना प्याला भर रखना वही खुमारी।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥
है पथ हमारा नैनों के मत जाना।
कुल लाक वेद सब औ परलोक मिटाना॥
शिवजी से जोगा को भी जोग सिखाना।
'हरिचंद' एक प्यारे से नेह बढ़ाना॥

ऐसे बियोग पर लाख जोग बलिहारी।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥

चंद्रा०—(आप ही आप) हाय-हाय इसका गाना कैसा जी को बेधे डालता है। इसके शब्द का जी पर एक ऐसा विचित्र अधिकार होता है कि वर्णन के बाहर है। या मेरा जी ही चोटल हो रहा है। हाय-हाय! ठीक प्रानप्यारे की सी इसकी आवाज है। (बलपूर्वक आँसुओं को रोककर और जी बहलाकर) कुछ इससे और गवाऊँ। (प्रगट) जोगिन जी कष्ट न हो तो कुछ और गाओ। (कहकर कभी चाव से उसकी ओर देखती है और कभी नीचा सिर करके कुछ सोचने लगती है)

जोगिन—(मुसकाकर) अच्छा प्यारी! सुनो। (गाती है)

जोगिन रूप-सुधा की प्यासी।
बिनु पिय मिलें फिरत बन ही बन छाई मुखहि उदासी॥
भोग छोड़ि धन धाम काम तजि भई प्रेम-बनबासी।
पिय-हित अलख अलख रट लागी पीतम-रूप उपासी॥
मनमोहन प्यारे तेरे लिये जोगिन बन बन छान फिरी।
कोमल से तन पर खाक मलो ले जोग स्वाँग सामान फिरी॥
तेरे दरसन कारन डगर-डगर करती तेरा गुन-गान फिरी।
अब तो सूरत दिखला प्यारे 'हरिचंद' बहुत हैरान फिरी॥

चंद्रा०—(आप ही आप) हाय यह तो सभी बातें पते की कहती है। मेरा कलेजा तो एक साथ ऊपर को खिचा आता है। हाय! 'अब तो सूरत दिखला प्यारे।'

जोगिन—तो अब तुमको भी गाना होगा। यहाँ तो फकीर हैं। हम तुम्हारे सामने गावें तुम हमारे सामने न गाओगी। (आप ही आप) भला इसी बहाने प्यारी की अमृत बानी तो सुनेंगे। (प्रगट) हाँ! देखो हमारी यह पहिली भिक्षा खाली न जाय, हम तो फकीर हैं हमसे कौन लाज है?

चंद्रा०—भला मैं गाना क्या जानूँ। और फिर मेरा जी भी आज अच्छा नहीं है, गला बैठा हुआ है। (कुछ ठहरकर नीची आँख करके) और फिर मुझे संकोच लगता है।

जोगिन—(मुसक्याकर) वाह रे संकोचवाली ! भला मुझसे कौन संकोच है ? मैं फिर रूठ जाऊँगी जो मेरा कहना न करेगी।

चंद्रा०—(आप ही आप) हाय-हाय ! इसकी कैसी मीठी बोलन है जो एक साथ जी को छीने लेती है। जरा से झूठे क्रोध से जो इसने भौंहें तनेनी की हैं वह कैसी भली मालूम पड़ती हैं। हाय ! प्राननाथ कहीं तुम्हीं तो जोगिन नहीं बन आए हो। (प्रगट) नहीं-नहीं, रूठो मत, मैं क्यों न गाऊँगी। जो भला बुरा आता है सुना दूँगी, पर फिर भी कहती हूँ आप मेरे गाने से प्रसन्न न होंगी। ऐ मैं हाथ जोड़ती हूँ मुझे न गवाओ। (हाथ जोड़ती है)

ललिता—वाह, तुझे नए पाहुने की बात अवश्य माननी होगी। ले मैं तेरे हाथ जोड़ूँ हूँ, क्यौं न गावैगी। यह तो उससे बहाली बता जो न जानती हो।

चंद्रा०—तो तू ही क्यों नहीं गाती। दूसरों पर हुकुम चलानें को तो बड़ी मुस्तैद होती है।

जोगिन—हाँ हाँ, सखी तू ही न पहिले गा। ले मैं सरंगी से सुर की आस देती जाती हूँ।

ललिता—यह देखो। जो बोले सो घी को जाय। मुझे क्या, मैं अभी गाती हूँ।

(राग बिहाग—गाती है)

अलख गति जुगल पिया-प्यारी की।
को लखि सकै लखत नहिं आवै तेरी गिरिधारी की॥
बलि बलि बिछुरनि मिलनि हँसनि रूठनि नित हीं यारी की।
त्रिभुवन की सब रति गति मति छबि या पर बलिहारी की॥

चंद्रा०—(आप ही आप) हाय ! यहाँ आज न-जाने क्या हो रहा है, मैं कुछ सपना तो नहीं देखती। मुझे तो आज कुछ सामान ही दूसरे दिखाई पड़ते हैं। मेरे तो कुछ समझ ही नहीं पड़ता कि मैं क्या देख सुन रही हूँ। क्या मैंने कुछ नशा तो नहीं पिया है ! अरे यह जोगिन कहीं जादूगर तो नहीं है। (घबड़ानी सी होकर इधर उधर देखती है)

(इसकी दशा देखकर ललिता सकपकाती और जोगिन हँसती है)

ललिता—क्यों, आप हँसती क्यों हैं ?

जोगिन—नहीं, योंही मैं इसको गीत सुनाया चाहती हूँ पर जो यह फिर गाने का करार करे।

चंद्रा०—(घबड़ाकर) हाँ, मैं अवश्य गाऊँगी, आप गाइए।

(फिर ध्यानावस्थित सी हो जाती है)

(जोगिन सारंगी बजाकर गाती है)

(संकरा)

तू केहि चितवति चकित मृगी सी ?
केहि ढूँढ़त तेरो कहा खोयो क्यौं अकुलाति लखाति ठगी सी ॥
तन सुधि करु उघरत री आँचर कौन ख्याल तू रहति खगी सी।
उतरु न देत जकी सी बैठी मद पीयो कै रैन जगी सी ॥
चौंकि चौंकि चितवति चारहु दिस सपने पिय देखति उमगी सी।
भूलि बेखरी मृगछौनी ज्यौं निज दल तजि कहुँ दूर भगी सी ॥
करति न लाज हाट घर बर की कुलमरजादा जाति डगीं सी।
'हरीचंद' ऐसिहिं उरझी तौ क्यौं नहिं डोलत संग लगी सी ॥
तू केहि चितवति चकित मृगीसी ?

चंद्रा०—(उन्माद से) डोलूँगी-डोलूँगी संग लगी (स्मरण करके लजाकर आप ही आप) हाय-हाय ! मुझे क्या हो गया है। मैंने सब लज्जा ऐसी धो बहाई कि आए गए भीतर बाहर वाले सबके सामने कुछ बक उठती हूँ। भला यह एक दिन के लिए आई बिचारी जोगिन क्या कहेगी ? तो भी धीरज ने इस समय बड़ी लाज रखी नहीं तो मैं-राम-राम—नहीं नहीं, मैंने धीरे से कहा था किसी ने सुना न होगा। अहा ! संगीत और साहित्य में भी कैसा गुन होता है कि मनुष्य तन्मय हो जाता है। उस पर जले पर नोन। हाय नाथ ! हम अपने उन अनुभवसिद्ध अनुरागों और बढ़े हुए मनोरथों को किस को सुनावें जो काव्य के एक-एक तुक और संगीत की एक-एक तान से लाख-लाखगुन बढ़ते हैं और तुम्हारे मधुर रूप और चरित्र के ध्यान से अपने आप ऐसे उज्ज्वल सरस और प्रेममय हो जाते

हैं, मानो सब प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं। पर हा! अंत में करुण रस में उनकी समाप्ति होती है क्योंकि शरीर की सुधि आते ही एक साथ बेबसी का समुद्र उमड़ पड़ता है।

जोगिन—वाह अब यह क्या सोच रही हो! गाओ ले, अब नहीं मानैंगी।

ललिता—हाँ सखी, अब अपना वचन सच कर।

चंद्रा०—(अर्द्धोन्माद की भाँति) हाँ हाँ, मैं गाती हूँ।

(कभी आँसू भरकर, कभी कई बेर, कभी ठहरकर, कभी भाव बताकर, कभी बेसुर-ताल ही, कभी ठीक-ठीक, कभी टूटी आवाज से पागल की भाँति गाती है)

मन की कासों पीर सुनाऊँ।
बकनो वृथा और पत खोनी सबै चवाई गाऊँ॥
कठिन दरद कोऊ नहि हरिहै धरिहै उलटो नाऊँ।
यह तो जो जानै सोइ जानै क्यो करि प्रगट जनाऊँ॥
रोम-रोम प्रति नैन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊँ।
बिना सुजान-शिरोमनि री केहिं हियरो काढ़ि दिखाऊँ॥
मरमिन सखिन बियोग-दुखिन क्यो कहि निज दसा रोआऊँ।
'हरीचंद' पिय मिले तो पग परि गहि पटुका समझाऊँ॥

(गाते-गाते बेसुध होकर गिरा चाहती है कि एक बिजली सी चमकती है और जोगिन श्रीकृष्ण बनकर उठाकर गले लगाती है और नेपथ्य में बाजे बजते हैं)

ललिता—(बड़े आनंद से) सखी बधाई है, लाखन बधाई है। ले होस में आ जा। देख तो कौन तुझे गोद लिए हैं!

चंद्रा०—(उन्माद की भाँति भगवान् के गले में लपटकर)।

पिय तोहि राखौंगी भुजन मै बाँधि।
जान न दैहौं तोहि पियारे धरौंगी हिए सो नाँधि॥
बाहर गर लगाइ राखौंगी अंतर करौंगी समाधि।
'हरीचंद' छूटन नहिं पैहौ लाल चतुरई साधि॥
पिय तोहि कैसे हिये राखौं छिपाय?
सुंदर रूप लखत सब कोऊ यहै कसक जिय आय॥
नैनन में पुतरी करि राखौं पलकन ओट दुराय।

हियरे मैं मनहूँ के अंतर कैसे लेउँ लुकाय ॥
मेरो भाग रूप पिय तुमरो छीनत सौतैं हाय ।
'हरीचंद' जीवनधन मेरे छिपत न क्यौं इत धाय ॥

पिय तुम और कहूँ जिन जाहु ।
लेन देहु किन मो रंकिन कौं रूप-सुधा-रस-लाहु ॥
जो-जो कहौ करौं सोइ-सोई धरि जिय अमित उछाहु ।
राखौं हिये लगाइ पियारे किन मन माहिं समाहु ॥
अनुदिन सुंदर बदन-सुधानिधि नैन चकोर दिखाहु ।
'हरीचंद' पलकन की ओटैं छिनहु न नाथ दुराहु ॥

पिय तोहि कैसे बस करि राखौं ।
तुव दृग मैं दृग तुव हिय मैं निज हियरो केहि बिधि नाखौं ॥
कहा करौं का जतन बिचारौं बिनती केहि बिधि भाखौं ।
'हरीचंद' प्यासी जनमन की अधरसुधा किमि चाखौं ॥

भगवान्—तौ प्यारी मैं तोहि छोड़िकै कहाँ जाउँगो, तू तौ मेरी स्वरूप ही है। यह सब प्रेम की शिक्षा करिबे कों तेरी लीला है।

ललिता—अहा ! इस समय जो मुझे आनंद हुआ है उसका अनुभव और कौन कर सकता है। जो आनंद चंद्रावली को हुआ है वही अनुभव मुझे भी होता है। सच है, जुगल के अनुग्रह बिना इस अकथ आनंद का अनुभव और किसको है ?

चंद्रा०—पर नाथ, ऐसे निठुर क्यों हौ ? अपनों को तुम कैसे दुखी देख सकते हो ? हा ! लाखों बातें सोची थीं कि जब कभी पाऊँगी तो यह कहूँगी, यह पूछूँगी, पर आज सामने कुछ नहीं पूछा जाता !

भग०—प्यारी ! मैं निठुर नहीं हूँ। मैं तौ अपने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूँ। परंतु मोहि निहचै है कै हमारे प्रेमिन को हम सों हूँ हमारो बिरह प्यारो है। ताही सों मैं हूँ बचाय जाऊँ हूँ। या निठुरता मैं जे प्रेमी हैं विन को तो प्रेम और बढ़े और जे कच्चे हैं विनकी बात खुल जाय। सो प्यारी यह बात हू दूसरेन की है। तुमारो का, तुम और हम तो एक ही

हैं। न तुम हम सौं जुदी हो न प्यारीजू सों। हमने तो पहिले ही कही कै यह सब लीला है। (हाथ जोड़कर) प्यारी, छिमा करियौ, हम तौ तुम्हारे सबन के जनम जनम के रिनियाँ हैं। तुमसे हम कभू उरिन होइवेई के नहीं। (आँखों में आँसू भर आते हैं)

चंद्रा०—(घबड़ाकर दोनों हाथ छुड़ाकर आँसू भर के) बस बस नाथ, बहुत भई, इतनी न सही जायगी। आपकी आँखों में आँसू देखकर मुझसे धीरज न धरा जायगा। (गले लगा लेती है)

(विशाखा आती है)

विशाखा—सखी! बधाई है। स्वामिनी ने आज्ञा दई है कै प्यारे सों कही दै चंद्रावली की कुंज मैं सुखेन पधारौ।

चंद्रा०—(बड़े आनंद से घबड़ाकर ललिता-विशाखा से) सखियो, मैं तो तुम्हारे दिए पीतम पाए हैं। (हाथ जोड़कर) तुमारो गुन जनम-जनम गाऊँगी।

विशाखा—सखी, पीतम तेरो तू पीतम की, हम तौ तेरी टहलनी हैं। यह सब तौ तुम सबन की लीला है। यामैं कौन बोलै और बोलै हू कहा जौ कछू समझै तौ बोलै—या प्रेम की तौ अकथ कहानी है। तेरे प्रेम को परिलेख तो प्रेम की टकसार होयगो, और उत्तम प्रेमिन को छोड़ि और काहू की समझ हो मैं न आवैगो। तू धन्य, तेरो प्रेम धन्य, या प्रेम के समझिवेवारे धन्य और तेरे प्रेम को चरित्र जो पढ़ै सो धन्य। तो मैं और स्वामिनी मैं भेद नहीं है, ताहू मैं तू रस की पोषक ठैरी। बस, अब हमारी दोउन की यही बिनती है कै तुम दोऊ गलबाहीं दै कै बिराजौ और हम जुगलजोड़ी को दर्शन करि आज नेत्र सफल करैं।

(गलबाहीं देकर जुगल स्वरूप बैठते हैं)

दोनों—नीके निरखि निहारि नैन भरि नैनन को फल आजु लह्यौ री।
जुगुल रूप छबि अमित माधुरी रूप-सुधा-रस-सिंधु बह्यौ री॥
इनहीं सौं अभिलाख लाख करि इक इनहीं कों नितहि चहौरी।

जो नर-तनहि सफल करि चाहौ इनहीं के पद-कंज गहौ री ॥
करम-ज्ञान-संसार-जाल तजि बरु बदनामी कोटि सहौ री ।
इनहीं के रस-मत्त मगन नित इनहीं के ह्वै जगत रहौ री ॥
इनके बल जग-जाल कोटि अघ तृन सम प्रेम प्रभाव दहौ री ।
इनहीं को सरबस करि जानौ यहै मनोरथ जिय उमहौ री ॥
राधा-चंद्रावली-कृष्ण-ब्रज-जमुना-गिरिवर मुखहिं कहौ री ।
जनम-जनम यह कठिन प्रेमव्रत 'हरीचंद' इकरस निबहौ री ॥

भग०—प्यारी ! और जो इच्छा होय सो कहौ । काहे सों कै जो तुम्हें प्यारो है सोई हमैं हूँ प्यारो है ।

चंद्रा०—नाथ ! और कोई इच्छा नहीं, हमारी तो सब इच्छा की अवधि आपके दर्शन ही ताईं है तथापि भरत को यह वाक्य सफल होय—

परमारथ स्वारथ दोउ कहँ सँग मेलि न सानैं ।
जे आचारज होइँ धरम निज तेह पहिचानैं ॥
बृंदाबिपिन बिहार सदा सुख सों थिर होई ।
जन बल्लभी कहाइ भक्ति बिनु होइ न कोई ॥
जगजाल छाँड़ि अधिकार लहि कृष्णचरित सबही कहै ।
यह रतन-दीप हरि-प्रेम को सदा प्रकाशित जग रहै ॥

(फूल की वृष्टि होती है, बाजे बजते हैं और जवनिका गिरती है)

इति परमफलचतुर्थ अंक

——०:※:०——

भारतदुर्दशा

नाट्यरासक वा लास्य रूपक

संवत् १९३३

भारतदुर्दशा

(मंगलाचरण)

जय सतजुग-थापन-करन, नासन म्लेच्छ-अचार।
कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कल्कि अवतार॥

पहिला अंक

स्थान—बीथी

(एक योगी गाता है)

(लावनी)

रोअहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई॥ ध्रुव॥
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य बिधाता कीनो॥
सबके पहिले जो रूप-रंग रस-भीनो।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई॥
जहँ भए शाक्य हरिचंदर नहुष ययाती।
जहँ राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती॥
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या-राती॥
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहिं दुःख दिखाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई॥
लरि बैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवनसैन पुनि भारी॥

तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी।
छाई अब आलस-कुमति-कलह अँधियारी॥
भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई॥
अँगरेजराज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री॥
सबके ऊपर टिकस की आफत आई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई॥

(पटोत्तोलन)

दूसरा अंक

स्थान—श्मशान, टूटे-फूटे मंदिर

कौआ, कुत्ता, स्यार घूमते हुए, अस्थि इधर-उधर पड़ी है।

(भारत * का प्रवेश)

भारत—हा! यह वही भूमि है जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचंद्र के दूतत्व करने पर भी वीरोत्तम दुर्योधन ने कहा था "सूच्यग्रं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव" और आज हम उसी भूमि को देखते हैं कि श्मशान हो रही है। अरे यहाँ की योग्यता, विद्या, सभ्यता, उद्योग, उदारता, धन, बल, मान, दृढ़चित्तता, सत्य सब कहाँ गए? अरे पामर जयचन्द्र! तेरे उत्पन्न हुए बिना मेरा क्या डूबा जाता था? हाय! अब मुझे कोई शरण देने वाला नहीं। (रोता है) मातः, राजराजेश्वरि, विजयिनी! मुझे बचाओ। अपनाए की लाज रक्खो। अरे दैव ने सब कुछ मेरा नाश कर दिया पर अभी संतुष्ट नहीं हुआ। हाय! मैंने जाना था कि अँगरेजों के हाथ में आकर हम अपने दुखी मन को पुस्तकों से बहलावेंगे और सुख मानकर जन्म बितावेंगे पर दैव से वह भी न सहा गया। हाय! कोई बचाने-वाला नहीं।

(गीत)

कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हा हा होय अनाथ॥
जाकी सरन गहत सोइ मारत सुनत न कोउ दुखगाथ।
दीन बन्यौ इत सों उत डोलत टकरावत निज माथ॥
दिन-दिन बिपति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ।
सब बिधि दुख सागर मैं डूबत धाइ उबारौ नाथ॥

---

* फटे कपड़े पहिने, सिर पर अर्द्ध किरीट, हाथ में टेकने की छड़ी, शिथिल अंग।

(नेपथ्य में गंभीर और कठोर स्वर से)

अब भी तुझको अपने नाथ का भरोसा है ! खड़ा तो रह। अभी मैंने तेरी आशा की जड़ न खोद डाली तो मेरा नाम नहीं।

भारत—(डरता और काँपता हुआ रोकर) अरे यह विकरालवदन कौन मुँह बाए मेरी ओर दौड़ता चला आता है ? हाय-हाय इससे कैसे बचेंगे ? अरे यह तो मेरा एक ही कौर कर जायगा। हाय ! परमेश्वर वैकुंठ में और राजराजेश्वरी सात समुद्र पार, अब मेरी कौन दशा होगी ? हाय अब मेरे प्राण कौन बचावेगा ? अब कोई उपाय नहीं। अब मरा, अब मरा। (मूर्छा खाकर गिरता है)

(निर्लज्जता * आती है)

निर्लज्जता—मेरे आछत तुमको अपने प्राण की फिक्र। छिः छिः ! जीओगे तो भीख माँग खाओगे। प्राण देना तो कायरों का काम है। क्या हुआ जो धन-मान सब गया "एक जिंदगी हज़ार नेआमत है।" (देखकर) अरे सचमुच बेहोश हो गया तो उठा ले चलें। नहीं-नहीं, मुझसे अकेले न उठेगा। (नेपथ्य की ओर) आशा ! आशा ! जल्दी आओ।

(आशा † आती है)

निर्लज्जता—यह देखो भारत मरता है, जल्दी इसे घर उठा ले चलो।

आशा—मेरे आछत किसी ने भी प्राण दिया है ? ले चलो, अभी जिलाती हूँ।

(दोनो उठाकर भारत को ले जाती हैं)

---

* जाँघिया—सिर खुला—ऊँची चोली—दुपट्टा ऐसा गिरता पड़ता कि अंग खुले, सिर खुला, खानगियो का सा वेष।

† लड़की के वेष में।

तीसरा अंक

स्थान—मैदान

(फौज के डेरे दिखाई पड़ते हैं। भारतदुर्दैव * आता है)

भारतदु०—कहाँ गया भारत मूर्ख! जिसको अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी का भरोसा है? देखो तो अभी इसकी क्या-क्या दुर्दशा होती है।

(नाचता और गाता हुआ)

अरे!

उपजा ईश्वर कोप से, औ आया भारत बीच।
छार-खार सब हिंद करूँ, मैं, तो उत्तम नहिं नीच॥
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी॥
कौड़ी-कौड़ी को करूँ, मैं सबको मुहताज।
भूखे प्रान निकालूँ इनका, तो मैं सच्चा राज॥ मुझे०
काल भी लाऊँ महँगी लाऊँ, और बुलाऊँ रोग।
पानी उलटा कर बरसाऊँ, छाऊँ जग में सोग॥ मुझे०
फूट बैर औ कलह बुलाऊ, ल्याऊँ सुस्ती जोर।
घर-घर में आलस फैलाऊँ, छाऊँ दुख घनघोर॥ मुझे०
काफिर काला नीच पुकारूँ, तोड़ूँ पैर औ हाथ।
दूँ इनको संतोष खुशामद, कायरता भी साथ॥ मुझे०
मरी बुलाऊँ देस उजाड़ूँ, महँगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्न॥
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानोजी।

(नाचता है)

अब भारत कहाँ जाता है, ले लिया है। एक तस्सा बाकी है, अबकी हाथ में वह भी साफ है! भला हमारे बिना और

---

* क्रूर, आधा क्रिस्तानी आधा मुसलमानी वेष, हाथ में नंगी तलवार लिए।

ऐसा कौन कर सकता है कि अँगरेजी अमलदारी में भी हिंद् न सुधरें! लिया भी तो अँगरेजों से औगुन! हा हाहा! कुछ पढ़े-लिखे मिलकर देश सुधारा चाहते हैं! हहा हहा! एक चने से भाड़ फोड़ेंगे। ऐसे लोगों को दमन करने को मैं जिले के हाकिमों को न हुक्म दूँगा कि इनको डिसलायल्टी में पकड़ो और ऐसे लोगों को हर तरह से खारिज करके जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उसको उतना बड़ा मेडल और खिताब दो। हैं! हमारी पालिसी के विरुद्ध उद्योग करते हैं, मूर्ख! यह क्यों? मैं अपनी फौज ही भेजके न सब चौपट करता हूँ। (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे कोई है? सत्यानाश फौजदार को तो भेजो।

(नेपथ्य में से "जो आज्ञा" का शब्द सुनाई पड़ता है)

देखो मैं क्या करता हूँ। किधर-किधर भागेंगे।

(सत्यानाश फौजदार आते हैं)

(नाचता हुआ)

सत्या०फौ०—हमारा नाम है सत्यानास। आए हैं राजा के हम पास॥
घरके हम लाखो ही भेस। किया चौपट यह सारा देस॥
बहुत हमने फैलाए धर्म। बढ़ाया छुआछूत का कर्म॥
होके जयचद हमने इक बार। खोल ही दिया हिंद का द्वार॥
हलाकू चंगेजो तैमूर। हमारे अदना अदना सूर॥
दुरानी अहमद नादिरसाह। फौज के मेरे तुच्छ सिपाह॥
हैं हममें तीनो कल बल छल। इसी से कुछ नहिं सकती चल॥
पिलावैंगे हम खूब शराब। करैंगे सबको आज खराब॥

भारतदु०—अहा सत्यानाशजी आए। आओ, देखो अभी फौज को हुक्म दो कि सब लोग मिलके चारों ओर से हिंदुस्तान को घेर लें। जो पहिले से घेरे हैं उनके सिवा औरों को भी आज्ञा दो कि बढ़ चलें।

सत्या० फौ०—महाराज "इंद्रजीत सन जो कछु भाखा, सो सब जनु पहिलहिं करि राखा।" जिनको आज्ञा हो चुकी है वे

तो अपना काम कर ही चुके और जिसको जो हुक्म हो, कह दिया जाय।

भारत दु०—किसने किसने क्या क्या किया है ?

सत्या० फौ०—महाराज ! धर्म ने सबके पहिले सेवा की।

रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए॥
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए।
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो॥
खान पान संबंध सबन सों बरजि छुड़ायो।
जन्मपत्र बिधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब॥
बालकपन में ब्याहि प्रीति-बल नास कियो सब।
करि कुलीन के बहुत ब्याह बल बीरज मारयो॥
विधवा-ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचारयो।
रोकि विलायत-गमन कूपमंडूक बनायो॥
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो।
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई॥
ईश्वर सो सब बिमुख किए हिंदू घबराई।

भारतदु०—आहा ! हाहा ! शाबाश ! शाबाश ! हाँ, और भी कुछ धर्म्म ने किया ?

सत्या० फौ०—हाँ महाराज।

अपरस सोल्हा छूत रचि, भोजन-प्रीति छुड़ाय।
किए तीन तेरह सबै, चौका चौका लाय॥

भारतदु०—और भी कुछ ?

सत्या० फौ—हाँ,

रचिकै मत वेदांत को, सबको ब्रह्म बनाय।
हिंदुन पुरुषोत्तम कियो, तोरि हाथ अरु पाय॥

महाराज, वेदांत ने बड़ा ही उपकार किया। सब हिंदू ब्रह्म हो गए। किसी को इतिकर्त्तव्यता बाकी ही न रही। ज्ञानी बनकर ईश्वर से विमुख हुए, रुक्ष हुए, अभिमानी हुए और इसी से स्नेहशून्य हो गए। जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धार का प्रयत्न कहाँ ? बस, जय शंकर की।

भारतदु०—अच्छा, और किसने-किसने क्या किया ?

सत्या० फौ०—महाराज, फिर संतोष ने भी बड़ा काम किया। राजा-प्रजा सबको अपना चेला बना लिया। अब हिंदुओं को खाने मात्र से काम, देश से कुछ काम नहीं। राज न रहा, पेनशन ही सही। रोजगार न रहा, सूद ही सही। वह भी नहीं, तो घर ही का सही, 'संतोषं परमं सुखं' रोटी ही को सराह-सराह के खाते हैं। उद्यम की ओर देखते ही नहीं। निरुद्यमता ने भी संतोष को बड़ी सहायता दी। इन दोनों को बहादुरी का मेडल जरूर मिले। व्यापार को इन्हीं ने मार गिराया।

भारतदु०—और किसने क्या किया ?

सत्या० फौ०—फिर महाराज जो धन की सेना बची थी उसको जीतने को भी मैंने बड़े बाँके वीर भेजे। अपव्यय, अदालत, फैशन और सिफारिश इन चारों ने सारी दुश्मन की फौज तितिर बितिर कर दी। अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किए। फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि अंटाधार कर दिया और सिफारिश ने भी खूब ही छकाया। पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब तक पीछा करके खूब भगाया। तुहफे, घूस और चंदे के ऐसे बम के गोले चलाए कि "बम बोल गई बाबा की चारों दिसा" धूम निकल पड़ी। मोटा भाई बना-बनाकर मूँड़ लिया। एक तो खुद ही यह सब पँड़िया के ताऊ, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, डर दिखाया गया, बराबरी का झगड़ा उठा, धाँय-धाँय गिनी गई*, वर्णमाला कंठ कराई†, बस हाथी के खाए कैथ हो गए। धन की सेना ऐसी भागी कि कब्रों में भी न बची, समुद्र के पार ही शरण मिली।

भारतदु०—और भला कुछ लोग छिपाकर भी दुश्मनों की ओर भेजे थे ?

---

* सलामी मिली।

† सी० आई० ई० आदि उपाधियाँ मिलीं।

सत्या० फौ०—हाँ, सुनिए! फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक, अश्रुमार्जन और निर्बलता इन एक दरजन दूती और दूतों को शत्रुओं की फौज में हिला-मिलाकर ऐसा पंचामृत बनाया कि सारे शत्रु बिना मारे घटा पर के गरुड़ हो गए। फिर अंत में भिन्नता गई। इसने ऐसा सबको काई की तरह फाड़ा कि भाषा, धर्म, चाल, व्यवहार, खाना, पीना-सब-एक-एक-योजन-पर अलग-अलग कर दिया। अब आवें बचा ऐक्य! देखें आ ही के क्या करते हैं!

भारतदु०—भला भारत का शस्य नामक फौजदार अभी जीता है कि मर गया? उसकी पलटन कैसी है?

सत्या० फौ०—महाराज! उसका बल तो आपकी अतिवृष्टि और अनावृष्टि नामक फौजों ने बिलकुल तोड़ दिया। लाही, कीड़े, टिड्डी और पाला इत्यादि सिपाहियों ने खूब ही सहायता की। बीच में नील ने भी नील बन कर अच्छा लंकादहन किया।

भारतदु०—वाह! वाह! बड़े आनंद की बात सुनाई। तो अच्छा तुम जाओ। कुछ परवाह नहीं, अब ले लिया है। बाकी साकी अभी सपराए डालता हूँ। अब भारत कहाँ जाता है। तुम होशियार रहना और रोग, महर्घ, कर, मद्य, आलस और अंधकार को जरा क्रम से मेरे पास भेज दो।

सत्या० फौ०—जो आज्ञा। [जाता है

भारतदु०—अब उसको कहीं शरण न मिलेगी। धन, बल और विद्या तीनों गई। अब किसके बल कूदेगा?

(जवनिका गिरती है)

पटोत्तोलन

चौथा अंक

(कमरा अँगरेजी सजा हुआ, मेज, कुरसी लगी हुई।
कुरसी पर भारत दुर्दैव बैठा है)

(रोग का प्रवेश)

रोग—(गाता हुआ) जगत सब मानत मेरी आन।
मेरी ही टट्टी रचि खेलत नित सिकार भगवान ॥
मृत्यु कलंक मिटावत मैं ही मोसम और न आन।
परम पिता हमहीं वैद्यन के अचारन के प्रान ॥

मेरा प्रभाव जगत विदित है। कुपथ्य का मित्र और पथ्य का शत्रु मैं ही हूँ। त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जिस पर मेरा प्रभुत्व नहीं। नजर, श्राप, भूत, प्रेत, टोना, टनमन, देवी-देवता सब मेरे ही नामांतर हैं। मेरी ही बदौलत ओझा, दरसनिए, सयाने, पंडित, सिद्ध लोगों को ठगते हैं। (आतंक से) भला मेरे प्रबल प्रताप को ऐसा कौन है जो निवारण करे। हह! चुंगी की कमेटी सफाई करके मेरा निवारण करना चाहती है, यह नहीं जानती कि जितनी सड़क चौड़ी होगी उतने ही हम भी "जस जस सुरसा बदन बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा"। (भारतदुर्दैव को देख कर) महाराज! क्या आज्ञा है?

भारतदु०—आज्ञा क्या है, भारत को चारों ओर से घेर लो।

रोग—महाराज! भारत तो अब मेरे प्रवेश-मात्र से मर जायगा। घेरने का कौन काम है? धन्वंतरि और काशिराज दिवोदास का अब समय नहीं है और न सुश्रुतवाग्भट्ट-चरक ही हैं। बैदगी अब केवल जीविका के हेतु बची है। काल के बल से औषधों के गुणों और लोगों के प्रकृति में भी भेद पड़ गया। बस अब हमें कौन जीतेगा और फिर हम ऐसी सेना भेजेंगे जिनका भारतवासियों ने कभी नाम तो सुना ही न होगा; तब भला वे उसका प्रतिकार क्या करेंगे! हम भेजेंगे विस्फोटक, हैजा,

डेंगू, अप्लेक्सी। भला इनको हिंदू लोग क्या रोकेंगे? ये किधर से चढ़ाई करते हैं और कैसे लड़ते हैं जानेंगे तो हई नहीं, फिर छुट्टी हुई। वरंच महाराज, इन्हीं से मारे जायंगे और इन्हीं को देवता करके पूजेंगे, यहाँ तक कि मेरे शत्रु डाक्टर और विद्वान इसी विस्फोटक के नाश का उपाय टीका लगाना इत्यादि कहेंगे तो भी ये सब उसको शीतला के डर से न मानेंगे और उपाय आछत अपने हाथ प्यारे बच्चों की जान लेंगे।

भारतदु०—तो अच्छा तुम जाओ। महर्घ और टिकस भी यहाँ आते होंगे सो उनको साथ लिए जाओ। अतिवृष्टि, अनावृष्टि की सेना भी वहाँ जा चुकी है। अनैक्य और अंधकार की सहायता से तुम्हें कोई भी रोक न सकेगा। यह लो पान का बीड़ा लो। (बीड़ा देता है)

(रोग बीड़ा लेकर प्रणाम करके जाता है)

भारतदु०—सब, अब कुछ चिंता नहीं, चारों ओर से तो मेरी सेना ने उसको घेर लिया, अब कहाँ बच सकता है।

(आलस्य का * प्रवेश)

आलस्य—हहा! एक पोस्ती ने कहा, पोस्ती ने पी पोस्त नौ दिन चले अढ़ाई कोस। दूसरे ने जवाब दिया, अबे वह पोस्ती न होगा डाक का हरकारा होगा। पोस्ती ने जब पोस्त पी तो या कूँड़ी के उस पार या इस पार ठीक है। एक बारी में हमारे दो चेले लेटे थे और उसी राह से एक सवार जाता था। पहिले ने पुकारा "भाई सवार सवार, यह पक्का आम टपक कर मेरी छाती पर पड़ा है, जरा मेरे मुँह में तो डाल।" सवार ने कहा "अजी तुम बड़े आलसी हो। तुम्हारी छाती पर आम पड़ा है सिर्फ हाथ से उठा कर मुँह में डालने में यह आलस है!" दूसरा बोला "ठीक है साहब, यह बड़ा ही आलसी है। रात भर कुत्ता मेरा मुँह चाटा किया और यह पास ही पड़ा था पर इसने न हाँका।" सच है किस जिंदगी के वास्ते

* मोटा आदमी जँभाई लेता हुआ धीरे-धीरे आवेगा।

तकलीफ़ उठाना, मजे में हालमस्त पड़े रहना। सुख केवल हम में हैं "आलसी पड़े कुएँ में वहीं चैन है।"

(गाता है)

(ग़ज़ल)

दुनिया में हाथ-पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा॥
बिस्तर प मिस्ले लाश पड़े रहना हमेशा।
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा॥
"रहने दो जमीं पर मुझे आराम यहीं है।"
छेड़ो न नक्शेपा हैं मिटाना नहीं अच्छा॥
उठ करके घर से कौन चले यार के घर तक।
"मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा॥"
धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे।
उमरा को हाथ-पैर चलाना नहीं अच्छा॥
सिर भारी चीज है इसे तकलीफ़ हो तो हो।
पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा॥
फाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए।
दुनिया नहीं अच्छी है जमाना नहीं अच्छा॥
सिज़्दे से गर बिहिश्त मिले दूर कीजिये।
दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा॥
मिल जाय हिंदखाक में हम काहिलों को क्या।
ऐ मीरे-फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा॥

और क्या। काज़ीजी दुबले क्यों, कहैं शहर के अंदेशे से। अरे 'कोउ नृप होउ हमें का हानी, चेरि छाँड़ि नहिं होउब रानी।' आनंद से जन्म बिताना। 'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कह गए, सबके दाता राम॥' "जो पढ़तव्यं सो मरतव्यं, जो न पढ़तव्यं सो भी मरतव्यं, तब फिर दंतकटाकट किं कर्तव्यं?" भई जात में ब्राह्मण, धर्म में वैरागी, रोजगार में सूद और दिल्लगी में गप सब से अच्छी। घर बैठे जन्म बिताना, न कहीं जाना और न कहीं आना। बस खाना, हगना, मूतना, सोना, बात बनाना,

तान मारना और मस्त रहना। अमीर के सर पर और क्या सुरखाब का पर होता है, जो कोई काम न करे वही अमीर। 'तवंगरी बदिलस्त न बमाल।'[1] दोई तो मस्त हैं या मालमस्त या हालमस्त। (भारतदुर्दैव को देखकर उसके पास जाकर प्रणाम करके) महाराज! मैं सुख से सोया था कि आपकी आज्ञा पहुँची, ज्यों-त्यों कर यहाँ हाजिर हुआ। अब हुक्म?

भारतदु०—तुम्हारे और साथी सब हिंदुस्तान की ओर भेजे गए हैं, तुम भी वहीं जाओ और अपनी जोगनिन्द्रा से सब को अपने वश में करो।

आलस्य—बहुत अच्छा। (आप ही आप) आह रे बप्पा! अब हिंदुस्तान में जाना पड़ा। तब चलो धीरे-धीरे चलें। हुक्म न मानेंगे तो लोग कहेंगे "सरबस खाइ भोग करि नाना, समर-भूमि भा दुरलभ प्राना।" अरे करने को दैव आपही करेगा, हमारा कौन काम है, पर चलें।

(यही सब बुड़बुड़ाता हुआ जाता है)

(मदिरा * आती है)

मदिरा—भगवान् सोम की मैं कन्या हूँ। प्रथम वेदों ने मधु नाम से मुझे आदर दिया। फिर देवताओं की प्रिया होने से मैं सुरा कहलाई और मेरे प्रचार के हेतु श्रौत्रामणि यज्ञ की सृष्टि हुई। स्मृति और पुराणों में भी प्रवृत्ति मेरी नित्य कही गई। तंत्र तो केवल मेरे ही हेतु बने। संसार में चार मत बहुत प्रबल हैं, हिंदू, बौद्ध, मुसलमान और क्रिस्तान। इन चारों में मेरी चार पवित्र प्रतिमूर्ति विराजमान हैं। सोमपान, बीराचमन, शराबुन्तहूरा और बापटैज़िंग वाइन। भला कोई कहे तो इनको अशुद्ध? या जो पशु हैं उन्होंने अशुद्ध कहा ही तो क्या हमारे चाहने वालों के आगे वे लोग बहुत होंगे तो फी सैकड़े दस होंगे, जगत् में तो हम व्याप्त हैं। हमारे चेले लोग सदा यही कहा करते हैं। और फिर सरकार के राज्य के तो हम एकमात्र भूषण हैं।

---

१. अमीरी हृदय से है, धन से नहीं है।

* साँवली सी स्त्री, लाल कपड़ा, सोने का गहना, पैर में घुँघरू।

दूध सुरा दधिहू सुरा, सुरा अन्न धन धाम।
वेद सुरा ईश्वर सुरा, सुरा स्वर्ग को नाम॥
जाति सुरा विद्या सुरा, बिनु मद रहै न कोय।
सुधरी आजादी सुरा, जगत् सुरामय होय॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु, सैयद सेख पठान।
दै बताइ मोहि कौन जो, करत न मदिरा पान॥
पियत भट्ट के ठट्ट अरु, गुजरातिन के वृंद।
गौतम पियत अनंद सों, पियत अग्र के नंद॥
होटल में मदिरा पियें, चोट लगे नहिं लाज।
लोट लए ठाढ़े रहत, टोटल दैवे काज॥
कोउ कहत मद नहिं पियैं, तो कछु लिख्यो न जाय।
कोउ कहत हम मद्यबल, करत वकीली आय॥
मद्यहि के परभाव सों, रचत अनेकन ग्रंथ।
मद्यहि के परकास सों, लखत धरम को पंथ॥
मद पी बिधि जग को करत, पालत हरि करि पान।
मद्यहि पी कै नाश सब, करत शंभु भगवान॥
विष्णु बारुणी, पोर्ट पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि।
शांपिन शिव गौड़ी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म बिचारि॥
मेरी तो धन बुद्धि बल, कुल लज्जा पति गेह।
माय बाप सुत धर्म सब, मदिरा ही न सँदेह॥
सोक-हरन आनँद-करन, उमगावन सब गात।
हरि मैं तप-बिनु लय-करनि, केवल मद्य लखात॥
सरकारहि मजूर जो मेरो होत उपाय।
तो सब सों बढ़ि मद्य पै देती कर बैठाय॥
हमहीं को या राज की, परम निसानी जान।
कीर्ति-खंभ सी जग गड़ी, जब लौं थिर ससि भान॥
राजमहल के चिन्ह नहिं, मिलिहैं जग इत कोय।
तबहू बोतल टूक बहु, मिलिहैं कांकरेति होय॥

हमारी प्रवृत्ति के हेतु कुछ यत्न करने की आवश्यकता नहीं। मनु पुकारते हैं 'प्रवृत्तिरेषा भूतानां' और भागवत में कहा है 'लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्ति जंतोः।' उस पर भी वर्त्तमान समय की सभ्यता की तो मैं मुख्य मूलसूत्र हूँ। पंच

विषयेंद्रियों के सुखानुभव मेरे कारण द्विगुणित हो जाते हैं। संगीत-साहित्य की तो एकमात्र जननी हूँ। फिर ऐसा कौन है जो मुझसे विमुख हो ?

(गाती है)

(राग काफी, धनाश्री का मेल, ताल धमार)

मदवा पीले पागल जोबन बीत्यौ जात।
बिनु मद जगत सार कछु नाहीं मान हमारी बात॥
पी प्याला छक छक आनँद से नितहि साँझ और प्रात।
झूमत चल डगमगी चाल से मारि लाज को लात॥
हाथी मच्छड़, सूरज जुगनू जाके पिये लखात।
ऐसी सिद्धि छोड़ि मन मूरख काहे ठोकर खात॥

(राजा को देखकर) महाराज ! कहिए क्या हुक्म है ?

भारतदु०—हमने बहुत से अपने वीर हिंदुस्तान में भेजे हैं परंतु मुझको तुमसे जितनी आशा है उतनी और किसी से नहीं है। जरा तुम भी हिंदुस्तान की तरफ जाओ और हिंदुओं से समझो तो।

मदिरा—हिंदुओं के तो मैं मुद्दत से मुँहलगी हूँ, अब आपकी आज्ञा से और भी अपना जाल फैलाऊँगी और छोटे-बड़े सबके गले का हार बन जाऊँगी। [जाती है

(रंगशाला के दीपों में से अनेक बुझा दिए जायँगे)

(अंधकार का प्रवेश)

[आँधी आने की भाँति शब्द सुनाई पड़ता है]

अंधकार—(गाता हुआ स्खलित नृत्य करता है)

(राग काफी)

जै जै कलियुग राज की, जै महामोह महराज की।
अटल छत्र सिर फिरत थाप जग मानत जाके काँज की॥
कलह अविद्या मोह मूढ़ता सबै नास के साज की॥

हमारा सृष्टि-संहार-कारक भगवान् तमोगुण जी से जन्म है। चोर, उलूक और लंपटों के हम एकमात्र जीवन है। पर्वतों

की गुहा, शोकितों के नेत्र, मूर्खों के मस्तिष्क और खलों के चित्त में हमारा निवास है। हृदय के और प्रत्यक्ष, चारों नेत्र हमारे प्रताप से बेकाम हो जाते हैं। हमारे दो स्वरूप हैं, एक आध्यात्मिक और एक आधिभौतिक, जो लोक में अज्ञान और अँधेरे के नाम से प्रसिद्ध हैं। सुनते हैं कि भारतवर्ष में भेजने को मुझे मेरे परम पूज्य मित्र दुर्दैव महाराज ने आज बुलाया है। चलें देखें क्या कहते हैं (आगे बढ़कर) महाराज की जय हो, कहिए, क्या अनुमति है ?

भारतदु०—आओ मित्र ! तुम्हारे बिना तो सब सूना था। यद्यपि मैंने अपने बहुत से लोग भारतविजय को भेजे हैं पर तुम्हारे बिना सब निर्बल हैं। मुझको तुम्हारा बड़ा भरोसा है, अब तुमको भी वहाँ जाना होगा।

अंध०—आपके काम के वास्ते भारत क्या वस्तु है, कहिए मैं विलायत जाऊँ।

भारतदु०—नहीं, विलायत जाने का अभी समय नहीं, अभी वहाँ त्रेता, द्वापर है।

अंध०—नहीं, मैंने एक बात कही। भला जब तक वहाँ दुष्टा विद्या का प्राबल्य है, मैं वहाँ जाही के क्या करूँगा ! गैस और मैगनीशिया से मेरी प्रतिष्ठा भंग न हो जायगी।

भारतदु०—हाँ, तो तुम हिंदुस्तान में जाओ और जिसमें हमारा हित हो सो करो। बस "बहुत बुझाइ तुमहिं का कहऊँ, परम चतुर मैं जानत अहऊँ।"

अंध०—बहुत अच्छा, मैं चला। बस जाते ही देखिए क्या करता हूँ।

(नेपथ्य में बैतालिक गान और गीत की समाप्ति में क्रम से पूर्ण अंधकार और पटाक्षेप)

निहचै भारत को अब नास।
जब महराज विमुख उनसों तुम निज मति करी प्रकास॥
अब कहुँ सरन तिन्हैं नहिं मिलिहै ह्वैहै सब बल चूर।
बुधि विद्या धन धान सबै अब तिनको मिलिहैं धूर॥
अब नहिं राम धर्म अर्जुन नहिं शाक्यसिंह अरु व्यास।

फरिहै कौन पराक्रम इनमें को दैहे अब आस ॥
सेवाजी रनजीतसिंह हू, अब नहिं बाकी जौन ।
करिहैं कछू नाम भारत को अब तो सब नृप मौन ॥
वही उदैपुर जैपुर रीवाँ पन्ना आदिक राज ।
परबस भए न सोच सकहिं कछु करि निज बल बेकाज ॥
अँगरेजहु को राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़ ।
स्वारथ-पर विभिन्न-मति-भूले हिंदू सब ह्वै मूढ़ ॥
जग के देस बढ़त बदि-बदि के सब बाजी जेहि काल ।
ताहू समय रात इनको है ऐसे ये बेहाल ॥
छोटे चित्त अति भीरु बुद्धि मन चंचल बिगत उछाह ।
उदर-भरन-रत, ईस-विमुख सब भए प्रजा नरनाह ॥
इनसों कछू आस नहिं ये तो सब बिधि बुधि-बल-हीन ।
बिना एकता-बुद्धि-कला के भए सबहि बिधि दीन ॥
बोझ लादि कै पैर छानि कै निज-सुख करहु प्रहार ।
ये रासभ से कछु नहिं कहिहैं मानहु छमा-अगार ॥
"हित अनहित पशु पंछी जाना" पै ये जानहिं नाहिं ।
भूले रहत आपुने रँग मैं फँसे मूढ़ता माहिं ॥
जे न सुनहिं हित, भलो करहिं नहि तिनसों आसा कौन ।
डंका दै निज सैन साजि अब करहु उतै सब गौन ॥

(जवनिका गिरती है)

पाँचवाँ अंक

स्थान—किताबखाना

(सात सभ्यों की एक छोटी सी कमेटी; सभापति चक्करदार टोपी पहने, चश्मा लगाए, छड़ी लिए; छः सभ्यों में एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक अखबार हाथ में लिए एडिटर, एक कवि और दो देशी महाशय)

सभापति—(खड़े होकर) सभ्यगण ! आज की कमेटी का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारतदुर्दैव की, सुना है कि, हम लोगों पर चढ़ाई है। इस हेतु आप लोगों को उचित है कि मिलकर ऐसा उपाय सोचिए कि जिससे हम लोग इस भावी आपत्ति से बचें। जहाँ तक हो सके अपने देश की रक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य धर्म है। आशा है कि आप सब लोग अपनी-अपनी अनुमति प्रगट करेंगे। (बैठ गए, करतलध्वनि)

बंगाली—(खड़े होकर) सभापति साहब जो बात बोला सो बहुत ठीक है। इसका पेशतर कि भारतदुर्दैव हम लोगों का शिर पर आ पड़े कोई उसके परिहार का उपाय शोचना अत्यंत आवश्यक है किंतु प्रश्न एई है जे हम लोग उसका दमन करने शाकता कि हमारा बोर्ज्जोबल के बाहर का बात है। क्यों नहीं शाकता ? अलबत्त शकैगा, परंतु जो शब लोग एक मत्त होगा। (करतलध्वनि) देखो हमारा बंगाल में इसका अनेक उपाय शाधन होते हैं। ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन लीग इत्यादि अनेक शभा भी होते हैं। कोई थोड़ा बी बात होता हम लोग मिल के बड़ा गोल करते। गवर्नमेंट तो केवल गोल-माल शे भय खाता। और कोई तरह नहीं शोनता। ओ हुआँ का अखबार वाला सब एक बार ऐसा शोर करता कि गवर्नमेंट को अलबत्त शुनने होता। किंतु हेंयाँ, हम देखते हैं कोई कुछ नहीं बोलता। आज शब आप सभ्य लोग एकत्र हैं, कुछ उपाय इसका अवश्य शोचना चाहिए। (उपवेशन)

प० देशी—(धीरे से) यहीं, मगर जब तक कमेटी में हैं तभी तक। बाहर निकले कि फिर कुछ नहीं !

दू० देशी—(धीरे से) क्यों भाई साहब, इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे ?

एडिटर—(खड़े होकर) हम अपने प्राणपण से भारत दुर्दैव को हटाने को तैयार हैं। हमने पहिले भी इस विषय में एक बार अपने पत्र में लिखा था परंतु यहाँ तो कोई सुनता ही नहीं। अब जब सिर पर आफत आई तो आप लोग उपाय सोचने लगे। भला अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जो कुछ सोचना हो जल्द सोचिए। (उपवेशन)

कवि—(खड़े होकर) मुहम्मदशाह से भाँड़ों ने दुश्मन की फौज से बचने का एक बहुत उत्तम उपाय कहा था। उन्होंने बतलाया कि नादिरशाह के मुकाबले में फौज न भेजी जाय। जमना-किनारे कनात खड़ी कर दी जायँ, कुछ लोग चूड़ी पहिने कनात के पीछे खड़े रहें। जब फौज इस पार उतरने लगे, कनात के बाहर हाथ निकाल कर उँगली चमकाकर कहें "मुए इधर न आइयो इधर जनाने हैं"। बस सब दुश्मन हट जायँगे। यही उपाय भारतदुर्दैव से बचने को क्यों न किया जाय।

बंगाली—(खड़े होकर) अलबत्त, यह भी एक उपाय है किंतु असभ्यगण आकर जो स्त्री लोगों का विचार न करके सहसा कनात को आक्रमण करेगा तो ? (उपवेशन)

एडि०—(खड़े होकर) हमने एक दूसरा उपाय सोचा है, एडूकेशन की एक सेना बनाई जाय। कमेटी की फौज। अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जायँ। आप लोग क्या कहते हैं ? (उपवेशन)

दू० देशी—मगर जो हाकिम लोग इससे नाराज हों तो ?
(उपवेशन)

बंगाली—हाकिम लोग काहे को नाराज होगा। हम लोग शदा चाहता कि अँगरेजों का राज्य उत्पन्न न हो, हम लोग केवल अपना बचाव करता। (उपवेशन)

महा०—परंतु इसके पूर्व यह होना अवश्य है कि गुप्त रीति से यह बात जाननी कि हाकिम लोग भारतदुर्दैव की सैन्य से मिल तो नहीं जायँगे।

दू० देशी—इस बात पर बहस करना ठीक नहीं। नाहक कहीं लेने के देने न पड़ें, अपना काम देखिए। (उपवेशन और आप ही आप) हाँ, नहीं तो अभी कल ही झाड़बाज़ी होय।

महा०—तो सार्वजनिक सभा का स्थापन करना। कपड़ा बीनने की कल मँगानी। हिंदुस्तानी कपड़ा पहिनना। यह भी सब उपाय हैं।

दू० देशी—(धीरे से) बनात छोड़कर गज़ी पहिरेंगे, हें हें।

एडि०—परंतु अब समय थोड़ा है जल्दी उपाय सोचना चाहिए।

कवि—अच्छा तो एक उपाय यह सोचो कि सब हिंदू मात्र अपना फैशन छोड़कर कोट-पतलून इत्यादि पहिरें जिसमें जब दुर्दैव की फौज आवे तो हम लोगों को योरोपियन जानकर छोड़ दे।

प० देशी—पर रंग गोरा कहाँ से लावेंगे?

बंगाली—हमारा देश में भारतउद्धार नामक एक नाटक बना है। उसमें अँगरेजों को निकाल देने का जो उपाय लिखा, सोई हम लोग दुर्दैव का वास्ते काहे न अवलंबन करें। ओ लिखता पाँच जन बंगाली मिल के अँगरेजों को निकाल देगा। उसमें एक तो पिशान लेकर स्वेज का नहर पाट देगा। दूसरा बाँस काट-काट के पिंवरी नामक जलयंत्र विशेष बनावेगा। तीसरा उस जलयंत्र से अँगरेजों की आँख में धूर और पानी डालेगा।

महा०—नहीं नहीं, इस व्यर्थ की बात से क्या होना है। ऐसा उपाय करना जिससे फलसिद्धि हो।

प० देशी—(आप ही आप) हाय! यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिलकर एक-चित्त हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो, जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो। क्रमशः सब कुछ हो जायगा।

एडि०—आप लोग नाहक इतना सोच करते हैं, हम ऐसे-ऐसे आर्टिकिल लिखेंगे कि उसके देखते ही दुर्दैव भागेगा।

कवि—और हम ऐसी ही ऐसी कविता करेंगे।

प० देशी—पर उनके पढ़ने का और समझने का अभी संस्कार किसको है ?

(नेपथ्य में से)

भागना मत, अभी मैं आती हूँ।

(सब डरके चौकन्ने से होकर इधर-उधर देखते हैं)

दू० देशी—(बहुत डरकर) बाबा रे, जब हम कभेटी में चले थे तब पहिले ही छींक हुई थी। अब क्या करें। (टेबुल के नीचे छिपने का उद्योग करता है)

(डिसलायलटी * का प्रवेश)

सभापति—(आगे से ले आकर बड़े शिष्टाचार से) आप क्यों यहाँ तशरीफ लाई हैं ? कुछ हम लोग सर्कार के विरुद्ध किसी प्रकार की सम्मति करने को नहीं एकत्र हुए हैं। हम लोग अपने देश की भलाई करने को एकत्र हुए हैं।

डिसलायलटी—नहीं, नहीं, तुम सब सर्कार के विरुद्ध एकत्र हुए हो, हम तुमको पकड़ेंगे।

बंगाली—(आगे बढ़कर क्रोध से) काहे को पकड़ेगा, कानून कोई वस्तु नहीं है। सर्कार के विरुद्ध कौन बात हम लोग बोला ? व्यर्थ का विभीषिका !

डिस०—हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है। कवि-वचन-सुधा नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी ? फिर क्यों उसके पकड़ने को हम भेजे गए ? हम लाचार हैं।

दू० देशी—(टेबुल के नीचे से रोकर) हम नहीं, हम नहीं, हम तमाशा देखने आए थे।

महा०—हाय-हाय ! यहाँ के लोग बड़े भीरु और कापुरुष हैं। इसमें भय की कौन बात है ! कानूनी है।

सभा०—तो पकड़ने का आपको किस कानून से अधिकार है ?

---

* पुलिस की वर्दी पहिने।

डिस०—इँगलिश पालिसी नामक ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से।

महा०—परंतु तुम ?

दू० देशी—(रोकर) हाय-हाय ! भटवा तुम कहता है अब मरे।

महा०—पकड़ नहीं सकतीं, हमको भी दो हाथ दो पैर हैं। चलो हम लोग तुम्हारे संग चलते हैं, सवाल जवाब करेंगे।

बंगाली—हाँ चलो, ओ का बात—पकड़ने नहीं शेकता।

सभा०—(स्वगत) चेयरमैन होने से पहिले हमी को उत्तर देना पड़ेगा, इसी से किसी बात में हम अगुआ नहीं होते।

डिस०—अच्छा चलो। (सब चलने की चेष्टा करते हैं)

(जवनिका गिरती है)

—०:०—

छठा अंक

स्थान—गंभीर वन का मध्यभाग

(भारत एक वृक्ष के नीचे अचेत पड़ा है)

(भारतभाग्य का प्रवेश)

भारतभाग्य—(गाता हुआ—राग चैती गौरी)

जागो जागो रे भाई !
सोअत निसि बैस गँवाई । जागो जागो रे भाई ॥
निसि की कौन कहै दिन बीत्यो काल राति चलि आई ।
देखि परत नहिं हित-अनहित कछु परे बैरि-बस जाई ॥
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई ।
अबहूँ चेति, पकरि राखो किन जो कछु बची बड़ाई ॥
फिर पछिताए कछु नहिं ह्वैहै रहि जैहौ मुँह बाई ।
जागो जागो रे भाई ॥

(भारत को जगाता है और भारत जब नहीं जागता तब अनेक यत्न से फिर जगाता है, अंत में हारकर उदास होकर)

हाय ! भारत को आज क्या हो गया है ? क्या निस्संदेह परमेश्वर इससे ऐसा ही रूठा है ? हाय क्या अब भारत के फिर वे दिन न आवेंगे ? हाय यह वही भारत है जो किसी समय सारी पृथ्वी का शिरोमणि गिना जाता था ?

भारत के भुज-बल जग रक्षित ।
भारत विद्या लहि जग सिच्छित ॥
भारत तेज जगत बिस्तारा ।
भारत भय कंपत संसारा ॥
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए ।
थर-थर कंपत नृप डरपाए ॥
जाके जय की उज्जल गाथा ।
गावत सब महि मंगल साथा ॥

भारत किरिन जगत उँजियारा।
भारत जीव जिअत संसारा॥
भारत वेद कथा इतिहासा।
भारत वेद प्रथा परकासा॥
फिनिक मिसिर सीरीय युनाना।
मे पंडित लहि भारत दाना॥
रह्यौ रुधिर जब आरज-सीसा।
ज्वलित अनल समान अवनीसा॥
साहस बल इन सम कोउ नाहीं।
तबै रह्यौ महिमंडल माहीं॥
कहा करी तकसीर तिहारी।
रे बिधि रुष्ट याहि की बारी॥
सबै सुखी जग के नर-नारी।
रे बिधना भारत हि दुखारी॥
हाय रोम तू अति बड़भागी।
बर्बर तोहि नास्यो जय लागी॥
तोड़े कीरति-थंभ अनेकन।
ढाहे गढ़ बहु करि प्रण टेकन॥
मंदिर महलनि तोरि गिराए।
सबै चिह्न तुव धूरि मिलाए॥
कछु न बची तुव भूमि निसानी।
सो बरु मेरे मन अति मानी॥
भारत भाग न जात निहारे।
थाप्यो पग ता सीस उघारे॥
तोरयो दुर्गन महल ढहायो।
तिनहीं में निज गेह बनायो॥
ते कलंक सब भारत केरे।
ठाढ़े अजहूँ लखो घनेरे॥
काशी प्राग अयोध्या नगरी।
दीन रूप सम ठाढ़ी सगरी॥
चंडालहु जेहि निरखि घिनाई।
रहीं सबै भुव मुँह मसि लाई॥

हाय पंचनद हा पानीपत।
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत॥
हाय चित्तौर निलज तू भारी।
अजहुँ खरो भारतहि मँझारी॥
जा दिन तुव अधिकार नसायो।
सो दिन क्यों नहिं धरनि समायो॥
रह्यो कलंक न भारत नामा।
क्यों रे तू बारानसि धामा॥
सब तजि कै भजि कै दुखभारो।
अजहुँ बसत करि भुव मुख कारो॥
अरे अग्रवन तीरथराजा।
तुमहुँ बचे अबलौं तजि लाजा॥
पापिनि सरजू नाम धराई।
अजहूँ बहत अवधतट जाई॥
तुम में जल नहिं जमुना गंगा।
बढ़हु बेग करि तरल तरंगा॥
धोवहु यह कलंक की रासी।
बोरहु किन झट मथुरा कासी॥
कुस कन्नौज अंग अरु बंगहि।
बोरहु किन निज कठिन तरंगहि॥
बोरहु भारत भूमि सबेरे।
मिटै करक जिय की तब मेरे॥
अहो भयानक भ्राता सागर।
तुम तरंगनिधि अति बल-आगर॥
बोरे बहु गिरि बन अस्थाना।
पै बिसरे भारत हित जाना॥
बढ़हु न बेगि धाइ क्यों भाई।
देहु भरत भुव तुरत डुबाई॥
घेरि छिपावहु विंध्य हिमालय।
करहु सकल जल भीतर तुम लय॥
धोवहु भारत अपजस पंका।
मेटहु भारतभूमि कलंका॥

हाय ! यहीं के लोग किसी काल में जगन्मान्य थे।

जेहि छिन बलभारे हे सबै तेग धारे।
तब सब जग धाई फेरते हे दुहाई॥
जग सिर पग धारे धावते रोस भारे।
बिपुल अवनि जीती पालते राजनीती॥
जग इन बल काँपै देखिकै चंड दापै।
सोइ यह प्रिय मेरे ह्वै रहे आज चेरे॥

ये कृष्ण-बरन जब मधुर तान।
करते अमृतोपम बेद-गान॥
तब मोहत सब नर-नारि-वृंद।
सुनि मधुर बरन सज्जित सुछंद॥
जग के सबही जन धारि स्वाद।
सुनते इनहीं को बीन नाद॥
इनके गुन होतो सबहि चैन।
इनहीं कुल नारद तानसैन॥
इनहीं के क्रोध किए प्रकास।
सब काँपत भूमंडल अकास॥
इनहीं के हुंकृति शब्द घोर।
गिरि काँपत हे सुनि चारु ओर॥
जब लेत रहे कर में कृपान।
इनहीं कहँ हो जग तृन समान॥
सुनि कै रनबाजन खेत माहिं।
इनहीं कहँ हो जिय सक नाहिं॥

याही भुव महँ होत है हीरक, आम कपास।
इतही हिमगिरि गंगजल काव्य गीत परकास॥
जाबाली जैमिनि, गरग पातंजलि सुकदेव।
रहे भारतहि अंक में कबहिं सबै भुवदेव॥
याही भरत मध्य में रहे कृष्ण, मुनि व्यास।
जिनके भारत-गान सों भारत-बदन प्रकास॥
याही भारत में रहे कपिल, सूत दुरवास।
याही भारत में भए शाक्य सिंह संन्यास॥

याही भारत में गए मनु भृगु आदिक होय।
तब तिनसों जग में रह्यो घृना करत नहिं कोय॥
जासु काव्य सों जगत मधि अब लौं ऊँचो सीस।
जासु राज बल धर्म की तृषा करहिं अवनीस॥
सोई व्यास अरु राम के बंस सबै संतान।
ये मेरे भारत भरे सोइ गुन रूप समान॥
सोई बस रुधिर वही सोई मन बिस्वास।
वही बासना चित वही आसय वहीं विलास॥
कोटि कोटि ऋषि पुन्य तन कोटि कोटि अति सूर।
कोटि कोटि बुध मधुर कवि मिले यहाँ की धूर॥
सोइ भारत की आज यह भई दुरदसा हाय।
कहा करैं कित जायँ नहिं सूझत कछू उपाय॥

(भारत को फिर उठाने की अनेक चेष्टा करके उपाय निष्फल होने पर रोकर)

हा! भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब इस के उठने की आशा नहीं। सच है, जो जान-बूझकर सोता है उसे कौन जगा सकेगा? हा दैव! तेरे विचित्र चरित्र हैं, जो कल राज करता था वह आज जूते में टाँका उधार लगवाता है। कल जो हाथी पर सवार फिरते थे आज नंगे पाँव बन-बन की धूल उड़ाते फिरते हैं। कल जिनके घर लड़के-लड़कियों के कोलाहल से कान नहीं दिया जाता था, आज उनका नाम लेवा और पानी देवा कोई नहीं बचा और कल जो घर अन्न धन पूत लक्ष्मी हर तरह से भरे-पूरे थे आज उन घरों में तू ने दिया बालनेवाला भी नहीं छोड़ा।

हा! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार से ऊँचा है, उस भारत की यह दुर्दशा! जिस भारतवर्ष के राजा चंद्रगुप्त और अशोक का शासन रूम-रूस तक माना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा! जिस भारत में राम, युधिष्ठिर, नल, हरिश्चंद्र, रंतिदेव, शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हैं उसकी यह दशा!

हाय, भारत भैया, उठो ! देखो विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है। अब सोने का समय नहीं है। अँगरेज का राज्य पाकर भी न जगे तो कब जागोगे। मूर्खों के प्रचंड शासन के दिन गए, अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना। विद्या की चरचा फैल चली, सबको सब कुछ कहने-सुनने का अधिकार मिला, देश-विदेश से नई नई विद्या और कारीगरी आई। तुमको उस पर भी वही सीधी बातें, भाँग के गोले, ग्रामगीत, वही बाल्यविवाह, भूत-प्रेत की पूजा, जन्मपत्री की विधि ! वही थोड़े में संतोष, गप हाँकने में प्रीति और सत्यानाशी चालें ! हाय अब भी भारत की यह दुर्दशा ! अरे अब क्या चिता पर सम्हलेगा। भारत भाई ! उठो, देखो, अब यह दुःख नहीं सहा जाता, अरे कब तक बेसुध रहोगे ? उठो, देखो, तुम्हारी संतानों का नाश हो गया। छिन्न-भिन्न होकर सब नरक की यातना भोगते हैं, उसपर भी नहीं चेतते। हाय ! मुझसे तो अब यह दशा नहीं देखी जाती। प्यारे जागो। (जगाकर और नाड़ी देखकर) हाय इसे तो बड़ा ही ज्वर चढ़ा है ! किसी तरह होश में नहीं आता। हा भारत ! तेरी क्या दशा हो गई ! हे करुणासागर भगवान् इधर भी दृष्टि करं। हे करुणासागर भगवान् इधर भी दृष्टि कर। हे भगवती राजराजेश्वरी, इसका हाथ पकड़ो। (रोकर) अरे कोई नहीं जो इस समय अवलंब दे। हा ! अब मैं जी के क्या करूँगा ? जब भारत ऐसा मेरा मित्र इस दुर्दशा में पड़ा है और उसका उद्धार नहीं कर सकता, तो मेरे जीने पर धिक्कार है ! जिस भारत का मेरे साथ अब तक इतना संबंध था उसकी ऐसी दशा देखकर भी मैं जीता रहूँ तो बड़ा कृतघ्न हूँ ! (रोता है) हा विधाता, तुझे यही करना था ! (आतंक से) छिः छिः इतना कलैव्य क्यों ? इस समय यह अधीरजपना ! बस, अब धैर्य ! (कमर से कटार निकालकर) भाई भारत ! मैं तुम्हारे ऋण से छूटता हूँ ! मुझसे वीरों का कर्म नहीं हो सकता। इसी से कातर की भाँति प्राण देकर उऋण होता हूँ। (ऊपर हाथ उठाकर) हे सर्वांतर्यामी ! हे परमेश्वर ! जन्म-

जन्म मुझे भारत सा भाई मिले ! जन्म जन्म गंगा-यमुना के किनारे मेरा निवास हो !

(भारत का मुँह चूमकर और गले लगाकर)

भैया, मिल लो, अब मैं बिदा होता हूँ। भैया, हाथ क्यों नहीं उठाते ? मैं ऐसा बुरा हो गया कि जन्म भर के वास्ते मैं बिदा होता हूँ तब भी ललककर मुझसे नहीं मिलते। मैं ऐसा ही अभागा हूँ तो ऐसे अभागे जीवन ही से क्या, बस यह लो। (कटार का छाती में आघात और साथ ही जवनिका पतन)

जननी

ओपेरा

१६३४

हरिश्चंद्र चंद्रिका दिसम्बर सन् १८७७ ई०
में प्रकाशित

भारत जननी

—:❀०❀:—

[सूत्रधार आता है]

(भैरव ताल इकताला)

सू०—जगतपिता जगजीवन जागो मंगल मुख दरसाओ ।
तुव सोए सबही मनु सोए तिन कहँ जागि जगाओ ॥
अब बिनु जागे काज सरत नहिं आलस दूरि बहाओ ।
हे भारत भुवनाथ भूमि निज बूड़त आनि बचाओ ॥

भारतभूमि और भारतसंतान की दुर्दशा दिखाना ही इस भारत जननी की इति कर्तव्यता है और आज जो यह आर्य्य वंश का समाज यह खेल देखने को प्रस्तुत है उसमें से एक मनुष्य भी यदि इस भारतभूमि के सुधारने में एक दिन भी यत्न करे तो हमारा परिश्रम सफल है ।

(जाता है)

स्थान—बड़ा भारी खंडहर

(एक टूटे देवालय की सहन में एक मैली साड़ी पहिने बाल खोले भारत-जननी निद्रित सी बैठी है, भारत संतान इधर उधर सो रहे हैं । भारत-सरस्वती आती है, सफेद चद्दर जात छोड़ी जाय, गाती हुई, ठुमरी)

भा० स०—क्यों माता मुख मलिन होय रहि जिय मैं कहा उदासी ।
क्यों घर छोड़ि त्यागि आभूषन बैठी ह्वै बनबासी ॥
कहाँ गई वह मुख की सोभा कित वह तेज गँवायो ।
कित वह श्री-बल-बुधि-उछाह सब कछु नहिं आज लखायो ॥
कहाँ गयो वह राजभवन, कित धवले धाम बिनसाए ।
कहँ वह ओज-प्रताप नसानो, वैभव कितहि दुराए ॥
सदा प्रसन्न तेजजुत मुख तुव बाल-अरक छबि छाजै ।
सो दिन-ससि-सम पीत बरन ह्वै आजु तेज बिन राजै ॥

धूरि भरी तुव अलक देखि कै मेरो जिय अकुलाई।
छत्र चँवर नित दुरत जौन मुख तहँ मनु छुटत हवाई॥
कित सब वेद पुरान शास्त्र उपवेद अंग सह भागे।
दरसन दुरे कितै जिन के बल तुव प्रताप जग जागे॥
आजु न कोऊ संग अकेली दीन होइ बिलखाई।
बैठी क्यों इत जननि कहो क्यों बुधि-गुन-ज्ञान नसाई॥ १॥

(भारत माता के पास जाकर कई बेर जगा कर)

(परज कलिंगड़ा)

क्यों बोलत नहिं मुख माय बचन,
जिय व्याकुल बिन तुव अमृत बयन।
क्यों रूस रही अपराध बिना,
नहिं खोलत क्यों तुम जुगल नयन॥
बिनती न सुनत हित जिय न गुनत,
भई मौन कियो जागत ही सयन।
मुख खोलौ बोलौ बलि बलि गई,
दिन ही में काहे करत रयन॥
बिछुरत अब फिर कठिन मिलन,
लै जात यवन मोहि करि कै जयन॥

(अंत का तुक गाते और रोते रोते भारत-सरस्वती जाती है)

(भारत-दुर्गा आती है, लाल चंद्रजोत छूटे)

(राग बसंत)

भा० दु०—भारत जननी जिय क्यो उदास।
बैठी इकली कोउ नाहिं पास॥
किन देखहु यह रितु-पति प्रकास।
फूलीं सरसों बन करि उजास॥
खेतन मैं पकि रहे लखहु धान।
पियरान लगे भरि स्वाद पान॥
रितु बदलि चली देखहु सुजान।
अबहूँ तौ चेतौ धारि ज्ञान॥
भयो सुखद सिसिर को माय अंत।
लखि सबहिन मिलि गायो बसंत॥

तब क्यों न बाँधि कंकन समंत।
साजत केसरिया भूमि-कंत ॥

)(होली)

भारत में मची है होरी।
इक ओर भाग अभाग एक दिसि होय रही झकझोरी।
अपनी अपनी जय सब चाहत होड़ परी दुहुँ ओरी ॥
दुंद सखि बहुत बढ़ोरी ॥ १ ॥

धूर उड़त सोइ अबिर उड़ावत सब को नयन भरोरी।
दीन दसा अँसुवन पिचकारिन सब खिलार भिंजयोरी ॥
भींजि रहे भूमि लटोरी ॥ २ ॥

भइ पतझार तत्व कहुँ नाहीं सोइ बसंत प्रगटो री।
पीरे मुख भई प्रजा दीन है सोई फूली सरसों री ॥
सिसिर को अंत भयो री ॥ ३ ॥

बौराने सब लोग न सूझत आम सोई बौरयौ री।
कुहू कहत कोकिल ताही तें महा अँधार छयौ री ॥
रूप नहिं काहु लख्यो री ॥ ४ ॥

हारयौ भाग अभाग जीत लखि बिजय निसान हयो री।
तब उछाह श्रीधन बुधि बल सब फगुआ माहिं लयोरी ॥
सेस कछु रहि न गयोरी ॥ ५ ॥

गारी बकत कुफार जीति दल तासु न सोच लयोरी।
मूरख कारो काफिर आधो सिच्छित सबहि भयोरी ॥
उत्तर काहू न दयोरी ॥ ६ ॥

उठौ उठौ भैया क्यों हारौ अपुन रूप सुमिरोरी।
राम युधिष्ठिर बिक्रम की तुम झटपट सुरत करोरी ॥
दीनता दूर धरो री ॥ ७ ॥

कहाँ गये क्षत्री किन उन के पुरषारथहिं हरोरी ॥
चूड़ी पहिरि स्वाँग बनि आए धिक धिक सबन कह्योरी ॥
भेस यह क्यों पकरो री ॥ ८ ॥

धिक वह मात पिता जिन तुम सों कायर पुत्र जन्यो री।
धिक वह घरी जनम भयो जामैं यह कलंक प्रगटो री ॥

जनमतहि क्यों न मरो री ॥ ९ ॥[1]
खान पियन अरु लिखन पढ़न सों काम न कछू चलो री।
आलस छोड़ि एक मत ह्वै कै सोंचौ वृद्धि करोरी॥
समय नहिं नेकु बचोरी॥ १०॥

उठौ उठौ सब कमरन बाँधौ शस्त्रन सान धरोरी;
बिजय निसान बजाइ बावरे आगेइ पाँव धरोरी॥
छबीलिन रंग रँगोरी॥ ११॥

आलस मैं कछु काम न चलिहै सब कछु तो बिनसोरी।
कित गयो धन बल राज पाट सब[2] कोरो नाम बचोरी॥
तऊ नहिं सुरत करोरी॥ १२॥

कोकिल एहि बिधि बहु बकि हार्‌यो काहू नाहिं सुनोरी।
मेटो सकल कुमेटी थोथी पोथी पढ़त मरोरी॥
काज नहिं तनिक सरोरी॥ १३॥

चालिस दिन इमि खेलत बीते खेल नहीं निपट्यो री।
भयो पंक अति रग को तामै गज को जूथ फँसोरी॥
न कोउ बिधि निकसि सकोरी॥ १४॥

कंकन बाँधौ करमें सबरे चूसी डारहु तोरी।
एक मंतो करि दृढ़ ह्वै सबरे आगेहि चरन धरौं री॥
मजा बहु गहिरी होरी॥ १५॥

अबलन सों जनि डरहु धाइ दृढ़ करि कै करन गहोरी।
निपट निलज करिके झकझोरहु अरुन रंग में बोरी॥
छबीलिन रंग रँगोरी॥ १६॥[3]

खेलत खेलत पूनम आई भारी खेल मचोरी।
चलत कुमकुमा रँग पिचकारी अरु गुलाल की झोरी॥
बजत डफ राग जमोरी॥ १७॥[4]

---

१. ६-९ तक पद भा० जी० प्रति तथा मधुमुकुल में नहीं हैं।
२. पाठा०—कल विवेक अब।
३. १५-१६ पद केवल भारत जीवन की प्रति में हैं।
४. भा० जी० प्रति में नहीं है।

होरी सब ठाँवन लै राखी पूजत लै लै रोरी।
घर के काठ डारि सब दीने गावत गीतन गोरी॥
झूमका झूमि रहो री॥ १८॥

तेज बुद्धि बल धन अरु साहस उद्यम सूरपनो री।
होरी में सब स्वाहा कीनी पूजन होत भलो री॥
करत फेरी तब कोरी॥ १९॥[1]

फेर घुरहरी भई दूसरे दिन जब अगिन बुझोरी।
सब कछु जरि गयो होरी में तब धूरहि धूर बचो री॥
नाम जमघंट परो री॥ २०॥

फूक्यौ सब कछु भारत नै कछु हाथ न हाय रहो री।
तब रोअन मिस चैती गाई भली भई यह होरी॥
भलो त्योहार भयो री॥ २१॥

(रोती हुई भारत-जननी की ठोढ़ी पर हाथ रख कर)

(राग चैती)

अब हम जात हो परदेसवाँ कठिन फिर होइहैं मिलनवाँ हो रामा।
अरे मुखहू न कोई बोलै कोई न आदर देय मोरे रामा।
अरे सपनेहु न मोर पियरवा रे भुजभर मोहि लेय॥
अरे अबहूँ न सोचत लोगवा मति सब गई बौराय हो रामा।
हमरे बिन सब जरि जरि मरिहैं करि करि कै हाय हो रामा॥
हम रूसि चली परदेसवाँ फिर नहिं आवन होय हो रामा।
अरे बिन आदर तनिकौ पाए जात बिदेस हम रोय हो रामा॥

(रोते रोते हाथ की तलवार को दो टुकड़े तोड़कर भारतदुर्गा जाती है। भारतलक्ष्मी आती है, हरी चन्द्रज्योत छूटे।)

(सोरठ)

भा० ल०—मलिन मुख भारत-माता तेरो।
बारि झरत दिन रैन नैन सो लखि दुख होत घनेरो।
तुव मुख-ससि देखत मन-जलनिधि बढ़त रह्यो चहुँ फेरो।
सोइ मुख आजु बिलोकत दुख सों फट्यो जात हिय मेरो॥

---

१. १९ दोनों में नहीं है।

(मलार)

लखौ किन भारतवासिन की गति।
मदिरा मत्त भये से सोअत ह्वै अचेत तजि सब मति॥
घन गरजै जल बरसै इन पर बिपति परै किन आई।
ये बजमारे तनिक न चौंकत ऐसी जड़ता छाई॥
भयो घोर अँधियार चहूँ दिसि तामहँ बदन छिपाए।
निरलज परे खोइ आपुनपौ जागत हू न जगाए॥
कहा करैं इत रहिकै अब जिय ताखौं यहै बिचारा।
छोड़ि मूढ़ इन कहँ अचेत हम जात जलधि के पारा॥

(अन्त का तुक गाते गाते और रोते रोते भारत-लक्ष्मी का प्रस्थान)

भारतमाता—(आँखें खोल कर) हाय क्या हुआ? क्या लक्ष्मी अंतर्ध्यान हो गई? हा! मैं ऐसी पापिनी हूँ कि नेत्रों के सामने आने पर भी उसे आँख भर न देखा, भलीभाँति उसे पहिचान भी न सकी। (चिंता से) नहीं नहीं अंतर्ध्यान नहीं हुई, अभी तो वह हम को बहुत कुछ कह रही थी, बहुत उरहना देती थी और बहुत प्रबोध करती थी, फिर क्यों कुछ कहते कहते और रोते रोते दूर चली गई? क्या कहा! (सोच के) "जाउँ जलधि के पारा" हाय! (रोने लगी) फिर हमारी और हमारे संतति की लक्ष्मी बिना क्या गति होगी? (सोच से) तो क्या इन लड़कों को जगा दें? क्या सब वृत्तांत इन से कह दें? नहीं जगाने का काम नहीं ये सब चिरकाल से गाढ़ निद्रा में सो रहे हैं, इन्हें-सोने ही दें। (सोच कर) नहीं नहीं, भला यह कुछ सोते थोड़े ही हैं, इन्हें तो अज्ञानांधकार में पड़ने के कारण दिग्भ्रम हो रहा है और इसी हेतु नेत्र निमीलित कर इस दशा में पड़े हैं। हाय! मेरे बेटे अन्न जल न मिलने के कारण पिपासाकुलित सर्प की भाँति बराबर दीर्घ श्वास ले रहे हैं। हाय मैं कैसी पापिनी, क्रूरकर्मा, नृशंस-हृदया हूँ कि अपने संतति की ऐसी दशा देख कर भी जीती हूँ। हा विधाता! मेरे प्राण शतधा हो कर अभी क्यों नहीं विदीर्ण हो जाते, माता का हृदय तो ऐसा कठोर कदापि स्वप्न में भी नहीं होता।

जान पड़ता है कि अभी कुछ और भी शेष है जिसके हेतु ईश्वर मेरे प्राण का शीघ्र ही अंत नहीं कर देता। (आँसू पोछ कर एक का हाथ पकड़ के) बेटा उठो, इस प्रकार सोने से कुछ काम न चलेगा। यह पूर्वकाल का समय नहीं, तुम्हारा वह दिन गया, अब शीघ्र उठो और इस रोग के निवृत्त करने को सब मिल कर ऐक्यावलम्बन कर स्वस्थचित्त हो कोई उपाय सोचो, नहीं तो रोग बढ़ जाने पर फिर कुछ न बन पड़ेगा। (एक को उठाती है तो दूसरा सोता है और दूसरे को उठाती है तो पहिला सोता है, इसी भाँति सब को भारतमाता ने उठाया किंतु सब के सब फिर पूर्ववत् सो गए) हाय! यह क्या है? ये किस दशा में पड़े हैं? वत्स! तुम लोगों की क्या गति हो रही है, इतने काल से मैं सोचती हूँ किंतु कुछ ध्यान में नहीं आता, कितना प्रयत्न किया परन्तु सब निष्फल हुआ। (कुछ सोच के) हाँ अब मैंने समझा। अभी इनके चेतने का समय नहीं आया, अभी जो कुछ प्रयत्न किया जायगा सब निष्फल होगा। देखो एक को उठाओ तो एक सोता है और इसको उठाओ तो वह सोता है। तो फिर क्या हताश हो कर इनको ऐसे ही रहने दें? पर इस से तो संबोधन नहीं होता, अच्छा तो एक बार उद्योग करें।

पृथ्वीराज जैचंद कलह करि जवन बुलायो।
तिमिरलंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो॥
अलादीन औरंगजेब मिलि धरम नसायो।
विषय बासना दुसह मुहम्मद सह फैलायो॥

तब लौं सोए बहु वत्स तुम, जागे नहीं कोऊ जतन।
अब तौ रानी विक्टोरिया, जागहु सुत भय छाँड़ि मन॥

जहाँ बिसेसर सोमनाथ माधव के मंदिर।
तहँ मह्जिद बन गई होत अब अल्ला अकबर॥
जहँ ऋषी उज्जैन अवध कन्नौज रहे बर।
तहँ अब रोवत सिवा चहूँ दिसि लखियत खँडहर॥

जहँ धन विद्या बसत रही सदा अबै वाही ठहर।
बसत सब ही बिधि बेबसी अब तो चेतो बीरवर॥

पहिला—(आँख मल कर) माँ क्यों बुलाती हो ?

दूसरा—बड़ी गाढ़ी नींद में थे, क्यों वृथा जगाया माँ !

तीसरा—हम को सोने दो माँ, बड़ी नींद आती है क्यों नाहक दिक करती हो ?

भारतमाता—वत्स ! कब तक इस प्रकार से तुम सब निद्रित रहोगे, अब सोने का समय नहीं, एक बेर आँखें खोल भली भाँति पृथ्वी की दशा को तो देखो। तुम्हें कुछ नहीं मालूम तुम्हारे चारों ओर क्या हो रहा है, यह तो तुम लोग देखो कि तुम्हारी अब क्या अवस्था हो रही है, क्या थे और क्या हो गए ? एक बेर तो भला अपने मन में बिचार करो, निरवलंबा शोकसागर-मग्ना, अभागिनी अपनी जननी की दुरवस्था को एक बार तो आँखें खोल के देखो। बेटा हमारा धन, आभूषन, बसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गए, अब हम निराधार हो रही हैं, तेल भी नहीं मिलता कि केशों में लगावें। यह मलिन शतग्रंथि वस्त्र मैं कब तक पहिरूँ, हाय ! जो अँगरेजों का राज्य न होता तो अब तक तो मेरे प्राण न बचते। बेटा तुम लोग अब उठो और अपने इस दुखिया माता का घोर दुःख से उद्धार करो।

पहिला—माँ फिर अब हम क्या करें।

दूसरा—हम अपने माता के कष्ट को कैसे दूर करें।

तीसरा—माँ तुम किससे कहती हो, हम लोग तो अब मनुष्य नहीं, हम लोग तो अब आलसी हो गए हैं, हमारी गणना तो अब अज्ञान-तिमिरावृत्त, कूपनिवासी पिशाचगणों में है, तो फिर हम क्या करें।

भारतज०—हाय हाय ! क्या सचमुच हमारे पुत्रों की अब ऐसी दीन दशा हो गई है कि ये लोग कुछ भी नहीं कर सकते। अरे मेरे इसी अंक में आगे कैसे कैसे महात्मागण हुए हैं, जिनके यशः सौरभ से सारी पृथ्वी आमोदित थी। इसी हमारे अंक आलबाल में कैसे पुण्य कल्पतरु हुए हैं, जिनकी कीर्ति-शाखा दशों दिशा में भी नहीं समा सकी। इसी हमारे अंक में कैसे

कैसे लोग लालित पालित हुए हैं, जिनका आज दिन समस्त संसार आदरपूर्वक नाम ग्रहण करता है, जिन्होंने अपने बुद्धि-बल से मुझको सब देश की ललनाओं का शिरोमणि कर रक्खा था।

"जाबाली, जैमिनि, गरग, पातंजलि, शुकदेव।
रहे हमारेहि अंक में कबहिं सबै भुवदेव॥
याही मेरे अंक में रहे कृष्ण मुनि व्यास।
जिनके भारत गान सों भारत बदन प्रकास॥
याही मेरे अंक में कपिल, सूत, दुर्वास।
याही मेरे अंक में शाक्यसिंह संन्यास॥
याही मेरे अंक में मनु, भृगु आदिक होय।
तब तो तिनकौ करत हो आदर जग सब कोय॥"

सो उसी भारतभूमि में अब सब हतज्ञान हो रहे हैं और कोई इनको सँभालने वाला नहीं। कोई काल ऐसा था कि इस भूमि की स्त्रियाँ विद्या संभ्रम, शौर्य्य, औदार्य्य में जगत-विख्यात थीं, वहाँ के पुरुष अब उद्यमशून्य हो केवल सूद या नौकरी पर संतोष कर के बैठे हैं, उद्योग किस चिड़िया का नाम है इसको मानो स्वप्न में भी नहीं जानते। हाय! जगत् विख्यात हमारे पूर्व समय के पुत्रगण किधर गए। क्या उनकी आत्मा भी यहाँ नहीं है जो इस अभागिनी दुखिया माता को इस समय संबोधन दे।

"कहँ गये विक्रम, भोज, राम, बलि, कर्ण, युधिष्ठिर।
चंद्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करि कै थिर॥
कहँ छत्री सब मरे बिनसि सब गए कितै गिर।
कहाँ राज को तौन साज जेहि जानत हे चिर॥
कहँ दुर्ग सैन धन बल गयो, धूरहि धूर दिखात जग।
उठि अजौं न मेरे वत्सगन रखहिं अपुनो आर्य्य मग॥"

पहिला—माता बड़ी भूख लगी है।

दूसरा—क्षुधा से उदर फटा जाता है।

तीसरा—माँ कुछ खाने को दो।

भारतमाता—(स्वगत) काल तू बड़ा प्रबल है, तुझ को कोई कार्य दुर्घट नहीं* तू सब कर सकता है, तेरा विश्वास कभी नहीं करना। (प्रकाश) बेटा, मेरे पास क्या है जो तुम लोगों को खाने को दूँ।

सब—माता दूध दो वही पिएँ।

भारतमाता—वत्स! तुम्हारी माँ के पास क्या अब दूध रक्खा है जो तुम लोगों को दे, बेटा इतर पदार्थों की क्या गणना है मेरे शरीर का तो अब रक्त भी शेष नहीं, यवन सब चूस ले गए। बेटा तुम लोग कब तक ऐसे पड़े रहोगे, अब अपना अपना काम देखने के लिये तुम लोग शीघ्र प्रयत्न करो।

पहिला—माँ हम लोग क्या करें, कैसे इस क्षुधित उदर को पूर्ण कर आत्मा को सुख दें?

दूसरा—माँ हम लोगों की तो यहाँ तक इच्छा होती है कि सेना-विभाग में जा कर महारानी की ओर से उनके शत्रुओं से प्रथम ही युद्ध करें और इससे अपने को प्रतिपालित करें, परंतु वह भी तो नहीं करने पाते।

भारतमाता—बेटा तुम लोग क्या कह रहे हो? हाय मैं ऐसी वज्र-हृदया हूँ कि यह सब सुन कर भी सुखपूर्वक अपना प्राण धारण किए हूँ, अब तो यह दुसह दुख सहा नहीं जाता।

(दीर्घ श्वास लेकर) बेटा तुम लोग अब क्या कर सकते हो, तुम्हारे पास अब है क्या? तुम लोग अब एक बेर जगत्-विख्याता, ललनाकुलकमलकलिकाप्रकाशिका, राजनिचय-पूजितपादपीठा, सरलहृदया, आर्द्रचित्ता, प्रजारञ्जनकारिणी एवम् दयाशीला आर्य्य स्वामिनी राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया के चरण-कमलों में अपने इस दुःख का निवेदन करो, वह अतीव कारुण्यमयी दयाशालिनी और प्रजाशोक-नाशिनी हैं, निस्संदेह तुम लोगों की ओर कृपाकटाक्ष से देखगी और अगस्त की भाँति झटित ही तुम लोगों के शोक सागर का शोषण कर लेंगी।

---

* 'तू बड़ा प्रबल ... दुर्घट नहीं' इतना भा० प्रति में नहीं है।

पहिला—माँ हम लोगों ने कई बेर पुकारा, इतना मुक्त कंठ हो कर गोहार किया कि हम लोगों का कंठ अद्यापि स्तब्ध हो रहा है किंतु हम लोगों का रुदन इतने समुद्र पार महारानी के कान तक पहुँचता ही नहीं। माँ इसमें उनका क्या दोष, हम लोगों के भाग्य का सब दोष है, महारानी यदि सुनें तो अपनी दया प्रकृति से अवश्य कुछ करें।

भारतमाता—बेटा तुम लोग क्या करोगे तुम्हारे दिन ही ऐसे हैं। हा विधाता हमारे भाग्य में इतना कष्ट! जननी हो के अपनी संतति की यह दशा इन्हीं नेत्रों से देखनी पड़ती है। हाय! नेत्र भी नहीं फूट जाते! इसमें विधाता का दोष नहीं हमारे कपाल का दोष है। (स्वगत) एक समय में मैं इन्हीं भुजाओं से अपने प्रसिद्ध यशस्वी पुत्रों को गोद में ले कर उन का स्नेह चुंबन करती करती अहँकार के मद से उन्मत्त होती थी और अपने को रमणी-सरसरोजनी, रमणीकुलगर्व, रमणीधुरिकीर्तनीया, रमणीललाटतिलक, रमणी-शिरोभूषण, रमणी-मौक्तिकमणि समझ अपने भाग्य को सराहती थी। हाय, अब तो वैसा ही जगदीश्वर हमारे उस पूर्वकाल के गर्वों को खर्व कर रहा है। शास्त्रकारों ने वृथा लिखा है कि पाप-पुण्य का फल स्वर्ग में होता है, मैं जननी हूँ कि पाप कर्म का फल इसी काल और इसी संसार में भोगना पड़ता है। (प्रकाश) बेटा तुम लोग हमारे कहने से एक बेर और महान् उच्चस्वर से कृपाशीला महाराणी को पुकारो, वह चाहें तो सब सुन सकती हैं और निस्संदेह दत्तचित्त हो सब सुनेंगी और शोकसमूह को शीघ्र ही दूर करेंगी।

पहिला—अच्छा तो एक बार और पुकारें, जान पड़ता है कि विधाता ने हम लोगों को केवल रोने ही के हेतु इस संसार में भेजा है तो फिर इसको कौन मेट सकता है। अच्छा एक बार फिर पुकारें तो सही (उच्चस्वर से) कहाँ सन्मार्गरक्षिणी, लण्डन-निवासिनी, राजाधिरानी, इंगलैण्डेश्वरी माता विक्टोरिया! माता! ये भारतसंतानगण आपसे सविनय प्रार्थना करते हैं, एकबार आप दया कर इन अनाथ भारतसंतानों के प्रति

अपना कृपाकटाक्ष निक्षेपण कीजिए। माता! हम लोगों ने सुना है कि आप दयाशीला और परम कारुणिक हैं, आप प्रच्छन्न भेष से दरिद्रों का दुख दूर करती हुई समस्त नगर में विचरण करती हैं। यदि एक बार भी आप अपने शीलयुक्त नैनों की कोर से हम भारतसंतानों की ओर देखें तो हम लोगों को सुख और आपका औदार्य्य दिग्देशांतर में फैल जाय। चिरकाल से हम लोग आपकी प्रार्थना में तत्पर हो रहे हैं अब बिलंब करना उचित नहीं। माता! इन भारत-संतानों को अब शीघ्रही दया दान दीजिए। हम लोग जिस रोगापत्ति से पीड़ित हो रहे हैं उसको आपके अतिरिक्त दूसरे की सामर्थ्य नहीं कि दूर कर सके।

(एक साहिब का प्रवेश)

साहिब—(तर्जन गर्जन पूर्वक) रे दुराशय! दुर्वृत्तिगण! क्या इसी हेतु हमने तुम लोगों को ज्ञान-चक्षु दिया है? रे नराधम! राजविद्रोही! महारानी के पुकारने में तुम लोगों को तनिक भी भय का संचार नहीं होता। उह! यदि ऐसा जानते तो क्या हम तुम लोगों को लिखना पढ़ना सिखाते। बस अब चुप रहो, खबरदार जो आगे कुछ भी कोलाहल किया।

पहिला—माँ फिर भी तुम पुकारने को कहोगी?

दूसरा—माँ इसी से तो हम लोग कुछ भी नहीं बोलते।

भारत माता—(रो कर) ईश्वर तू कहाँ है! मेरे पुत्र अब पुकारने और रोने भी नहीं पाते।

(दूसरे साहिब का प्रवेश)

दू० सा०—अरे इंगलैंडचंद्रलांछन! तू यहाँ से दूर हो।

(पहिले को निकाल देता है)

दू० सा०—(भारतमाता के समीप जाकर) माता! अब और रोदन न करो तुम्हारा दुःख देखने से पाषाण भी द्रवीभूत हो जाता है। तुम्हारे निरंतर धारावाही अश्रु प्रवाह के अवलोकन से कौन ऐसा कठोर चित्त मनुष्य है जो फिर भी स्थिर रहेगा।

आलुलायित केशावलंबित ये तुम्हारे क्षीण गंडस्थल एवम् विगतकान्ति तथा संस्काररहित इस तुम्हारे कृश शरीर को देखकर कौन दुःखसागर में मग्न नहीं होता। तिस पर ऐसे लोग तुम्हारे इस शोक को अधिकतर वर्द्धित करते हैं। किंतु हे माता! अंगरेज सब कदापि भी ऐसे नहीं। तुम्हारा अश्रुपात देखने से जिनको स्वयम् अश्रुपात नहीं होता ऐसे अंगरेज बहुत थोड़े हैं। उनकी दयालुता, न्यायशीलता, निष्पक्षपातिता और प्रजापालत्व तो संसार में प्रसिद्ध है। माँ ऐसे भी कितने असभ्य हैं किंतु वे परमहीन और वेही हमारी जाति के कलंक हो रहे हैं। माता! हम लोगों की महारानी परम कारुणिक और अति दयाशीला हैं। वह अपनी प्रजा के अनुरंजन के हेतु प्राणप्रिय आत्मपुत्रों का भी त्याग कर सकती हैं और इतर वस्तुओं की कौन गणना। उनके गुण अनंत हैं। उनके समान सच्चरित्रा, साध्वी, पतिव्रता और धर्म्मपरायणा स्त्री-कुल में उत्पन्न होना अति दुर्लभ है। वह रामचन्द्र से भी अधिक प्रजापालन में सदैव तत्पर रहती हैं। माता! कुछ दुःख मत करो तुम्हारी यह शोकरात्रि अब शीघ्र ही प्रभात होगी और सुखरूपी मार्तंड तुम्हारे इस मुकुलित मुखकमल को शीघ्र ही प्रफुल्लित करेगा। माता! तुम ने क्या ग्लैडस्टन, फॉसेट, मानियर विलियम्स * इत्यादि महात्माओं का नाम नहीं सुना! ये लोग तो अभागे भारत-संतानों के शोक-निवारण के हेतु तन मन सब अर्पण कर चुके हैं और रात दिन उसी का प्रयत्न किया करते हैं। (संतानों के प्रति) भ्रातृगण! सचमुच तुम लोगों की अब तक अत्यंत दुर्दशा हुई है और तुम लोगों ने अनेक आपत्तियों को झेला है और अनेक दुःख उठाए हैं। भाई इसमें कोई क्या कर सकता है सब उस सृष्टि-कारक परमेश्वर के आधीन है, उसी को पुकारो, वही समस्त जगत् और सब दीन दुखियों का रक्षक है। जगदीश्वर तुम लोगों को इस विपद-जाल से शीघ्र ही मुक्त करे।

---

* भा० प्रति में मोनियर विलियम्स के स्थान पर ब्राइट तथा रिपन का नाम दिया है।

(दूसरे साहब का प्रस्थान)

(धैर्य का प्रवेश)

धैर्य—जननी क्यों रोदन करती हो, धैर्य को धारण करो और शोक-वेग को दूर करो। देखो मैं धैर्य तुम्हारा आश्वासन करता हूँ। यद्यपि मैं धैर्य हूँ और विपद काल में लोगों को धीरज देने के हेतु मैंने जन्म लिया है किंतु तुम्हारे इस शोकावस्था को देख मेरे भी धीरज छूटे जाते हैं और अतःपरं उसके धारण करने को असमर्थ हूँ। मैं कैसे तुम्हारा दुःख दूर करूँ? (संतानों से) हे भ्रातृगण! अब उठो और जननी के दुःखानल के निर्वाण का प्रयत्न करो। अभिमान, लोभ, अपमान, आत्म-समाज-प्रशंसा, परजातिनिंदा इन सब का सावधानपूर्वक परित्याग करो, धैर्य का अवलंबन करो, सब कोई धैर्य को धारण करो, भाई अवश्य तुम लोगों की कांक्षा पूरी होगी, धीरज धरो, धीरज धरो।

(धैर्य का प्रस्थान)

भारतमाता—हे मेरे प्यारे वत्सगण! अब भी उठो और धैर्य के उत्साह और ऐक्य* के उपदेशों को मन में रख इस दुखिया के दुख दूर करने में तन मन से तत्पर हो। अब तक जो हुआ हमने उसका सहन किया अब तो ऐसा उपाय करो जिसमें मेरा यह शोकनद बढ़ने न पावै। (हाथ जोड़ कर) हे जगदीश्वर! तू सर्वशक्तिमान है, तुझको कोई बात दुर्घट नहीं, अब मुझ अबला पर दया करके मेरा दुःख निवारण कर और मेरी इस प्रार्थना को अंगीकार कर।

बल कला कौशल अमित विद्या वत्स मेरे नित लहैं।
पुनि हृदय-ज्ञान-प्रकाश तें अज्ञान-तम तुरतहिं दहैं॥
तजि द्वेष ईर्षा द्रोह निंदा देश-उन्नति सब चहैं।
अभिलाख यह जिय पूर्ववत् धन धन्य मोहि सबही कहैं॥

(सब जाते हैं)

(जवनिका पतन)

---

* 'बंग भाषा में एका और उत्साह का प्रवेश भी दिखलाया है किंतु इस देश में अभी न एका है न उत्साह, इस हेतु उनका स्वाँग यहाँ नहीं लाए।' यह टिप्पणी केवल भा० प्रति में है।

नीलदेवी

गीतिरूपक

संवत् १९३७

'गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् ।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥'
'त्रैलोक्यमिंद्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥'
'इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥'

'स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु । त्वयैकया पूरितमंबयैतत्'

— दुर्गापाठ.

"For the kiss she gave him was his first and last"
Kiss of dagger, driven to his heart and past.
At her feet he wallowed, choked with wicked blood;
In his breast the katar quivered where it stood,
At the hilt his fingers vainly-wildy-try, Then they stiffen feeble; die! thou slayer die! From his jewelled scabbard drew she Shureef's sword, Cut at vain the neck-bone of the Muslim Lord, Underneath, the star-light sooth a sight of dead! Like the Goddess Kali, comes she with the head, Comes to where her brothers guard their murdered Chief; All the camp is silent but the night is brief. At his feet she flings it, flings her burden vile; "Suraj! I keep my promise! Brothers! Build the pile"

—हे मूढ़, क्षण भर के लिए जब तक मैं मधु पीती हूँ, गर्ज ले। मुझसे तेरे मारे जाने पर जल्दी देवगण गर्जेंगे।

इन्द्र त्रैलोक्य पावें, देवगण यज्ञ की हवि खाने वाले हों और यदि तुम लोग जीना चाहते हो तो पाताल जाओ।

इस प्रकार जब जब दानवों द्वारा उठाई बाधा पैदा होती है तब तब मैं अवतार लेकर शत्रु का नाश करती हूँ।

यह पूरा श्लोक इस प्रकार है :—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियाः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः॥

हे देवि सभी विद्याएँ तथा संसार में कलायुक्त सभी स्त्रियाँ तुम्हारी ही भेद हैं, तुम्हीं एक माता से यह जगत् पूर्ण है तब स्तुति योग्य परा, पश्यन्ति मध्यमा आदि उक्तियों से तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है।

[दुर्गापाठ]

अंग्रेजी—

'जो चुंबन उसने दिया था वही प्रथम और अंतिम था, वह कटार का चुंबन था, जो उसके हृदय तक तथा उसके पार घुसेड़ दिया गया था। उसके पैरों के नीचे नीच रक्त में भरकर वह लोटने लगा। उसकी छाती में कटार, जहाँ स्थित था, वहीं काँपता था और उसके कब्जे की ओर उसकी अँगुलियाँ व्यर्थ ही तथा वेग से बढ़ती थीं, पर उसके बाद निर्जीव हो अकड़ गईं। 'मर, ए घातक मर।' उसने शरीफ की तलवार उसके जड़ाऊ म्यान से खींच लिया और मुसलमान सर्दार के गले पर निरर्थक ही चलाया। तारों के प्रकाश के नीचे यह मृतक-दृश्य! देवी काली के समान वह सिर लिए हुए आती है। वह वहाँ आती है, जहाँ उसके भाई लोग मारे गए सर्दार के शव की रक्षा करते हैं। सारा पड़ाव शांत है पर रात्रि भी बहुत कम है। उसी सर्दार के पैरों तले वह उसको फेंक देती है, उस नीच बोझ को फेंक देती है (और कहती है) 'सूरज, मैंने अपना वचन पूरा किया, भाइओ, चिता तैयार करो।'

मातृ-भगिनी-सखी-तुल्या आर्य ललनागण !

आज बड़ा दिन है। क्रिस्तान लोगों को इससे बढ़कर कोई आनंद का दिन नहीं है। किंतु मुझको आज उलटा और दुःख है। इसका कारण मनुष्य-स्वभाव-सुलभ ईर्षा मात्र है। मैं कोई सिद्ध नहीं कि रागद्वेष से विहीन हूँ। जब मुझे अँगरेजी रमणी लोग मेदसिंचित केश-राशि, कृत्रिम कुंतलजूट, मिथ्या रत्नाभरण और विविधवर्ण वसन से भूषित, क्षीण कटिदेश कसे, निज निज पतिगण के साथ, प्रसन्नवदन इधर से उधर फर-फर कल की पुतली की भाँति फिरती हुई दिखलाई पड़ती हैं तब इस देश की सीधी-सीधी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और यही बात मेरे दुःख का कारण होती है। इससे यह शंका किसी को न हो कि मैं स्वप्न में भी यह इच्छा करता हूँ कि इन गौरांगी युवती-समूह की भाँति हमारी कुल-लक्ष्मीगण भी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के साथ घूमें; किंतु और बातों में जिस भाँति अँगरेजी स्त्रियाँ सावधान होती हैं पढ़ी-लिखी होती हैं, घर का काम-काज सँभालती हैं, अपने संतानगण को शिक्षा देती हैं, अपना स्वत्व पहचानती हैं, अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति-विपत्ति को समझती हैं, उसमें सहायता देती हैं, और इतने समुन्नत मनुष्य-जीवन को व्यर्थ गृहदास्य और कलह ही में नहीं खोतीं, उसी भाँति हमारी गृहदेवता भी वर्त्तमान हीनावस्था को उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें, यही लालसा है। इस उन्नति-पथ का अवरोधक हम लोगों की वर्त्तमान कुलपरंपरा-मात्र है और कुछ नहीं है। आर्य्य-जन-मात्र को विश्वास है कि हमारे यहाँ सर्व्वदा स्त्रीगण इसी अवस्था में थीं। इस विश्वास के भ्रम को दूर करने ही के हेतु यह ग्रंथ विरचित होकर आप लोगों के कोमल कर-कमलों में समर्पित होता है। निवेदन यही है कि आप लोग इन्हीं पुण्यरूप स्त्रियों के चरित्र को पढ़ें-सुनें, और क्रम से यथाशक्ति अपनी वृद्धि करें।

२५ दिसंबर, १८८१ ग्रंथकर्त्ता।

नीलदेवी

ऐतिहासिक गीतिरूपक

(वियोगांत)

—:❀:—

पहला दृश्य

स्थान—हिमगिरि का शिखर

(तीन अप्सरा गान करती हुई दिखाई देती हैं)

अप्सरागण—(झिंझौटी जल्द तिताला)

धन धन भारत की छत्रानी ।
वीरकन्यका वीरप्रसविनी वीरवधू जग-जानी ॥
सतीसिरोमनि धरमधुरंधर बुधि-बल धीरज-खानी ।
इनके जस की तिहूँ लोक में अमल धुजा फहरानी ॥

सब मिलि गाओ प्रेमबधाई ।
यह संसार-रतन इक प्रेमहि और बादि चतुराई ॥
प्रेम बिना फीकी सब बातैं कहहु न लाख बनाई ।
जोग ध्यान जप तप ब्रत पूजा प्रेम बिना बिनसाई ॥
हाव भाव रस रग रीति बहु काव्य केलि कुसलाई ।
बिना लोन बिंजन सो सबही प्रेम-रहित दरसाई ॥
प्रेमहि सो हरि हू प्रगटत हैं जदपि ब्रह्म जगराईं ।
तासों यह जग प्रेमसार है और न आन उपाई ॥

———

दूसरा दृश्य

स्थान—युद्ध के डेरे खड़े हैं

(एक शामियाने के नीचे अमीर अबदुश्शरीफ़ खाँ सूर बैठा है और मुसाहिब लोग इर्द-गिर्द बैठे हैं)

शरीफ—(एक मुसाहिब से) अबदुस्समद ! खूब होशियारी से रहना। यहाँ के राजपूत बड़े काफिर हैं। इन कमबख्तों से खुदा बचाए। (दूसरे मुसाहिब से) मलिक सज्जाद ! तुम शब के पहरों का इंतिजाम अपने जिम्मे रखो, ऐसा न हो कि सूरजदेव शबखून मारे। (काजी से) काजी साहब ! मैं आपसे क्या बयान करूँ, वल्लाही सूरजदेव एक ही बदबला है। इहातए पंजाब में ऐसा बहादुर दूसरा नहीं।

काजी—बेशक हुजूर ! सुना गया है कि वह हमेशा खेमों ही में रहता है। आसमान शामियाना और जमीन ही उसे फर्श है। हजारों राजपूत उसे हर वक्त घेरे रहते हैं।

शरीफ—वल्लाह तुमने सच कहा, अजब बदकिरदार से पाला पड़ा है, जान तंग है। किसी तरह यह कमबख्त हाथ आता तो और राजपूत खुद बखुद पस्त हो जाते।

एक मुसाहिब—खुदावंद ! हाथ आना दूर रहा, उसके खौफ से अपने खेमे में रहकर भी खाना-सोना हराम हो रहा है।

शरीफ—कभी उस बेईमान से सामने लड़कर फतह नहीं मिलनी है। मैंने तो अब जी में ठान ली है कि मौका पाकर एक शब उसको सोते हुए गिरफ़्तार कर लाना। और अगर खुदा को इस्लाम की रोशनी का जल्वा हिंदोस्तान जुल्मतनिशान में दिखलाना मंजूर है तो बेशक मेरी मुराद बर आएगी।

काजी—इन्शा अल्लाह तआला।

शरीफ—कसम है कलामे शरीफ की, मेरी खुराक आगे से इस

तफक्कुर में आधी हो गई है। (सब लोगों से) देखो, अब मैं सोने जाता हूँ, तुम सब लोग होशियार रहना।

(गजल)

(उठकर सबकी तरफ देखकर)

इस राजपूत से रहो हुशियार खबरदार।
गफलत न जरा भी हो खबरदार खबरदार॥
ईमाँ की कसम दुश्मने जानी है हमारा।
काफिर है य पजाब का सरदार खबरदार॥
अजदर है भभूका है जहन्नुम है बला है।
बिजली है गजब इसकी है तलवार खबरदार॥
दरबार में वह तेगे शररबार न चमके।
घरबार से बाहर से भी हर बार खबरदार॥
इस दुश्मने ईमाँ को है धोखे से फँसाना।
लड़ना न मुकाबिल कभी जिनहार खबरदार॥

[सब जाते हैं

तीसरा दृश्य

स्थान—पहाड़ की तराई

(राजा सूर्य्यदेव, रानी नीलदेवी और चार राजपूत बैठे हैं)

सूर्य्य०—कहो भाइयो ! इन मुसलमानों ने तो अब बड़ा उपद्रव मचाया है।

प० रा०—तो महाराज ! जब तक प्राण है तब तक लड़ेंगे।

दू० रा०—महाराज ! जय-पराजय तो परमेश्वर के हाथ है परंतु हम अपना धर्म तो प्राण रहे तक निबाहेंगे ही।

सूर्य्य०—हाँ हाँ, इसमें क्या संदेह है। मेरा कहने का मतलब यह है कि सब लोग सावधान रहैं।

ती० रा०—महाराज ! सब सावधान हैं। धर्म-युद्ध में तो हमको जीतनेवाला कोई पृथ्वी पर नहीं है।

नीलदेवी—पर सुना है कि ये दुष्ट अधर्म से बहुत लड़ते हैं।

सूर्य्य०—हे प्यारी ! वे अधर्म से लड़ें, हम तो अधर्म नहीं कर सकते। हम आर्यवंशी लोग धर्म छोड़कर लड़ना क्या जानें ? यहाँ तो सामने लड़ना जानते हैं। जीते तो निज भूमि का उद्धार और मरे तो स्वर्ग। हमारे तो दोनों हाथ लड्डू है; और यश तो जीतें तो भी हमारे साथ है और मरें तो भी।

चौ० रा०—महाराज ! इसमें क्या संदेह है, और हम लोगों को एका-एकी अधर्म से भी जीतना कुछ दाल-भात का गस्सा नहीं है।

नीलदेवी—तो भी इन दुष्टों से सदा सावधान ही रहना चाहिए। आप लोग सब तरह चतुर हो, मैं इसमें विशेष क्या कहूँ। स्नेह कुछ कहलाए बिना नहीं रहता।

सूर्य्य०—(आदर से) प्यारी ! कुछ चिन्ता नहीं है, अब तो जो कुछ होगा देखा ही जायगा न। (राजपूतों से)

सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदा हीं।
जागत ही सब रहैं रैन हूँ सोअहिं नाहीं॥
कसे रहैं कटि रात-दिवस सब बीर हमारे।
अस्वपीठ सो होहिं चारजामें जिनि न्यारे॥
तोड़ा सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बंदूकन।
रहैं खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरैं छन॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर यवन बहादुर।
आवहिं तो चढ़ि सनमुख कायर कूर सबै जुर॥
दैहैं रन को स्वाद तुरंतहि तिनहिं चखाई।
जो पै इक छन हू सनमुख ह्वै करहिं लराई॥

(जवनिका पतन)

चौथा दृश्य

स्थान—सराय

(भठियारी, चपरगट्टू खाँ और पीकदानअली)

चपर०—क्यों भाई अब आज तो जशन होगा न ? आज तो वह हिंदू न लड़ेगा न ?

पीक०—मैंने पक्की खबर सुनी है। आज ही तो पुलाव उड़ने का दिन है।

चपर०—भाई, मैं तो इसी से तीन-चार दिन दरबार में नहीं गया। सुना वे लोग लड़ने जायँगे। मैंने कहा जान थोड़ी ही भारी पड़ी है। यहाँ तो सदा भागतों के आगे मारतों के पीछे। जबान की तेग कहिए दस हजार हाथ झारूँ।

पीक०—भई, इसी से तो कई दिन से मैं भी खेमों की तर्फ नहीं गया। अभी एक हफ्ता हुआ, मैं उस गाँव में एक खानगी है उसके यहाँ से चला आता था कि पाँच हिंदुओं के सवारों ने मुझे पकड़ लिया और तुरक-तुरक करके लगे चपतियाने। मैंने देखा कि अब तो बेतरह फँसे मगर वल्लाह मैंने भी अपनी कौम और दीन की इतनी मजम्मत और हिंदुओं की इतनी तारीफ की कि उन लोगों से छोड़ते ही बन आई। ले ऐसे मौके पर और क्या करता ? मुसलमानी के पीछे अपनी जान देता ?

चपर०—हाँ जी, किसकी मुसलमानी और किसका कुफ्र। यहाँ अपने माँड़े-हलुए से काम है।

भठि०—तो मियाँ आज जशन में जाना तो देखो मुझको भूल मत जाना। जो कुछ इनआम मिले उसमें से भी कुछ देना। हाँ ! देखो मैंने कई दिन खिदमत की है।

पीक०—जरूर-जरूर जानछल्ला। यह कौन बात है। तुम्हारे ही वास्ते तो जी पर खेलकर यहाँ उतरे हैं। (चपरगट्टू से कान में)

यह सुनिए, जान झोकें हम माल चाभें वो भठियारी। यह नहीं जानतीं कि यहाँ इनकी ऐसी-ऐसी हजारों चराकर छोड़ दी हैं।

चपर०—(धीरे से) अजी कहने दो, कहने से कुछ दिए ही थोड़े देते हैं। भठियारी हो चाहे रंडी, आज तक तो किसी को कुछ दिया नहीं है, उलटा इन्हीं लोगों का खा गए हैं। (भठियारी से) वाह जान साहब! तुम जब माँगोगी तब देंगे। रुपया-पैसा कौन चीज है; जान तक हाजिर है। जब कहो गरदन काटकर सामने रख दूँ। (खूब घूरता है)

भठि—(आँखें नचाकर) तो मैं भी तो मियाँ की खिदमत से किसी तरह बाहर नहीं हूँ।

(दोनों गाते हैं)

पिकदानो चपरगट्टू है बस नाम हमारा।
इक मुफ्त का खाना है सदा काम हमारा॥
उमरा जो कहैं रात तो हम चाँद दिखा दें।
रहता है सिफारिश से भरा जाम हमारा॥
कपड़ा किसी का खाना कहीं सोना किसी जा।
गैरों ही से है सारा सरंजाम हमारा॥
हो रंज जहाँ पास न जाएँ कभी उसके।
आराम जहाँ हो है वहाँ काम हमारा॥
जर दीन है कुरआन है ईमाँ है नबी है।
जर ही मेरा अल्लाह है जर राम हमारा॥

भठि०—ले मैं तो मियाँ के वास्ते खाना बनाने जाती हूँ।

पीक०—तो चलो भाई हम लोग भी तब तक जरा 'रहे लाखों बरस साकी तेरा आबाद मौखाना'।

चपर०—चलो।

(जवनिका पतन)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—सूर्यदेव के डेरे का बाहरी प्रांत

[रात्रि-समय देवीसिंह सिपाही पहरा देता हुआ घूमता है]

(नेपथ्य में गान)

(राग कलिंगड़ा)

सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन।
नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे,
सोओ सुख-निंदिया प्यारे ललन।
भई आधी रात बन सनसनात,
पथ पंछी कोउ आवत न जात,
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात,
पातहु नहिं पावत तरुन हलन॥
झलमलत दीप सिर धुनत आय,
मनु प्रिय पतंग हित करत हाय,
सतरात अंग आलस जनाय,
सन-सन लगी सीरी पवन चलन।
सोए जग के सब नींद घोर,
जागत कामी चिंतित चकोर,
बिरहिन बिरही पाहरू चोर,
इन कहँ छन रैन हूँ हाय कल न॥

सिपाही—बरसों घर छूटे हुए। देखें कब इन दुष्टों का मुँह काला होता है। महाराज घर फिरकर चलें तो देस फिर से बसे। रामू की माँ को देखे कितने दिन हुए। बच्चा की तो खबर तक नहीं मिली। (चौंककर ऊँचे स्वर से) कौन है? खबरदार जो किसी ने झूठमूठ भी इधर देखने का विचार किया। (साधारण स्वर से) हाँ—कोई यह न जाने कि देवीसिंह इस समय जोरू-लड़कों की याद करता है, इससे भूला है। क्षत्री

का लड़का है। घर की याद आवे तो और प्राण छोड़कर लड़े। (पुकारकर) खबरदार। जागते रहना।

(इधर-उधर फिरकर एक जगह बैठकर गाता है)

(कलिंगड़ा)

प्यारी बिन कटत न कारी रैन।
पल छिन न परत जिय हाय चैन॥
तन पीर बढ़ी सब छुट्यो धीर,
कहि आवत नहिं कछु मुखहु बैन।
जिय तड़फड़ात सब जरत गात,
टप टप टपकत दुख भरे नैन॥
परदेस परे तजि देस हाय,
दुख मेटनहारो कोउ है न।
सजि बिरह सैन यह जगत जैन,
मारत मरोरि मोहि पापी मैन॥
प्यारी बिन कटत न कारी रैन।

(नेपथ्य में कोलाहल)

कौन है! यह कैसा शब्द आता है! खबरदार।

(नेपथ्य में विशेष कोलाहल)

(घबड़ाकर) हैं! यह क्या है? अरे क्यों एक साथ इतना कोलाहल हो रहा है। बीरसिंह! बीरसिंह! जागो। गोविंदसिंह दौड़ो!

(नेपथ्य में बड़ा कोलाहल और मार-मार का शब्द। शस्त्र खींचे हुए अनेक यवनों का प्रवेश। अल्ला अकबर का शब्द। देवीसिंह का युद्ध और पतन। यवनों का डेरे में प्रवेश)।

(पटाक्षेप)

———

छठा दृश्य

स्थान—अमीर का खेमा

(मसनद पर अमीर अबदुश्शरीफखाँ सूर बैठा है,
इधर-उधर मुसलमान लोग हथियार बाँधे मोछ
पर ताव देते बड़ी शान से बैठे हैं)

अमीर—अलहम्दुलिल्लाह ! इस कम्बख्त काफिर को तो किसी तरह गिरफ्तार किया। अब बाकी फौज भी फतह हो जायगी।

एक सर्दार—ऐ हुजूर ! जब राजा ही कैद हो गया तो फौज क्या चीज है। खुदा और रसूल के हुक्म से इसलाम की हर जगह फतह है। हिंदू हैं क्या चीज। एक तो खुदा की मार दूसरे बेवकूफ आनन्-फानन् में सब जहन्नुम रसीद होंगे।

दू० सर्दार—खुदावंद ! इसलाम के आफताब के आगे कुफ्र की तारीकी कभी ठहर सकती है ? हुजूर अच्छी तरह से यकीन रक्खें कि एक दिन ऐसा आवेगा जब तमाम दुनिया में ईमान का जिल्वा होगा। कुफ्फार सब दाखिले-दोजख होंगे और पयगम्बरे आखिरुल् जमाँ सल्लल्लाह अल्लेहुसल्लम का दीन तमाम रूए जमीन पर फैल जायगा।

अमीर—आमीं आमीं।

काजी—मगर मेरी राय है कि और गुफ्तगू के पेश्तर शुक्रिया अदा किया जाय, क्योंकि जिस हकतआला की मिहरबानी से यह फतह हासिल हुई है सबके पहले उस खुदा का शुक्र अदा करना जरूर है।

सब—बेशक, बेशक।

(काजी उठकर सबके आगे घुटने के बल झुकता है और फिर अमीर आदि भी उसके साथ झुकते हैं)

काजी—(हाथ उठाकर) काफिर प मुसल्माँ को फतहयाब बनाया।

सब—(हाथ उठाकर) अलहम्द् उलिल्लाह।

काजी—की मेह्र बड़ी तूने य बस मेरे खुदाया।

सब—अलहम्द् उलिल्लाह।

काजी—सदके में नबी सैयदे मक्की मदनी के, अतफाले अली के, असहाब के, लश्कर मेरा दुश्मन से बचाया।

सब—अलहम्द् उलिल्लाह।

काजी—खाली किया इक आन में दैरों को सनम से, शमशीर दिखाके, बुतखानः गिरा करके हरम तूने बनाया।

सब—अलहम्द् उलिल्लाह।

काजी—इस हिंद से सब दूर हुई कुफ्र की जुल्मत, की तूने व रहमत, नक्कारए ईमाँ को हरेक सिम्त बजाया।

सब—अलहम्द् उलिल्लाह।

काजी—गिरकर न उठे काफिरे बदकार जमीं से, ऐसे हुए गारत। आमीं कहो—।

सब—आमीं।

काजी—मेरे महबूब खुदाया।

सब—अलहम्द् उलिल्लाह

(जवनिका गिरती है)

———

सातवाँ दृश्य

स्थान—कैदखाना

(महाराज सूर्य्यदेव एक लोहे के पिंजड़े में मूर्छित पड़े हैं।
एक देवता सामने खड़ा होकर गाता है)

देवता—

(लावनी)

सब भाँति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा।
अब तजहु बीर-बर भारत की सब आसा॥
अब सुख-सूरज को उदय नहीं इत ह्वैहै।
सो दिन फिर इत अब सपनेहूँ नहिं ऐहै॥
स्वाधीनपनो बल धीरज सबहि नसैहै।
मंगलमय भारत भुव मसान ह्वै जैहै॥
दुख ही दुख करिहै चारहु ओर प्रकासा।
अब तजहु बीर-बर भारत की सब आसा॥
इत कलह विरोध सबन के हिय घर करिहै।
मूरखता को तम चारहु ओर पसरिहै॥
वीरता एकता ममता दूर सिधरिहै।
तजि उद्यम सब ही दासवृत्ति अनुसरिहै॥
ह्वै जैहैं चारहु बरन शूद्र बनि दासा।
अब तजहु बीर-बर भारत की सब आसा॥
ह्वैहैं इतके सब भूत-पिशाच-उपासी।
कोऊ बनि जैहैं आपुहि स्वयं प्रकासी॥
नसि जैहैं सगरे सत्य धर्म अविनासी।
निज हरि सों ह्वैहैं बिमुख भरत-भुवबासी॥
तजि सुपथ सबहि जन करिहैं कुपथ बिलासा।
अब तजहु बीर-बर भारत की सब आसा॥
अपनी वस्तुन कहँ लखिहैं सबहि पराई।
निज चाल छोड़ि गहिहैं औरन की धाई॥

तुरकन हित करिहैं हिंदू संग लराई।
यवनन के चरनहिं रहिहैं सीस चढ़ाई॥
तजि निज-कुल करिहैं नीचन संग निवासा।
अब तजहु बीर-बर भारत की सब आसा॥
रहे हमहुँ कबहुँ स्वाधीन आर्य बलधारी।
यह दैहैं जिय सों सब ही बात बिसारी॥
हरि-बिमुख, धरम बिनु धन-बलहीन दुखारी।
आलसी मंद तन छीन छुधित संसारी॥
सुख सों सहिहैं सिर यवनपादुका त्रासा।
अब तजहु बीर-बर भारत की सब आसा॥

(जाता है)

सूर्य्य०—(सिर उठाकर) यह कौन था ? इस मरते हुए शरीर पर इसने अमृत और विष दोनों एक साथ क्यों बरसाया ? अरे अभी तो यहाँ खड़ा गा रहा था अभी कहाँ चला गया ? निस्संदेह यह कोई देवता था। नहीं तो इस कठिन पहरे में कौन आ सकता है। ऐसा सुंदर रूप और ऐसा मधुर सुर और किसका हो सकता है। क्या कहता था ? 'अब तजहु बीर-बर भारत की सब आसा'। ऐं! यह देववाक्य क्या सचमुच सिद्ध होगा ? क्या अब भारत का स्वाधीनतासूर्य फिर न उदय होगा ? क्या हम क्षत्रिय राजकुमारों को भी अब दासवृत्ति करनी पड़ेगी ? हाय क्या मरते-मरते भी हमको यह वज्र शब्द सुनना पड़ा ? और क्या कहा, 'सुख सों सहि हैं सिर यवन-पादुका त्रासा।' हाय ! क्या अब यहाँ यही दिन आवेंगे ? क्या भारतजननी अब एक भी वीर पुत्र न प्रसव करेगी ? क्या दैव को अब इस उत्तम भूमि की यही नीच गति करनी है ? हा ! मैं यह सुनकर क्यों नहीं मरा कि आर्यकुल की जय हुई और यवन सब भारतवर्ष से निकाल दिए गए। हाय !

(हाय-हाय करता और रोता हुआ मूर्छित हो जाता है)

(जवनिका पतन)

———

आठवाँ दृश्य

स्थान—मैदान, वृक्ष

(एक पागल आता है)

पागल—मार मार मार—काट काट काट—ले ले लें—ईबी—सीबी—बीबी—तुरक तुरक तुरक—अरे आया आया आया—भागो भागो भागो। (दौड़ता है) मार मार मार—और मार दे मार—जाय न जाय न—दुष्ट चांडाल गोभक्षी जवन—अरे हाँ रे जवन लाल डाढ़ी का जवन—बिना चोटी का जवन—हमारा सत्यानाश कर डाला। हमारा हमारा हमारा। इसी ने इसी ने—लेना, जाने न पावे। दुष्ट म्लेच्छ—हुँ! हम को राजा बनावेगा। छत्र चँवर मुरछल सिंहासन सब—पर जवन का दिया—मार मार मार—शस्त्र न हो तो मंत्र से मार। मार मार मार। ह्रौं ह्रीं ह्रूं फट चट पट—जवन पट—चट—छट पट अ ईं ऊँ आकास बाँध पाताल—चोटी कटा निकाल। फः—ह्रां ह्रीं ह्रौं—जवन जवन मारय मारय उच्चाटय उच्चाटय ...वेधय वेधय...नाशय नाशय...फाँसय फाँसय—त्रासय... स्वाहा फूः सब जवन स्वाहा फूः अब भी नहीं गया? मार मार मार। हमारा देश—हम राजा हम रानी। हम मंत्री। हम प्रजा। और कौन? मार मार मार। तलवार तलवार। टूट गई टूटी। टूटी से मार। ढेले से मार। हाथ से मार। मुक्का जूता लात लाठी सोंटा ईंटा पत्थर—पानी सबसे मार। हम राजा हमारा देश हमारा भेस हमारा पेड़-पत्ता कपड़ा-लत्ता छाता-जूता सब हमारा। ले चला ले चला। मार मार मार—जाय न जाय न—सूरजमें जाय चद्रमा में जाय तारा में जाय उतारा में जाय पारा में जाय जहाँ जाय वहीं पकड़—मार मार मार। मींयाँ मींयाँ मींयाँ चींयाँ चोंयाँ चोंयाँ। अल्ला अल्ला अल्ला हल्ला हल्ला हल्ला। मार मार मार। लोहे के नाती की दुम से मार। पहाड़ को स्त्री के दोए से मार—मार मार—

अंड का बंड का संड काखंड—धूप छाँह चना मोती अगहन पूस माघ कपड़ा लत्ता डोम चमार मार मार। ईंट की आँख में हाथी का बान—बंदर की थैली में चूने की कमान—मार मार मार—एक एक एक मिल मिल मिल छिप छिप छिप—खुल खुल खुल—मार मार मार—

(एक मियाँ को आता देखकर)

मार मार मार—मुसल मुसल मुसल—मान मान मान—सलाम सलाम सलाम कि मार मार मार—नबी नबी नबी—सबी सबी सबी—ऊँट के अंडे की चरबी का खर। कागज के धप्पे कर सप्पे की सर—मार मार मार।

(मियाँ के पास जाकर)

तुरुक तुरुक तुरुक—घुरुक घुरुक घुरुक—मुरुक मुरुक मुरुक—फुरुक फुरुक फुरुक—याम शाम लीम लाम लाम ढाम—

(मियाँ को पकड़ने दौड़ता है)

मियाँ—(आप ही आप) यह तो बड़ी हत्या लगी। इससे कैसे पिंड छुटेगा। (प्रगट) दूर दूर।

पागल—दूर दूर दूर—चूर चूर चूर—मियाँ की डाढ़ी में दोजख की हूर—दन तड़ाक छू मियाँ की माई में मोयीं की मूँ—मार मार मार—मियाँ छार खार—

(मियाँ के पास जाकर अट्टाहास करके)

रावण का साला दुर्योधन का भाई अमरूत के पेड़ की पसेरी बनाता है—अच्छा अच्छा—नहीं नहीं तैंने तो हमको उस दिन मारा था न! हाँ हाँ यही है यही—जाने न पावे। मार मार—

(मियाँ की गरदन पकड़ कर पटक देता है और छाती पर चढ़ कर बैठता है)

रावण का साला दिल्ली का नवाब वेद की किताब—बोल हम राजा कि तू राजा—(मियाँ की डाढ़ी पकड़कर खींचने से कृत्रिम डाढ़ी निकल आती है। विष्णुशर्मा को पहिचानकर अलग हो जाता है) रावण का साला मियाँ का भेस विष्णु के कान में सरमा का केस। मेरी शक्ति गुरु की भक्ति फुरो मंत्र ईश्वरोवाच डाढ़ी जगावे तो मियाँ साँच।

(आँख से इंगित करता है)

मियाँ—(फिर डाढ़ी लगाकर) लाहौल वला कूवत क्या बेखबर पागल है। इसके घर के लोग इसके लौटने के मुन्तजिर हैं यह यहीं पड़ा है।

पागल—पड़ा घड़ा सड़ा—घूम घाम जड़ा—एक एक बात—जात सात धात—नास नास नास—घास छास फास।

मियाँ—क्या सचमुच—दरहकीकत—यह बड़ा भारी पागल है।

पागल—सचमुच नास—राजा अकास—ढाल बे ढाल मियाँ मतवाल। (आँख से दूर जाने को इंगित करता है। मियाँ आगे बढ़ते हैं—यह पीछे धूल फेंकता हुआ दौड़ता है)

मार मार मार। बरसा की धार। लेना जाने न पावे। मियाँ का खबर (दोनों एकांत में जाकर खड़े होते हैं)।

मियाँ—(चारों ओर देखकर) अरे वसंत! क्या सचमुच सर्वनाश हो गया?

पागल—पंडितजी! कल सवेरी रात ही महाराज ने प्राण त्याग किए। (रोता है)

मियाँ—हाय! महाराज, हम लोगों को आप किसके भरोसे छोड़ गए! अब हमको इन नीचों का दासत्व भोगना पड़ेगा! हाय! (चारों ओर देखकर) हाँ, समाचार तो कहो क्या हुआ।

पागल—कल उन दुष्ट यवनों ने महाराज से कहा कि तुम जो मुसलमान हो जाओ तो हम तुमको अब भी छोड़ दें। इस समय वह दुष्ट अमीर भी वहीं खड़ा था। महाराज ने लोहे के पिंजड़े में से उसके मुँह पर थूक दिया, और क्रोध कर के कहा कि दुष्ट! हमको पिंजड़े में बंद और परवश जानकर ऐसी बात कहता है। क्षत्री कहीं प्राण के भय से दीनता स्वीकार करते हैं! तुझ पर थू और तेरे मत पर थू।

मियाँ—(घबड़ाकर) तब तब।

पागल—इस पर सब यवन बहुत बिगड़े। चारों ओर से पिंजड़े के भीतर शस्त्र फेंकने लगे। महाराज ने कहा इस बंधन में मरना अच्छा नहीं। बड़े बल से लोहे के पिंजड़े का डंडा खींचकर उखाड़ लिया और पिंजड़े के बाहर निकल उसी लोहे के डंडे से सत्ताईस यवनों को मारकर उन दुष्टों के हाथ से प्राण त्याग किए। हाय! (रोता है)

मियाँ—(चारों ओर देखकर) और अब क्या होता है? महाराज का शरीर कहाँ है? तुमने यह सब कैसे जाना?

पागल—सब इन्हीं दुष्टों के मुख से सुना। इसी भेष में घूमते हैं। महाराज का शरीर अभी पिंजड़े में रक्खा है। कल जशन होगा। कल सब शराब पीकर मस्त होंगे। (चारों ओर देखकर) कल ही अवसर है।

मियाँ—तो कुमार सोमदेव और महारानी से हम जाकर यह वृत्त कह देते हैं, तुम इन्हीं लोगों में रहना।

पागल—हाँ, हम तो यहीं हई हैं। (रोकर) हम अब स्वामी के बिना वहाँ जाकर ही क्या करेंगे!

मियाँ—हाय! अब भारतवर्ष की कौन गति होगी? अब त्रैलोक्य-ललाम सुता भारत-कमलिनी को यह दुष्ट यवन यथासुख दलन करेंगे। अब स्वाधीनता का सूर्य हम लोगों में फिर न प्रकाश करेगा। हाय! परमेश्वर तू कहाँ सो रहा है। हाय! धार्मिक वीर पुरुष की यह गति!

(उदास स्वर से गाता है)

(विहाग)

कहाँ करुणानिधि केशव सोए!
जागत नेक न जदपि बहुत बिधि भारतवासी रोए॥
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारतहित बिसराए।
इतके पशु गज को आरत लखि आतुर प्यादे धाए॥
इक इक दीन हीन नर के हित तुम दुख सुनि अकुलाई।
अपनी संपति जानि इनहि तुम रछ्यौ तुरतहि धाई॥

प्रलयकाल सम जौन सुदरसन असुर प्रानसंहारी।
ताकी धार भई अब कुंठित हमरी बेर मुरारी॥
दुष्ट जवन बरबर तुव संतति घास साग सम काटैं।
एक-एक दिन सहस-सहस नर-सीस काटि भुव पाटैं॥
है अनाथ आरज कुल-विधवा बिलपहिं दीन दुखारी।
बल करि दासी तिनहिं बनावहि तुम नहिं लजत खरारी॥
कहाँ गए सब शास्त्र कही जिन भारी महिमा गाई।
भक्तबछल करुनानिधि तुम कहँ गायो बहुत बनाई॥
हाय सुनत नहिं निठुर भए क्यों परम दयाल कहाई।
सब बिधि बूड़त लखि निज देसहि लेहु न अबहुँ बचाई॥

(दोनों रोते हैं)

(जवनिका पतन)

———

नवाँ दृश्य

स्थान—राजा सूर्य्यदेव के डेरे

(एक भीतरी डेरे में रानी नीलदेवी बैठी हैं और बाहरी डेरे में क्षत्री लोग पहरा देते हैं)

नील०—(गाती और रोती हुई)

तजी मोहि काके ऊपर नाथ !
मोहि अकेली छोड़ि गए तजि बालपने को साथ ॥
याद करहु जो अगिनि साखि दै पकर्‌यो मेरो हाथ ।
सो सब मोह आज तजि दीनो कीनो हाय अनाथ ॥

प्यारे क्यों सुधि हाय बिसारी ?
दीन भई बिदरी हम डोलत हा हा होय तुमारी ॥
कबहुँ कियो आदर जा तन को तुम निज हाथ पियारे ।
ताही की अब दीन दसा यह कैसे लखत दुलारे ॥
आदर के घन सम जा तन कहँ निज अंकम तुम धार्‌यौ ।
ताही कहँ अब पर्‌यौ धूर में कैसे नाथ निहार्‌यौ ॥

प्यारे कितै गई सो प्रीति ?
निठुर होइ तजि मोहि सिधारे नेह निबाहन रीति ॥
कह्यो रह्यो जो छिन नहिं तजिहैं मानहु बचन प्रतीति ।
सो मोहि जीवन लौं दुख दीनो करी हाय बिपरीति ॥

(कुमार सोमदेव चार राजपूतों के साथ बाहरी डेरे में आते हैं)

सोम०—भाइयो ! महाराज का समाचार तो आप लोगों ने सुना। अब कहिए क्या कर्त्तव्य है ? मेरी तो शोक से मति विकल हो रही है। आप लोगों की जो अनुमति हो, किया जाय।

प० राज०—कुमार ! आप ऐसी बात कहेंगे कि शोक से मति विकल हो रही है तो भारतवर्ष किसका मुँह देखेगा ! इस शोक का उत्तर हम लोग अश्रुधारा से न देकर कृपाणधारा से देंगे।

दू० राज०—बहुत अच्छा !!! उन्मत्त सिंह, तुमने बहुत अच्छा कहा। इन दुष्ट चांडाल यवनों के रुधिर से हम जब तक अपने पितरों का तर्पण न कर लेंगे, हम कुमार की शपथ करके प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि हम पितृ-ऋण से कभी उऋण न होंगे।

ती० राज०—शाबाश! विजयसिंह, ऐसा ही होगा। चाहे हमारा सर्वस्व नाश हो जाय परंतु आकल्पांत लोहलेखनी से हमारी यह प्रतिज्ञा दुष्ट यवनों के हृदय पर लिखी रहेगी। धिक्कार है उस क्षत्रियाधम को जो इन चांडालों के मूलनाश में न प्रवृत्त हो।

चौ० राज०—शत बार धिक्कार है सहस्र बार धिक्कार है उसको जो मनसा, वाचा, कर्मणा किसी तरह इन कापुरुषों से डरे। लक्ष बार कोटि बार धिक्कार है उसको जो इन चांडालों के दमन करने में तृण-मात्र भी त्रुटि करे। (बायाँ पैर आगे बढ़ाकर) म्लेच्छ-कुल के और उसके पक्षपातियों के सिर पर यह मेरा बायाँ पैर है, जो शरीर के हजार टुकड़े होने तक ध्रुव की भाँति निश्चल है, जिस पामर को कुछ भी सामर्थ्य हो हटावे।

सोम०—धन्य आर्यवीर पुरुषगण! तुम्हारे सिवा और कौन ऐसी बात कहेगा। तुम्हारी ही भुजा के भरोसे हम लोग राज्य करते हैं। यह तो केवल तुम लोगों का जी देखने को मैंने कहा था। पिता की वीरगति का शोच किस क्षत्रिय को होगा? हाँ, जो हम लोग इन दुष्ट यवनों का दमन न करके दासत्व स्वीकार करें तो निस्संदेह दुःख हो। (तलवार खींचकर) भाइयो! चलो इसी क्षण हम लोग उस पामर नीच यवन के रक्त से अपने आर्य पितरों को तृप्त करें।

चलहु बीर उठि तुरत सबै जय-ध्वजहि उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड्ग खींचि रनरंग जमाओ॥
परिकर कसि कटि उठो धनुष पै धरि सर साधौ।
केसरिया बानो सजि सजि रनकंकन बाँधौ॥
जौ आरजगन एक होइ निज रूप सम्हारैं।
तजि गृहकलहहिं अपनी कुल-मरजाद विचारैं॥

तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठहरिहैं समर मँझारी॥
पदतल इन कहँ दलहु कीट त्रिन सरिस जवनचय।
तनिकहु संक न करहु धर्म जित जय तित निश्चय॥
आर्य वंश को बधन पुन्य जा अधम धर्म मैं।
गोभक्षन द्विज-श्रुति हिंसन नित जासु कर्म मैं॥
तिनको तुरितहिं हतौ मिलैं रन कै घर माहीं।
इन दुष्टन सों पाप कियेहूँ पुन्य सदाहीं॥
चिउँटिहु पदतल दबे डसत ह्वै तुच्छ जंतु इक।
ये प्रतच्छ अरि इनहिं उपेछै जौन ताहि धिक॥
धिक तिन कहँ जे आर्य होइ जवनन को चाहैं।
धिक तिन कहँ जे इनसों कछु संबंध निबाहैं॥
उठहु बीर तरवार खींचि मारहु घन संगर।
लोह-लेखिनी लिखहु आर्य-बल जवन-हृदय पर॥
मारू बाजे बजैं कहौ धौंसा घहराहीं।
उड़हिं पताका सत्रुहृदय लखि-लखि थहराहीं॥
चारन बोलहिं आर्य-सुजस बंदी गुन गावैं।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं॥
चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बखतर।
हींसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर॥
छन महँ नासहिं आर्य नीच जवनन कहँ करि छय।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय॥

सब वीर—भारतवर्ष की जय—आर्यकुल की जय—महाराज सूर्य्यदेव की जय—महारानी नीलदेवी की जय—कुमार सोमदेव की जय—क्षत्रियवंश की जय॥

(आगे-आगे कुमार उसके पीछे तलवार खींचकर क्षत्रिय लोग चलते हैं। रानी नीलदेवी बाहर के घर में आती हैं)

नील०—पुत्र की जय हो। क्षत्रिय-कुल की जय हो। बेटा, एक बात हमारी सुन लो तब युद्ध-यात्रा करो।

सोम०—(रानी को प्रणाम करके) माता! जो आज्ञा हो।

नील०—कुमार, तुम अच्छी तरह जानते हो कि यवन-सेना कितनी असंख्य है और यह भी भली भाँति जानते हो कि जिस दिन महाराज पकड़े गए इसी दिन बहुत से राजपूत निराश होकर अपने-अपने घर चले गए। इससे मेरी बुद्धि में यह बात आती है कि इनसे एक ही बेर सम्मुख युद्ध न करके कौशल से लड़ाई करना अच्छी बात है।

सोम०—(कुछ क्रोध करके) तो क्या हम लोगों में इतनी सामर्थ्य नहीं कि यवनों को युद्ध में लड़कर जीतें ?

सब क्षत्री—क्यों नहीं ?

नील०—(शांत भाव से) कुमार, तुम्हारी सर्वदा जय है।— मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा कहीं पराजय नहीं है। किंतु मा की आज्ञा मानना भी तो तुमको योग्य है।

सब क्षत्री—अवश्य, अवश्य।

सोम०—(हाथ जोड़कर) मा, जो आज्ञा होगी वही करूँगा !

नील०—अच्छा सुनो। (पास बुलाकर कान में सब विचार कहती हैं)

(एक ओर से कुमार और दूसरी ओर से रानी जाती हैं)

(पटाक्षेप)

———

दसवाँ दृश्य

स्थान—अमीर की मजलिस

(अमीर गद्दी पर बैठा है। दो-चार सेवक खड़े हैं। दो-चार मुसाहिब बैठे हैं। सामने शराब के पियाले, सुराही, पानदान, इतरदान रखा है। दो गवैए सामने गा रहे हैं। अमीर नशे में झूमता है)

गवैए—आज यह फत्ह का दरबार मुबारक होए।
मुल्क यह तुझको शहरयार मुबारक होए॥
शुक्र सद शुक्र कि पकड़ा गया वह दुश्मने-दीन।
फत्ह अब हमको हरेक बार मुबारक होए॥
हमको दिन-रात मुबारक हो फत्ह ऐशो उरूज।
काफिरों को सदा फिटकार मुबारक होए॥
फत्हे पंजाब से सब हिंद की उम्मीद हुई।
मोमिनो नेक य आसार मुबारक होए॥
हिंदू गुमराह हों बेजर हों बने अपने गुलाम।
हमको ऐशो तरबोतार मुबारक होए॥

अमीर—आमीं आमीं। वाह-वाह वल्लाही खूब गाया। कोई है? इन लोगों को एक-एक जोड़ा दुशाला इनआम दो। (मद्यपान)

(एक नौकर आता है)

नौकर—खुदावंद निआमत! एक परदेस की गानेवाली बहुत ही अच्छी खेमे के दरवाजे पर हाजिर है। वह चाहती है कि हुजूर को कुछ अपना करतब दिखलाए। जो इरशाद हो बजा लाऊँ।

अमीर—जरूर लाओ। कहो साज मिलाकर जल्द हाजिर हो।

नौकर—जो इरशाद। [जाता है

अमीर—आज के जशन का हाल सुनकर दूर-दूर से नाचने-गानेवाले चले आते हैं।

मुसाहिब—बजा इरशाद है, और उनको इनआम भी तो बहुत जियादः मिलता है, न क्यों आवें ?

(चार समाजियों के साथ एक गायिका का प्रवेश)

अमीर—(आप ही आप) यह तायफा तो बहुत ही खूबसूरत है ! (प्रगट) तुम्हारा क्या नाम है ? (मद्यपान)

गायिका—मेरा नाम चंडिका है। मैं बड़ी दूर से आपका नाम सुनकर आती हूँ।

अमीर—बहुत अच्छी बात है। जल्द गाना शुरू करो। तुम्हारा गाना सुनने को मेरा इश्तियाक हर लहजे बढ़ता जाता है। जैसी तुम खूबसूरत हो वैसा ही तुम्हारा गाना भी खूबसूरत होगा। (मद्यपान)

गायिका—जो हुकुम। (गाती है)

ठुमरी तिताला

हाँ, मोसे सेजिया चढ़लि नहिं जाई हो।
पिय बिनु साँपिन सी डसै बिरह रैन॥
छिन-छिन बढ़त बिथा तन सजनी,
कटत न कठिन बियोग की रजनी।
बिनु हरि अति अकुलाई हो॥

अमीर—वाह-वाह क्या कहना है ! (मद्यपान) क्यों फिदाहुसैन ! कितना अच्छा गाया है।

मुसाहिब—सुबहानअल्लाह ! हुजूर क्या कहना है। वल्लाह मेरा तो क्या जिक्र है मेरे बुजुर्गों ने ख्वाब में भी ऐसा गाना नहीं सुना था।

(अमीर अँगूठी उतारकर देना चाहता है)

गायिका—मुझको अभी आपसे बहुत कुछ लेना है। अभी आप इसको अपने पास रखें, अखीर में एक साथ मैं सब ले लूँगी।

अमीर—(मद्यपान करके) अच्छा ! कुछ परवाह नहीं। हाँ, इसी

धुन की एक और हो ; मगर उसमें फुरकेत का मजमून न हो क्योंकि आज खुशी का दिन है।

गायिका—जो हुकुम। (उसी चाल में गाती है)

जाओ जाओ काहे आओ प्यारे कतराए हो।
काहे चलो छाँह से छाँह मिलाए हो॥
जिय को मरम तुम साफ कहत किन काहे फिरत मँड़राए हो।
एहो हरि देखि यह नयो मेरो जोबन हम जानी तुम जो लुभाए हो॥

अमीर—(मद्यपान करके अत्यंत रीझना नाट्य करता है) कसम खुदा की ऐसा गाना मैंने आज तक नहीं सुना था। दर-हकीकत हिंदोस्तान इल्म का खजाना है। वल्लाह, मैं बहुत ही खुश हुआ।

(मुसाहिबगण वल्लाह, बजा इरशाद, बेशक इत्यादि सिर और दाढ़ी हिला-हिलाकर कहते हैं)

अमीर—तुम शराब नहीं पीतीं ?

गायिका—नहीं हुजूर।

अमीर—तो आज हमारी खातिर से पीओ।

गायिका—अब तो आपके यहाँ आई ही हूँ। ऐसी जल्दी क्या है। जो-जो हजूर कहेंगे सब करूँगी।

अमीर—अच्छा कुछ परवाह नहीं। (मद्यपान) थोड़ा सा और आगे बढ़ आओ।

(गायिका आगे बढ़कर बैठती है)

अमीर—(खूब घूरकर स्वगत) हाय-हाय ! इसको देखकर मेरा दिल बिलकुल हाथ से जाता रहा। जिस तरह हो, आज ही इसको काबू में लाना जरूर है। (प्रगट) वल्लाह, तुम्हारे गाने ने मुझको बेअख्तियार कर दिया है। एक चीज और गाओ इसी धुन की। (मद्यपान)

गायिका—जो हुकुम। (गाती है)

हौं गरवा लगावै गिरिधारी हो, देखो सखी लाज सरम सब जग की,
छोड़ि चट निपट निलज मुख चूमै बारी बारी।
अति मदमातो हरि कछु न गिनत छैल बरजि रही मैं होइ होइ
बलिहारी।

अब कहाँ जाउँ कहा करूँ लाज की मैं मारी!

अमीर—(मद्यपान करके उन्मत्त की भाँति) वाह-वाह, क्या कहना है। (गिलास हाथ में उठाकर) एक गिलास तो अब तुमको जरूर ही पीना होगा। लो तुमको मेरी कसम, वल्लाह मेरे सिर की कसम जो न पी जाओ।

गायिका—हुजूर, मैंने आज तक शराब नहीं पी है। मैं जो पीऊँगी तो बिल्कुल बेहोश हो जाऊँगी।

अमीर—कुछ परवाह नहीं, पीओ।

गायिका—(हाथ जोड़कर) हुजूर, एक दिन के वास्ते शराब पीकर मैं क्यों अपना ईमान छोड़ूँ?

अमीर—नहीं-नहीं, तुम आज से हमारी नौकर हुई, जो तुम चाहोगी तुमको मिलेगा। अच्छा, हमारे पास आओ। हम तुमको अपने हाथ से शराब पिलावेंगे।

(गायिका अमीर के अति निकट बैठती है)

अमीर—लो जान साहब!

(पियाला उठाकर अमीर जिस समय गायिका के पास ले जाता है उसी समय गायिका बनी हुई नीलदेवी चोली से कटार निकालकर अमीर को मारती है और चारों समाजी बाजा फेंककर शस्त्र निकालकर मुसाहिब आदि को मारते हैं)।

नीलदेवी—ले चांडाल पापी! मुझको जान साहब कहने का फल ले, महाराज के वध का बदला ले। मेरी यही इच्छा थी कि मैं इस चांडाल का अपने हाथ से वध करूँ। इसी हेतु मैंने कुमार को लड़ने से रोका, सो इच्छा पूर्ण हुई। (और आघात) अब मैं सुखपूर्वक सती हूँगी।

अमीर—(मृतावस्था में) दगा वल्लाह चंडिका—

(रानी नीलदेवी ताली बजाती है। तंबू फाड़कर शस्त्र खींचे हुए कुमार सोमदेव राजपूतों के साथ आते हैं। मुसलमानों को मारते और बाँधते हैं। क्षत्री लोग भारतवर्ष की जय; आर्यकुल की जय; क्षत्रियवंश की जय; महाराज सूर्यदेव की जय; महारानी नीलदेवी की जय; कुमार सोमदेव की जय; इत्यादि शब्द करते हैं)।

(पटाक्षेप)

दुर्लभ बंधु

नाटक

सं० १९३७

दुर्लभा गुणिनो सूराः दातारश्चातिदुल्लभाः।
मित्रार्थे त्यक्तसर्व्वस्वो बन्धुस्सर्व्वेस्सुदुर्ल्लभः ॥

خدا ملے تو ملے آشنا نہیں ملتا
کسی کا کوئی نہیں دوست سب کہانی ہے

दुर्लभा गुणिनो सूराः दातारश्चातिदुल्लभाः।
मित्रार्थे त्यक्तसर्व्वस्वो बन्धुस्सर्व्वैस्सुदुर्ल्लभः ॥

خدا ملے تو ملے آشنا نہیں ملتا
کسی کا کوئی نہیں دوست سب کہانی ہے

दुर्लभ बंधु

प्रथम अंक

पहिला दृश्य

स्थान—वंशपुर की सड़क

(अनंत, सरल और सलोने आते हैं)

अनंत—सचमुच न जाने मेरा जी इतना क्यों उदास रहता है, इससे मैं तो व्याकुल हो ही गया हूँ पर तुम कहते हो कि तुम लोग भी घबड़ा गए। हा, न जाने यह उदासी कैसी है, कहाँ से आई है और क्यों मेरे चित्त पर इसने ऐसा अधिकार कर लिया है ? मेरी बुद्धि ऐसी अकुला रही है कि मैं अपने आपे से बाहर हुआ जाता हूँ।

सरल—आपका जी क्या यहाँ है, आपका चित्त तो वहाँ है जहाँ समुद्र में आपके सौदागरी के भारी भारी जहाज़ बड़ी बड़ी पाल उड़ाए हुए धनमत्त लोगों की भाँति डगमगी चाल से चल रहे होंगे और वरुण देवता के विमान की भाँति झूमते और आस पास की छोटी छोटी नौकाओं की ओर दयादृष्टि से देखते आते होंगे और वे बेचारियाँ भी अपने छोटे छोटे परों से उड़ती हुई और सिर झुका झुकाकर बारंबार उनको प्रणाम करती किसी तरह से लगी बग़ल उनका अनुगमन करती चली आती होंगी।

सलोने—महाराज ! हम सच कहते हैं ! जो हमारी इतनी जोखिम जहाज़ पर बाहर होती तो हमारा जी आठ पहर उसी में लगा रहता, प्रति क्षण तिनका उठा कर हम हवा का रुख देखा करते, रात दिन नक़शा लिए सड़क, बंदर और

खाड़ियों को ताका करते और थाड़े से खटके में भी अपनी हानि के डर से घबड़ा जाते।

सरल—और मेरा कलेजा तो गरम दूध के फूँकने में भी तूफान की याद करके दहल जाता और सोचता कि हाय यदि कहीं समुद्र में आँधी चली तो जहाजों की क्या गति होगी। बालू की घड़ी देखने से मुझे यह ध्यान बँधता कि मेरा माल से लदा जहाज बालू की चर पर चढ़ गया है और उसके उलट जाने से उसका ऊँचा मस्तूल झुका हुआ ऐसा दिखाई देता है मानो वह अपने प्यारे जलयान की समाधि को गले लगा कर रो रहा है। देवालय के शिखर का ऊँचा पत्थर देखते ही मुझे पहाड़ों की चट्टानें याद आतीं और सोचता कि इन्हीं चट्टानों से ठोकर खाकर मेरा भरा पूरा जहाज टूट गया है, किराना पानी पर फैल गया है और रंग रंग के रेशमी कपड़े समुद्र की लहरों पर लहरा रहे हैं, यहाँ तक कि जो जहाज अभी लाखों रुपये का था छन भर में एक पैसे का भी न रहा। बतलाइए कि जब एक बार इस तरह का शोच जी में आवे तो संभव है कि मनुष्य हानि के डर से उदास न हो जाय?

सलोने—मैं जानता हूँ कि आपको अपनी जोखों ही का सोच है।

अनंत—इसका नहीं। मैं धन्यवाद करता हूँ कि मेरा माल कुछ एक ही जहाज पर नहीं लदा है, और न सबके सब एक ही ओर भेजे गए हैं, और न एक साल के घाटे नफे से मेरे व्यापार की इतिश्री है, इससे सौदागरी की जोखों के सबब से मैं इतना उदास नहीं हूँ।

सरल—तो कहीं किसी से आँख तो नहीं लगी है?

अनंत—छि छि!

सरल—वह भी नहीं यह भी नहीं तब तो आपका जी झूठ मूठ उदास है, अभी हँसो, बोलो, खेलो, कूदो, अभी प्रसन्न हो जाय। संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं। कुछ तो ऐसे हैं जो बें समझे बूझे तुच्छ तुच्छ बात पर बड़े बड़े दाँत निकाल कर खिलखिला उठते हैं और बाजे ऐसे (मुहर्रमी पैदाइश के)

होते हैं कि ऐसा उत्तम परिहास जिस पर धर्मराज सा गंभीर मनुष्य हँस पड़े उस पर भी उनका फूला हुआ थूथन नहीं पिचकता ।

(बसंत, लवंग और गिरीश आते हैं)

सलोने—लो गिरीश और लवंग के साथ आपके प्रियबंधु बसंत आते हैं। अब हमारा प्रणाम लो। हम लोग आपको अपने से अच्छी मंडली में छोड़ कर जाते हैं।

सरल—भाई यदि ये उत्तम मित्रगण न आ जाते तो मैं आपको अच्छी तरह प्रसन्न किए बिना कभी न जाता।

अनंत—मेरे हिसाब तो तुम भी बहुत उत्तम मित्र हो। परंतु तुम्हें किसी आवश्यक काम से जाना है इसी हेतु अवसर पाकर यह बात बनाई है।

सरल—प्रणाम महाशयो।

बसंत—दोनों मित्रों को प्रणाम। कहो अब हम लोग फिर कब हँसे बोलेंगे। तुम लोग तो अब निरे अपरिचित हो गए। सचमुच क्या चले ही जाओगे ?

सरल—हम लोग अवसर के समय फिर मिलेंगे।

(सरल और सलोने जाते हैं)

लवंग—मेरे श्रीमंत बसंत लीजिए आप से और अनंत गुणकंत अनंत से भेंट हो गई अब हम लोग भी जाते हैं, परंतु खाने के समय जहाँ मिलने का निश्चय किया उसे न भूलिएगा।

बसंत—नहीं, न भूलूँगा।

गिरीश—भाई अनंत ! आप उदास मालूम पड़ते हो। हुआ ही चाहैं संसार के कामों में जो जितना विशेष फँसा रहेगा उतना ही विशेष वह उदास रहेगा। मैं सच कहता हूँ कि आपकी सूरत बिलकुल बदल गई है।

अनंत—मैं संसार को उसके वास्तविक रूप से बढ़कर कदापि नहीं

समझता। गिरीश! संसार एक रंगशाला है, जहाँ सब मनुष्यों को एक न एक स्वाँग अवश्य बनना पड़ता है, उनमें से उदासी का नाट्य मेरे हिस्से है।

गिरीश—और मैं विदूषक की नकल करता हूँ। मैं चाहता हूँ कि मेरे बाल भी हँसते खेलते पकें। नित्य मद्य पीने से मेरे कलेजे में गर्मी पहुँचे न कि आहों के भरने से उसमें शीत आवे। शरीर में रक्त की गर्मी रहते भी लोग क्यों कर मूरत की तरह चुप चाप बैठे रह सकते हैं, जागते हुए लोग भी किस तरह सो जाते हैं, या रोगी की तरह कराह कराह कर दिन बिताते हैं। आप मेरी बात से अप्रसन्न न हूजिएगा, मैं आपको जी से चाहता हूँ तब इतनी धृष्टता की है। बहुतेरे मनुष्य ऐसे होते हैं कि बँधे पानी के तालाब की भाँति उनके मुख का रंग सदा गँदला बना रहता है और यह समझ कर कि लोग हमको बड़ा सोचने वाला, विचारवान, पंडित और गंभीर कहेंगे व्यर्थ को भी मुँह फुलाए रहते हैं। उनका मुँह देखने से स्पष्ट प्रगट होता है कि यह लोग अपने को वेदव्यास से भी बढ़ कर लगाते और अपनी बात को वेदवाक्य से भी बढ़कर समझते हैं। मेरे प्यारे अनंत! मैं ऐसे बहुतेरे लोगों को जानता हूँ जो केवल जीभ न हिलाने के कारण समझदार प्रसिद्ध हैं। मैं सच कहता हूँ कि ऐसे लोगों से बोलना ही पाप है क्योंकि इनकी बात के सुनते ही क्रोध आजाता है और मनुष्य के मुँह से बुरा भला निकल ही आता है। मैं इस विषय में आप से फिर कभी बातचीत करूँगा। देखिए ऐसा न हो कि उसी झूठी बड़ाई की इच्छा आप पर भी प्रबल हो। भाई लवंग चलो अब इस समय बिदा। खाने के पीछे आकर मैं अपना व्याख्यान समाप्त करूँगा।

लवंग—तो खाने के समय तक के लिए जाता हूँ। परंतु मैं तो उन्हीं गूँगे बुद्धिमानों में से एक हूँ, क्योंकि गिरीश अपनी बकवाद में मुझे तो कभी बोलने ही नहीं देता।

गिरीश—अभी दो बरस मेरी संगति में और रहो तो फिर तुम्हारी जिह्वा का शब्द तुम्हारे कान को भी न सुनाई पड़ेगा।

अनंत—अच्छा जाओ, मैं भी तब तक बकवाद करना सीख रखता हूँ।

गिरीश—आप बड़ी कृपा कीजिएगा क्योंकि चुप रहने का स्वभाव या तो पशुओं के लिये योग्य होता है या ऐसी स्त्रियों के लिये जिसे व्याह करने वाला न मिलता हो।

(गिरीश और लवंग जाते हैं)

अनंत—कहो भाई, इसकी बात में कोई आनंद था ?

बसंत—गिरीश बहुत ही व्यर्थ बकता है। सारे वंश नगर में उससे बढ़कर कोई बक्की न निकलेगा। व्यर्थ की बकवाद की जाल में उसका वास्तविक आशय ऐसा छिपा रहता है जैसे गट्ठे भर भूसे में अनाज का एक दाना। जब दिन भर उसके लिये हैरान हो तब कहीं एक दाना हाथ लगे, वैसे ही जब बहुत सा समय इसकी बात के पीछे नाश करो तब उसका आशय समझ में आवै और इतने कष्ट के पीछे समझने पर भी कुछ उसका फल नहीं।

अनंत—हुआ, यह रामकहानी दूर करो। अब यह बतलाओ कि वह कौन सी स्त्री है जिसके लिये तुम गुप्त यात्रा करने वाले हो। देखो, आज मुझसे सब वृत्तांत कहने का वादा है।

बसंत—भाई अनंत ! तुम अच्छी तरह जानते हो कि मैंने अपनी सब जायदाद किस तरह गँवा दी। समझ कर व्यय न कर के सर्वदा बड़ी चाल चला और यही चाल मेरे नाश की कारण हुई। परंतु मुझे अपनी अवस्था के घट जाने का कुछ भी शोच नहीं है, शोच है तो केवल इस बात का है कि मुझे जो बहुत सा ऋण हो गया है उसे किसी तरह चुका दूँ। भाई अनंत ! तुम्हारा मैं सब प्रकार से ऋणी हूँ। रुपये का कहो दया का कहो। इस लिये ऋण चुकाने का मैं जो जो उपाय सोचता हूँ वह तुम से सब स्वच्छ स्वच्छ वर्णन करके अपने चित्त के बोझ को हलका करूँगा।

अनंत—प्यारे बसंत ! परमेश्वर के वास्ते मुझ से सब वृत्तांत स्पष्ट स्पष्ट वर्णन करो। यदि वह उपाय धर्म का है, जैसा कि तुम सदा

बरतते आए हो तो निश्चय रक्खो कि मेरा रुपया मेरा शरीर सब कुछ तुम्हारे लिये समर्पण है।

बसंत—छोटेपन में जब मैं पाठशाला में पढ़ता था तब यदि मेरा कोई तीर खोजाता था तो उसके ढूँढने को मैं वैसाही दूसरा तीर उसी ओर छोड़ता था और ध्यान रखता था कि यह तीर कहाँ गिरता है। इसी भाँति दुहरी जोखों उठाने से प्रायः दोनों मिल जाते थे। इस लड़कपन की बात के छेड़ने से मेरा आशय यह है कि अब मैं जो उपाय किया चाहता हूँ वह भी इसी लड़कपन के खेल की भाँति है। मैं तुम्हारा बड़ा ऋणी हूँ। जो कुछ मैंने तुमसे लिया वह सब एक हठी लड़के की भाँति गँवा दिया परन्तु जहाँ तुमने पहिले एक तीर छोड़ा है उसी ओर यदि एक तीर और फेंको तो मैं तुम्हें निश्चय दिलाता हूँ कि अब की मैं इसके लक्ष्य की ओर अच्छी तरह दृष्टि रख कर जैसे होगा वैसे दोनों तीर खोज लाऊँगा। और यदि संयोग से पहिला न मिला तो दूसरा तो अवश्य ही फेर लाऊँगा और पहिले के लिये धन्यवाद के साथ तुम्हारा सदा ऋणी रहूँगा।

अनंत—भाई तुम तो मुझे अच्छी तरह जानते हो। फिर मेरा जी टटोलने के लिये फेरवट के साथ बात करके व्यर्थ क्यों समय नष्ट करते हो। मुझे इसका दुःख है कि तुमने इस बात में संदेह किया कि मैं तुम्हारे लिए प्राण तक दे सकता हूँ। यदि तुम मेरी सर्वस्व हानि किए होते तब भी मुझे इतना दुःख न होता जो इस बात से हुआ। व्यर्थ बात बढ़ाने से क्या लाभ? केवल इतना कहो कि मुझे तुम्हारे हेतु क्या करना होगा, मैं उसके लिये प्रस्तुत हूँ शीघ्र बतलाओ।

बसंत—बिल्वमठ में एक कारी स्त्री रहती है जो अपने माँ बाप के मर जाने से एक बड़ी रियासत की स्वामिनी हुई है। उसका रूप ऐसा है कि केवल सौंदर्य के शब्द से उसकी स्तुति होही नहीं सकती। उसमें अनगिनत गुण हैं। कुछ दिन हुए उसकी चितवन ने मुझको ऐसे प्रेम-संदेश दिए थे कि मुझको उसकी ओर से पूरी आशा है। उसका नाम पुरश्री है, वह सचमुच

पुरश्री है, पुरश्री क्या सारे संसार की श्री है। रूप में श्री और गुण में सरस्वती है। संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ उसकी स्तुति की सुगंधि न फैली हो। चारों ओर से बड़े बड़े राजकुमार और धनिक उसके व्याह की आशा में आते हैं। भाई अनंत! यदि मुझे इतना रुपया मिलता कि वहाँ जाकर इन लोगों के समक्ष में विवाह की प्रार्थना कर सकता तो मेरा जी कहता है कि मैं अपने मनोरथ में अवश्य विजयी होता।

अनंत—भाई तुम अच्छी तरह जानते हो कि मेरी सब लक्ष्मी समुद्र में है, इस समय न मेरे पास मुद्रा है न माल जिसे बेंच कर रुपया मिल सके, इससे जाओ देखो तो मेरी साख वंशनगर में क्या कर सकती है। तुम्हें पुरश्री के पास विल्वमठ जाने के लिए जो रुपया चाहिए उसके प्रबन्ध में मैं ऊँचा नीचा सब काम करने को प्रस्तुत हूँ। देखो अभी जाकर खोज करो कि रुपया कहाँ मिल सकता है और मैं भी जाता हूँ मेरे नाम या जमानत से जिस प्रकार रुपया मिले मुझे किसी बात में सोच विचार नहीं है।

(दोनों जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान—विल्वमठ में पुरश्री के घर का एक कमरा
(पुरश्री और नरश्री आती हैं)

पुरश्री—नरश्री मैं सच कहती हूँ कि मेरा नन्हा सा जी इतने बड़े संसार से बहुत ही दुःखी आ गया है।

नरश्री—मेरी प्यारी सखी यह बात तो आप तब कहतीं जब, भगवान न करे, जैसा आपको सुख है उसके बदले उतना ही दुःख होता। परंतु न जाने क्यों प्रायः ऐसा देखा है कि जो बहुत धनवान हैं वह भी संसार से वैसे ही घबड़ाए रहते हैं जैसे वह लोग जो भूखों मरते हैं। इसी से निश्चय होता है कि मध्यावस्था कुछ साधारण भाग्य की बात नहीं। लक्ष्मी बहुत शीघ्र श्वेत बाल करती है पर तृप्ति बहुत दिन तक जिलाती है।

पुरश्री—क्यों न हो तुमने कैसे मनोहर वाक्य कहे और कैसी अच्छी तरह।

नरश्री—यदि उनका बरताव किया जाय तो और उत्तम हो।

पुरश्री—यदि अच्छी बात का करना इतना ही सहज होता जितना कि उसका जानना तो सब मढ़ियाँ मंदिर और सब झोपड़ियाँ महल हो जातीं। अच्छा गुरु वही है जो अपनी शिक्षा पर आप भी चलता है। बीस अच्छी बातें दूसरों को सिखलाना सहज है किंतु उनमें से अपनी शिक्षा के अनुसार एक पर भी चलना कठिन है। बुद्धि स्वभाव के ठंढा करने के लिये बहुत से उपाय बतलाती है किंतु समय पर क्रोध की गर्मी को कब रोक सकती है। यौवन का हिरन शिक्षा के फंदे में से बहुत सहज से छूट जाता है। किंतु इस बात से और मेरे पतिवरण करने से कोई संबध नहीं। हाय! भला मेरे वरण करने का फल ही क्या? मैं तो न जिसे चाहूँ उसे स्वीकार कर सकती हूँ और न जिसे न चाहूँ, उसे अस्वीकार कर सकती हूँ।

हाय ! एक जीती लड़की की आशा एक मरे हुए बाप के मृत-पत्र से कैसी रुक रही है। नरश्री क्या यह घोर दुःख की बात नहीं है कि न मैं किसी को स्वीकार कर सकती हूँ और न अस्वीकार ?

नरश्री—आपके बाप बड़े अच्छे और धर्मिष्ठ मनुष्य थे और ऐसे महात्माओं को मरने के समय अनुभव हुआ करते हैं। इससे सोने, चाँदी और जस्ते के तीन सन्दूकों के निश्चय करने में जो बात उन्होंने सोची थी (जिसके अनुसार वह मनुष्य जो उनका बतलाया हुआ संदूक ग्रहण करेगा उसी का विवाह आप से होगा) वह कभी बुराई न करेगी। मुझे निश्चय है कि चिंतित संदूक को वही मनुष्य चुनेगा जिसे आप जी से प्यार करती होंगी। परन्तु यह तो कहिए कि इतने राजकुमार और धनिक जो विवाह की आशा में आए हैं उनमें से किसी की ओर आपको कुछ भी स्नेह है या नहीं ?

पुरश्री—तुम उनके नामों को मेरे सामने कहती जाओ तो मैं प्रत्येक के विषय में अपना विचार वर्णन करती जाऊँगी। इसी से तुम मेरे प्रेम का वृत्तांत जान लोगी।

नरश्री—अच्छा तो नैपाल के राजकुमार से आरंभ कीजिए।

पुरश्री—छिः छिः ! वह तो निरा बछेड़ा है, और कोई काम नहीं, बस रात दिन अपने घोड़ों ही का वर्णन। सारे अस्तबल की बला अपने सिर लिये रहता है और बड़ा भारी अभिमान इस बात पर करता है कि मैं अपने घोड़े की नाल आप ही बाँध लेता हूँ। वह तो बिलकुल खोगीर की भरती है। निखट्टू नैपाली टट्टू।

नरश्री—और पाटन वाला ?

पुरश्री—मरकहा बैल। रात दिन फूँ फूँ किया करता है, मानो उसकी चितवन कहे देती है कि या तो व्याह करो या साफ़ जवाब दो। सैकड़ों हँसी की बातें सुनाता है पर चाहे कि तनिक भी

उसका थूथन पिचके। मुस्कुराना तो सपने में नहीं जानता। हँसी मानो जुए में हार आया है। अभी जब हट्टा कट्टा साँड़ बना है तब तो यह रोनी मूरत है तो बुढ़ापे में तो बात पूछते रो देगा। सिवाय हर हर भजने के और किसी काम का न रहेगा। मेरा व्याह चाहे एक मुर्दे से हो पर इन भद्दे जानवरों से नहीं। भगवान इन दोनों से बचावे।

नरश्री—और भला फनेश देश के नरेश को आप कैसा समझती हैं?

पुरश्री—बे लगाम का ऊँट। मनुष्य के साँचे में ढल गया है बस इसी से मनुष्य कहा जाता है, नहीं तो है निरा पशु। किसी की निंदा करनी निस्सन्देह पाप है पर सच्ची बात यह है कि नैपाल के राजकुमार से जैसा एक चाशनी बढ़कर यह घुड़चढ़ा है वैसा ही पाटनवाले से बढ़कर नकचढ़ा! आप तो कुछ भी नहीं है पर छाया उसमें सब किसी की है। अभी गौरिया बोले तो आप उसकी तान पर नाचने लगें और अभी अपनी परछाईं देखें तो तलवार लेकर उससे लड़ने चलें। एक उससे न व्याह किया मानो बीस मनुष्य से एक साथ व्याह किया। यदि वह मुझसे घृणा करेगा तो मै उससे कदापि अप्रसन्न न हूँगी वरंच अपना सौभाग्य समझूँगी क्योंकि यदि वह मेरे प्रेम में पागल भी हो जायगा तो भी मैं उसे प्यार न कर सकूँगी।

नरश्री—अच्छा, अगदेश के नवयुवक धनी व्रजपालक को आप क्या कहती हैं?

परश्री—तुम जानती हो कि मैं उसको कुछ नहीं कह सकती क्योंकि न वह मेरी बात समझता है न मैं उसकी। वह न हिंदी जानता है न व्रज भाषा न माड़वारी और तुम शपथपूर्वक कह सकोगी कि मैथिल में मुझे कितना न्यून अभ्यास है। उसकी सूरत तो बहुत अच्छी है पर इससे क्या? खिलौने से कोई भी बातचीत कर सकता है? उसका पहिनावा कैसा बेजोड़ है। उसने अपना अंगा मारवाड़ में मोल लिया है, पाजामा मथुरा में बनवाया है, टोपी गुजरात से मँगनी लाया है, और चाल ढाल थोड़ी थोड़ी सब जगह से भीख माँग लाया है।

नरश्री—और उसका परोसी मालवा का अधिपति ?

पुरश्री—परोसी की सी क्षमा तो उसके स्वभाव में निस्संदेह है क्यों कि उस दिन जब उस अंगवाले ने उसकी कनपट्टी पर एक घूसा मारा था तो उसने सौगंद खाई थी कि अवसर मिलेगा तो अवश्य बदला लूँगा। इस पर फनेश देश वाले ने बीच में पड़ कर झगड़ा यों निबटा दिया कि रूसो मत दहिने के बदले बायाँ भी तुमको मिल जायगा।

नरश्री—और उस नवयुवक शर्म्मण्य देश के मंडलेश्वर के भतीजे को आप कैसा पसंद करती हैं ?

पुरश्री—राम राम ! वह तो बड़ा भारी घनचक्कर है। सवेरे जब वह अपने आपे में रहता है तभी बहुत बुरा रहता है तो तीसरे पहर जब मद में चूर होता है तब तो और भी बुरा हो जाता है। अच्छी दशा में वह मनुष्य से कुछ न्यून रहता है और बुरी दशा में पशु से भी नीच होही जायगा। भगवान न करे यदि यह आपत्ति पड़े कि मुझको उससे विवाह करना हो तो जैसे हो सके वैसे मैं उससे दूर रहूँ।

नरश्री—भला यदि ऐसा हुआ कि उसने वही मंजूषा चुना जिसके चुनने से वह आपको पावे तब क्या कीजिएगा क्योंकि फिर तो विवाह न करना अपने बाप की इच्छा के विरुद्ध चलना है।

पुरश्री—इसी से मैं तुम से कहती हूँ कि जिस मंजूषा में भूत की मूर्त्ति है, उसके ऊपर एक उत्तम मद्य से भरा हुआ पात्र रख दो क्योंकि भीतर भूत ऊपर मद्य बस वह उसी सन्दूक को चुनेगा। जैसे हो उस समुन्दर-शोख अगस्त से बचाने का कोई उपाय करना ही पड़ेगा।

नरश्री—सखी आप इस बात का भय मत कीजिए कि इन लोगों में से किसी से आप को विवाह करना पड़ेगा क्योंकि मैं सब के जी का हाल ले चुकी हूँ। यदि आप अपने बाप की आज्ञा के अनुसार मंजूषा के चुनने ही पर अपना निश्चय रक्खेंगी और कोई दूसरी प्रतिज्ञा न करेंगी तो यह सब के सब यहाँ से चले जायँगे और फिर विवाह की इच्छा प्रकट कर के

आपको कष्ट न देंगे।

पुरश्री—तुम निश्चय जानो कि यदि मुझे मारकंडेय की आयु मिले तो भी मैं अम्बालिका की तरह क्वारी मर जाऊँगी पर अपने पूज्य पिता की इच्छा के विरुद्ध कभी ब्याह न करूँगी। मुझको बड़ा आनंद है कि इन सन्दूकों में ऐसी चातुरी है कि यह सब आपत्ति बिना मंत्र जंत्र के आप से आप दूर हो जाती है क्योंकि इन में से ऐसा कोई नहीं जिसका मैं घड़ी भर रहना भी सह सकती हूँ।

नरश्री—क्यों सखी आप को स्मरण है कि नहीं कि आप के पिता के समय में फनित मठ के राजा के साथ वशनगर का एक युवक बुद्धिमान और शूर मनुष्य आया था?

पुरश्री—हाँ वह बसन्त था—क्यों यही न उसका नाम था?

नरश्री—हाँ सखी—जहाँ तक कि मुझ मूर्ख की समझ है सुंदरी स्त्री के योग्य उससे उत्तम और कोई वर मुझे दृष्टि नहीं पड़ा।

पुरश्री—मुझको भली भाँति स्मरण है और जो कुछ तुमने उसकी प्रशंसा की बहुत ठीक है।

(एक नौकर आता है)

क्यों क्यों! कोई नई बात है?

नौकर—बबुई साहिब ऊ चारों आदमी आप से बिदा होए कै ठाढ़ होएँ और एक पाँचवाँ का हरकारा आयल हौ सो कहत हौ की मोरकुटी कै राजकुमार ओकर मालिक आज राती के इहाँ पहुँचीहैं।

पुरश्री—यदि यह पाँचवाँ मनुष्य ऐसा होता कि मैं उसके आने पर वैसी ही प्रसन्नता प्रकट कर सकती जैसी प्रसन्नता से इन चारों को विदा करती हूँ तो क्या बात थी। परंतु यदि इसका रूप भूत का सा है और चित्त देवता का सा तो मैं उसका शाप देना इसकी अपेक्षा उत्तम समझूँगी कि वह मुझसे ब्याह करे। नरश्री चलो। नौकर तू आगे जा। एक गाहक जाने ही नहीं पाता कि दूसरा आ उपस्थित होता है। (सब जाते हैं)

———

तीसरा दृश्य

(वसंत और शैलाक्ष आते हैं)

शैलाक्ष—छ सहस्र मुद्रा-हूँ ।

वसंत—हाँ साहिब—तीन महीने के वादे पर ।

शैलाक्ष—तीन महीने का वादा-हूँ ।

वसंत—और इसके लिये, जैसा कि मैं आप से कह चुका हूँ, अनंत ज़ामिन होंगे ।

शैलाक्ष—अनंत ज़ामिन होंगे-हूँ ।

वसंत—तो आप मुझे देंगे ? आप से मेरा काम निकलेगा ? मैं आप के उत्तर की राह देखता हूँ ।

शैलाक्ष—छ सहस्र मुद्रा-तीन महीने का वादा-और अनंत की ज़मानत ।

वसंत—जी हाँ । आप क्या उत्तर देते हैं ?

शैलाक्ष—अनंत है तो अच्छा मनुष्य ।

वसंत—क्यों क्या आपने इस के विरुद्ध कुछ सुना है ?

शैलाक्ष—नहीं नहीं, मेरा अभिप्राय उनके अच्छे होने से यह है कि उनकी ज़मानत ही बहुत है—यद्यपि आजकल उनकी दशा हीन है क्योंकि उनका एक जहाज़ त्रिपुल को गया है दूसरा हिन्दुस्तान को, सुना है कि बाज़ार में भी कुछ व्यवहार है, एक तीसरा जहाज़ मौक्तिक में तथा चौथा अंग देश में है । इसी भाँति इधर उधर और बंदरों में भी उनकी जोखों है । परंतु जहाज़ फिर भी काठ ही है और मल्लाह भी मनुष्य ही हैं; चूहे थल में भी होते हैं और जल में भी, वैसे ही चोर पृथ्वी पर भी होते हैं और पानी में भी अर्थात् डाकुओं का भय सभी स्थल है और फिर आँधी, तूफान और चट्टान का भय अलग लगा हुआ है पर फिर भी वह बहुत हैं—छ सहस्र मुद्रा—मैं समझता हूँ कि उनकी ज़मानत स्वीकार कर लूँगा ।

वसंत—संतोष रखिए उनकी ज़मानत निस्संदेह ग्रहण करने योग्य है।

शैलाक्ष—मैं अपना मन भर लूँगा और किस तरह मेरा तोष होगा इस पर विचार करूँगा—मैं अनंत से इसकी बातचीत कर सकता हूँ ?

वसंत—यदि दोपहर को कृपा कर के हम लोगों के साथ खाना खाइए तो वहाँ सब बात निश्चय हो जाय।

शैलाक्ष—जी हाँ सूअर सूँघने को और उस घर में खाने को जहाँ आप के देवताओं ने सब पिशाची की बातें भर दी हैं। मैं आप लोगों से लेन देन करूँगा, बोलूँगा, आप के साथ चलूँ फिरूँगा और ऐसे ही दूसरी बातें करूँगा, परंतु यह नहीं हो सकता कि मैं आप लोगों के साथ खाना खाऊँ, पानी पीऊँ या पूजा करूँ। बाजार की क्या खबर है ?—यह कौन आता है।

(अनंत आता है)

वसंत—अनंत आप आ पहुँचे।

शैलाक्ष—(आप ही आप) देखो इसकी सूरत ही से यह बात झलकती है कि यह हिंदुओं को प्रसन्न करने के लिये जैनियों से शत्रुता रखता है। मैं इससे घृणा करता हूँ क्योंकि यह ईसाई है परंतु मुख्यतः इस कारण से कि यह ऐसा निरुत्साह और नीच है कि लोगों को रुपया बिना ब्याज के ऋण दे दे कर हम लोगों के ब्याज का भाव बिगाड़ देता है। यदि एक बार भी मेरे हाथ चढ़े तो मैं सब पुरानी कसर निकाल लूँ। यह मनुष्य हमारी पवित्र जाति को तुच्छ समझता है और मेरी और मेरे व्यवहारों की निंदा वहाँ भी नहीं छोड़ता जहाँ बहुत से व्यापारी इकट्ठा होते हैं। मेरे धर्म्मोपार्जित द्रव्य का ब्याज नाम रखता है। धिक्कार है मेरी जाति को यदि मैं इस मनुष्य से बदला न लूँ।

वसंत—शैलाक्ष आपने सुना ?

शैलाक्ष—मैं अभी अपने जी में हिसाब कर रहा था कि मेरे पास कितना रुपया तैयार है और जहाँ तक मैंने सोचा इस समय

मेरे पास छ सहस्र रुपया न निकलेगा—पर इससे क्या ? मैं त्र्यंबक से जो मेरी जाति का एक धनिक पुरुष है शेष मुद्रा ले लूँगा। परंतु नेक ठहरिए—कै महीने की मिती आप चाहते हैं ? (अनंत से) प्रणाम महाशय, आप की बड़ी आयु है, अभी आप ही का हम लोग वर्णन कर रहे थे।

अनंत—शैलाक्ष यद्यपि मैं व्याज पर रुपये का कभी लेन देन नहीं करता तौ भी अपने मित्र की अत्यंत आवश्यकता को समझ कर अपने नियम के तोड़ने पर प्रस्तुत हूँ। वसंत तुम इनसे कह चुके हो कि कितने रुपये की आवश्यकता है ?

शैलाक्ष—हाँ हाँ-छ सहस्र मुद्रा।

अनंत—और तीन महीने के लिये।

शैलाक्ष—हाँ मैं भूल गया था—तीन महीने की मिती पर—आप कह चुके हैं—तो किन प्रतिज्ञाओं पर नेक ठहरिए—किंतु सुनिए तो सही अभी आपने कहा था कि हम सूद पर लेन देन नहीं करते।

अनंत—मैं इसका व्यापार कभी नहीं करता।

शैलाक्ष—जब कि यादव अपने मामा लवेंद्र की भेड़ों को चराते थे—तो उनको उनकी माँ की चातुरी से बरकत मिली थी।

अनंत—तो उनके नाम लेने से यहाँ क्या तात्पर्य है ? क्या वह सूद खाते थे ?

शैलाक्ष—नहीं व्याज नहीं खाते थे, जिसे आप सूद कहते हैं ठीक वैसा व्याज नहीं लेते थे—सुनिए वह क्या उपाय करते थे। जब कि लवेंद्र और उनमें परस्पर यह बात निश्चय हुई कि जितने भेड़ी के बच्चे धारीदार और चितकबरे पैदा हों वह यादव को वेतन में मिलें तो यादव ने चतुराई से बहुत सी हरी छड़ियाँ काट कर और स्थान स्थान से छिलका उड़ा कर उन्हें गंडेदार बनाया और उठी हुई भेड़ों के सामने गाड़ दिया और जब यह गाभिन हुईं तो इसके प्रयोग से चितकबरे बच्चे उत्पन्न हुए, जो यादव के भाग में आये। यह लाभ उठाने का

एक उपाय था और यादव पर ईश्वर की कृपा थी क्योंकि लाभ भी होना ईश्वर की कृपा है, यदि मनुष्य उसको चोरी से न उपार्जन करे।

अनंत—यह तो ईश्वर की दया थी जिससे यादव ने अपने परिश्रम का इस प्रकार से फल पाया। इसमें उनका कुछ वश न था वरंच केवल ईश्वर की माया से यह बात प्रगट हुई। पर क्या आपका यह तात्पर्य्य है कि इतिहास में इस कथा के लिखने से यह अभिप्राय था कि व्याज लेना उचित समझा जाय, या आप अपने रुपये और अशरफ़ी को भेड़ा भेड़ी समझते हैं।

शैलाक्ष—मैं यह नहीं कह सकता परंतु मैं उनसे बच्चे वैसे ही शीघ्र उत्पन्न कर लेता हूँ। परंतु नेक इस बात को सुनिए।

अनंत—वसंत इस पर विचार करो, राक्षस भी अपने स्वार्थ के लिये इतिहास और पुराण का प्रमाण दे सकता है। दुष्ट मनुष्य जो अपनी निष्कलंकता प्रकट करता है एक हँसमुख घात करने वाला होता है। वह एक सेव की भाँति है जिसका छिलका बहुत स्वच्छ और उत्तम है परंतु भीतर बिल्कुल सड़ा हुआ है, देखो झूठ की सूरत देखने में कैसी चिकनी चुपड़ी होती है।

शैलाक्ष—छ हज़ार रुपया—यह तो एक पूरी जमा है—और महीने भी तीन—तो हमें भाव सोचने दीजिए।

अनंत—स्पष्ट कहो रुपया देना है या नहीं?

शैलाक्ष—अनंत महाशय आपने बाज़ार में सहस्रों ही बार मेरे धन और लाभ के लिये मेरी दुर्दशा की होगी पर मैंने क्षमा करने के सिवाय कभी कुछ उत्तर नहीं दिया क्योंकि क्षमा हमारी ज्ञाति का चिन्ह है। आप मुझे नास्तिक, गलकट्टा और कुत्ता कह कर मेरे जातीय परिधान पर थूकते थे और यह सब केवल इस अपराध के लिये कि मैं अपनी जमा को जिस भाँति चाहता हूँ काम में लाता हूँ। अस्तु तो अब जान पड़ता है कि आप मेरी सहायता के अपेक्षी हैं, आप मेरे पास आए हैं। और कहते हैं कि शैलाक्ष हमें रुपया ऋण दो—ऐं आप ऐसा कहते हैं, आप जो मेरी डाढ़ी को अपना उगालदान समझते

थे और मुझे ठीक इस तरह ठोकर मारते थे जैसे कोई अपनी देहली पर अनजान कुत्ते को मारता है। आपकी प्रार्थना रुपये की है—इसका मैं आपको क्या उत्तर दूँ? क्या मैं आपसे यह पूछूँ कि साहिब कहीं कुत्ते के पास भी रुपया सुना है? कभी सम्भव है कि अपवित्र कुत्ता भी छ सहस्र मुद्रा ऋण दे सके? या नम्रता से सिर झुका कर भृत्य की भाँति काँपता हुआ धीमे स्वर से निवेदन करूँ 'महाराज ने कृपापूर्वक मुझ पर गए बुध को थूका था और फ़लाने दिन ठोकर मारी थी और फ़लाने दिन कुत्ते की उपाधि दी थी, अतः इन कृपाओं के बदले मैं उतना रुपया देने को प्रस्तुत हूँ?

अनंत—मैं तुझे फिर भी ऐसा कहूँगा और तुझ पर थूकूँगा और लात मारूँगा। यदि तुझे रुपया उधार देना है तो मुझे अपना मित्र समझ कर मत दे (क्योंकि मित्रता रुपये से जो एक बाँझ को भाँति है बच्चे कब उत्पन्न कर सकती है?) वरंच अपना शत्रु समझ कर जिससे भंगप्रतिज्ञ होने पर तुझे सर्व प्रकार से प्रतिज्ञानुसार दंड ग्रहण करने का मुँह पड़े।

शैलाक्ष—वाह वाह देखिए तो आप कैसा आपे से बाहर हो गये! मैं आपसे मित्रता का नाता रक्खा चाहता हूँ और पिछले बैरों को भुला कर आपके स्नेह की आशा रखता हूँ, मैं आपको रुपया उधार देने को प्रस्तुत हूँ और सूद एक पैसा नहीं चाहता तिस पर भी आप मेरी बात नहीं सुनते। क्या यह मेरा बर्ताव मित्रता का नहीं है?

वसंत—यह आपकी दया है।

शैलाक्ष—मैं इस कृपा को दिखलाऊँगा। (अनंत से) मेरे साथ किसी व्यवस्थापक के यहाँ चलिए और उसके सामने तमस्सुक पर अपनी मुहर कर दीजिए और हँसी की रीति पर यह शर्त लिख दीजिए कि यदि अमुक दिन और अमुक स्थान पर आप मेरा रुपया जिसका तमस्सुक में वर्णन है न चुका दें तो मुझे अधिकार होगा कि उसके बदले में आपके जिस शरीर के अंश से चाहूँ आध सेर माँस काट लूँ।

अनंत—मैं चित्त से प्रसन्न हूँ और इन शर्तों पर मुहर कर दूँगा और यह भी कहूँगा कि इस जैन में बड़ी मनुष्यता है।

वसंत–तुम मेरे लिये ऐसे तमस्सुक पर हस्ताक्षर न करने पाओगे इससे तो मैं अपनी दरिद्रावस्था में रहना ही श्रेय समझूँगा।

अनंत–क्यों ? डरो मत—प्रतिज्ञा-भंग होने की घड़ी कदापि न आवेगी—दो महीने के भीतर अर्थात् तमस्सुककी मिती पूजने के एक महीना पहिले मुझे आशा है कि इसका तिगुना धन मेरे पास पहुँच जायगा।

शैलाक्ष–हे ईश्वर, ये आर्य्य भी कैसे मनुष्य होते है ! जैसा इनका चित्त कठोर होता है वैसा ही औरों का भी समझ कर संदेह करते हैं ! भला यह तो बतलाइए कि यदि इन्होंने प्रतिज्ञा भंग की तो मुझे इस शर्त के पूरा कराने से क्या लाभ, होगा ? मनुष्य के शरीर का आध सेर मांस किस रोग की औषधि है और वह किस गिनती में है ? क्या वह उतना भी काम में आ सकता है जैसा भेड़ी बकरी का मांस ? सुनिए केवल इनसे मैत्री करने के लिये मैं इनके साथ ऐसी कृपा करता हूँ, यदि यह इसे समझें तो अच्छी बात है नहीं तो प्रणाम, और मेरी प्रीति के बदले मेरे साथ बुराई न कीजिएगा।

अनंत–हाँ शैलाक्ष मैं इस तमस्सुक पर मुहर कर दूँगा।

शैलाक्ष–तो अभी व्यवस्थापक के घर पर जाइए और इस हँसी की दस्तावेज़ के लिखने को कहिए। मैं भी शीघ्र ही जा कर थैली में छ हज़ार रुपये लिये हुए वहीं पहुँचता हूँ और अपना घर भी देखता आऊँगा जिसे एक बड़े बहुव्ययी और अविश्वासी भृत्य को सौंप आया हूँ—मैं सब काम करके बात की बात में आप से मिलता हूँ। (जाता है)

अनंत–अच्छा झटपट जाओ। यह जैन ऐसा कृपालु होता जाता है कि आर्य बन जायगा।

वसंत–मैं चिकनी चुपड़ी बातें और दुष्ट अंतःकरण नहीं पसंद करता।

अनत–आओ, इसमें कोई धोखा नहीं हो सकता क्यों कि मेरे जहाज मिती पूजने के एक महीना पहिले अवश्य ही पहुँच जायँगे। (जाते हैं)

———

द्वितीय अंक

पहिला दृश्य

स्थान—विल्वमठ। पुरश्री के घर का एक कमरा।

(तुरहियाँ बजती हैं। मोरकुटी का राजकुमार अपने सभासदों के सहित और पुरश्री, नरश्री और अपनी दूसरी सहेलियों के संग आती है।)

मोरकुटी—मेरी रंगत देखकर मुझ से घृणा न करना क्योंकि यह तो सूर्य्य की दी हुई वर्दी है जिसके समीप मैं रहता हूँ और जिसकी छाया में पला हूँ। उत्तर के देश जहाँ सूर्य्य की गर्मी बर्फ़ के टुकड़ों को भी नहीं गला सकती वहाँ के किसी सुंदर से सुंदर युवा को मेरे सामने लाओ और हम दोनों तुम्हारे प्रेम के लिये अपने शरीर में नश्तर चुभावें तो विदित होगा कि किस का रुधिर अधिक रक्त है। सखी तुम विश्वास मानो कि मेरे इसी चेहरे ने बड़े से बड़े वीरों का पित्ता पानी कर दिया है, और मैं अपने प्रेम की सौगंद खा कर कहता हूँ कि इसी मुख को मेरे देश की परम सुंदरी युवतियाँ भी चाहती हैं। मैं अपने इस रंग को किसी अवस्था में बदलना पसंद न करूँगा पर हाँ तुम्हारी प्रसन्नता के लिये।

पुरश्री—मेरी रुचि के लिये केवल मेरी आँखें ही नहीं हैं और न मैं किसी भाँति अपनी इच्छा के अनुसार पति वर सकती हूँ, किंतु ऐ प्रसिद्ध राजकुमार, यदि मेरे पिता ने मुझे परवश न कर दिया होता अर्थात् इस बात की उलझन न लगा दी होती कि जो कोई मुझे उस विधि से जीते (जिसका मैं आपसे वर्णन कर चुकी हूँ) उसकी मैं स्त्री बनूँ तो जिन लोगों को मैंने अब तक देखा है उनमें से आपको किसी की अपेक्षा पूर्ण मनोरथ होने का अवसर कम न था।

मोरकुटी—मैं इतनी कृपा के लिये भी तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ, तो ईश्वर के लिये अब मुझे संदूकों के पास ले चलो जिसमें अपने प्रारब्ध की परीक्षा करूँ। शपथ है इस खड्ग की, जिसने राजा को वध किया और ईदर के उस राजकुमार को मारा जो महाराज सुलक्षण से तीन लड़ाइयाँ जीता था, तुम्हारे मिलने की आशा में मैं संसार में वीर से वीर का सामना करने को प्रस्तुत हूँ, रीछ की मादा के सामने से उसके बच्चे उठा लाने को उपस्थित हूँ, सिंह जिस समय कि शिकार की खोज में गरज रहा हो उसकी आँख निकाल लाने को प्रस्तुत हूँ—पर हाय ऐसी अवस्था में किस का वश है! यदि हारीत और लक्षेन्द्र पासा फेंक कर इस बात को निश्चय करना चाहें कि दोनों में कौन बड़ा आदमी है तो संभव है कि पासे के पड़ने से अनारी जीत जाय और संसार का सब से बड़ा पहलवान अपने एक नीच नौकर के सामने नीचा देखे। ऐसे ही संयोग से मेरी अवस्था हो सकती है कि अपने लक्ष्य के प्राप्त करने में असमर्थ हूँ जिसे कदाचित् एक साधारण व्यक्ति भी कर ले और मुझे कुढ़ कुढ़ कर मरना पड़े।

पुरश्री—लाचारी है—बिना मंजूषा चुने हुए कुछ नहीं हो सकता, इसलिये या तो आप इस इच्छा ही को छोड़ द या यदि चुनना चाहें तो पहिले इस बात की शपथ खायँ कि यदि आप झूठे मंजूषा को चुनें तो फिर आमरण किसी स्त्री की ओर व्याह करने के अभिप्राय से दृष्टि न करें—इसे खूब सोच लीजिए।

मोरकुटी—हमें यह प्रतिज्ञा स्वीकार है। चलो अपने भाग्य की परीक्षा करें।

पुरश्री—पहिले मन्दिर में चलिए। तीसरे पहर संदूक चुनिएगा।

मोरकुटी—ऐ भाग्य सहाय हो, मुझे सब से अधिक प्रसन्न या सब से अधिक अभागा बनाना तेरे ही हाथ है।

[तुरहियाँ बजती हैं। सब जाते हैं]

———

दूसरा दृश्य

स्थान—वंशनगर—एक सड़क

(गोप आता है)

गोप—निस्संदेह मेरा धर्म मुझे इस जैन अपने स्वामी के पास से भाग जाने की सम्मति देगा। प्रेत मेरे पीछे लगा है और मुझे बहकाता है कि गोप, मेरे अच्छे गोप, पाँव उठाओ, आगे बढ़ो, और चलते फिरते दिखलाई दो। मेरा धर्म कहता है नहीं ख़बरदार सच्चे गोप ख़बरदार, सच्चे गोप भागो मत, भागने पर लात मारो। तो एक ओर से तो बली भूत बहका रहा है कि अपना बोरिया बँधना बाँधो, धता हो, दूर हो, साहस को दृढ़ करो और नौ दो ग्यारह हो जाओ—दूसरी ओर से धर्म मेरे चित्त को, गले का हार हो कर, इस प्रकार से शिक्षा देता है—मेरे धर्मिष्ठ मित्र गोप! तुम कि एक धर्मात्मा के पुत्र हो वरंच यों कहना चाहिए कि एक धर्मात्मा स्त्री के पुत्र हो—अस्तु मेरा धर्म कहता है कि अपने स्थान से हिलो मत—तो अब भूत कहता है कि अपने स्थान से हिलो और धर्म कहता है कि अपने स्थान से मत हिलो। मैं अपने धर्म से कहता हूँ कि तुम्हारी सम्मति बहुत अच्छी है फिर मैं भूत से कहता हूँ कि तुम्हारी राय बहुत अच्छी है। यदि मैं अपने धर्म की आज्ञा मानता हूँ तो मुझे अपने स्वामी जैन के साथ ठहरना पड़ता है जो कि आप ही एक प्रकार का भूत है—यदि मैं जैन के पास से भाग जाता हूँ तो भूत की आज्ञा पर चलता हूँ जो कि (स्वामी की प्रतिष्ठा में अंतर नहीं डालता) आप ही भूत है। निस्संदेह जैन तो निज भूत का अवतार है इस लिये मेरी जान में तो मेरा धर्म बड़ा कठोर है जो इस जैन के साथ ठहरनेकी सम्मति देता है। भूत की सम्मति बहुत भली जान पड़ती है, तो ले भूत

मैं भागने को उपस्थित हूँ, मेरे पाँव तेरी आज्ञा में हैं, मैं अवश्य भागूँगा।

(वृद्ध गोप एक टोकरा लिए हुए आता है)

वृद्ध गोप—भाई समृद्ध परदेसी महाजन के घर का कौन सा मार्ग है ?

गोप—(आप ही आप) ईश्वर की त्राण ! आप मेरे सगे बाप हैं, जो ऐसे अंधे हो गए हैं कि अपने जनमाए हुए लड़के को नहीं पहिचानते। ठहरो तनिक इन की परीक्षा लूँगा।

वृद्ध गोप—साहिब नेक कृपा कर के परदेसी महाजन के घर का मार्ग तो बता देते।

गोप—आगे के मोड़ पर पहुँच कर अपने दहिने हाथ को फिर जाना, और सब से आगे के मोड़ पर जब पहुँचो, तो अपने बायें हाथ को मुड़ना, फिर दूसरे मोड़ पर किसी ओर न फिरना वरंच तिरछे मुड़ कर सीधे परदेसी महाजन के घर पर चले जाना।

वृद्ध गोप—भगवान की शपथ है इस मार्ग का पाना तो कठिन होगा। भला आप को विदित है कि एक मनुष्य गोप नाम का जो उनके यहाँ रहता था अब वहाँ है या नहीं ?

गोप—क्या तुम युवक गोप को पूछते हो ?—(आप ही आप) अब देखो मैं कैसा खेल करता हूँ—क्या तुम युवा गोप महाशय का वर्णन करते हो ?

वृद्ध गोप—"महाशय" न कहिए वरंच एक दरिद्र का बेटा। उसका बाप एक बहुत ही धर्मात्मा दरिद्री है पर धन्य है ईश्वर को कि रोटी कपड़े से सुखी है।

गोप—उसके बाप को कौन पूछता है वह जो चाहे सो हो, यहाँ तो इस समय युवा गोप महाशय का वर्णन है।

वृद्ध गोप—जी हाँ वही गोप आपका मित्र।

गोप—इसी लिये तो बूढ़े बाबा मैं तुम से कहता हूँ, इसी लिये तो निवेदन करता हूँ कि उसे युवा गोप महाशय कहो।

वृद्ध गोप—आप की साहिबी बनी रहे मैं गोप को पूछता हूँ।

गोप—तो उसका नाम गोप महाशय हुआ—बाबा गोप महाशय का वर्णन न करो क्योंकि वह युवा सज्जन मनुष्य तो कुछ दिन हुए मर गया या यों समझ लो कि स्वर्ग को गया।

वृद्धगोप—भगवान न करे! वही लड़का तो मेरे बुढ़ापे की लकड़ी था, मेरे अँधेरे घर का दीपक था।

गोप—मेरी सूरत तो कहीं लकड़ी या दिये से नहीं मिलती?—बाबा तुम मुझे पहचानते हो?

वृद्धगोप—शोच है कि मैं आपको नहीं पहिचानता, किन्तु ईश्वर के लिये मुझे शीघ्र बतलाइए कि मेरा लड़का (*भगवान उसकी आत्मा को सुख दे!*) जीता है कि मर गया?

गोप—बाबा तुम मुझे नहीं पहिचानते?

वृद्धगोप—साहिब मैं तो बिल्कुल अंधा हूँ और तुम्हें नहीं पहिचान सकता।

गोप—और न यदि तुम्हारे आँख होती तो तुम मुझे पहिचान सकते। यह बड़े बुद्धिमान पिता का काम है कि अपने लड़के को पहिचान ले। अच्छा बूढ़े बाबा मैं तुम्हारे बेटे का हाल तुम से कहूँगा, मुझे आशीर्वाद दो, अभी सच्चा हाल खुल जायगा। रुधिर अधिक दिन तक नहीं छिप सकता, लड़का कदाचित् छिप सके—परन्तु अंत को मुख्य बात प्रकट हो जाती है। (घुटने के बल झुकता है)।

वृद्ध गोप—भाई उठो यह क्या बात है—मुझे निश्चय है कि तुम मेरे लड़के गोप नहीं हो।

गोप—ईश्वर के लिये अब अधिक मूर्ख मत बनो और मुझे आशीर्वाद दो। मैं वही गोप हूँ जो पहिले तुम्हारा लड़का था, अब तुम्हारा बेटा है, और आगे तुम्हारा बच्चा कहलावेगा।

वृद्ध गोप—मैं कैसे जानूँ कि तुम मेरे बेटे हो?

गोप—मैं नहीं जानता कि तुम्हारी समझ को क्या कहूँ पर महाजन

का नौकर गोप मैं ही हूँ और भली भाँति जानता हूँ कि तुम्हारी पत्नी मागधी मेरी माता है।

वृद्ध गोप—निस्सन्देह उसका नाम मागधी है। मैं शपथ से कह सकता हूँ कि यदि तू गोप है तो तू मेरे ही मांस और रुधिर से है। वाह वाह तेरे डाढ़ी कितनी लम्बी निकल आई है! जितने बाल तेरी ठुड्डी पर हैं उतने तो मेरे घोड़े दमनक की पोंछ पर भी न होंगे।

गोप—तो इससे मालूम होता है कि दमनक का पाछ बढ़ने के बदले दिन पर दिन भीतर घुसी जाती है। मुझे स्मरण है कि जब मैंने उसे अंतिम बार देखा था तो उसकी पोंछ के बाल मेरी डाढ़ी के बाल से कहीं बड़े थे।

वृद्ध गोप—हे भगवान्! तुझ में कितना अंतर हो गया है। भला तुझ से और तेरे स्वामी से कैसी पटती है? मैं उसके लिये कुछ भेंट लाया हूँ। बता तेरी उनके साथ कैसी निभती है?

गोप—किसी भाँति निभी जाती है। मैं अपने जी में नौ दो ग्यारह होने की ठान चुका हूँ और जब तक कुछ दूर भाग न लूँगा कदापि दम न लूँगा। मेरा स्वामी पूरा जैन है। उसे भेंट दोगे! हुह, उसे फाँसी दो। मैं उसकी नौकरी में भूखों मरता हूँ—नेक मेरी दशा तो देखो कि कोई चाहे तो मेरी नसों को हर एक अँगुली कों गिन ले। बाबा बड़ी बात हुई कि तुम यहाँ आगए। चलो अपनी भेंट बसंत महाराज को दो जो अच्छी नई नई वर्दियाँ बाँटता है। यदि मुझे इसकी नौकरी न मिली तो जहाँ तक कि ईश्वर के पास पृथ्वी है मैं भाग जाऊँगा। अहा! मेरा भाग्य कैसा प्रबल है! देखो वह आप चले आते हैं। बाबा इनसे कहो, क्योंकि यदि अब मैं एक दम भी जैन की नौकरी करूँ तो मैं उससे अधम।

(बसंत लोरी तथा दूसरे भृत्यों के सहित आता है)

बसंत—अच्छा यों ही करो—परंतु देखो ऐसी शीघ्रता से सब प्रबंध हो कि अधिक से अधिक पाँच बजे तक ब्यालू तैयार हो जाय।

इन पत्रों को डाक में डाल आओ, वर्दियाँ झटपट बनवा लो और गिरीश से जाकर कहो कि अभी मेरे घर आवें।

(एक नौकर जाता है)

गोप—बाबा—हूँ।

वृद्ध गोप—ईश्वर आप को चिरायु करे!

बसंत—(धन्यवाद पूर्वक) तुम्हें मुझसे कुछ काम है?

वृद्ध गोप—धर्म्मावतार यह दीन बालक मेरा पुत्र—

गोप—दीन बालक नहीं महाराज वरंच धनिक महाजन का मनुष्य जो इस बात को चाहता है जैसा कि मेरा पिता विवरण के साथ कहेगा कि—

वृद्ध गोप—इसे नौकरी की बड़ी इच्छा है और—

गोप—सचमुच महाराज मुख्य बात यह है कि मैं जैन के यहाँ नौकर हूँ और इच्छा रखता हूँ जैसा कि मेरा बाप कहेगा कि—

वृद्ध गोप—महाराज इसकी और इसके स्वामी की ज़रा भी नहीं पटती—

गोप—मैं थोड़े में सच्ची बात कहे देता हूँ कि जैन ने मेरे साथ बुराई की है जिसके कारण से मैं चाहता हूँ, जैसा कि मेरा बाप जो मैं आशा करता हूँ कि एक वृद्ध मनुष्य है आपसे सविस्तर वर्णन करेगा—

वृद्ध गोप—मैं एक थाली कबूतर के मांस की आपको पारितोषिक देने को लाया हूँ और मेरी प्रार्थना यह है कि—

गोप—सौ बात की एक बात यह है कि यह प्रार्थना मेरे विषय में जैसा कि आपको इस सच्चे बुड्ढे के कहने से विदित होगा जो यद्यपि बूढा और दीन है तो भी मेरा बाप है।

बसंत—दो के बदले एक मनुष्य बोलो—तुम क्या चाहते हो?

गोप—सर्कार की सेवा करना।

वृद्ध गोप—जो हाँ यही मुख्य तात्पर्य्य है।

बसंत—मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूँ, तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हुई।

तुम्हारे स्वामी शैलाक्ष ने आज ही तुम्हारी सिफ़ारिश की है, यदि एक धनवान जैन की सेवा छोड़ कर मुझ ऐसे दरिद्री की नौकरी करना चाहते हो।

गोप—वह पुरानी कहावत सर्कार के और मेरे स्वामी शैलाक्ष के विषय ठीक ठीक घट गई है—सर्कार पर ईश्वर की कृपा है और उसके पास पुष्कल धन है।

बसंत—यह बात तो तुम ने खूब कही। बूढ़े बाबा अपने बेटे के साथ जाओ, अपने पुराने स्वामी से विदा होकर मेरे घर का पता लगा कर उपस्थित हो। (अपने भृत्यों से) इस मनुष्य को एक वर्दी जिसमें औरों की वर्दियों से उत्तम लैस टकी हो दे दो, देखो अभी निबटा दो।

गोप—बाबा चलो—मेरे लिये कहीं नौकरी की कमी हो सकती है, नहीं। मैं कभी अपने मुँह से प्रार्थना नहीं करता! हाँ (अपना हाथ देख कर) क्या मुझ से बढ़ कर मारवाड़ भर में किसी की हथेली निकलेगी, जो पुस्तक लेकर शपथ खाने को प्रस्तुत है कि तुम खूब रुपया कमाओगे! यह देखो आयु की रेखा कैसी सीधी चली गई है!—और यह पत्नियों का एक साधारण लेखा है—हा केवल पंद्रह स्त्री यह तो कुछ भी नहीं है—ग्यारह राँड़ और नौ कारियों से व्याह करना तो मनुष्य के लिये थोड़ी ही बात है—फिर तीन बार डूबते डूबते बचना—और फिर एक तिनके से जीव का जोखिम—यह देखो यह इन सब आपत्तियों से बचने की रेखा है—अहा! यदि विधाता कोई स्त्री है तो ऐसे उत्तम स्त्रीधन के साथ अवश्य व्याहने के योग्य है—बाबा आओ—मैं पलक भाँजते में जैन से बिदा हो लूँगा। (गोप और वृद्ध गोप जाते हैं)।

बसंत—लोरी इसको भली भाँति समझ लो। इन वस्तुओं को मोल लेकर और वर्दियाँ बाँट कर शीघ्र लौट आओ क्योंकि आज ही रात को मुझे अपने परम प्रतिष्ठित मित्र का आतिथ्य करना है। शीघ्रता करो, जाओ।

लोरी—जहाँ तक हो सकता है शीघ्र प्रबंध कर के उपस्थित होता हूँ।

(गिरीश आता है)

गिरीश—तुम्हारे स्वामी कहाँ है ?

लोरी—महाराज, वहाँ टहल रहे हैं।

(लोरी जाता है)

गिरीश—बसंत महाशय—

बसंत—गिरीश !

गिरीश—मेरी आपसे एक प्रार्थना है।

बसंत—मैंने स्वीकार की—कहो।

गिरीश—देखिए अस्वीकार न कीजिएगा—मैं आपके साथ विल्वमठ चलूँगा।

बसंत—इसमें कौन सी बात है आनंद से चलो—लेकिन सुनो गिरीश, तुम में ढिठाई, अनार्य्यता और असभ्यता अधिक है जो यद्यपि तुम में गुण जान पड़ते हैं और हमारी दृष्टि में दुर्गुण नहीं ठहरते तथापि बाहरवालों की दृष्टि में धृष्टता समझी जाती हैं। नेक इसका ध्यान रखना और लज्जा के ठंढे पानी से अपने चिलबिलेपन की गर्मी को ठंढा करने का यत्न करना जिसमें ऐसा न हो कि जहाँ मैं जानेवाला हूँ वहाँ तुम्हारी अनार्य्यता के कारण मैं भी हल्का समझा जाऊँ और मेरी सब आशाएँ धूलि में मिल जायँ।

गिरीश—बसंत महाराज, सुनिए यदि मैं गंभीर बन जाऊँ, नम्रता के साथ न बोलूँ, शपथ खाने का अभ्यास कम न कर दूँ, स्तोत्र की पुस्तक जेब में न भरे रहूँ, दृष्टि नीची न रक्खूँ, केवल इतना ही नहीं वरंच जिस समय स्तुति पढ़ी जाती हो अपनी टोपी की इस तरह आँख पर अँधेरी न चढ़ा लूँ, और आह भर कर एवमस्तु कहूँ, और एक बड़े विद्वान सभ्य मनुष्य की भाँति नम्रता के साथ हर बात में चुनाचुनी न करूँ, तो आज से मेरी बात का विश्वास न कीजिएगा।

बसंत—वह तो देखने ही में आवेगा।

गिरीश—हाँ पर आज की रात को इस प्रतिबंधन से दूर रखिए, आज की रात हँसी के लिये रुकावट न रहेगी।

बसंत—नहीं नहीं मैं कब ऐसा चाहने लगा, वरंच मैं तो स्वयं कहने को था कि आज की सभा में नियम से भी अधिक ढीठ रहो क्योंकि आज ऐसे मित्रों का भोज है जो चुहल की इच्छा रखते हैं—परंतु इस समय विदा हो क्योंकि मुझे कुछ काम है।

गिरीश—और मैं लवंग प्रभृति के पास जाता हूँ, पर भोजन के समय हम सब अवश्य उपस्थित होंगे।

(दोनों जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान—वंशनगर, शैलाक्ष के घर की एक कोठरी

(जसोदा और गोप आते हैं)

जसोदा—मुझे खेद है कि तू मेरे बाप की नौकरी छोड़ता है। यह घर मुझे नरक समान लगता है पर तुझ ऐसे हँसमुख भूत के कारण थोड़ा बहुत जी बहल जाता था। अस्तु, विदा हो, यह ले यह एक रुपया तेरे लिये पारितोषिक है। और सुन गोप! थोड़ी देर में तेरे नए स्वामी के यहाँ लवंग भोजन करने जायगा उसे चुपके से यह पत्र दे देना—बस जा—मैं नहीं चाहती कि मेरा बाप मुझे तुझसे बात करते देख ले।

गोप—तुम्हें ईश्वर को सौंपता हूँ!—आँसुओं के मारे तो मेरे मुँह से शब्द नहीं निकलने पाता। ऐ सुंदरी कामिनी, ऐ प्यारी जैनिन, यदि कोई आर्य्य तुझे न ठगे और अपनी स्त्री न बनावे तो मेरा नाम नहीं। किंतु बस, ईश्वर ही रक्षा करे। प्रेम के आँसू तो मेरे दृढ़ चित्त पर प्रबल हुआ चाहते हैं। ईश्वर रक्षा करे—

(जाता है)

जसोदा—अच्छा विदा हो सुहृद गोप। हाय! मेरे लिये कैसे यह पाप की बात है कि मैं अपने बाप की लड़की होने से लज्जित होऊँ! परंतु यद्यपि मैं उसके रक्त से उत्पन्न हूँ पर मेरा चित्त उसका सा नहीं है। ऐ लवंग, यदि तू अपने वचन पर दृढ़ रहा तो मैं इस झगड़े को निबटा दूँगी और आर्य्य होकर तेरी प्यारी स्त्री बन जाऊँगी।

(जाती है)

चौथा दृश्य

स्थान—वंशनगर—एक सड़क

(गिरीश, लवंग, सलारन और सलोने आते हैं)

लवंग—नहीं, वरंच हम लोग खाने के समय खिसक देंगे और मेरे घर पर आकर भेस बदल कर सब लोग लौट आवेंगे। एक घंटे में सब काम हो जायगा।

गिरीश—हम लोगों ने अभी सब तैयारी नहीं की है।

सलारन—अब तक मशालचियों का भी कुछ प्रबंध नहीं हुआ है।

सलोने—जब तक कि स्वाँग का उत्तमता के साथ प्रबंध न हो वह निरा लड़कों का खेल होगा और मेरी सम्मति में ऐसी अवस्था में उसका न करना ही उत्तम होगा।

लवंग—अभी तो केवल चार बजा है-अभी हमें तैयारी के लिये दो घंटे का अवकाश है—

(गोप हाथ में पत्र लिए आता है)

कहो जी गोप क्या समाचार लाए ?

गोप-यदि आप इसे खोलेंगे तो आप ही सब समाचार बिदित हो जायगा।

लवंग-मैं इन अक्षरों को पहिचानता हूँ, ईश्वर की सौगंध कैसे सुंदर अक्षर हैं, और जिस कोमल हाथ ने इन्हें लिखा है वह इस पत्र से भी अधिक गोरा है।

गिरीश—निस्संदेह यह तुम्हारी प्यारी का पत्र है।

गोप—साहिब अब मुझे आज्ञा होती है ?

लवंग—कहाँ जाते हो ?

गोप—अपने पुराने स्वामी जैन को अपने नये आर्य्य स्वामी के साथ आज रात को भोजन करने के लिये निमंत्रण देने।

लवंग—ठहरो, यह लो, प्यारी जसोदा से कह दो कि कदापि अंतर न पड़ेगा—देखो अकेले में कहना—जाओ।

(गोप जाता है)

महाशयो आप लोग अब तो रात के लिए स्वाँग की तैयारी करेंगे ? मशाल दिखलाने वाले का प्रबंध हो गया।

सलारन—जी हाँ मैं अभी जाकर तैयार होता हूँ।

सलोना—और मैं भी चला।

लवंग—लगभग एक घंटे के गिरीश के घर पर मुझसे और गिरीश से मिलना।

सलारन—बहुत ठीक।

गिरीश—वह पत्र जसोदा ही का न था ? (सलारन और सलोने जाते हैं)

लवंग—अवश्य है कि मैं तुमसे सब हाल वर्णन कर दूँ। उसने मुझे सूचना दी है कि मैं उसे किस भाँति उसके बाप के घर से ले जाऊँ, कितनी अशरफी और गहने उसने ले रक्खे हैं, और कैसा परिचारक का वस्त्र अपने लिये उपस्थित कर रक्खा है। भाई गिरीश यदि कभी इसके बाप जैन को स्वर्ग में आने की आज्ञा मिलेगी तो अपनी बेटी के सुकृत के बदले, और यदि कभी कोई बुराई इस तक आवेगी तो इस बहाने से कि वह एक अधर्मी जैन की बेटी है। आओ, मेरे साथ आओ, मार्ग में इसे पढ़ते चलो। सुंदरी जसोदा आज स्वाँग में मशाल दिखलावेगी।

(दोनों जाते हैं)

———

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—वंशनगर—शैलाक्ष के घर के सामने

(शैलाक्ष और गोप आते हैं)

शैलाक्ष—अच्छा तो तू देखेगा, तेरी आँखें आप ही इस बात का न्याय करेंगी कि वृद्ध शैलाक्ष और बसंत में कितना अंतर है। अरी जसोदा! जैसा तू मेरे यहाँ भुखमुए की भाँति ढाई सेर भकोसता था उसका स्मरण वहाँ आवेगा। अरी जसोदा! और हर समय पड़े रहने और खर्राटे लेने और कपड़े फाड़ डालने की महिमा भी जान पड़ेगी। अरी जसोदा, सुनती नहीं!

गोप—जसोदा!

शैलाक्ष—तुझे किसने पुकारने को कहा है? मैंने तुझसे नहीं कहा कि पुकार।

गोप—आपही न मुझ पर सदा क्रुद्ध हुआ करते थे कि तू बेकहे कोई काम नहीं करता।

(जसोदा आती है)

जसोदा—मुझे आपने बुलाया है? आज्ञा?

शैलाक्ष—मुझे आज का नेवता आया है, लो जसोदा यह कुंजियाँ तुम्हारे सपुर्द हैं। पर मैं क्यों जाने लगा? मुझे वह लोग कुछ प्रेम में नहीं बुलाते वरंच सुश्रूषा से—किंतु क्या हुआ मैं भी तिरस्कार की दृष्टि से जाऊँगा और उस बहुव्ययी आर्य्य का माल चाभूँगा। मेरी प्यारी बेटी तू घर से सावधान रहियो। मेरा जाने को तनिक भी जी नहीं चाहता, मुझे कोई बुराई आती मालूम होती है जिसका मेरे जी में खटका लग रहा है, क्योंकि आज ही रात को मैंने रुपये के तोड़ों का सपना देखा था।

गोप—आप कृपा करके चलें, मेरे नये स्वामी आपकी राह देखते होंगे, और उन लोगों ने आपस में गुट किया है। यह मैं नहीं कह सकता कि आप अवश्य ही स्वाँग देखिएगा परंतु यदि ऐसा हुआ तो निस्संदेह कुछ न कुछ रंग खिलेगा क्योंकि मेरी नाक से उस दिन तेवहार के छ बजे सबेरे से रुधिर का बहना व्यर्थ न जायगा।

शैलाक्ष—क्या स्वाँग भी बनेंगे ? सुनो जसोदा द्वारों में ताला लगा दो और जब भेर की ढबढब और बाँसुरी की ध्वनि सुनाई दे तो झरोखों में से झाँकने के लिये ऊपर न चढ़ना और न इन आर्य मसख़रों के लुक फेर हुए चिहरों को देखने के लिए खिड़की से बज़ार की ओर सिर निकालना वरंच शीघ्र ही मेरे घर के कामों को अर्थात् खिड़कियों को बंद कर लेना जिसमें ऐसे असभ्य तुच्छ जनों का शब्द मेरे सभ्य घर के भीतर न पहुँचने पावे। शपथ है अर्हंत देव की छड़ी की मेरा जी आज रात के नेवते में जाने को नेक भी नहीं उभरता। किन्तु मैं जाऊँगा। अबे तू आगे जा कह दे कि मैं आऊँगा।

गोप—महाराज मैं चला। बबुई तुम इनकी बकबक पर ध्यान न दे कर अवश्य खिड़की में से झाँकती रहना क्योंकि "आज होगा उस मसीहा का गुज़र इस राह से, जिसने मूसा है यहूदी के दिले बीमार को।" (जाता है)

शैलाक्ष—वह मूर्ख प्रेत का अवतार क्या कहता था, ऐं ?

जसोदा—उसने केवल इतना ही कहा कि "बबुई ईश्वर आपकी रक्षा करे" और कुछ नहीं।

शैलाक्ष—यह मूर्ख प्रेम तो रखता है परंतु खाने में साँड से अधिक है, दिन को सोने में जंगली बिल्ली से बढ़ कर और काम करने में घोंघे से अधिक सुस्त। ऐसे कृतघ्नों का निर्वाह मेरे साथ कहाँ हो सकता है; इसीलिये मैं उसे दूर करता हूँ, और फिर उसे पल्ले भी कैसे मनुष्य के बाँधता हूँ जिसके उधार लिए हुए रुपये के नष्ट करने में वह सहायता देगा। अच्छा जसोदा अब तुम भीतर जाओ, कदाचित् मैं अभी लौट आऊँ।

जिस भाँति मैंने समझा दिया है वैसा ही करना। द्वारों को बंद करती जाओ—"जागै सो पावै सोवै सो खोवै" यह कहावत बहुत ठीक है। (जाता है)

असोदा—जाइए—(आपही आप)

"गर बर आई आर्जू मेरी तो रुखसत आपको,
आपने बेटी को खोया और मैंने बाप को।"

(जाती है)

———

छठा दृश्य

(स्थान–शैलाक्ष के घरके सामने)

(गिरीश और सलारन भेस बदले हुए आते हैं)

गिरीश—यही बरामदा है जिसके नीचे लवंग ने हमें खड़े रहने को कहा था।

सलारन—उनका समय तो हो गया।

गिरीश—आश्चर्य है कि उन्होंने देर की क्योंकि अनुरागियों की चाल तो सदा घड़ी से तीव्र रहती है।

सलारन—ओह ! नये अनुरागी कामदेव के कबूतर की भाँति अनुराग की दस्तावेज़ पर मुहर करने को तो दस गुने तेज़ उड़ते हैं पर फिर उसकी उलझन में उतने ही सुस्त हो जाते हैं।

गिरीश—यह तो नियम की बात है। किसी को भी खाने के पश्चात् वह भूख नहीं रह जाती है जो खाने पर बैठने के समय थी ? कोई घोड़ा भी उस तीव्रगति के साथ लौट सकता है जिसके साथ वह चला था ? संसार में जितनी वस्तुएँ हैं उनके मिलने के पूर्व जो उत्साह रहता है वह उनके मिलने पर नहीं रहता जैसा कि कहा भी है। "जो मज़ा इंतिज़ार में देखा, वह नहीं वस्ले यार में देखा।" जिस समय जहाज़ अपनी खाड़ी से रवाना होता है तो कैसा एक युवा व्यसनी अथवा बहुव्ययी के भाँति झँडियाँ फहराए हुए और दुष्ट वायु के गले लगा हुआ चला जाता है ! पर जब वह लौटता है तो उसी बहुव्ययी की भाँति उसकी कैसी दुरवस्था हो जाती है अर्थात् तूफ़ान से किनारे टूटे हुए, पाल फटे हुए, निरातंक और व्याकुल ! और यह सब बुराइयाँ उसी कठोर वायु के द्वारा होती हैं।

(लवंग आता है)

गिरीश—वह देखो लवंग आ पहुँचे। उस विषय में हम लोग फिर बातचीत करेंगे।

लवंग—मेरे प्यारे मित्रो, मुझे विलंब के लिये क्षमा करना। इसमें अपराध मेरा न था वरंच आवश्यक कामों का। जब स्त्री चुराने की तुम्हारी बारी आवेगी तब मैं भी इतनी देर तक तुम्हारी राह देखूँगा। अच्छा इधर आओ, यहीं मेरा ससुरा जैनी रहता है। ऐ कोई भीतर है ?

(जसोदा लड़के का कपड़ा पहिने हुए ऊपर से झाँकती है)

जसोदा०—तुम कौन हो ? शीघ्र बतलाओ जिसमें मेरा पूरा संतोष हो जाय। यद्यपि मैं शपथ खा सकती हूँ कि मैं तुम्हारा शब्द पहिचानती हूँ।

लवंग—तुम्हारा प्रेमी लवंग।

जसोदा—निस्संदेह तुम लवंग हो, और सचमुच मेरे प्यारे, क्योंकि मैं तुम्हारे सिवाय किसको प्यार करती हूँ ? किन्तु प्यारे इस बात को सिवाय तुम्हारे कौन जान सकता है कि मैं भी तुम्हारी प्यारी हूँ या नहीं ?

लवंग—इस बात का साक्षी तो ईश्वर और तुम्हारा मन है।

जसोदा—लो इस संदूक को सम्हालो, इसमें हम लोगों के परिश्रम का पूरा मिहनताना मिलेगा। मुझे हर्ष है कि रात का समय है और तुम मेरी सूरत नहीं देख सकते क्योंकि मुझे अपने इस वेष पर बड़ी लज्जा आती है; पर प्रेम अंधा होता है और प्रेमी अपनी मूर्खता की बातों को कभी नहीं देख सकते, क्योंकि यदि वह देख सकें तो कामदेव आप मुझे लड़के के वेष में देख कर लज्जित हो जाय।

लवंग—उतरो, क्योंकि तुम्हें मशअल दिखलानी होगी।

जसोदा—क्या मैं अपनी निर्लज्जता को आप ही मशअल लेकर दिखाऊँ ? वह तो स्वयं अत्यंत प्रकाशमान है। प्यारे, मशअलची तो इसलिये होता है कि अंधेरे में की वस्तुओं को प्रकट करे पर मुझे तो उसके विरुद्ध अपने तईं छिपाना चाहिए।

लवंग--प्यारी तुम तो लड़के के सुहावने वेष में आप ही छिपी हो। परंतु अब शीघ्रता करो क्योंकि रात, जो प्रेमियों की अवलंब है, बीतती जाती है और हम लोगों को अभी वसंत के भोज में कुछ देर ठहरना है।

जसोदा--मैं द्वार बंद करके, और कुछ और रुपये ले कर अभी आती हूँ।

(ऊपर से जाती है)

गिरीश--मैं शपथ खा कर कह सकता हूँ कि यह जैन नहीं वरंच आर्य्या जान पड़ती है।

लवंग--मेरा बुरा हो यदि मैं इसे जी से न प्यार करता हूँ। यदि मेरी समझ ठीक है तो यह बड़ी बुद्धिमती है, और यदि मेरी आँखें अंधी नहीं हो गई हैं तो सुंदर भी अत्यंत ही है। सचाई इस की जैसी कुछ है विदित है, अतः ऐसी बुद्धिमती, सुंदरी और सच्ची युवती का मैं सदा मन से आज्ञाकारी रहूँगा।

(जसोदा नीचे आती है)

क्या तुम आ गईं? चलो महाशयो, चलो, हमारे स्वाँग के साथी लोग हमारी राह देख रहे होंगे।

(जसोदा और सज्जन के साथ जाता है)

[अनंत आता है]

अनंत--कौन है?

गिरीश--अनंत महाराज?

अनंत--छी छी गिरीश! और लोग कहाँ हैं? नौ बज गया। हमारे सब मित्र तुम लोगों का बाट जोहते हैं। आज स्वाँग बंद रहा क्योंकि अभी अनुकूल वायु चला है और वसंत शीघ्र ही यात्रा करने जायँगे। मैंने बीसियों मनुष्यों को तुम्हारी खोज में चारों ओर दौड़ाया है।

गिरीश--मैं इस समाचार से बहुत प्रसन्न हुआ। मुझे स्वाँग से कहीं बढ़ कर इस बात में आनन्द मिलेगा कि आज ही रात को पाल उड़ाऊँ और चलता फिरता दिखलाई दूँ।

——— (जाते हैं)

सातवाँ दृश्य

[स्थान—विल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा]

(तुरहियाँ बजती हैं। पुरश्री और मोरकुटी का राजकुमार अपने अपने साथियों के साथ आते हैं)

पुरश्री—जाओ, पर्दे उठाओ और इस प्रतिष्ठित राजकुमार को तीनों संदूक़ दिखलाओ। अब आप पसंद कर लें।

मोरकुटी—पहला संदूक़ सोने का है जिस पर यह लेख लिखा है। "जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उस वस्तु को पावेगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं।"

दूसरा चाँदी का है जिस पर यह प्रतिज्ञा लिखी है। "जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग्य है।"

तीसरा कुंद सीसे का है जिस पर वैसी ही धमकी भी लिखी हुई है। "जो कोई मुझे पसंद करे वह अपनी सब वस्तुओं को भय में डाले और उनसे हाथ धोवे।"

भला मैं कैसे जानूँगा कि मैंने सही संदूक़ चुना ?

पुरश्री—इनमें से एक में मेरी तस्वीर है-यदि आप उसे चुनेंगे तो मैं भी उस चित्र के साथ आप की हो जाऊँगी।

मोरकुटी—कोई देवता इस अवसर पर मेरी सहायता करता ! देखूँ तो ; मैं इन संदूकों के परिलेखों पर फिर तो विचार करूँ। इस सीसे के संदूक पर क्या लिखा है ?

"जो कोई मुझे पसंद करे वह अपनी सब वस्तुओं को भय में डाले और उनसे हाथ धोवे।

हाथ धोवे—किस के लिये ? सीसे के लिये ? भय में डालना और सीसे के लिये ? यह संदूक़ तो बहुत ही धमकाता है ; लोग जो अपनी सब वस्तुओं को जोखों में डालते हैं तो अच्छे अच्छ लाभ की आशा में ; सहृदय कूड़े करकट की ओर कब

झुक सकता है; तो मैं सीसे के लिये न किसी वस्तु से हाथ धोऊँगा और न उसे भय में डालूँगा। अब देखो यह चाँदी जिसकी रंगत अल्पवयस्क कामिनियों की सी है क्या कहती है? "जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग्य है।" उतना जितने के वह योग्य है?—मोरकुटी के राजकुमार नेक ठहर और हाथ साध कर अपनी योग्यता को तौल। यदि तू अपने नाम की ख्याति के अनुसार आँका जाय तो तू निस्संदेह बहुत कुछ पाने के योग्य है, पर कौन जाने कदाचित यह कुमारी इस बहुत कुछ से बढ़ कर हो। किंतु इसी के साथ अपनी योग्यता में संदेह करना भी निर्बलता की बात है और अपनी योग्यता में बट्टा लगाना है। उतना जितने के मैं योग्य हूँ? वाह वह तो यही कुमारी है; मैं अपनी उत्पत्ति, अपनी लक्ष्मी, अपनी शिक्षा, अपनी चाल-चलन हर बात से उसके पाने की क्षमता रखता हूँ, पर सबसे बढ़ कर अपने प्रेम के ध्यान से मैं अपने को उसके योग्य कह सकता हूँ। तो अब मैं आगे क्यों भटकूँ और इसी को चुन लूँ—पर एक बार सोने के संदूक़ की लिपि को फिर तो देखूँ। "जो कोई मुझे पसंद करेगा वह उस वस्तु को पावेगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं।"

वाह वह तो यही कुमारी है; सारा संसार उसकी इच्छा रखता है और पृथ्वी के चारों कोनों से लोग इस जागृत महात्मा के पैर चूमने को चले आते हैं। हरिद्वार के जंगल और बीकानेर के उजाड़ मैदान दोनों आज कल पुरश्री के प्रणयी राजकुमारों के लिये साधारण मार्ग हो रहे हैं। समुद्र जिसका अभिमानी मस्तक आकाश के मुँह पर थूकता है उसका भय भी आने वालों के साहस को नहीं तोड़ सकता और लोग पुरश्री के देखने की लालसा में उस पर से ऐसे चले आते हैं जैसे कोई एक छोटे से नाले को पार करता हो। इन संदूकों में से एक में उसका मनोहर चित्र है। क्या यह सम्भव है कि वह सीसे के भीतर हो? ऐसा तुच्छ विचार मेरे नाश का कारण होगा। सीसा तो अधेरी समाधि में

उसके कफन के रखने के लिये भी एक बड़ी भद्दी वस्तु होगी। या यह समझूँ कि वह चाँदी में बंद है जिसका मूल्य खरे सोने से दसगुना कम है? ऐसा सोचना ही पाप है! भला कभी भी ऐसा अलभ्य रत्न सोने से कम मूल्य वाले पदार्थ में जड़ा गया है? अंग देश में एक सोने का सिक्का होता है जिस पर पारखदों का चित्र खुदा रहता है; परन्तु वह तो ऊपर खुदा रहता है और यहाँ सचमुच एक अप्सरा सोने के बिछौने पर भीतर मग्न है। अच्छा मुझे ताली दो मैं इसी को चुनता हूँ, आगे जो कुछ मेरे भाग्य में हो!

पुरश्री—यह लो राजकुमार यदि मेरी तस्वीर इसके भीतर निकली तो मैं आप की हो चुकी। (सोने के संदूक को खोलता है)

मोरकुटी—हाय अंधेर! यह क्या निकला। एक खोपरी जिसकी आँख के गढ़े में एक लिपटा हुआ पत्र खोसा है! इसे पढ़ूँ तो सही—

"करि विचार देखहु जिय माहीं। जो चमकत सो सुबरन नाहीं॥
कितने ही मर्म छबि ललचाने। नाहक प्रान देत बिनु जाने॥
जे समाधिगन कनक रँगाये। तिन में भरे कीट बहु पाये॥
जिमि तुअ अंग बीर रस साना। तिमि होते गुन-ज्ञान-निधाना॥
जिमि तुमरे तन जोबन जोती। तैसिहि बुद्धि वृद्ध की होती॥
तो न होत यह पढि सम नासा। जाहु प्रनाम सरद तुअ आसा"॥

सचमुच सर्द और श्रम व्यर्थ; तो अब गर्मी को विदा और सर्दी से काम-पुरश्री का ईश्वर रक्षक हो! मेरा जी इतना टूट गया है कि अब एक दम ठहरने का सामर्थ्य नहीं रखता। जिसका मनोरथ पूरा नहीं होता वे ऐसे ही बिदा होते हैं।

(जाता है)

पुरश्री—अच्छी छूटी, जाओ परदों को गिराओ। यदि इस राजकुमार की रंगत के सब लोग मुझे इसी भाँति वरैं तो क्या बात है।

(सब जाते हैं)

———

आँठवाँ दृश्य

स्थान–वंशनगर, एक सड़क

(सलारन और सलोने आते हैं)

सलारन—अजी मैंने स्वयं बसंत को जहाज़ पर जाते देखा; उन्हीं के साथ गिरींश भी गया है, पर मुझे विश्वास है कि उस जहाज में लवंग कदापि नहीं है।

सलोने—उस दुष्ट जैन ने वह आपत्ति मचायी कि महाराज को स्वयं बसंत के जहाज़ की तलाशी लेने के लिये जाना पड़ा।

सलारन—हाँ, परंतु वह देर करके पहुँचे, उस समय जहाज़ जा चुका था और वहाँ महाराज को समाचार मिला कि लवंग अपनी वल्लभा जसोदा के सहित एक छोटी सी नाव में जाता दृष्टि पड़ा था। इसके सिवाय अनंत ने महाराज को अपने भरोसे पर इस बात का विश्वास कराया कि वह दोनों बसंत के जहाज़ पर नहीं हैं।

सलोने—मैं ने तो आज तक घबराहट और झुंझलाहट के ऐसे बेजोड़ और विचित्र वाक्य न सुने थे जैसे कि वह जैनी कुत्ता सड़क पर बक रहा था—"मेरी बेटी !—हाय मेरी अशरफियाँ !—हाय मेरी बेटी !—हाय !—एक आर्य्य के साथ भाग गई !—हाय मेरी आर्य्य अशरफियाँ !—न्याय क़ानून ! मेरी अशरफियाँ और मेरी बेटी ! एक सरबमुहर तोड़ा, दो सरबमुहर तोड़े अशरफियों के, कलदार अशरफियों के, मेरी बेटी चुरा ले गई !—और रत्न; दो नगीने, दो अमूल्य अलभ्य नगीने, जिन्हें मेरी बेटी चुरा ले गई !—न्याय ! लड़की का पता लगाओ ! उसी के पास अशरफियाँ और पत्थर हैं।"

सलारन—अजी वंशनगर के सारे लड़के उसके पीछे दौड़ते हैं और हल्ला मचा कर चिढ़ाते हैं–इसके पत्थर, इसकी लड़की और इसकी अशरफियाँ।

सलोने—अनंत महाशय को चाहिए कि उससे सावधान रहें और ठीक समय पर ऋण चुका दें नहीं तो पीछे से पछताना पड़ेगा।

सलारन—तुमने अच्छा स्मरण दिलाया, कल मैं एक फनेशवासी से बातचीत कर रहा था कि उसने वर्णन किया कि उस छोटे समुद्र में जो फनेश और अंगदेश को जुदा करता है तुम्हारे देश का एक अमूल्य धन से लदा हुआ जहाज़ डूब गया है। मुझे इस समाचार के सुनते ही अनंत के जहाज़ का ध्यान आया और मन में ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि वह उनका जहाज़ न हो।

सलोने—पर तुमको यही उचित है कि जो कुछ सुनो अनंत के कान तक पहुँचा दो, किंतु अकस्मात् मत कह देना क्योंकि इसमें कदाचित उन्हें अधिक सोच हो।

सलारन—मुझे तो उनसे बढ़कर दयावंत मनुष्य सारे संसार में दृष्टि नहीं आता। मैं बसंत और अनंत के जुदा होने के समय उपस्थित था। बसंत ने उनसे कहा कि मैं जहाँ तक संभव होगा शीघ्र लौट आऊँगा जिस पर उन्होंने उत्तर दिया—"बसंत मेरे लिये काम में कदापि शीघ्रता न करना वरंच उचित अवसर के अधीन रहना और उस दस्तावेज़ के विषय में जो मैंने जैन को लिख दी है कभी अपने जी में ध्यान न करना। प्रति क्षण प्रसन्न रहना और अपने चित्त को प्राणप्रिया की प्रसन्नता और प्रेम के सूचित करने में आसक्त रखना जो तुम्हारे मनोरथ के लिये उपयुक्त हों"। परंतु अंत को उनकी आँखों में आँसू ऐसे डबडबा आए कि और कुछ न कह सके और अपना मुँह फेर कर बसंत की ओर हाथ बढ़ाया और एक अद्भुत अनुराग सहित जिससे सच्ची प्रीति टपकती थी उनसे हाथ मिला कर बिदा हुए।

सलोने—मैं समझता हूँ कि वह संसार को बसंत ही के लिए चाहते हैं। चलो उन्हें खोज करके मिलें और उनके जी की उदासी को किसी शुभ समाचार से दूर करें।

सलारन—चलो। (जाते हैं)

नवाँ दृश्य

स्थान—बिल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा

(नरश्री एक नौकर के साथ आती है)

नरश्री—शीघ्रता करो; पर्दे को झटपट उठाओ; आर्य्यग्राम के राजकुमार शपथ ले चुके और सन्दूक़ चुनने के लिये पहुँचा ही चाहते हैं। (तुरहियाँ बजती हैं। पुरश्री और आर्य्यग्राम का राजकुमार अपने अपने मुसाहिबों के सहित आते हैं।)

पुरश्री—अवलोकन कीजिए, ऐ प्रसिद्ध राजकुमार, वह संदूक़ रक्खे हैं। यदि आपने उस मंजूषा को चुना जिसके भीतर मेरी छबि है तो अभी आप के साथ मेरे विवाह के उपचार हो जायँगे परंतु यदि आप भ्रम में पड़ें तो शीघ्र ही मुख से एक वर्ण उच्चारण किए बिना आप को यहाँ से चले जाना पड़ेगा।

आ० रा०—मुझे शपथ है कि प्रण के अनुसार तीन बातों का ध्यान रखना होगा। पहिले इस बात को किसी पर प्रकट न करना कि मैंने कौन सा सन्दूक़ चुना था; दूसरे यदि मैं लक्ष्य मंजूषा को न चुन सकूँ तो फिर अपनी अवस्था भर किसी स्त्री की ओर प्रणय की दृष्टि से न देखूँ; तीसरे यदि मैं सन्दूक के चुनने में त्रुटि करूँ तो शीघ्र ही तुमसे पृथक् हो कर अपनी राह लूँ।

पुरश्री—जो कोई मुझ अधम के प्राप्त करने का प्रयत्न करता है उसे इन्हीं प्रणों के अनुसरण करने की सौगंद खानी पड़ती है।

आ० रा०—और मैं भी तो उसी के अनुकूल कर चुका। हे ईश्वर मेरे मन का मनोरथ पूरा कर!—सोना, चाँदी और तुच्छ सीसा।

"जो कोई मुझे चाहे वह अपनी सब वस्तु को विघ्न में डाले और उनसे हाथ धो बैठे।"

वाह, इसी रूप पर ? नेक अपने मुख की श्यामता को धो ले तब विघ्न डालने और हाथ धोने की सुना। और सोने का सन्दूक़ क्या कहता है ? तनिक देखूँ तो सही ;

"जो कोई मुझे चाहेगा वह उस पदार्थ को पावेगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं।"

जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं। संभव है कि इस 'बहुत' का संकेत मूर्खों की ओर हो जो कि बाहरी चमक दमक पर जाते हैं और दृष्टि के ऐसे स्थूल होते हैं कि किसी वस्तु की आंतरिक अवस्था को कदापि नहीं ज्ञात कर सकते, वरंच गोला कबूतर की भाँति अपने खोते को भय-स्थान में घर की बाहरी दीवार पर बनाते हैं जहाँ कि हर समय भय रहता है। मैं उस वस्तु को नहीं चाहूँगा जिसकी बहुत लोग इच्छा रखते हैं क्योंकि मैं सर्व साधारण के तुल्य नहीं हुआ चाहता और गँवार लोगों की सहायता नहीं किया चाहता। तो अब मैं तेरी ओर ध्यान देता हूँ ए चाँदी के सन्दूक, एक बार फिर तो बता तेरा क्या प्रण है, "जो कोई मुझे चाहेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग्य है।" भई सच्चो सच्ची तूने इसमें कही क्योंकि निज की योग्यता बिना कौन प्रतिष्ठा लाभ कर सकता और कौन बड़ा हो सकता है। किसी मनुष्य को अपनी योग्यता से अधिक अधिकार पाने का साहस न करना चाहिए। अहा ! कैसा अच्छा होता यदि अधिकार, उपाधि और पद उत्कोच से न मिल सकते और प्रतिष्ठा निष्कलंक बनी रहती अर्थात् केवल पाने वाले की योग्यता से मोल ली जा सकती। फिर कितने सिर जो अब मान सूचन में नंगे दिखलाई देते हैं टोपी से ढके हुए दृष्टि पड़ते। कितने लोग जो अब हाकिम हैं महकूम होते। कितने कमीने जो बड़े बन बैठे हैं मानियों में से दूध की मक्खी की भाँति निकाल दिए जाते और कितने प्रतिष्ठित जो समय के

हेरफेर से साधारण लोगों में मिल गए हैं भूसी में से अन्न की भांति छाँट कर बड़े पद पर पहुँचा दिए जाते। अस्तु, किंतु मैं अपना काम देखूँ;

"जो कोई मुझे चाहेगा वह उतना पावेगा जितने के वह योग्य है।" मैं अपनी योग्यता को मान लेता हूँ। मुझे इसकी कुंजी दो तो मैं इसे तुरत खोलकर अपने भाग्य की परीक्षा करूँ।

[चाँदी के सन्दूक को खोलता है]

पुरश्री—क्या निकला ? आप इतना क्यों रुके हैं ?

आ० रा०—ऐं यह क्या है ? एक झूठे अंधे का चित्र जो मुझे एक पत्र दे रहा है ! मैं इसे पढ़ूँगा। हा ! मुझमें और पुरश्री के स्वरूप में क्यों सादृश्य ! और मुझसे और मेरी आशाएँ और योग्यता से क्या संबंध !

"जो कोई मुझे चाहेगा वह उतना पावेगा जिसके वह योग्य है।"

क्या मेरे मुँह के योग्य यही मूर्ख का मस्तक है ? क्या मेरे लिये यही पारितोषिक है ? क्या मेरी योग्यता इससे अधिक नहीं है।

पुरश्री—अपराध करना और न्याय करना दो विरुद्ध बातें हैं और एक दूसरे के प्रतिकूल।

आ० रा०—इसमें लिखा क्या है ?

[पढ़ता है]

"जिमि यह उजल रजत सुहायो। सात बेर लै अगिन तपायो॥
तिमि यह बुद्धिहु बहु बिधि जाँची। कोउ प्रकार ठहरी नहिं काँची॥
ऐसे बहु मूरख जग माँही। जे छाया सँग धाये जाहीं॥
पै कहुँ तिन को आस पुराई। मृग-मरीचिकहुँ प्यास बुझाई॥
जो सुख छायहिं अंक लगाए। होत तिनहिं सोई गहि पाए॥
ऐसे बहु जग नर अज्ञाना। सेत केस मे रजत समाना॥
पै नहि बुद्धि तिनहिं कछु आई। तैसहि यह मूरख सिर भाई॥
जो रहिहै तुअ होइ निसानी। करहु अबै जो तुअ मन मानी॥
ब्याहहु जाइ औरही काहू। हारि चुके बाजी घर जाहू"॥

मैं जितनी देर तक यहाँ-ठहरूँगा उतना ही अधिक मूर्ख बनूँगा; एक मूढ़ का सिर लेकर तो मैं व्याह करने को आया पर अब दो लेकर जाता हूँ। प्यारी ईश्वर रक्षा करै! मैं अपनी सौगंद पर स्थिर रहूँगा और संतोष के साथ अपने दुःख को खाऊँगा।

(आर्य्यग्राम का राजकुमार अपने साथियों के सहित जाता है)

पुरश्री—वाह इस कर्पूरवर्त्तिका ने तो अच्छे उस पतंग के पंख जला दिए। समझदार मूर्ख ऐसों ही को कहते हैं। जिस समय वह संदूकों को चुनते हैं तो अपने मन की स्फूर्त्ति में सब बुद्धि को खो देते हैं।

नरश्री—यह पुरानी कहावत मिथ्या नहीं है—फाँसी और स्त्री दोनों का मिलना भाग्य से होता है।

पुरश्री—नरश्री आओ पर्दे को गिराओ।

(एक भृत्य आता है)

भृत्य—रानी साहिब कहाँ हैं?

पुरश्री—इधर, राजा साहिब क्या आज्ञा करते हैं?

भृत्य—सर्कार की डेवढ़ी पर वंशनगर का एक नवयुवक अपने स्वामी के आगमन का समाचार लेकर आया है। यह मनुष्य अपने स्वामी के प्रणाम के साथ बहुमूल्य सौगात भी लाया है। अब तक मैंने अभिलाष का ऐसा मनोहर दूत न देखा था। वसंत ऋतु जो कि सुहावन ग्रीष्म के आगमन का समाचार देता है ऐसा प्रिय नहीं प्रतीत होता जैसा कि यह दूत जो अपने स्वामी के पहुँचने का समाचार लाया है।

पुरश्री—किसी भाँति चुप भी रह; मैं सोचती हूँ कि थोड़ी ही देर में तेरे मुँह से सुनूँगी कि वह मनुष्य तेरा कोई संबंधी है क्योंकि उसकी प्रशंसा तू अत्यंत कर रहा है। आओ नरश्री आओ; मैं इस अभिलाष के दूत को जो ऐसी नम्रता के साथ आता है अभी देखा चाहती हूँ।

नरश्री—ऐ कामदेव यह मनुष्य वसंत का हो? [जाती है]

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—वंशनगर, एक सड़क

(सलोने और सलारन आते हैं)

सलोने—कहो बाज़ार का कोई नया समाचार है ?

सलारन—इस बात का अब तक वहाँ बड़ा कोलाहल है कि अनंत का एक अनमोल माल से लदा हुआ जहाज़ उस छोटे समुद्र में नष्ट हो गया ; कदाचित् उस स्थान को लोग दुरूह कहते हैं जो एक बड़ी भयानक बालू की ठेक है जहाँ कितने ही बड़े-बड़े अनमोल जहाज़ नष्ट हो गए हैं .यदि यह समाचार निरी गप हाँकने वाली कुटनी न हो।

सलोने—ईश्वर करे वह वैसी ही झूठी कुटनी निकले जो आँसू बहाने के लिये अपनी आँखों में लाल मिर्च मल लेती है, जिसमें लोगों पर अपने तीसरे पति के मरने का दुःख प्रकट करे। पर यह सच है और मैं बिना इसके कि बात को बढ़ाऊँ या बातचीत की सीधी राह से मुड़ूँ कहता हूँ कि सुहृद अनंत धर्मिष्ठ अनंत—हाय मुझे तो कोई ऐसा शब्द ही नहीं मिलता जिससे उसकी प्रशंसा सूचित हो सके।

सलारन—अच्छा तो अब तुम्हारा वाक्य समाप्त हुआ।

सलोने—वाह ! क्या कहते हो ? अच्छा तो उसका परिणाम यह है कि उनका एक जहाज़ नष्ट हो गया।

सलारन—मैं तो आशीर्वाद देता हूँ कि उनकी हानि यहीं पर समाप्त हो जाय।

सलोने—मैं भी झटपट एवमस्तु कह दूं, कहीं ऐसा न हो कि भूत मेरी प्रार्थना में विघ्न करे क्योंकि यह देखो वह जैन की सूरत में चला आता है।

(शैलाक्ष आता है)

सलोने—कहो जी शैलाक्ष, आज कल सौदागरों में क्या समाचार है ?

शैलाक्ष—मेरी बेटी के भागने का हाल तुमको भली भाँति विदित है, तुमसे बढ़कर इस बात को कोई नहीं जानता, कोई नहीं जानता।

सलारन—इसमें भी कोई संदेह है; परंतु यदि मुझसे पूछो तो मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि अमुक दर्ज़ी ने उसके लिये पर बनाये थे जिनके सहारे से वह उड़ी।

सलोने—और शैलाक्ष भी इस बात को जानता था कि उस चिड़िए के पर जम चुके हैं जिसके होने से सब पक्षियों का नियम है कि अपने मा बाप के खोते से निकल भागते हैं।

शैलाक्ष—वह इस अपराध के लिये अवश्य नरक में पड़ेगी।

सलारन—अवश्य यदिचेत भूत उसका न्यायकर्त्ता हो।

शैलाक्ष—ऐ ! मेरा ही मांस और रुधिर मुझी से विरुद्ध हो !

सलोने—तुम भी पुराने घाघ होकर क्या ही वाही तबाही बकते हो ! भला ऐसी युवा कुमारी के ऐसे कृत्य को विरुद्ध कह सकते हैं ?

शैलाक्ष—क्या मेरी लड़की मेरा मांस और लहू नहीं है ?

सलारन—तुम्हारे और उसके मांस में तो उससे भी अधिक अंतर है जैसा कि नीलमणि और स्फटिक में होता है; तुम्हारे और उसके रुधिर में उससे भी अधिक अंतर है जैसा कि सिंगर्फ़ और गेरू में होता है। पर यह तो कहो कि तुमने भी अनंत के जहाज़ के नष्ट होने का कुछ हाल सुना है ?

शैलाक्ष—वह मेरे लिये एक दूसरे घाटे की बात है; एक पूरा व्यर्थ व्यय करने वाला और दीवालिया जो अब बाजार में किसी को मुँह नहीं दिखला सकता; एक भिखमंगा जो किस बनावट के साथ बन ठन कर बाज़ार में आया करता था; नेक वह अपनी दस्तावेज़ तो देखे; वह मुझे बड़ा व्याज खाने वाला कहता था; नेक वह अपनी दस्तावेज़ तो देखे; वह

लोगों को बहुत अपनी आर्य्य दयालुता दिखलाने के लिये व्यर्थ रुपया ऋण दिया करता था; नेक वह अपनी दस्तावेज़ तो देखे।

सलारन—क्यों, मुझे विश्वास है कि यदि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सके तो तुम उनका मांस न माँगोगे; भला वह तुम्हारे किस काम में आ सकता है?

शैलाक्ष—मछली फँसाने के लिये चारे के काम में; यदि वह और किसी वस्तु का चारा नहीं हो सकता तो मेरे बदले का चारा तो होगा। उसने मुझे अप्रतिष्ठित किया है और कम से कम मेरा पाँच लाख का लाभ रोक दिया है; वह सदा मेरी हानि पर हँसा है, मेरे लाभ की निंदा की है, मेरी जाति की अप्रतिष्ठा की है, मेरे व्यवहारों में टाँच मारी है, मेरे मित्रों को ठंढा और मेरे शत्रुओं को गर्म किया है; और यह सब किस लिये? केवल इस लिये कि मैं जैनी हूँ। क्या जैनी की आँख, नाक, हाथ, पाँव और दूसरे अंग आर्य्यों की तरह नहीं होते? क्या उसकी सुधि, सुख और दुःख, प्रीति और क्रोध आर्य्यों की भाँति नहीं होता? क्या वह वही अन्न नहीं खाता, उन्हीं शस्त्रों से घायल नहीं होता, वही रोग नहीं झेलता, उन्हीं औषधियों से अच्छा नहीं होता, उसी गर्मी और जाड़े से सुख और कष्ट नहीं उठाता जैसा कि कोई आर्य्य? क्या यदि तुम चुटकी काटो तो हम लोगों के रुधिर नहीं निकलता? क्या यदि तुम गुदगुदाओ तो हम लोगों को हँसी नहीं आती? क्या यदि तुम विष दो तो हम लोग मर नहीं जाते? तो फिर जो तुम हम पर अत्याचार करोगे तो क्या हम बदला न लेंगे? यदि हम लोग और बातों में तुम्हारे सदृश हैं तो इस बात में भी तुम्हारे तुल्य होंगे। यदि कोई जैनी किसी आर्य्य को दुःख दे तो वह किस भाँति अपनी नम्रता प्रकट कर सकता है? बदला लेकर। तो यदि कोई आर्य्य किसी जैन को क्लेश पहुँचावे तो इसे उसके उदाहरण के अनुसार किस प्रकार से सहन करना चाहिए? अवश्य बदला लेकर। जो पाजीपन तुम लोग मुझे अपने उदाहरण से

सिखलाते हो उसे मैं कर दिखलाऊँगा. और कितनी ही कठिनता क्यों न पड़े मैं बदला लेने में अवश्य तुमसे बढ़कर रहूँगा।

(एक भृत्य आता है)

भृत्य—महाशयो मेरे स्वामी अनंत अपने घर पर हैं और आप दोनों से कुछ बातचीत किया चाहते हैं।

सलारन—हम लोग तो उनको चारों ओर खोज ही रहे थे।

(दुर्बल आता है)

सलारन—यह देखो एक दूसरा जैनी आया; अब तीसरा इनकी बराबरी का नहीं निकल सकता पर हाँ उस दशा में कि भूत आप ही एक जैन बन जाय।

(सलोने, सलारन और भृत्य जाते हैं)

शैलाक्ष—कहो जी दुर्बल जयपुर से क्या समाचार लाए? मेरी बेटी का पता लगाया?

दुर्बल—मैंने जहाँ जहाँ उसका समाचार सुना, वहाँ वहाँ पहुँचा परंतु कहीं पता न लगा।

शैलाक्ष—वही, वही, वही वह हीरा ले जो गई जो मैंने दो सहस्र अशरफ़ी को फरीदकोट में लिया था! ऐसा बड़ा ईश्वर का कोप हमारी जाति पर आज तक न गिरा था। मुझे तो आज तक उसका अनुभव न हुआ था—दो सहस्र अशरफ़ी का एक हीरा और दूसरे अमूल्य रत्न अलग। अच्छा होता कि मेरी लड़की मेरी आँखों के सामने मर गई होती और वह रत्न उसके शरीर पर होते! अच्छा होता कि उसका शव मेरे पाँवों के नीचे गड़ता और अशरफ़ियाँ उसके कफ़न में होतीं! उनका कुछ पता नहीं लगा? यही परिणाम हमारे प्रयत्नों का है और विदित नहीं कि इस खोज में कितना व्यय पड़ा—हाय यह हानि पर हानि! "मुफ़लिसी में आटा गीला!" इतना तो चोर ले गया और इतना चोर की खोज में नष्ट हुआ। तिस पर न कुछ उसके सन्ती मिलने की आशा और

न बदला निकलने की। किसी और के घर दुःख भी दृष्टि पड़ता जिसे देख कर धीरज हो। हाँ यदि है तो मेरी गर्दन पर सवार, कहीं से आह भी नहीं सुनाई देती सिवाय उसके जो मेरे हृदय से निकलती है, और न सिवाय मेरे किसी के आँसू गिरते हैं।

दुर्बल—ऐसा तो नहीं और लोग भी अपने अपने दुःख से खाली नहीं हैं। अभी मैंने जयपुर में समाचार पाया कि अनंत का—

शैलाक्ष—क्या, क्या, क्या ? दुःख दुःख ?

दुर्बल—उसके जहाज़ों का एक बेड़ा त्रिपुल से आते समय राह में नष्ट हो गया।

शैलाक्ष—धन्य है ईश्वर को, धन्य है ईश्वर को, क्या यह समाचार सच्चा है ? क्या यह समाचार सच्चा है ?

दुर्बल—मैं आप उन खलासियों के मुँह से सुन आया हूँ जो जहाज़ के नष्ट होने से बच कर आए हैं।

शैलाक्ष—मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूँ अच्छे दुर्बल, बड़ा अच्छा समाचार लाए, बड़ा अच्छा समाचार लाए, अहाहा—कहाँ ? जयपुर में ?

दुर्बल—मैंने जयपुर में सुना कि तुम्हारी बेटी ने एक रात में अस्सी अशरफ़ियाँ व्यय कीं !

शैलाक्ष—तू मेरे कलेजे में छुरी मारता है। अब मैं फिर अपनी अशरफियों को इन आँखों से न देखूँगा; हाय ! अस्सी अशरफियाँ ! एक बार में अस्सी अशरफियाँ !

दुर्बल—अनंत के कई ऋणदाता मेरे साथ वंशनगर को आए जो शपथ खा कर कहते थे कि अब उसके काम का बिगड़ना किसी भाँति नहीं रुक सकता।

शलाक्ष—बड़े हर्ष की बात है; मैं उसे बहुत रुलाऊँगा, मैं उसे कोच-कोच कर मारूँगा ; बड़े हर्ष का विषय है।

दुर्बल—उनमें से एक ने मुझे एक अँगूठी दिखलाई, जो तुम्हारी बेटी ने उसे एक बंदर के मोल में दी है।

शैलाक्ष—उसका नाम मत लो दुर्बल ! तुम मेरे हृदय में रह रह के घात करते हो ! वह मेरी नीलम की अँगूठी थी ; मैंने उसे कमलाक्षी से पाया था जब कि मेरा व्याह नहीं हुआ था ; यदि मुझे कोई बंदरों का जंगल का जंगल देता तो भी मैं इस अँगूठी को अपने से पृथक न करता।

दुर्बल—लेकिन अनंत तो निस्संदेह नष्ट हो गया।

शैलाक्ष—इसमें भी कोई संदेह है, यह तो स्पष्ट है, यह तो भली भाँति प्रकट है। जाओ दुर्बल उसके पकड़ने के लिए एक प्रधान ठहराओ, उसे पंद्रह दिन पहले से पक्का कर रक्खो। यदि यह मनुष्य अपने प्रण के अनुसार रुपया न दे सका तो मैं इसका पित्ता निकलवा लूँगा, क्योंकि यदि यह काँटा वंशनगर से निकल जाय तो मेरा व्यापार मनमाना चले। अच्छा दुर्बल अब जाओ और मुझसे मंदिर में मिलो, जाओ प्यारे दुर्बल ; देखो हम लोगों के मंदिर में मिलना।

[दोनों जाते हैं]

———

दूसरा दृश्य

स्थान—बिल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा

(बसंत, पुरश्री, गिरीश, नरश्री और उनके साथी आते हैं। संदूक रक्खे जाते हैं)

पुरश्री—भगवान के निहोरे थोड़ा ठहर जाइए। भला अपने भाग्य की परीक्षा के पहिले एक दो दिन तो ठहर जाइए, क्योंकि यदि आप की रुचि ठीक न हुई तो आप के साथ रहने का आनंद तुरंत ही हाथ से जाता रहेगा। इसलिए थोड़ा धीरज धरिए, न जाने क्यों मेरा जी आप से पृथक होने को नहीं करता, पर मैं समझती हूँ कि इसका कारण अनुराग नहीं है और यह तो आप भी कहेंगे कि घृणा का इससे संबंध नहीं हो सकता। किंतु कदाचित् आप मेरे जी की बात न समझे हों इसलिये मैं आप को भाग्य की परीक्षा करने के पहले दो एक महीने तक ठहराऊँगी, परंतु इससे क्या होना है? कुमारी अपने जी की बात को जिह्वा पर कब ला सकती है। मैं आप को पते का संदूक बता सकती हूँ पर मेरी सौगंद टूट जायगी और यह मुझे किसी तरह पर अंगीकार नहीं। कदाचित् मैं आप को न मिलूँ, पर यदि ऐसा हुआ तो मेरा चित्त यही कहेगा कि तू ने अपराध क्यों न किया और शपथ क्यों न तोड़ डाली। मेरा मन करता है कि आपकी आँखों को कोसूँ, इन्हीं ने तो मुझे मोल ले लिया और मेरे दो भाग कर डाले—आधी तो मैं आप की हूँ, और शेष आधी भी आप ही की, क्योंकि यदि मैं यों कहूँ कि अपनी हूँ तो भी तो आपही की हुई, इस लिये सब आप ही की ठहरी। क्या बुरा समय आ गया है कि अपनी वस्तु पर भी अपना वस नहीं! अतएव यद्यपि मैं आप ही की हूँ तो भी क्या? हुई न हुई दोनों बराबर—यदि कहीं भाग्य ने धोखा दिया तो उसके कारण मैं क्यों

दुःख में पड़ूँ, पड़े तो भाग्य पड़े जिसका दोष है। मैं बहुत कुछ बक गई पर तात्पर्य मेरा यह है कि बातचीत में कुछ समय कटे और आपके संदूक पसंद करने के लिये जाने में इसी बहाने कुछ देर हो।

वसंत—मुझे झटपट चुन लेने दीजिए, यों रहने से तो मेरा जी सूली पर टँगा है।

पुरश्री—सूली पर, तो कहिए कि आप के प्रेम के साथ दग़ा कैसी मिली हुई है?

वसंत—दग़ा का क्या काम, हाँ यदि कुछ है तो अपने चित्त के अभिलाष पूरे होने की ओर से अविश्वास। मेरे प्रेम के साथ तो दग़ा का होना ऐसा है मानो आग और बर्फ की मित्रता।

पुरश्री—जी हाँ, पर मुझे भय है कि आप का जी तो सूली पर टँगा है, और सूली पर लोग प्रायः विवश हो कर बे सिर पैर की बका करते हैं।

वसंत—जीवदान दीजिए तो यथार्थ कह दूँ।

पुरश्री—अच्छा तो फिर कहिए, आप का जीवन आपको मुबारक।

बसंत—कह दूँ, मेरा प्राण मुझको मुबारक! वो तो मेरा मनोरथ बर आया, वाह जब सताने वाला आप ही वह राह दिखलाता है जिस से जी बचे तो कष्ट भी परम सुख है। परंतु अच्छा अब मुझे संदूकों के साथ अपने भाग्य की परीक्षा के लिये छोड़ दीजिए।

पुरश्री—अच्छा तो आप जायँ, उन संदूकों में से एक में मेरा चित्र है; यदि आप मुझे चाहते होंगे तो वह आप को मिल जायगा। नरश्री तुम सब अलग खड़ी हो जाओ और जब आप संदूक पसंद करने लगें तो कुछ गान का भी आरंभ हो, जिसमें यदि आप कहीं चूक जायँ तो जैसे बत्तक अपना दम निकलने के समय गाता है वैसे ही आप के विदा होने के समय भी गाना होता रहे। यदि कहिए कि बत्तक की समाधि

पानी में होती है तो मेरी आँखें नदी बनकर आप के शत्रुओं की समाधि बन जायँगी। यदि कहीं आप ने दाँव मारा तो गाना क्या है मानो उस समय को सलामी का बाजा है जब कोई नया राजा सिंहासन पर बैठता है और उसकी शुभचिंतक प्रजा उसके अभिनंदन को आती है, या वह मीठी तान है जिसे सुन कर नया वर विवाह के दिन सबेरे ही उठ कर व्याह की तैयारी करता है। देखिए वह जाते हैं। जब रुद्र उस कुमारी को छुड़ाने गया था जिसे त्र्यम्बक ने समुद्र की एक आपत्ति को सौंप दिया था तो जैसा तेज उसके मुख पर बरसता था वैसा ही उनके मुँह पर दरसता है परंतु प्रेम तो उसकी अपेक्षा कई अंश अधिक है। मैं भी उस कुमारी की भाँति बलिदान के लिये प्रस्तुत हूँ और यह स्त्रियाँ मानो त्र्यम्बक की रहने वाली हैं और वियोगिन बनी हुई खड़ी देख रही हैं कि इस दुस्तर कर्म का क्या परिणाम होता है। अच्छा मेरे रुद्र जाओ, अब तो मेरा जीवन तुम्हारे प्राण के साथ है। और निश्चय रखिए कि आपका चित्त यद्यपि आप स्वयं लड़ने जाते हैं, इतना न धड़कता होगा जितना मेरा धड़कता है यद्यपि मैं केवल दूर से खड़ी हुई कौतुक देख रही हूँ।

गीत

अहो यह भ्रम उपजत कित आय।
जिय मैं कै सिर मैं जनमत है बढ़त कहाँ सुख पाय।
ता को यह उत्तर जिय उपजत बढ़त दृष्टि मैं धाय॥
पै यह अति अचरज कै जित यह जनमत तितहि नसाय।
देखि ऊपरी चमक चतुर हू यद्यपि जात भुलाय॥
पै जब जानत अथिर ताहि तब निज भ्रम पर पछिताय।
तासों टनटन बजै कहौ अब घंटा हू घहराय॥

बसंत—सच है जो पदार्थ देखने में भले और भड़कीले होते हैं वस्तुतः कुछ नहीं होते। संसार के लोग बाहरी चमक दमक में भूल जाया करते हैं। देखिए क़ानून में कोई दलील कैसी ही झूठी और बे सिर पैर की क्यों न हो यदि उसी को साधु भाषा में

नमक मिर्च लगाकर कहिए तो उसका सब अवगुण छिप जाता है। उसी भाँति धर्म में देखिए तो कैसी ही घृणा के योग्य भूल क्यों न हो कोई न कोई उपयुक्त युक्ति मनुष्य उसके प्रमाण मे देकर उसे सराहेगा और उसके दोषों पर सुवर्ण का पर्दा डाल देगा। निरी बुराई पर भी बाहरी भलाई का मुलम्मा चढ़ जाता है। देखिए कितने ऐसे डरपोक मनुष्य, जिनके चित्त बालू की भीत की भाँति निर्बल हैं, दाढ़ी और रूप रंग में मानसिंह और विजयसेन को तुच्छ करते हैं और भीतर देखिए तो उनका दुर्बल अंतःकरण दूध सा स्वच्छ है। इन लोगों को कहना चाहिए कि यह केवल वीरपुरुषों का उतरन अपना प्रभाव दिखलाने के निमित्त पहिन लेते हैं। सुंदरता की ओर दृष्टि कीजिए तो विदित होगा कि वह केवल चाँदी की न्योछावर है जितना रुपया लगाइए उतनी ही भड़क हो। वास्तव में तत्व-निरूपण करने पर करामात प्रतीत होने लगती है, जिसके सिर पर जितना अधिक भार है उतना ही विशेष तुच्छ है। यही दशा उन घुँघरवाले सुंदर कच-कलापों का है जो वायु में इस भाँति बल खाते हैं कि मन को लुभा लेते हैं। देखिए एक के सिर से उतर कर दूसरे के सिर चढ़ते हैं और जिस सिर ने उन्हें पाला था वह अंत में कीड़ों का आहार है। अतः भूषण वसन क्या है मानो किसी बड़े भयानक समुद्र का ऐसा किनारा है जो थाह बता कर गोता दे या किसी हिंदुस्तानी स्त्री का भड़कीला दुपट्टा है, अर्थात् यह कहना चाहिए कि समय के छली लोग झूठ को ऐसा सच करके दिखा देते हैं कि बड़े बड़े बुद्धिमान की बुद्धि चकित हो जाती है। इसलिये चमकीले सोने जिसने महाराज मागधि से उसका खाना लेकर लोहे के चने चबवाए मैं तुझ को न छूऊँगा और न तुझे ए कुरूप चाँदी जिसके लिये एक मनुष्य दूसरे की सेवा करता है। परंतु तुच्छ सीसे जिसके देखने से आशा के बदले भय उत्पन्न होता है—

बचन रचन तजि और के, तोही पै बिस्वास।
उदासीन प्रेमी मनहिं, लखि तुव रंग उदास॥

औरन तजि तासों चुनत, सीसक अब हम तोहि।
आनँदघन करुनायतन, करहु अनंदित मोहि॥

पुरश्री—(आप ही आप)

मिट्यो सकल भ्रम भीति नसानी।
नसी निरासा जिय-दुखदानी॥
मोह-कँवल-रुज दृग सो भाग्यौ।
संसय तजि मन आनँद पाग्यौ॥
प्रेम! धीर धरु किन अकुलाई।
धरत सीवँ तजि पगहि बढ़ाई॥
आनँद नीर इतो हिय-जलधर।
उमगि उमगि बनि बरस धीर धर॥
यह सुख नदी उमड़ि जो आई।
मम घट घट नहिं सकत समाई॥
होइ न कहूँ अनंद अबीरन।
तासों धरु धीरज चंचल मन रे।

बसंत—देखें तो यह क्या निकला?

(सीसे के संदूक़ को खोल कर) वाह वाह यह तो मेरी परम सुंदरी पुरश्री का चित्र है! यह किस चितेरे की निपुणता है कि चित्र बोला ही चाहता है? क्या यह आँखें सचमुच फिरती हैं या केवल मेरी आँखों की पुतलियों पर इनकी परछाईं पड़ने से मुझे घूमती हुई दिखाई देती हैं। इधर देखिए तो दोनों ओष्ठ इस भाँति से भिन्न हैं मानो मीठे प्यारे श्वासों के आने जाने का मार्ग है। ऐसे प्यारे साथियों के विरह का कारण ऐसी ही प्यारी वस्तु होनी चाहिए। इधर देखिए तो बालों की छवि खींचने में चित्रकार ने मकड़ी की चातुरी को तुच्छ कर दिखलाया है और सोने के तारों का ऐसा जाल बिना है कि मनुष्य का चित्त पतंग की भाँति उसमें फँस जाय। पर वाह री आँखें! इनके बनाने के समय चित्रकार की दृष्टि किस भाँति ठहरी? मेरी समझ में तो जब एक बन गई थी तो उसकी दोनों आँखें इस एक के न्योछावर हो जातीं और यह आँख बेजोड़ रह जाती। किंतु सच पूछिए तो

जितनी ही मेरी प्रशंसा की इस चित्र के सामने कुछ गिनती नहीं उतनी ही साक्षात् के सामने इस छबि की कुछ गणना नहीं। देखिए यह भाग्य का लेखाजोखा है।

(पढ़ता है)

जौ लखि छबि ऊपरी भुलाते। तौ यह दाँव कबहुँ नहिं पाते॥
तुम्हरी बुद्धि धीर नहिं छूटी। लेहु अबै रस-संपति लूटी॥
अब जिय चाह करौ जनि दूजी। भ्रमहु न जग इच्छा तुव पूजी॥
जौ तुम याहि भाग निज लेखौ। तौ मुरि निज प्यारी मुख देखौ॥
जीवन-सरबस याहि बनाई। रहौ चूमि मुख कंठ लगाई॥
अब जौ प्यारी सुंदरी तुव अनुसासन होय।
तौ हम चुंबन लेहिं अरु निजहु देहिं भय खोय॥

(मुँह चूमता है)

कहँ द्वै जन की होड़ मैं जीतत बाजी कोय।
तौ सब दिसि सों एक सँग ताकी जय धुनि होय॥
सो कोलाहल सुनत ही तासु बुद्धि अकुलाय।
ठाढ़ी सोचत सोंच ही जीत्यो मैं इत आय॥
तिमि सुंदरि संदेह यह मेरे हू जिय माहिं।
कै जो देखत मैं दृगन तौन सोंच की नाहिं॥
सो मम भ्रम तुम करि दया बेगहि देहु मिटाय।
मम जयपत्र सकारि पुनि सुंदरि मुहि अपनाय॥

पुरश्री—मेरे स्वामी वसंत आप मुझे जैसी खड़ी हुई देखते हैं वैसे ही मैं हूँ; यद्यपि केवल अपने लिये मेरे जी में यह अभिलाष नहीं है कि मैं अपनी वर्त्तमान अवस्था से बढ़ जाऊँ किंतु आपके विचार से मेरा बस चले तो मैं सौगुनी अच्छी हो जाऊँ। रूप में सहस्र वार और धन में लक्षवार अधिक हो जाऊँ, केवल इस लिये कि आपकी दृष्टि में जँचूँ। संभव है कि मैं गुण, सौंदर्य, लक्ष्मी और मित्रों में अत्यंत बढ़ जाऊँ तथापि इन सब अलभ्य पदार्थों के होते भी मेरी अवस्था यह है कि मैं एक निरी मूर्ख, बेसमझ और सीधीसादी छोकरी हूँ; पर हाँ इस बात से तो प्रसन्न हूँ कि मेरी अवस्था इतनी अधिक

अभी नहीं हुई कि मैं कुछ सीख न सकूँ और इस कारण से और भी प्रसन्न हूँ कि इतनी कुंठित भी नहीं हो गई हूँ कि सीखने के योग्य न रही हूँ और सबसे अधिक प्रसन्नता का कारण यह है कि मैं अपने भोले चित्त को आपको सौंपती हूँ कि वह आपको अपना स्वामी, अपना नियंता, अपना अधिपति समझकर जो आप कहें सो किया करे। मैं और जो कुछ मेरा है अब वह सब आप का हो चुका। अभी एक साइत हुई कि मैं इस राजभवन और अपने अनुचरों की स्वामिनी और अपने मन की रानी थी, और अभी इस क्षण यह घर, ये नौकर चाकर और मैं आप, सब आपके हो गए। मैं इन सभों को इस अँगूठी के साथ आप को सौंपती हूँ। जब यह अँगूठी आपके पास न रहे, खो जाय या आप इसे किसी को दे देवें तो मैं तो समझूँगी कि आप के प्रेम में अंतर आगया और फिर मुझे आप से उपालंभ देने का पूरा स्वत्व प्राप्त होगा।

वसंत—प्यारी मेरी जिव्हा को सामर्थ्य नहीं कि तुम्हारे उत्तर में एक अक्षर भी निकाले; पर हाँ मेरा रोम रोम तुम्हारी कृतज्ञता में जिव्हा बन रहा है और मेरी सुधि में ऐसी घबड़ाहट आगई है जैसी कि प्रजावृंद में उस समय दृष्टि पड़ती है जब कि वह अपने प्यारे राजा के मुख से कोई उत्तम व्याख्यान सुन कर प्रसन्न हो जाते हैं और वाह वाह करने और आशीः देने लगते हैं। जब कि बहुत से शब्द जिनके कुछ अर्थ हो सकते हैं मिलकर सब व्यर्थ हो जाते हैं और सिवाय इसके कि उनसे प्रसन्नता प्रगट हो और कोई तात्पर्य्य नहीं समझ में आता। परंतु यह प्यारी अँगूठी मेरी उँगली से उसी समय जुदा होगी जब कि इस उँगली से सत्ता निकल जायगी और उस समय तुम निस्संदेह समझ लेना कि वसंत मर गया।

नरश्री—मेरे स्वामी और मेरी स्वामिनी अब तक हम लोग खड़े खड़े अपने मन के मनोरथ के पूर्ण होते देखा किए और अब हम लोगों की बारी है कि 'कल्याण हो' की

ध्वनि मचावें। "कल्याण हो" ऐ मेरे स्वामी और मेरी स्वामिनी।

गिरीश—ऐ मेरे स्वामी वसंत और मेरी सरल स्वामिनी मेरी यही आसीस है कि आप के सारे मनोरथ पूरे हों क्योंकि मुझे निश्चय है कि आप मेरे हर्ष को तो बाँट लेंगे ही नहीं, अतः मेरी यह प्रार्थना है कि जिस समय आप लोग परस्पर अपना मनोभिलाष और प्रतिज्ञा पूरी करें उसी समय मेरा ब्याह भी कर दिया जाय।

वसंत—मुझे तन और मन से स्वीकार है पर इस शर्त पर कि तुम अपने लिये कोई स्त्री ठहरा लो।

गिरीश—मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि आप ही के न्यौछावर में मेरा काम भी निकल आया, क्योंकि ज्यों ही आप की प्रेम-दृष्टि राजकुमारी पर पड़ी, मेरे नेत्रों में भी उनकी सहेली बस गई। उधर आप अनुरक्त हुए इधर मैं प्रेम के फंदे में फँसा। इस में न आप को विलंब लगा न मुझे। आप के प्रारब्ध की परीक्षा संदूकों के चुनने पर थी वैसे ही मेरा भाग्य भी उन्हीं के साथ अटका हुआ था। तात्पर्य्य यह है कि मुझे इस सुंदरी की इतनी सुश्रूषा करनी पड़ी कि शरीर से स्वेद निकल आया और अपनी प्रीति का निश्चय दिलाने के लिये इतनी सौगंदे खानी पड़ीं कि तालू चटक गया तब कहीं, यदि वाक्‌दान कोई वस्तु है तो इनके मुख से यह वाक्य निकला कि जो तुम्हारे स्वामी का विवाह मेरी स्वामिनी से हो जायगा तो मैं भी तुम्हें ग्रहण करूँगी।

पुरश्री—नरश्री क्या यह बात सच है?

नरश्री—हाँ सखी यदि आप की इच्छा के विरुद्ध न हो तो सच ही समझी जायगी।

वसंत—और तुम गिरीश धर्मपूर्वक यह विचार करते हो न?

गिरीश—धर्मावतार सब सच्चे जी से।

वसंत—तुम्हारे ब्याह से हमारे समाज का आनंद दूना उठेगा।

गिरीश—ऐं यह कौन आता है ? अहा लवंग और उनकी प्राण-प्यारी ! और हमारे पुराने वंशनगर के मित्र सलोने भी साथ हैं

(लवंग, जसोदा और सलोने आते हैं)

वसंत—अहा लवंग और सलोने आए परंतु मैं अपनी अवस्था में बिना अपनी प्यारी की आज्ञा के प्रसन्नता प्रकट करने का कब अधिकार रखता हूँ। प्यारी पुरश्री यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं अपने सच्चे मित्रों और स्वदेशियों के आने पर प्रसन्नता प्रकट करूँ।

पुरश्री—मेरे स्वामी इस में मेरी परम प्रसन्नता है, ऐसे लोगों का भाग्यों से आना होता है।

लवंग—मैं आपको धन्यवाद देता हूँ, किंतु सच पूछिए तो मेरी इच्छा आप से यहाँ भेंट करने को न थी परंतु मार्ग में सलोने मिल गए और मुझे यहाँ लाने के विषय में इतना हठ किया कि मैं नहीं न कर सका और साथ आना ही पड़ा।

सलोने—जी हाँ मैं इनको वस्तुतः खींच लाया पर इसका एक मुख्य कारण है। अनंत महाशय ने आपको सलाम कहा है।

(वसंत के हाथ में एक पत्र देता है)

वसंत—इस से पहिले कि मैं उनके पत्र को खोलूँ मुझे भगवान के लिये इतना बता दो कि मेरे सुहृन्मित्र प्रसन्न तो हैं।

सलोने—देखने में तो वह पीड़ित नहीं हैं परंतु आंतरिक हो तो हो और न अच्छे ही दृष्टि आते किंतु चित्त का हाल मैं नहीं कह सकता। अच्छा उस पत्र से उनका वृत्तांत आप को भली भाँति सूचित हो जायगा।

गिरीश—नरश्री अपने पाहुनों का सत्कार करो और उनका मन बहलाओ। सलोने नेक इधर ध्यान दीजिए, कहो तो वंशनगर का क्या समाचार है, सब सौदागरों के सिरताज हमारे सुहृद्र अनंत किस भाँति हैं ? हमारे पूर्ण मनोरथ होने का समाचार सुन कर तो वह फूले न समायँगे; हम लोग अपने

समय के महावीर हैं क्योंकि सोने की खाल हम ने ही जीती है।

सलोने—मेरी जान तो यदि तुम उस खाल को जीतते जिसे वसंत हारे हैं तो अच्छा होता।

पुरश्री—कदाचित् पत्र में कोई बुरा समाचार है कि जिससे वसंत के मुख की कांति उड़ी जाती है। कोई प्रिय मित्र मर गया हो; नहीं तो कौन ऐसी बात है कि जिससे ऐसे धीर मनुष्य की अवस्था हीन हो जाय। ऐं! यह तो क्षण प्रति क्षण मुख की पांडुता बढ़ती जाती है। वसंत मुझे क्षमा कीजिएगा, मैं आपके शरीर की अर्द्धांग हूँ, और इसलिए जो कुछ कि उस पत्र में लिखा है उस में से आधा हाल सुनने की मैं भी अधिकारी हूँ।

वसंत—ऐ मेरी प्यारी पुरश्री इस पत्र में कई एक ऐसे दुखदाई शब्द हैं कि जिनका वर्णन नहीं हो सकता। मेरी सुजान प्यारी तुम भली भाँति जानती हो कि जब मैंने तुम्हें अपना मन दिया था तो यह पहले ही कह दिया था कि जो कुछ कि मेरी पूंजी है वह मेरा शरीर है अर्थात् मैं अपने कुल का कुलीन हूँ। और इस में कोई बात मिथ्या न थी, परन्तु प्यारी यद्यपि मैं ने अपनी क्षमता तुम पर स्पष्ट प्रकट कर दी तो भी यदि सच पूछो तो मैंने अभिमान किया क्योंकि जिस समय मैं ने तुमसे यह कहा था कि मेरे पास कुछ नहीं है मुझे यों कहना चाहिये था कि मेरी अवस्था उस से भी गई बीती है। खेद कि मैंने केवल अपना मनोरथ पूरा करने के लिये अपने प्यारे मित्र को उसके परम शत्रु के पंजे में फँसा दिया। देखो यह पत्र वर्त्तमान है जिसे मेरे मित्र का शरीर समझना चाहिए और प्रति शब्द उसका नया घाव जिस से रक्त टपक रहा है। पर क्यों सलोने क्या यह सत्य है कि उनका सारा काम बिगड़ गया? क्या एक भी ठीक न उतरा? ऐं त्रिपुल, मौक्तिक, अंगदेश, नँदन, बरबर और हिन्दुस्तान सब देशों के जहाज़ों में से एक को भी व्यापारियों को निराश करने वाली चट्टानों ने अखंड न छोड़ा।

सलोने-महाराज एक भी नहीं। तिस पर यह और आपत्ति है कि यदि वह उस जैन को नक़द रुपया देने का कहीं से प्रबन्ध भी करें तो वह न लेगा। मेरी दृष्टि में तो ऐसा व्यक्ति मनुष्य की उन्नति तथा उसकी अवनति का साथी अब तक नहीं आया! इसी सोच में वह प्रति दिन सायं प्रातः मण्डलेश्वर को जाकर घेरता है और कहता है कि यदि मेरे साथ न्याय न बरता जायगा तो इस राज्य के इस सिद्धांत पर कि वह प्रतिवर्ण के लोगों को एक दृष्टि से देखता है बट्टा लग जायगा। बीस सौदागरों और कितने और बड़े-बड़े नामी लोगों ने और मंडलेश्वर ने आप भी उसे समझाया पर उसने एक की भी न सुनी। अब बतलाइए क्या किया जाय। उस पर तो ईर्षा के मारे यही धुन सवार है कि बस जो कुछ होना था सो हो चुका अब तमस्सुक के प्रण के अनुसार मेरा विचार हो।

जसोदा—जब कि मैं उनके साथ थी मैंने उन्हें प्रायः दुर्बल और अक्रर अपने स्वदेशियों से इस बात की सौगंद खाते हुए सुना था कि यदि मुझे कोई ऋण के बीस गुने रुपये भी दे तो अनंत के मांस के अतिरिक्त उसकी ओर आँख उठा कर न देखूँगा और महाराज मुझे निश्चय है कि यदि वहाँ के विचाराधीश कानून के अनुकूल उसे हठपूर्वक रोक न रक्खेंगे तो विचारे अनंत के सिर पर बुरी बीतेगी।

पुरश्री—क्या वह आपके कोई प्यारे मित्र हैं जिन पर यह आपत्ति आई है।

वसंत—(आह भर कर) यह वही मेरा सबसे प्यारा मित्र है जो उपकार करने में अपना जोड़ी नहीं रखता, उपकार करने में कभी नहीं थकता और शील का राजा है। इस समय मारवाड़ भर में वही अकेला एक मनुष्य है जिसमें मारवाड़ के प्राचीन समय के लोगों की उत्तम बातें और उच्च विचार पूरे पूरे पाए जाते हैं।

पुरश्री—उन्हें उस जैन का कितना देना है?

वसंत—मेरे ही कारण छ हजार रुपये के ऋणी हो गए है।

पुरश्री—बस इतना ही ? आप बारह सहस्र देकर तमस्सुक फेर लीजिए। यदि आवश्यकता हो तो बारह सहस्र के भी दूने कर डालिए और इस दूने के तिगुने, पर ऐसा कदापि न होने पावे कि वसंत के कारण उसके ऐसे अनुपम मित्र का एक रोम भी टेढ़ा हो। चलिए अभी मंदिर में चल कर व्याह की रीति कर लीजिए और इसके उपरांत सीधे अपने मित्र के पास बंशनगर को चले जाइए ; क्योंकि जब तक आपका शोच दूर न हो लेगा, मुझे आपके साथ सोना धिक्कार है। उस छोटे ऋण के चुका देने के लिये उसका बीस गुना रुपया लेते जाइए और उसे देकर अपने मित्र को यहाँ साथ लेते आइए। इस बीच में मैं और मेरी सहेली नरश्री कुमारी और विधवा स्त्रियों की भाँति अपना समय काटेंगी। आइए चलिए क्योंकि आपको आज ही अपने व्याह के दिन यहाँ से जाना है। अपने मित्रों से प्रसन्नतापूर्वक मिलिए और अपना मन विकसित रखिए। आप से मिलने में जितनी कठिनता होवेगी उतने ही अधिक आप मुझे प्यारे प्रतीत होंगे। परंतु तनिक अपने दोस्त का पत्र तो सुनाइए।

वसंत—(पढ़ता है)—

मेरे प्यारे वसंत, सब जहाज नष्ट हो गए, मेरे ऋणदाता निर्दयता से वर्त्तते हैं, मेरी अवस्था अत्यंत ही नष्ट है और मेरी प्रतिज्ञा जैन के साथ टल गई और जो कि ऋण के चुका देने में संभव नहीं कि मैं जीता बचूँ, इसलिये मैं सब हिसाब अपने और तुम्हारे बीच साफ़ समझूँगा यदि मैं अपने मरने के समय तुम्हें एक आँख देख लूँ। परन्तु हर हालत में यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। यदि मेरा प्रेम तुम्हें यहाँ तक न खींच ला सके तो मेरे पत्र का कुछ ध्यान न करना।

पुरश्री—मेरे प्यारे सब काम को झटपट पूरा करके एकबारगी चले ही जाओ।

वसंत—जब तुमने प्रसन्नता से जाने की आज्ञा दे दी तो अब मुझे क्या विलंब है। परंतु जब तक कि मैं लौट न आऊँ मेरे लिये नींद हराम और सुख दुःख से अधम है।

———

तीसरा दृश्य

स्थान—वंशनगर की एक सड़क

(शैलाक्ष, सलारन, अनंत और कारागार के प्रधान आते हैं)

शैलाक्ष—प्रधान इससे सचेत रहो; मुझसे दया का नाम न लो। यही वह मूर्ख है जो लोगों को बिना ब्याज रुपये ऋण दिया करता था। प्रधान इससे सावधान रहो।

अनंत—मेरे सुहृद शैलाक्ष कुछ तो मेरी सुन लो।

शैलाक्ष—मैं तमस्सुक के प्रणों को नहीं तोड़ने का, उसके विरुद्ध कुछ मत कहो। मैं इस बात की शपथ खा चुका हूँ कि अपने तमस्सुक की शर्तों पर दृढ़ रहूँगा। तुम ही न इस मुकद्दमे के होने के पहिले मुझे कुत्ता कहा करते थे। अच्छा मैं तो तुम्हारे कहने अनुसार कुत्ता हो ही चुका पर नेक मेरे पंजों से डरते रहना; मंडलेश्वर साहिब मेरा विचार करेंगे! मुझे तो ऐ दुष्ट प्रधान तुझ पर आश्चर्य्य होता है कि तुझे क्या मूर्खता सूझी है जो इसकी बातों में आकर इसे बेखटके इधर उधर लिये फिरता है।

अनंत—भगवान के वास्ते एक बात तो मेरी सुन लो।

शैलाक्ष—मुझे अपने तमस्सुक से काम है, मैं कदापि तुम्हारी बात न सुनूँगा; मुझे केवल अपने तमस्सुक से काम है; बस अब अधिक गिड़गिड़ाने से क्या लाभ। मैं कुछ ऐसा चित्त का दुर्बल अथवा आँखों का अंधा थोड़े ही हूँ जो सिर हिला कर खेद करूँ, आहें भरूँ और आय्यों के समझाने बुझाने में आकर पिघल जाऊँ। मेर पीछे न आओ; मैं कदापि सुनने का नहीं, मुझे अपने तमस्सुक से काम है।

(शैलाक्ष जाता है)

सलारन—मनुष्य की आकृति में ऐसा पाषाणहृदय कुत्ता काहे को निकलेगा।

अनंत—जाने दो, अब मैं उसके पीछे व्यर्थ गिड़गिड़ाता न फिरूँगा। वह मेरे प्राण लेने की चिंता में है और इसका कारण भी मैं भली भाँति जानता हूँ। प्रायः मैंने बहुतेरे लोगों को जो मेरे पास आकर रोए हैं उसके पजे से छुड़ाया है और इसी कारण से वह मेरा प्राणघातक शत्रु हो रहा है।

सलारन—मुझे निश्चय है कि मंडलेश्वर उसकी शर्त को कदापि स्थिर न रहने देंगे।

अनंत—क्यों नहीं, मंडलेश्वर कानून के उद्देश्य को जिससे विदेशी वंशनगर में आकर बेखटके लेन देन करते हैं क्योंकर बदल सकते हैं। यदि अस्वीकार किया जाय तो यहाँ के राज्य का अपवाद है क्योंकि इस नगर का वाणिज्य और लाभ सब जाति वालों के मिलाप होने के कारण है। अच्छा तो अब तुम जाओ। जो दुःख और क्षतियाँ मैंने इधर उठाई हैं उनके कारण मेरी अवस्था ऐसी नष्ट हो गई है कि कदाचित् कल तक मेरे रक्त के प्यासे ऋणदाताओं के लिये मेरे शरीर में आध सेर माँस भी शेष न रहे। आओ प्रधान चलो। ईश्वर करे कहीं वसंत आ जाय और मुझे अपना ऋण चुकाते हुए देख ले, फिर मेरे जी में कोई लालसा शेष न रहेगी।

[सब जाते हैं]

चौथा दृश्य

स्थान—बिल्वमठ पुरश्री के घर एक कमरा

(पुरश्री, लवंग, जसोदा और बालेसर आते हैं)

लवंग—प्यारी यद्यपि आप के मुँह पर कहना सुश्रूषा है पर आप में ठीक देवताओं का सा सच्चा और पवित्र प्रेम पाया जाता है और इसका बड़ा प्रमाण यह है कि आपने इस भाँति अपने स्वामी का विरह सहन किया किंतु यदि आपको विदित हो कि आपने किस पर इतनी कृपा की है और वास्तव में कैसे सच्चे सभ्य को सहायता भेजी है और उसको मेरे स्वामी अर्थात् आपके स्वामी से कैसी प्रीति है तो आपको अपने इस कृत्य पर और साधारण कर्तव्यों की अपेक्षा कहीं बढ़ कर प्रसन्नता हो।

पुरश्री—मैं अच्छे काम करके न आज तक पछताई हूँ और न अब पछताऊँगी क्योंकि ऐसे मित्र जो हर क्षण मिले जुले रहते हैं और जिनके चित्त में एक दूसरे का समान प्रेम है मानो एक प्राण दो देह हैं उनकी चाल ढाल रहन सहन और चित्त भी अवश्य ही एक सा होगा तो मैं समझती हूँ कि यह अनंत जो मेरे स्वामी के अंतरंग मित्र हैं उन्हीं के सदृश होंगे। यदि ऐसा है तो मैंने अपने स्वामी के चित्त को महा आपत्ति के पंजे से कैसे थोड़े व्यय में छुड़ा पाया। पर इससे तो मेरी ही प्रशंसा निकलती है इसलिये अब इस प्रकरण को छोड़कर दूसरी बातें सुनो। लवंग मैं अपने घर और गृहस्थी का सारा प्रबंध अपने स्वामी के लौट आने तक तुम्हारे आधीन करती हूँ। रही मैं सो मैंने अपने मन में ईश्वर के सामने एक मन्नत मानी है कि नरश्री को साथ लेकर उसके स्वामी और अपने स्वामी के आने तक प्रार्थना करती और उसकी ओर लौ लगाए रहूँ। यहाँ से दो मील पर एक मठ है, उसी में जाकर हम लोग रहेंगी। मैं आशा करती

हूँ कि तुम मेरी इस प्रार्थना से जिसे अपनी प्रीति और कुछ अधिक आवश्यकता होने के कारण करती हूँ अनंगीकार न करोगे।

लवंग—प्यारी मैं तन मन से आप की आज्ञा का अनुगामी हूँ।

पुरश्री—मेरे नौकर चाकर इस इच्छा को जान चुके हैं और वह तुम्हें और जसोदा को महाराज वसंत और मेरे स्थानापन्न समझेंगे। अच्छा अब मैं तुम लोगों से विदा होती हूँ, जब तक कि भगवान तुमसे फिर न मिलाए।

लवंग—भगवान् आपको उच्च मनोरथ और उत्तम साइत दे।

जसोदा—मेरी आसीस है कि आपका आंतरिक मनोरथ पूरा हो।

पुरश्री—मैं तुम्हारी इस अभिलाष का धन्यवाद देती हूँ और तुम्हारे विषय भी वैसा ही जी से चाहती हूँ। जसोदा मेरा राम राम लो।

(जसोदा और लवग जाते हैं)

हाँ बालेसर जैसा कि मैंने तुम्हें सदा सच्चा और धार्म्मिक पाया है वैसा ही मैं चाहती हूँ कि अब भी पाऊँ। इस पत्र को लो और जहाँ तक कि तुम्हारे पाँव में बल हो शीघ्र पाँडुपुर पहुँचने का प्रयत्न करो और इसे मेरे चचेरे भाई कविराज बलवंत के हाथ में दो और देखो कि जो पत्र और वस्त्र वह तुम्हें दें उन्हें ईश्वर के वास्ते मन से अधिक तीव्र उस घाट पर जहाँ से वंशनगर को व्यापार का माल जाता है, लेकर आओ। बस अब चले जाओ, बातों में समय नष्ट न करो। मैं तुमसे पहिले वहाँ पहुँच जाऊँगी।

बालेसर—बबुई मैं जितना शीघ्र संभव होगा जाऊँगा।

पुरश्री—इधर आओ नरश्री मुझे अभी वह काम करना है जो तुम्हें अभी विदित नहीं है। हम तुम चल कर अपने स्वामी को देखेंगे और उनको इसका ध्यान भी न होगा।

नरश्री—हमें भी वह देखेंगे या नहीं ?

पुरश्री—हाँ हाँ परंतु ऐसे भेस में कि उन्हें ध्यान न होगा कि वे वीरता के चिन्ह जो स्त्रियों में नहीं होते हम में उपस्थित हैं। मैं प्रण करती हूँ कि जब हम तुम युवा मनुष्यों की भाँति वस्त्र इत्यादि पहिन कर तैयार हो जायँगे, उस समय मैं तुमसे बढ़कर सजीली जान पड़ूँगी और अपनी तलवार को खूब तिरछी बाँध कर चलूँगी और बालक और युवा के शब्द के बीच का भारी शब्द बनाकर बोलूँगी और स्त्रियों की मंदगति छोड़कर पुरुषों की भाँति लम्बे पैर रक्खूँगी और एक अभिमानी नवयुवक व्यसनी पुरुष की भाँति युद्ध इत्यादि का भी वर्णन करूँगी और झूठी बातें गढ़ गढ़ कर कहूँगी कि बड़ी प्रतिष्ठित स्त्रियाँ मुझपर आसक्त हुईं पर मैंने उन्हें ऐसा कोरा उत्तर दियाकि नैराश्य से पीड़ित होकर मर गईं पर मेरा इसमें क्या बस था और फिर मैं खेद प्रकट करूँगी और कहूँगी कि यद्यपि इसमें मुझ पर कुछ दोष नहीं है किंतु यदि वह मेरे इश्क में न मरतीं तो उत्तम था और इसी प्रकार के बीसों झूठ ऐसे बोलूँगी कि लोगों को इस बात का पक्का विश्वास हो जायगा कि मुझे पाठशाला छोड़े साल भर से अधिक न हुआ होगा। मुझे इन अभिमानी छोकरों के सहस्रों चुटकुले स्मरण हैं और मैं इन्हीं से अपना काम निकालूँगी। परंतु आओ मैं तुमसे अपना सब उपाय गाड़ी में जो बगीचे के फाटक पर खड़ी है सवार होकर वर्णन करूँगी। बस अब शीघ्र ही चलो क्योंकि हमें आज ही बीस मील समाप्त करना है।

(दोनों जाती हैं)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—बिल्वमठ—एक उद्यान

(गोप और जसोदा आते हैं)

गोप—हाँ, बेशक—तुम जानती हो कि पिता के पापों का दंड उसके बच्चों को भोगना पड़ता है इसलिये मैं सच कहता हूँ कि मुझे तुम्हारा अमंगल दृष्टि आता है। मैंने तुमसे छलबल की बात आज तक नहीं की है और अब भी तुमसे अपना विचार स्पष्ट स्पष्ट कह दिया। नेक अपने मन को प्रसन्न रक्खो क्योंकि मेरी सम्मति में तो तुम अपराधग्रस्त हो चुकीं। हाँ एक उपाय तुम्हारे कल्याण का दृष्टि आता है सो उसकी भी आशा कुछ ऐसी वैसी है।

जसोदा—वह कौन सा उपाय है नेक बताना तो ?

गोप—भाई ! तुम यह समझो कि तुम अपने पिता से उत्पन्न नहीं हो अर्थात् तुम जैन की कन्या नहीं हो।

जसोदा—तौ तो सचमुच यह आशा ऐसी ही वैसी है क्योंकि ऐसा करने में मुझे अपनी माता के अपराधों का दंड मिलेगा।

गोप —हाँ सच तो है, तब तो मुझे भय है कि तुम अपने माता-पिता दोनों के निमित्त दंड पाओगी। हाय हाय जब मैं तुम्हें उधर अर्थात् तुम्हारे पिता से बचाता हूँ तो इधर खाई अर्थात् तुम्हारी माता दृष्टि आती है। अच्छा तो अब तुम दोनों ओर से गईं।

जसोदा—मैं अपने स्वामी के द्वारा मुक्ति पाऊँगी, वह मुझे आर्य धर्म में लाए हैं।

गोप—तौ तो प्रधान दोष उन पर है। हम लोग पहिले ही से आर्य धर्म के क्या न्यून मनुष्य हैं। परंतु अच्छा जितने थे उतनों का किसी भाँति पूरा पड़ जाता था पर अब नये आर्य्यों के भरती होने से सुअर का दाम बढ़ जायगा। यदि हम सब के

सब शूकर-भक्षी बन जायँगे तो थोड़े दिनों में बहुत दाम देने से भी उस स्वादिष्ट मांस का एक टुकड़ा भी हाथ न आवेगा।

(लवंग आता है)

जसोदा—गोप, मैं तुम्हारी सब बातें अपने स्वामी से कहूँगी ; देखो वह आते हैं।

लवंग—गोप, यदि तुम इस भाँति मेरी स्त्री से परोक्ष में बात किया करोगे तो मुझ से कैसे देखा जायगा।

जसोदा—नहीं लवंग तुम हम लोगों की ओर से संदेह मत करो ; मुझ से और गोप से कहासुनी हो रही है क्योंकि वह मुझसे स्पष्ट कहता है कि मुझको भगवान न क्षमा करेगा क्योंकि मैं जैन की पुत्री हूँ और तुम्हारे विषय में कहता है कि तुम अपनी जाति के शुभचिंतक नहीं हो क्योंकि जैनियों को आर्य बना कर सुअर के मांस का भाव बिगाड़ते हो।

लवंग—अबे जा उन लोगों से भोजन की तैयारी के लिये कह दे।

गोप—साहिब वह सब प्रस्तुत है क्योंकि उनको भी तो पेट है।

लवंग—ईश्वर का कोप हो तुझ पर तू क्या ही हँसोड़ है। अच्छा उन्हें थाली परोसने के लिये कह दे।

गोप—यह भी हो चुका है केवल आच्छादन करना शेष है।

लवंग—तो शीघ्र आच्छादित करो।

गोप—यह मेरा सामर्थ्य नहीं कि स्वामी के सामने आच्छादन करूँ।

लवंग—फिर भी अपना ही राग गाए जाता है। क्या तू एक ही क्षण में अपना कुल हँसोड़पन खर्च कर डालेगा। मैं तुझसे विनय करता हूँ कि मेरी सरल बातचीत के सीधे अर्थ समझ। जा अपने साथियों से कह दे कि थाली में मांस चुन कर ढँपना, छुरी काँटा इत्यादि रख दें। हमलोग भोजन को आते हैं।

गोप—महाराज थाली तो परस दी जायगी और मांस भी लगा दिया जायगा पर बिना चुहल के खाना अलोना प्रतीत होगा इससे इसका तार न तोड़िए।

लवंग—ईश्वर की शरण, इस दुष्ट में तो हँसोड़पन कूट कूट कर भरा है मानो इसके सिर में श्लेष की सेना पैतरा बाँधे हर समय उपस्थित है। मैं बहुतेरे दुष्टों को जानता हूँ जो इससे अधिकार में कहीं बढ़कर हैं परतु शब्दों के प्रयोग में अर्थ का सत्यानाश करते हैं। जसोदा तुम किस विचार में हो ? भला प्यारी तुम अपनी सम्मति तो वर्णन करो कि तुम राजकुमार वसंत की अर्द्धांगिनी को कैसा समझती हो ?

जसोदा—उनकी प्रशंसा अनिर्वचनीय है। मेरी ज़ान में तो उचित होगा कि राजकुमार वसंत को अब अपना जीवन निरी पवित्रता के साथ बिताना चाहिए क्योंकि जो पदार्थ कि उन्हें अपनी स्त्री में मिला है वह ऐसा है कि मानों उन्हें पृथ्वी पर स्वर्ग का सुख जीते जी हाथ लगा और यदि वह इसका आदर न करें तो स्पष्ट है कि उन्हें स्वर्ग का सुख भी क्या उठेगा। मेरी समझ में तो यदि दो देवता आपस में कोई स्वर्गीय कौतुक करें और दो सांसारिक स्त्रियों की होड़ बदें और इनमें से एक पुरश्री को अपनी ओर से बाज़ी में लगावे तो दूसरे को अपनी शर्त में एक स्त्री के साथ और भी बहुत कुछ बदना होगा। क्योंकि इस उजाड़ संसार में पुरश्री का सा दूसरा तो मिलना नहीं।

लवंग—जैसी कि राजकुमार वसंत को स्त्री लब्ध हुई है वैसा ही मैं भी तुम्हें स्वामी मिला हूँ।

जसोदा—सत्य वचन। परंतु इसके विषय में भी तनिक मेरी सम्मति पूछ देखो।

लवंग—हाँ अभी पूछता हूँ। पहिले चलो खाना खा लें।

जसोदा—नहीं, अभी मुझे पेट भर तुम अपनी प्रशंसा कर लेने दो भोजन के उपरांत समाई न रहेगी।

लवंग—भगवान के वास्ते यह कथा खाने के समय के लिये रहने दो। उस समय तुम मुझे कैसा ही कुछ कहोगी मैं उसे और पदार्थों के साथ पचा जाऊँगा।

जसोदा—बहुत अच्छा मैं आपकी प्रशंसा की पोथी वहीं खोलूँगी।

(दोनो जाते हैं)

चौथा अंक

पहला दृश्य

स्थान—वंशनगर राजद्वार

(मंडलेश्वर वंशनगर, प्रधान लोग, अनंत, वसंत, गिरीश, सलारन, सलोने और दूसरे लोग आते हैं)

मंडलेश्वर—अनंत आ गए हैं ?

अनंत—धर्मावतार उपस्थित हूं !

मंडलेश्वर—मुझे तुम पर अत्यंत शोच होता है क्योंकि तुम ऐसे दुष्ट कठोर वज्रहृदय वादी (मुद्दई) के उत्तर देने के लिये बुलाए गए हो, जिसे दया नाम को भी नहीं छू गई है।

अनंत—मैं सुन चुका हूँ कि महाराज ने उसके क्रूर बरताव के नम्र करने के प्रयत्न में कितना श्रम किया परंतु उस पर किसी बात की सिद्धि नहीं होती और न मैं किसी उचित रीति से उसकी शत्रुता की परिधि के बाहर जा सकता हूँ। अतः मैं अपना संतोष उसके अनर्थ के प्रति प्रकट करता हूँ और उसका अत्याचार सहने को सब प्रकार से प्रस्तुत हूँ और कदापि मुख से आह न निकालूँगा।

मंडलेश्वर—कोई जाय और उस जैन को न्यायालय में उपस्थित करे।

सलोने—महाराज वह पहिले ही से द्वार पर खड़ा है, वह देखिए आ पहुँचा।

(शैलाक्ष आता है)

मंडलेश्वर—सब लोग स्थान दो जिसमें वह हमारे सम्मुख आकर खड़ा हो। शैलाक्ष, सारा संसार सोचता है और मैं भी ऐसा ही समझता हूँ कि यह हठ तुम उसी क्षण तक स्थिर रक्खोगे जब तक कि उसके पूरे होने का समय न आ जायगा और

तब लोगों का यह विचार है कि तुम जितनी अब प्रकट में कठोरता दिखला रहे हो उसकी अपेक्षा कहीं अधिक खेद और दया प्रकाश करोगे और जहाँ कि अभी तुम उससे प्रतिज्ञा-भंग होने का दंड लेने पर प्रस्तुत हो (जो इस दीन व्यापारी के शरीर का आध सेर मांस है) वहाँ उस समय तुम केवल इस दंड ही के छोड़ने पर अभिमत न हो जाओगे वरंच मनुष्य-धर्म और शील का अनुकरण करके मूल ऋण में से भी आधा छोड़ दोगे। यदि उसकी हानियों की ओर जो इधर थोड़ी देर में उसके ऊपर फट पड़ी हैं ध्यान दिया जाय तो वही इतने बड़े व्यापारी की कमर तोड़ देने के लिये बहुत हैं और कोई मनुष्य कैसा ही कठोर चित्त क्यों न हो और पत्थर का हृदय क्यों न रखता हो यहाँ तक कि कोल और भिल्ल भी जिन्होंने कभी शील का नाम नहीं सुना उसकी दशा को देख कर अत्यंत ही शोक करेंगे, तो ऐ जैन हम लोग आशा करते हैं कि तुम इसका उत्तर नम्रता-पूर्वक दोगे।

शैलाक्ष—महाराज को अपने उद्देश से सूचित कर चुका हूँ और मैंने अपने पवित्र दिन रविवार की शपथ खाई है कि जो कुछ मेरा दस्तावेज़ के अनुसार चाहिए वह भग्नप्रतिज्ञ होने के दंड के सहित लूँगा। यदि महाराज उसको दिलवाना अनंगीकार करें तो इसका अपवाद महाराज के न्याय और महाराज के नगर की स्वतंत्रता के सिर पर। महाराज मुझ से यही न पूछते हैं कि मैं इतना मृतमांस छ हजार रुपयों के बदले लेकर क्या करूँगा। इसका उत्तर मैं यही देता हूँ कि मेरे मन की प्रसन्नता। बस अब महाराज को उत्तर मिला? यदि मेरे घर में किसी घूंस ने बहुत सिर उठा रक्खा हो और मैं उसके नष्ट करने के लिये बीस सहस्र मुद्रा व्यय कर डालूँ तो मुझे कौन रोक सकता है। अब भी महाराज ने उत्तर पाया या नहीं? कितने लोगों को सुअर के मांस से घृणा होती है, कितने ऐसे हैं कि बिल्ली को देख कर आपे से बाहर हो जाते हैं, तो अब आप मुझ से उत्तर लिजीए कि जैसे इन बातों का कोई मूल कारण नहीं कहा

जा सकता कि वह सुअर के मांस से क्यों दूर भागते हैं और यह बिल्ली सदृश दीन और सुखदायक जंतु से क्यों इतना घबराते हैं वैसे ही मैं भी इसका कोई कारण नहीं कह सकता और न कहूँगा। सिवाय इसके कि मेरे और उसके एक पुरानी शत्रुता चली आती है और मुझे उसके स्वरूप से घृणा है जिसके कारण से मैं एक ऐसे विषय का जिसमें मेरा इतना घाटा है उद्योग करता हूँ। कहिए अब तो उत्तर मिला ?

वसंत—ओ निर्दय यह बात जिससे तू अपने अत्याचार को उचित सिद्ध करता है कोई उत्तर नहीं है।

शैलाक्ष—मेरा कुछ तेरी प्रसन्नता के लिये उत्तर देना कर्त्तव्य थोड़े ही है।

वसंत—क्या सब लोग ऐसे पशु को मार डालते हैं, जिसे वह बुरा समझते हैं ?

शैलाक्ष—संसार में कोई भी ऐसा मनुष्य है जो किसी जंतु के मारने से जिससे वह घृणा करता हो हाथ उठावे।

वसंत—हर एक अपराध से पहिली बार घृणा नहीं उत्पन्न हो जाती।

शैलाक्ष—क्या तुम चाहते हो कि मैं साँप को दूसरी बार डसने का अवसर दूँ ?

अनंत—भगवान के निहोरे नेक विचारो तो कि तुम किससे विवाद कर रहे हो। इसको मार्ग पर लाना तो ठीक वैसी ही बात है जैसा कि समुद्र के किनारे खड़े होकर तरंगों को आज्ञा देना कि तुम इतनी ऊँची मत उठो, या भेड़िये से पूछना कि उसने बकरी के बच्चा को खा कर उसकी मा को दुःख में क्यों फँसाया, या पहाड़ी खजूर के वृक्षोंको कहना कि वह अपनी ऊँची फुनगियों को वायु के झोंके से न हिलने दें और न पत्तों की खड़खड़ाहट का शब्द होने दें, ऐसे ही तुम संसार के कठिन से कठिन काम कर लो इसके पूर्व कि इस जैन के चित्त को (जिस से कठोरतर दूसरा पदार्थ न होगा) द्रव

करने का यत्न करो। इसलिये मैं प्रार्थना करता हूँ कि न तो तुम उससे अब कुछ देने दिलाने की बातचीत करो और न इस विषय में अधिक चिंता करो वरंच थोड़े में भाग्य पर संतोष करके मुझे दंड भुगतने और इस जैन को अपना मनोरथ पूरा करने दो।

वसंत—तेरे छ हजार रुपयों के बदले यह ले बारह तयार हैं।

शैलाक्ष—यदि इन बारह हज़ार रुपयों का हरएक रुपया बारह भागों में बाँट दिया जाय और हर एक भाग एक रुपये के बराबर हो तौभी मैं उनकी ओर आँख उठा कर न देखूँ, मुझे केवल दस्तावेज़ के प्रण से काम है।

मंडलेश्वर—भला तू किसी पर दया नहीं करता तो तुझे दूसरों से क्या आशा होगी ?

शैलाक्ष—जब मैंने कोई अपराध ही नहीं किया है तो फिर किस बात से डरूँ ? आप लोगों के पास कितने मोल लिए हुए दास और दासियाँ उपस्थित हैं जिन्हें आप गधों, कुत्तों और ख़च्चरों की भाँति तुच्छ अवस्था में रख कर उनसे सेवा कराते हैं और यह क्यों ? केवल इस लिये कि आपने उन्हें मोल लिया है। यदि मैं आप से यह कहूँ कि आप उन्हें स्वतंत्र करके अपने कुल में व्याह कर दीजिए, या यह कि उन्हें बोझ के नीचे दबा हुआ पसीने से घुला घुला कर मारे क्यों डालते हैं, उन्हें भी अपनी सदृश कोमल शैय्या पर सुलाइए और स्वादिष्ट भोजन खिलाइए तो इसके उत्तर में आप यही कहिएगा कि वह दास हमारे हैं हम जो चाहेंगे करेंगे तुम कौन ? इसी भाँति मैं भी आपको उत्तर देता हूँ कि इस आध सेर मांस की जो मैं इससे माँगता हूँ बहुत मूल्य दिया गया है, वह मेरा माल है और मैं उसे अवश्य लूँगा। यदि आप दिलवाना अस्वीकार कर तो आपके न्याय पर थुड़ी है। जाना गया कि वंशनगर के क़ानून में कुछ भी सार नहीं है। मैं राजद्वार की आज्ञा सुनने के लिये उपस्थित हूँ, कहिए मुझे मिलेगा या नहीं ?

मंडलेश्वर—मुझे निज स्वत्त्व के अनुसार अधिकार हैं कि मुक़द्दमे के दिन को टाल दूँ। यदि बलवंत नामी एक सुयोग्य वकील जिसको मैंने इस मुक़द्दमे के विचार के लियें बुलाया है आज न आया तो मैं इस मुक़द्दमे का टाल दूँगा।

सलारन—महाराज बाहर उस वकील का एक मनुष्य खड़ा है, जो उसके पास से पत्र लेकर अभी पांडुपुर से चला आता है।

मंडलेश्वर—शीघ्र पत्र लाओ और दूत को भीतर बुलाओ।

वसंत—अनंत अपने चित्त को स्वस्थ रक्खो, कैसे मनुष्य हो? साहस न हारो। पहिले इसके कि तुम्हारा एक बाल भी टेढ़ा हो मैं अपना मांस, त्वचा, अस्थि और जान प्राण वो धन उस जैन के अर्पण करूँगा।

अनंत—गल्ले भर में मन्नत की दुर्बल भेड़ मैं ही हूँ, मेरा ही मरना श्रेय है। कोमल फल सब के पहले पृथ्वी पर गिरता है तो मुझी को गिरने दो। तुम्हारे लिये इससे बढ़कर कोई बात उचित न होगी कि पश्चात् मेरे मेरा जीवन-चरित्र लिखो।

(नरश्री वकील के लेखक के भेष में आती है)

मंडलेश्वर—तुम पाडुपुर से बलवंत के पास से आते हो?

नरश्री—जी महाराज वहीं से उन्हीं के पास से। बलवंत ने आपको प्रणाम कहा है।

(एक पत्र देती है)

वसंत—क्यों, तू ऐसे उत्साह से छुरी क्यों तीक्ष्ण कर रहा है?

शैलाक्ष—उस दिवालिये के शरीर से दंड का मांस काटने के लिये।

गिरीश—अरे निर्दयी जैनी तू अपनी जूती के तल्ले पर छुरी को क्यों तेज़ करता है, तेरा पाषाण तुल्य हृदय तो प्रस्तुत ही है। पर कोई शस्त्र यहाँ तक कि बधिक की तलवार भी तेरी शत्रुता के वेग को नहीं पहुँच सकती। क्या तुझ पर किसी की बिनती काम नहीं आती?

शैलाक्ष—नहीं, एक की भी नहीं जो तू अपने बुद्धि से गढ़ सकता हो।

गिरीश—हा! ओ कठोर कुत्ते, ईश्वर तेरा बुरा करे, यह केवल न्याय

का दोष है जिसने अब तक तुझे जीता रख छोड़ा है, तूने तो आज मेरे धर्म में बट्टा लगा दिया क्योंकि तेरे लक्षणों को देखकर मुझे गोरक्ष के इस विचार को कि पशुओं की आत्मा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती है मानना पड़ा। तेरी हिंसक आत्मा एक भेड़िये की छाया में थी जो कितने मनुष्यों के जीव-बध के लिये सूली चढ़ा दिया गया था। इस अवस्था को पहुँचने पर भी उस नारकी आत्मा को तोष न हुआ और वहाँ से भाग कर जिस समय तू अपनी माता के अपवित्र गर्भ में था तुझ में पैठ गई क्योंकि तेरा मनोरथ भी भेड़ियों की भाँति घातक हिंसक है।

शैलाक्ष—जब तक कि तेरे धिक्कार में इतनी शक्ति न हो कि अनंत की मुहर को मेरी दस्तावेज़ पर से मिटा दे सके तब तक इस विचार से क्या फल निकल सकता है। व्यर्थ को तू चिल्ला चिल्ला कर अपना ही कंठ फाड़ रहा है। ऐ नवयुवक अपने सुधि की औषधि कर, कहीं ऐसा न हो कि तेरे सिर पर कोई आपत्ति आ जाय। क्या तुझे विदित नहीं कि मैं न्याय के लिये यहाँ खड़ा हूँ ?

मंडलेश्वर—बलवंत अपने पत्र में इस न्याय-सभा के लिये एक नवयुवक विद्वान वकील की सिफ़ारिश करता है, वह कहाँ है ?

नरश्री—वह समीप ही आपके उत्तर पाने की प्रत्याशा में खड़े हैं कि आप उन्हें विवाद करने की आज्ञा देंगे या नहीं।

मंडलेश्वर—अति प्रसन्नता से। आप दो चार महाशय जायँ और उनका समादर करके सन्मान के साथ यहाँ ले आएँ, तब तक विचार-सभा बलवंत का पत्र सुनेगी।

(लेखक पढ़ता है)

श्रीमन्, मैंने महाराज का पत्र अस्वस्थ होने की अवस्था में पाया। परंतु जिस समय आपका दूत पहुँचा उस समय मेरे मित्रों में से मालवा के एक युवा वकील बालेसर नामी मेरी भेंट करने को आए हुए थे। मैंने उनको जैन और अनंत सौदागर के मुकद्दमे का सब व्यवरा समझा दिया। हम दोनों

मनुष्यों ने मिल कर कई व्यवस्थाएँ पलट कर देखीं। मैंने अपनी सम्मति उनसे प्रकट कर दी है अतः वह मेरी सम्मति लेकर जिसे वह अपनी योग्यता के बल से (जिसकी प्रशंसा मैं किसी मुँह से नहीं कर सकता) और सुधार लेंगे। मेरे निवेदन के अनुसार मेरे स्थानापन्न महाराज की सेवा में उपस्थित होते हैं। मैं प्रार्थना करता हूँ कि महाराज उनकी अल्प अवस्था का ध्यान न करके उनके आदर में कदापि न्यूनता न करेंगे क्योंकि मेरी दृष्टि में ऐसी थोड़ी अवस्था का पुरुष ऐसी पुष्कल बुद्धि के साथ आज तक नहीं आया। मैं उन्हें महाराज की सेवा में अर्पण करता हूँ, परीक्षा से उनकी योग्यता का हाल भली भाँति खुल जायगा।

मंडलेश्वर—आप लोगों ने सुना की प्रसिद्ध विद्वान् बलवंत ने क्या लिखा है और जान पड़ता है कि वकील महाशय भी वह आ रहे हैं।

(पुरश्री वकीलों की भाँति वस्त्र पहने हुए आती है)

मंडलेश्वर—आइये हाथ मिलाइए, आपही वृद्ध बलवंत के पास से आते हैं?

पुरश्री—महाराज।

मंडलेश्वर—मुझे आप के आने से बड़ी प्रसन्नता हुई, विराजिए। आप इस मुक़द्दमे को जानते हैं जिसका इस समय विचार-सभा में विचार हो रहा है?

पुरश्री—मैं उसके वृत्तांत को भली भाँति जानने वाला हूँ। वर्णन कीजिए कि इन लोगों में से कौन सौदागर है और कौन जैन?

मंडलेश्वर—अनंत और वृद्ध शैलाक्ष दोनों सामने खड़े हो जाओ।

पुरश्री—तुम्हारा नाम शैलाक्ष है?

शैलाक्ष—हाँ मेरा नाम शैलाक्ष है।

पुरश्री—यह तुमने विचित्र मुक़द्दमा रच रक्खा है, परंतु नियमा-

नुसार वंशनगर का क़ानून तुमको उसके प्रयत्न से रोक नहीं सकता। और आप ही इनके पंजे में फँसे हैं, क्यों साहिब ?

(अनंत से)

अनंत—जी हाँ, मुझी पर इनका लक्ष्य है।

पुरश्री—आप तमस्सुक लिखना स्वीकार करते हैं।

अनंत—निस्संदेह मैं स्वीकार करता हूँ।

पुरश्री—तब तो अवश्य है कि जैन दया करें।

शैलाक्ष—मैं किस बात से दब कर ऐसा करूँ यह तो कहिए ?

पुरश्री—दया ऐसी वस्तु नहीं जिसे आग्रह की आवश्यकता हो। वह जलधारा की भाँति नभ-मंडल से पृथ्वीतल पर गिरती है। उसका दुहरा फल मिलता है अर्थात् पहले उसको जो करता है और दूसरे उसको जिसे उसका लाभ पहुँचता है। महानुभावों को यह अधिकतर शोभा देती है, मंडलेश्वरों को यह मुकुट से अधिकतर शोभित है। राजदंड केवल सांसारिक बल प्रकट करता है जो आतंक और तेज का चिन्ह है और जिससे राजेश्वरों का भय लोगों के चित्त पर छा जाता है परंतु दया का प्रभाव राजदंड के प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक है, दया का वास-स्थान राजेश्वरों का चित्त है, यह एक प्रधान महिमा ईश्वर की है। अतः संसार के राजेश्वर उसी समय दैवतुल्य प्रतीत होते हैं जब कि वह न्याय के साथ दया का भी बरताव करते हैं। इस लिये ऐ जैनी यद्यपि तू न्याय ही न्याय पुकारता है किंतु विचार कर कि केवल न्याय ही के भरोसे पर हम में से कोई मरने के उपरांत मुक्त होने की आशा नहीं कर सकता। हम ईश्वर से दया की प्रार्थना करते हैं तो चाहिए कि वही प्रार्थना हमको भी दया के काम सिखावे। मैंने इतना तेरे न्याय के आग्रह के हटाने के निमित्त से कहा पर यदि तू न मानेगा तो जैसे हो सकेगा वंशनगर की विचार-शीला न्यायसभा तुझे इस सौदागर पर विनयपत्र दे देगी।

शैलाक्ष—मेरा किया मेरे सिर पर। मैं राजद्वार से अपने तमस्सुक के अनुसार दंड दिला पाने की प्रार्थना करता हूँ।

पुरश्री—क्या वह रुपया चुका देने की क्षमता नहीं रखता ?

वसंत—हाँ, मैं राजद्वार में उनकी संती अभी दूना देने को उपस्थित हूँ। यदि इससे भी उसका पेट न भरे तो मैं उस जमा का दस गुना दूँगा और यदि न दे सकूँ तो दंड में अपना सिर अर्पण करूँगा। यदि इस पर भी वह न माने तो स्पष्ट है कि शत्रुता के आगे धर्म की दाल नहीं गलती। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने निज अधिकार से इस बार क़ानून का प्रतिबंध छोड़ दीजिए। एक बड़े भारी उपकार की अपेक्षा में थोड़ी सी अनीति स्वीकार कीजिए और हे मंडलेश्वर, अत्याचारी पिशाच की बुराई को रोकिए।

[मंडलेश्वर से]

पुरश्री—ऐसा न होना चाहिए, वंशनगर के क़ानून के अनुसार किसी को यह अधिकार नहीं है कि नीति को रोक सके। यह विचार दृष्टांत की भाँति पर लिखा जायगा और बहुत सी त्रुटियाँ इसके कारण राजा के कामों में आपड़ेंगी। यह कदापि नहीं हो सकता।

शैलाक्ष—वाह वाह मानो महात्मा विक्रम आप ही न्याय के लिये उतर कर आए हैं। वास्तव में आपको विक्रम ही कहना चाहिए। ऐ युवा बुद्धिमान न्यायकर्त्ता मैं नहीं कह सकता कि मैं चित्त से आप का कितना समादर करता हूँ।

पुरश्री—कृपाकर, नेक मुझे तमस्सुक तो देखने दो।

शैलाक्ष—लीजिए सुप्रतिष्ठ वकील महाशय यह उपस्थित है।

पुरश्री—शैलाक्ष तुम्हें तुम्हारे मूलधन का तिगुना मिल रहा है।

शैलाक्ष—शपथ, शपथ, मैं शपथ जो खा चुका हूँ। क्या मैं झूठी शपथ खाने का पाप अपने माथे पर लूँ ? न, कदापि नहीं, यदि मुझे इसके बदले में वंशनगर का राज्य भी हाथ आप तौभी ऐसा न करूँ।

पुरश्री—इस तमस्सुक की मिती तो टल चुकी और इसके अनुसार विवेकतः जैन को अधिकार है कि सौदागर के हृदय के पास से आध सेर मांस काट ले। परंतु उस पर दयाकर

और तिगुना रुपया लेकर मुझे तमस्सुक फाड़डालने की आज्ञा दे।

शैलाक्ष—हाँ उस समय जब कि मैं लिखे अनुसार दंड दिला पाऊँ। मुझे प्रतीत होता है कि आप एक योग्य न्यायी हैं, आप क़ानून से परिचित हैं और उसके तात्पर्य्य को भी ठीक समझते हैं, तो मैं आपको उसी की शपथ देता हूँ, जिसके आप पूरे आधार हैं कि आप आज्ञा सुनाने में विलंब न करें। मैं अपने प्राण की सौगंद खाकर कहता हूँ कि मनुष्य की जिह्वा में इतना सामर्थ्य नहीं कि मेरा मनोरथ फेरे। मुझको सिवाय तमस्सुक के प्रणों के और किसी बात से क्या प्रयोजन।

अनंत—मैं भी चित्त से चाहता हूँ कि न्यायकर्ता आज्ञा सुना दे।

पुरश्री—तो बस आपको छाती खोल कर प्रस्तुत रहना चाहिए।

शैलाक्ष—वाहरे योग्यता! वाहरे न्याय! आहा! क्या कहना है!

पुरश्री—क्योंकि क़ानून का अभिप्राय यही है कि प्रतिज्ञा-भंग करने का दंड तमस्सुक के प्रणानुसार सब अवस्था में दिया जाना चाहिए, तो वह इस अवस्था में भी उचित है।

शैलाक्ष—बहुत ठीक क्या कहना है, न्यायकर्त्ता को ऐसा ही बुद्धिमान और न्यायी होना चाहिए! यह अवस्था और यह बुद्धि।

पुरश्री—अब आप अपनी छाती खोल दीजिए।

शैलाक्ष—जी हाँ छाती ही, यही तमस्सुक में लिखा है, है न मेरे सुजन न्यायकर्त्ता, हृदय के समीप ये ही शब्द लिखे हैं।

पुरश्री—ऐसा ही है, परंतु बताओ कि मांस तौलने के लिये तराजू बटखरे रक्खे हैं।

शैलाक्ष—मैंने उन्हें ला रक्खा है।

पुरश्री—शैलाक्ष, अपनी ओर से कोई जर्राह भी बुला रक्खो कि उसका घाव बंद कर दे, जिस में अधिक रक्त निकलने से कहीं वह मर न जाय।

शैलाक्ष—क्या यह तमस्सुक में लिखा है?

पुरश्री—नहीं लिखा तो नहीं परंतु इससे क्या, इतनी भलाई यदि उसके साथ करोगे, तो तुम्हारी ही कीर्त्ति है।

शैलाक्ष—मैं नहीं करने का, तमस्सुक में इसका वर्णन नहीं है।

पुरश्री—अच्छा सौदागर साहिब, तो अब आपको जो कुछ किसी से कहना सुनना हो कह सुन लीजिए।

अनंत—केवल दो बातें करनी हैं, नहीं तो मैं सब भाँति उपस्थित और प्रस्तुत हूँ। लाओ बसंत, मुझे अपना हाथ दो, मैं तुमसे बिदा होता हूँ। तुम इस बात का कदापि खेद न करना कि मुझ पर यह आपत्ति तुम्हारे कारण आई क्योंकि इस समय पर भाग्य अपने नियम के विरुद्ध बहुत कृपालु जान पड़ती है। उसका सदा यह नियम देखने में आया है कि वह भाग्य-हीन मनुष्य को उनकी लक्ष्मी चले जाने के उपरांत ठोकरें खाने और दुरवस्था में दारिद्र्य का दुःख उठाने के लिये छोड़ देती है किंतु मुझ पर एक साथ इस जन्म भर के क्लेश से छुटकारा दिए देती है। अपनी सुशीला स्त्री से मेरा सलाम कहना और उनसे मेरे मरने का हाल कह देना। जो स्नेह मुझे तुम्हारे साथ था उसका भी वर्णन करना, मेरे प्राण देने के ढंग को सराहना और जिस समय मेरी कहानी कह चुको तो उनसे न्याय दृष्टि से पूछना कि किसी समय में बसंत का भी कोई चाहने वाला था या नहीं। मेरे प्यारे तुम इस बात का खेद न करो कि तुम्हारा मित्र संसार से उठा जाता है क्योंकि निश्चय माना कि उसे इस बात का नेक भी शोच नहीं कि वह तुम्हारे ऋण को अपने प्राण देकर चुकाता है क्योंकि यदि जैन ने गहरा घाव लगाने में कमी न की तो मैं तुरंत उससे उऋण हो जाऊँगा।

बसंत—अनंत मेरा व्याह एक स्त्री के साथ हुआ है जिसे मैं अपने प्राण से अधिक प्रिय समझता हूँ, परतु मेरा प्राण, मेरी स्त्री और सारा संसार तुम्हारे जीवन के सामने तुच्छ है, और तुमको इस दुष्ट राक्षस के पंजे से छुड़ाने के लिये मैं इन सब को खोने वरंच तुम पर से न्यौछावर करने को प्रस्तुत हूँ।

पुरश्री—यदि तुम्हारी स्त्री इस स्थान पर उपस्थित होती तो तुम्हारे मुँह से अपने विषय में ऐसे शब्द सुन कर अवश्य अप्रसन्न होती।

गिरीश—मेरी एक स्त्री है, जिसे मैं धर्म से कहता हूँ कि मैं प्यार करता हूँ परंतु यदि उसके स्वर्ग में जाने से किसी देवता की सहायता मिल सकती, जो इस पापी जैन के चित्त को फेर देता तो मुझे उससे हाथ धोने में कुछ शोच न होता।

नरश्री—यही कुशल है कि तुम उसकी पीठ पीछे ऐसा कहते हो, नहीं तो न जाने आज कैसी आपत्ति मचती।

शैलाक्ष—(आप ही आप) इन आर्य्यपतियों की बातें सुनो! मेरी बेटी का ब्याह तो यदि बरबंड के सदृश किसी व्यक्ति से हुआ होता तो मैं अधिक पसंद करता, इसकी अपेक्षा कि वह एक आर्य्य की स्त्री बने। (चिल्ला कर) समय व्यर्थ जाता है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप विचार सुना दें।

पुरश्री—इस सौदागर के शरीर का आध सेर मांस तुम्हारा ही है, जिसे कि क़ानून दिलाता है और राजसभा देती है।

शैलाक्ष—वाह रे न्यायी!

पुरश्री—और यह मांस तुमको उसकी छाती से काटना चाहिए, कानून इसको उचित समझता है और न्यायसभा आज्ञा देती है।

शैलाक्ष—ऐ मेरे सुयोग्य न्यायकर्त्ता! इसका नाम विचार है! आओ, प्रस्तुत हो।

पुरश्री—थोड़ा ठहर जा, एक बात और शेष है। यह तमस्सुक तुझे रुधिर एक बूँद भी नहीं दिलाता, "आध सेर मांस" यही शब्द स्पष्ट लिखे हैं। इसलिये अपनी प्रण-प्राप्ति कर ले अर्थात् आध सेर मांस ले ले, परंतु यदि काटने के समय इस आर्य्य का एक बूंद रक्त भी गिराया तो वंशनगर के कानून के अनुसार तेरी सब संपत्ति और लक्ष्मी व सामग्री राज्य में लगा ली जायगी।

गिरीश—वाह रे विवेकी!—सुन जैन—ऐ मेरे सुयोग्य न्यायी!

शैलाक्ष—क्या यह क़ानून में लिखा है?

पुरश्री—तुझे आप क़ानून दिखला दिया जायगा क्योंकि जितना तू न्याय न्याय पुकारता है उससे अधिक न्याय तेरे साथ बरता जायगा।

गिरीश—आहा! वाह रे न्याय! देख जैनी कैसे विवेकी न्याय-कर्त्ता हैं।

शैलाक्ष—अच्छा मैं उसकी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ—तमस्सुक का तिगुना देकर वह अपनी राह ले।

वसंत—ले यह रुपये हैं।

पुरश्री—ठहरो, इस जैनी के साथ पूरा न्याय किया जायगा, थोड़ा धीरज धरो, शीघ्रता नहीं है, उसे दंड के अतिरिक्त और कुछ न दिया जायगा।

गिरीश—ओ जैनी देख तो कैसे धार्मिक और योग्य न्यायी हैं! वाह वाह!

पुरश्री—तो अब तू मांस काटने की प्रस्तुतियाँ कर, परंतु सावधान, स्मरण रखना कि रक्त नाम को भी न निकलने पावे और न आध सेर मांस से न्यून वा अधिक कटे। यदि तूने ठीक आध सेर से थोड़ा सा भी न्यूनाधिक काटा यहाँ तक कि यदि उसमें एक रत्ती के बीसव भाग का भी अंतर पड़ा वरंच यदि तराजू की डाँडी बीच से बाल बराबर भी इधर या उधर हटा तो तू जी से मारा जायगा और तेरा सब धन और धान्य छीन लिया जायगा।

गिरीश—वाह वाह! मानो महाराज विक्रम आप ही न्याय के लिये उतर आए हैं! अरे जैनी देख महाराज विक्रम ही तो हैं! भला अधम तू अब मेरे हाथ चढ़ा है।

पुरश्री—ओ जैनी तू अब किस सोच विचार में पड़ा है? अपना दंड ग्रहण कर ले।

शैलाक्ष—अच्छा मुझे मेरा मूल दे दो मैं अपने घर जाऊँ।

वसंत—ले, यह रुपया उपस्थित है।

पुरश्री—यह भरी सभा में रुपये का लेना अस्वीकार कर चुका है। अब इसे न्याय और दंड के अतिरिक्त कुछ न मिलेगा।

गिरीश—विक्रम महाराज! सचमुच यह विक्रम ही तो हैं। ऐ जैनी, मैं तेरा धन्यवाद करता हूँ कि तू ने मुझे अच्छा शब्द बतला दिया।

शैलाक्ष—क्या मुझे मेरा मूल धन भी न दिला मिलेगा?

पुरश्री—तुझे दंड के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलने का। इससे ऐ जैनी अपने जी पर खेल कर उसे वसूल कर ले।

शैलाक्ष—अच्छा मैंने उसे राक्षस को सौंपा अब मैं यहाँ कदापि न ठहरूँगा।

पुरश्री—ठहर ओ जैनी, तुझपर क़ानून की एक और धारा है। वंशनगर के क़ानून में यह लिखा है कि यदि किसी परदेसी के विषय से यह सिद्ध हो कि उसने प्रकट या गुप्त रीति पर वंशनगर के किसी रहने वाले के वध करने की चेष्टा की तो वह प्रतिवादी जिसके विषय में ऐसा यत्न किया गया हो अपने प्रतिवादी की आधी सम्पत्ति पर अधिकार दिला पाने का दायी है और शेष आधा राजकोष में ग्रहण किया जायगा। अपराधी के मुक्त करने का केवल मंडलेश्वर को अधिकार है, उसमें कोई दूसरा हस्तक्षेप नहीं कर सकता। तो जान, ओ जैनी कि इस समय तेरी अवस्था अत्यंत दुर्बल है क्योंकि मुक़दमा के विवरण से यह स्पष्ट है कि तू ने जान बूझ कर प्रतिवादी के प्राण लेने की चेष्टा की और इस भाँति उस आपत्ति में, जिसका मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूँ, फँसा है। इसलिये तुझको उचित है कि मंडलेश्वर के चरणों पर सिर रख कर दया की प्रार्थना कर।

गिरीश—सुन जैनी, मैं तुझे एक उपाय बताऊँ; मंडलेश्वर से निवेदन कर कि तुझे आप फाँसी लगाकर मर जाने की आज्ञा दें। परंतु तेरा धन संपत्ति तो छीन ली जायगी अब तेरे पास इतना बचेगा कहाँ कि रस्सी मोल ले सके, इस लिये तुझको राजा ही के व्यय से फाँसी देनी पड़ेगी।

मंडलेश्वर—जिसमें तुझे हमारे और अपने स्वभाव में अंतर जान पड़े मैंने बेमाँगे तेरा जी बचा दिया। अब रही

तेरी सम्पत्ति सो उसमें से आधी तो अनंत की हो चुका और आधी राज्य की, जिसके पलटे में यदि तू दीनता प्रकाश करेगा तो दंड ले लिया जायगा।

पुरश्री—अर्थात् जितना राज्यांश है उसके बदले में, अनंत के भाग से कुछ प्रयोजन नहीं।

शैलाक्ष—नहीं मेरा प्राण और सब कुछ ले लीजिए, वह भी न क्षमा कीजिए। जब कि आप उस आधार को जिस पर मेरा घर खड़ा हैं लिए लेते हैं तो मेरे घरको पहले ले चुके, इस भाँति जबकि आपने मेरे जीवन का आधार छीन लिया तो मानो मेरा प्राण पहले ले चुके।

पुरश्री—अनंत तुम उसके साथ कितनी दया कर सकते हो।

गिरीश—भगवान के वास्ते सिवाय एक रस्सी के जिससे वह फाँसी लगा कर मर सके और कुछ व्यर्थ न देना।

अनंत—मैं मण्डलेश्वर और राजसभा से बिनती करता हूँ कि उसके अर्द्धभाग के बदले का दंड मैं इस शर्त पर देने को प्रस्तुत हूँ कि वह भाग शैलाक्ष मेरे पास धरोहर की भाँति जमा रहने दे, जिसमें उसके मरने पर जो मनुष्य हाल में उसकी लड़की को ले भागा है उसको सौंप दूँ। परन्तु इसके साथ दो प्रण हैं अर्थात् पहले तो वह इस बर्त्ताव के लिये आर्य्य हो जाय और दूसरे इस समय सभा में एक दानपत्र इस आशय का लिख दे कि उसके मरने पर उसकी सारी सम्पत्ति उसके जामाता लवंग और उसकी लड़की को मिले।

मंडलेश्वर-उसे यह करना पड़ेगा, नहीं तो मैंने जो क्षमा की आज्ञा अभी दी है उसे काट देता हूँ।

पुरश्री—क्यों जैनी तू इस पर प्रसन्न है, कह क्या कहता है?

शैलाक्ष—मैं प्रसन्न हूँ।

पुरश्री—लेखक अभी एक दान पत्र लिखो।

शैलाक्ष—भगवान् के निहोरे मुझे यहाँ से जाने की आज्ञा दीजिए, मेरी बुरी दशा है। पांडुलिपि मेरे मकान पर भेज दीजिए मैं हस्ताक्षर कर दूँगा।

मंडलेश्वर—अच्छा जा परन्तु हस्ताक्षर कर देना।

गिरीश—आर्य्य होने में तेरे दो धर्म बाप होंगे। कदाचित मैं न्यायकर्त्ता होता तो दस और होते जिसमें तुझे आर्य्य करने के लिए मन्दिर भेजने के बदले में सूली पर पहुँचा देते।

(शैलाक्ष जाता है)

मंडलेश्वर—महाशय मैं प्रार्थना करता हूँ कि आज आप मेरे साथ भोजन करें।

पुरश्री—महाराज मुझे क्षमा करें, मुझे आज ही रात को पांडुपुर जाना है और यह अत्यन्त आवश्यक है कि मैं अभी चला जाऊँ।

मंडलेश्वर—मैं खेद करता हूँ कि आप को अवकाश नहीं है। अनंत इनका भली भाँति सत्कार करो क्योंकि मेरी जान तुम पर इनका बड़ा उपकार है।

(मंडलेश्वर, बड़े बड़े प्रधान और उनके नौकर चाकर जाते हैं)

बसंत—ऐ मेरे सुयोग्य उपकारी, आज मैं और मेरे मित्र आपकी बुद्धि-वैभव से आपत्ति से मुक्त हुए, जिसके बदले छ सहस्र मुद्रा जो जैन के पाने थे मैं बड़ी प्रसन्नता से आप की भेंट करता हूँ क्योंकि आपने हमारे निमित्त कष्ट सहन किया है।

अनंत—और इसके अतिरिक्त हम लोग जन्म भर तन मन से आपके दास बने रहेंगे।

पुरश्री—जिस मनुष्य का चित्त अपने किए पर तुष्ट हुआ उसने अपनी सारी मजदूरी भरपाई और मेरे चित्त को इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि आप मेरे द्वारा मुक्त हुए, इससे मैं समझता हूँ कि आपने मुझको सब कुछ दिया। मेरे चित्त में आज तक मिहनताना पाने का ध्यान नहीं हुआ है, क्योंकि मुझे किराये के टट्टू बनने से घृणा है कृपापूर्वक जब मेरा आपका कभी फिर साक्षात् हो तो मुझे स्मरण रखियेगा। ईश्वर आपकी रक्षा करें, अब मैं बिदा होता हूँ।

वसंत—महाशय मेरा धर्म है कि इस बारे में आपसे फिर प्रार्थना करूँ कृपा करके कोई वस्तु हम लोगों के स्मरणार्थ मिहनताने करके नहीं वरंच एक स्मारक चिन्ह की भाँति स्वीकार कीजिए। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरी दो बातें स्वीकार करें, एक तो यह है कि आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें और दूसरे मेरी धृष्टता को क्षमा करें।

पुरश्री—आप मुझे अत्यन्त दबाते हैं इसलिये अब अधिक अस्वीकार करना निश्शीलता है। अच्छा एक तो मुझे आप अपने दस्ताने दें, मैं उन्हें आपकी प्रसन्नता के लिए पहनूँगा और दूसरे आपके स्नेह के चिह्न में इस अँगूठी को लूँगा। हाथ न खींचिए, मैं और कुछ न लूँगा पर मुझे निश्चय है कि आप मेरे स्नेह के निहोरे इसके देने में अनङ्गीकार न करेंगे।

वसंत—यह अंगूठी महाशय! खेद, यह तो एक अत्यन्त तुच्छ वस्तु है मुझे आप को देते लज्जा आती है।

पुरश्री—मैं इसको छोड़ और कुछ कदापि न लूँगा और मुख्य करके मेरा जी इसके लेने को बहुत ही चाहता है।

वसंत—मैं इसके मोल लेने के ध्यान से यह बातचीत नहीं करता, इसमें कुछ और ही भेद है। वंशनगर के राज्य में जो अँगूठी सब से अधिक मूल्य की होगी उसे मैं सूचना देकर मँगवाऊँगा और आपके अर्पण करूँगा पर केवल इस अँगूठी के लिये आप मुझे क्षमा करें।

पुरश्री—बस महाशय बस, मैंने समझ लिया कि आप बातों के बड़े धनी हैं। पहले तो आपने मुझे भीख माँगना सिखलाया और अब यह ढंग बताते हैं कि भिखमंगे को किस भाति टालना चाहिए।

वसंत—मेरे सुहृद, यह अँगूठी मुझे मेरी स्त्री ने दी थी और जिस समय कि उसने इसे मेरी उँगली में पहनायी तो मुझ से इस बात की प्रतिज्ञा ले ली कि न तो मैं इसे कभी बेचूँ, न किसी को दूँ और न खोऊँ।

पुरश्री—इस भाँति के चुटकुले प्रायः बहाना करनेवालों के पास गढ़े गढ़ाए रहते हैं। यदि आपकी स्त्री पागल न होगी तो वह इस बात के कह लेने पर कि मैंने आपके साथ इस अँगूठी की लागत से कितना बढ़ कर सुलूक किया, इसके दे डालने पर आप से सदा के लिये शत्रुता कदापि न ठान लेंगी। अच्छा मेरा प्रणाम लीजिए।

(पुरश्री और नरश्री जाती हैं)

अनंत—मेरे सुहृद वसंत अँगूठी उन्हें दे दो। इस समय उनके उपकार और मेरी प्रीति को अपनी स्त्री की आज्ञा से बढ़ कर समझो।

[वसंत—जाओ गिरीश, दौड़ कर उन तक पहुँचो, यह अँगूठी उनके भट करो और यदि बन पड़े तो उन्हें किसी भाँति अनंत के घर पर लाओ, बस अब चले ही जाओ देर न करो। (गिरीश जाता है) आओ हम तुम भी वहीं चलें, कल बड़े तड़के हम दोनों विल्वमठ की ओर चलेंगे, आओ अनंत।

(दोनों जाते हैं)

———

दूसरा दृश्य

स्थान—वंशनगर की एक सड़क

(पुरश्री और नरश्री आती हैं)

पुरश्री—जैन के घर का पता लगा कर उससे झटपट इस पांडुलिपि पर हस्ताक्षर करा लो। हम लोग आज ही रात को चलते होंगे, जिसमें अपने पति से एक दिन पहले घर पहुँच रहें। लवंग इस लिपि को देखकर अत्यंत प्रसन्न होगा।

(गिरीश आता है)

गिरीश—महाराज, बड़ी बात हुई कि आप मिल गए। मेरे मालिक वसंत ने अंततः सोच समझ कर यह अँगूठी आप की सेवा में भेजी है और प्रार्थना की है कि आज आप उन्हीं के साथ भोजन करें।

पुरश्री—मैं असमर्थ हूँ, हाँ उनकी अँगूठी मैंने सिर आँखों से स्वीकार की। तुम मेरी ओर से जाकर विनती कर देना। अब तुम इतनी कृपा और करो कि मेरे लेखक को शैलाक्ष का घर दिखला दो।

गिरीश—मैं प्रस्तुत हूँ।

नरश्री—(पुरश्री से) महाशय मैं आप से कुछ विनय किया चाहता हूँ। (अलग ले जाकर कहती है) देखिए मैं भी अपने पति की अँगूठी लेने का यत्न करती हूँ। मुझ से उन्होंने शपथ खाई थी कि मैं उसे जन्म भर अपने से पृथक न करूँगा।

पुरश्री—अवश्य, चूकियो मत, हम लोगों को अच्छा अवसर हाथ आएगा। यह लोग शपथ खायँगे कि हम ने अँगूठी पुरुषों को दी है परन्तु हम लोग उनकी एक न मानगी और आप सौगंद खाकर उन्हें झूठा बना लेंगी। बस अब चली ही जाव, तुम जानती हो जहाँ मैं ठहरी रहूँगी।

नरश्री—आइए महाशय, मुझे वह घर बतला दीजिए।

(दोनों जाते हैं)

———

पाँचवाँ अङ्क

पहिला दृश्य

स्थान—विल्वमठ, पुरश्री के घर का प्रवेशद्वार

(लवंग और जसोदा आते हैं)

लवंग—आहा ! चाँदनी क्या आनंद दिखा रही है ! मेरे जान ऐसी ही रात में जब कि वायु इतना मंद चल रहा था कि वृक्षों के पत्तों का शब्द तक सुनाई न देता था, त्रिविक्रम दुर्ग की भीत पर चढ़ कर कामिनी की राह ताकता हुआ, जो यवनपुर के खेमे में थी, हृदय से ठंडी साँस निकाल रहा था।

जसोदा—ऐसी ही रात में कादम्बिनी ओस पड़ी हुई घास पर डर डर कर क़दम रखती थी कि यकायक सिंह की पछाईं सामने देख कर बेचारी भय से भाग गई।

लवंग—ऐसी ही रात में जयलक्ष्मी समुद्र के किनारे खड़ी होकर छड़ी से अपने प्यारे को कामपुर लौट आने के लिये संकेत करती थी।

जसोदा—ऐसी ही रात में मालिनी ने जड़ी बूटियों को जंगल में एकत्र किया था, जिनके प्रभाव से बूढ़ा पुरुष जवान हो गया।

लवंग—ऐसी ही रात में जसोदा अपने समृद्ध पिता के घर से निकल भागी और एक दरिद्र प्रेमी के साथ वंशनगर से विल्वमठ को चली आई।

जसोदा—ऐसी ही रात में लवंग ने उससे चित्त से प्रेम करने की सौगंद खाई और निर्वाह का प्रण करके उसका मन छीन लिया परंतु एक भी सच्चे न निकले।

लवंग—ऐसी ही रात में कामिनी जसोदा ने दुष्टता से अपने प्रेमी पर दोष लगाया और उसने कुछ न कहा।

जसोदा—क्या कहूँ मैं तो तुम को बात ही बात में बेरात कर देती यदि कोई आता न होता। देखो मुझे किसी के पैर की आहट जान पड़ती है।

(तूफ़ानी आता है)

लवंग—रात के ऐसे सन्नाटे में कौन इतना शीघ्र चला आता है।

तूफ़ानी—मैं हूँ, आप का एक मित्र।

लवंग—ऐं, मित्र ? कैसे मित्र ? भला मित्र कृपा करके अपना नाम तो बताओ।

तूफ़ानी—मेरा नाम तूफ़ानी है। मैं यह समाचार लाया हूँ कि मेरी स्वामिनी आज मुँह अँधेरे बिल्वमठ में पहुँच जायँगी। वह मंदिरों में घुटने के बल विवाह मंगल होने की प्रार्थना कर रही हैं।

लवंग—उनके साथ और कौन आता है ?

तूफ़ानी—कोई नहीं, केवल वह आप एक जोगिन के भेष में और उनकी सहेली। पर यह तो कहिए कि हमारे स्वामी अभी तक लौट आए या नहीं।

लवंग—न वह आए हैं न कुछ उनका हाल विदित हुआ है। पर आओ जसोदा हम तुम भीतर चलकर घर के स्वामी की शिष्टाचार का प्रबंध कर रक्खें।

(गोप आता है)

गोप—धूतू धूतू पिपी पिपी धूतू धूतू !

लवंग—कौन पुकारता है ?

गोप—धूतू धूतू ! तुम जानते हो कि लवंग महाशय और उनकी स्त्री कहाँ है ? धूतू धूतू !

लवंग—अरे कान न फोड़े डाल, इधर आ।

गोप—धूतू धूतू ! किधर ? किधर ?

लवंग—यहाँ।

गोप—उनसे कह दो कि मेरे स्वामी के पास से एक दूत आया है

जिस की तुरुही मंगल समाचारों से भरी हुई है, वह सवेरा होते होते यहाँ पहुँच जायँगे।

लवंग—प्यारी आओ, घर में चल कर उनके आने की राह देखें, या अच्छा यहीं बैठो रहो भीतर जाने की कौन सी आवश्यकता है। भाई तूफानी नेक भीतर जाकर लोगों से जना दो कि तुम्हारी स्वामिनी आती हैं और अपने साथ गवैयों को बाहर बुलाते लाओ।

(तूफानी जाता है)

इस बुरुज पर चाँदनी कैसी छिटक रही है! आओ हम तुम यहीं बठ कर गाना सुनें। एक तो सन्नाटा मैदान और दूसरे रात, यह दोनों राग का आनंद दूना बढ़ा देते हैं। बैठो जसोदा, देखो तो आकाश क्या शोभा दिखला रहा है, यह प्रतीत होता है कि मानो उसमें हजारों सोने के कुंकुमे लटकते हैं। जितने ग्रह दृष्टि आते हैं इनमें से छोटे से छोटे की चाल से भी देवताओं के राग का सा शब्द आता है, मानो वह उनके शब्द के साथ सुर मिलाते हैं। ऐसा ही सुरीलापन मनुष्य के निश्शब्द आत्मा में भी है परंतु वह इस भौतिक वस्त्र को, जो नष्ट हो जाने वाला है, पहने है इसलिये हम उसके मीठे राग को सुन नहीं सकते।

(गाने बजाने वाले आते हैं)

इधर आओ और कोई राग ऐसा छेड़ो कि तानसेन भी नींद से चौंक उठ और जब तुम्हारे मीठे सुरों का आलाप तुम्हारी स्वामिनी के कान तक पहुँचे तो वह भी विवश होकर घर की ओर दौड़ी आवें।

जसोदा—मैं तो जिस समय अच्छा राग सुनती हूँ सब सुध बुध दूर भाग जाती है।

(लोग गाते हैं)

लवंग—इसका कारण यह है कि तुम अपना ध्यान जमाती और उस पर सोचती हो। तुमने देखा होगा कि नये सीधे बछेड़े जिन्हें किसी ने हाथ तक न लगाया हो आपस में क्या क्या कुलेलें

करते, छलाँगें मारते और हिनहिनाते हैं जिससे उनके रुधिर की गर्मी जानी जाती है। परंतु यदि संयोग से उनके सामने तुरुही या किसी दूसरे प्रकार का बाजा बजाया जाय तो वह शीघ्र ही सबके सब ठठक कर खड़े ह जायँगे और राग के प्रभाव से कुछ देर के लिये उनकी घबड़ाहट दूर हो जायगी। एक कवि का कथन ठीक है कि तानसेन के गाने का प्रभाव वृक्ष, पत्थर, जल पर भी होता था क्योंकि कोई वस्तु ऐसी कठोर और भयानक नहीं जिसकी प्रकृति-स्वभाव को अधिक नहीं तो थोड़ी ही देर के लिये राग बदल न देता हो। जिस मनुष्य को गाने का आनंद नहीं और जिसके जो पर सुरीले शब्द का प्रभाव नहीं होता उससे अत्याचार, छल और चोरी इत्यादि जो कुछ न हो सब थोड़ा है क्योंकि ऐसे मनुष्य का चित्त नरक से अधिक अंधा और भ्रष्ट और बुरा होता है और वह कदापि विश्वास के योग्य नहीं होता। तुम ध्यान देकर गाना सुनो।

(पुरश्री और नरश्री कुछ दूर पर चली आती हैं)

पुरश्री—वह प्रकाश जो सामने दृष्टि पड़ता है मेरे ही दालान में हो रहा है। देखो तो एक छोटे से दीपक का प्रकाश कितनी दूर तक फैला हुआ है। इसी भाँति संसार मे शुभकर्म चमकता है।

नरश्री—जब चाँदनी थी तो यह प्रकाश जान नहीं पड़ता था।

पुरश्री—इसी भाँति बड़ा तेज अपने सामने छोटे तेज को दबा लेता है। किसी कवि ने कितना ठीक कहा है—दिये (दीपकों) की तो प्रकट में चमक है, पर दिये (दान) का प्रकाश परलोक में भी है। राजा की अनुपस्थिति में उसके प्रतिनिधि ही की प्रतिष्ठा राजा के समान होती है परंतु उसके सामने जैसे नदी की समुद्र के सामने कुछ गिनती नहीं उसका भी कोई मान नहीं होता। ऐं देखो, कहीं से गाने का शब्द आता है!

नरश्री—सखी यह आप ही क महल में गाना हो रहा है।

पुरश्री—इसमें संदेह नहीं कि हर वस्तु के लिये एक नियत काल है और उसी समय वह भली जान पड़ती है। मेरी सम्मति में इस समय गाना दिन की अपेक्षा अधिक मनोहर होता है।

नरश्री—सखी यह आनंद एकांत के कारण से प्राप्त हुआ है।

पुरश्री—यदि कोई कान ही न दे तो कौवे का शब्द वैसा ही कोमल और मधुर है जैसा कोयल का और मेरी सम्मति में दिन को जब कि बत्तक काँव काँव कर रही हों, बुलबुल हजारदास्ताँ का चहचहाना कोलाहल से बुरा है। कितनी वस्तुओं की सुंदरता और उत्तमता समय ही पर जानी जाती है। बस बंद करो, चंद्रमा समुद्र के साथ सोने को गया और अभी उसकी आँख नहीं खुलने की।

(गाना बंद हो गया)

लवंग—यदि मेरे कानों ने त्रुटि न की तो यह शब्द पुरश्री का है।

पुरश्री—मेरा शब्द तो इस समय मानो अंधे के लिये लकड़ी हो गया।

लवंग—ऐ मान्य सखी, आपके कुशलपूर्वक लौट आने पर धन्यवाद देता हूँ।

पुरश्री—हम लोग अपने अपने स्वामी की कुशलता की प्रार्थना करती थीं और हमें आशा करती हैं कि हमारी प्रार्थना स्वीकार हुई। वह लोग आए ?

लवंग—इस समय तक तो नहीं आए हैं परंतु उनके पास से अभी एक दूत समाचार लाया है कि वह लोग निकट ही हैं।

पुरश्री—नरश्री भीतर जाकर नौकरों से कह दो कि वह हमारे बाहर जाने के विषय में किसी से कुछ न कहें, लवंग तुम भी ध्यान रखना और तुम भी स्मरण रखना जसोदा।

(तुरही की ध्वनि सुनाई देती है)

लवग—आपके पति आन पहुँचे, मेरे कान में उनकी तुरही का शब्द आता है। हम लोग लुतरे नहीं हैं, आप तनिक भय न कीजिए।

पुरश्री—आज के सबेरे की दशा तो कुछ पीड़ित सी जान पड़ती है क्योंकि उसके मुँह पर नियम से अधिक पियराई छा रही है जैसी कि सूर्य्यास्त के समय दृष्टि आती है।

(बसंत, अनंत, गिरीश और उनके नौकर चाकर आते हैं)

वसंत—यदि सूर्य्यास्त होने पर आप घूँघट उलट कर निकल आएँ तो हम को उसके अस्त होने की कुछ चिंता न हो।

पुरश्री—ईश्वर करे मुख की कान्ति आपको प्रकाशित कर सके परंतु मेरी गति में चमक न आए क्योंकि चमक मटक छिछोरेपन का चिन्ह है जिसका परिणाम यह होता है कि अंत को स्वामी के चित्त में अपनी स्त्री की ओर से एक चमक आ जाती है, इसलिये ईश्वर मुझ को इस आपत्ति से बचाए। आपका आना हम लोगों को शुभंकर हो।

वसंत—प्यारी मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ, पर इस समय तुम मेरे मित्र के आने पर प्रसन्नता प्रकट करो। यही अनंत हैं जिनका मैं अंतःकरण से अत्यंत उपकृत हूँ।

पुरश्री—इसमें कोई संदेह है आप को अवश्य उपकार मानना चाहिए क्योंकि जहाँ तक मैंने सुना है उन्होंने आप के साथ बड़ा उपकार किया है।

अनंत—आप लोग इस कहने से मुझे व्यर्थ लज्जित करते हैं, मैंने तो जो कुछ सेवा की होगी उससे कहीं अधिक भर पाया।

पुरश्री—महाशय आपके पधारने से हमारे घर की शोभा और हम लोगों की प्रसन्नता दूनी हुई, परंतु मुख से कहना बनावट है और मैं अपने आंतरिक हर्ष को बनावट की आवश्यकता नहीं समझती।

(गिरीश और नरश्री पृथक् बात करते जान पड़ते हैं)

गिरीश—शपथ है अपने प्राण की तुम मुझ पर झूठा दोष लगाती हो, मैंने सचमुच उसे न्यायकर्त्ता के लेखक को दिया।

पुरश्री—वाह वाह आते ही झगड़ा होने लगा! यह क्या बात है।

गिरीश—एक सोने के छल्ले के लिये, एक टके की मुँदरी के लिये जो आप ने दी थी और जिस पर यह वाक्य खुदा था जैसा प्रायः बिसातियों की छुरियों पर लिखा होता है—"मुझ से स्नेह रक्खो और कभी जुदा न हो"।

नरश्री—तुम लिखने और मूल्य का क्या कहते हो। क्या तुमने लेने

के समय शपथ नहीं खाई थी कि मैं उसे आमरण अपनी उँगली में रक्खूँगा और वह मेरे साथ समाधि में जायगी? यदि मेरा कुछ ध्यान न था तो भला अपनी कठिन सौगंदों का तो ध्यान करते। हंह! न्यायी के लेखक को दिया! मैं भली भाँति जानती हूँ कि जिस लेखक को तुम ने दिया है उसके मुँह पर दाढ़ी कभी न निकलेगी।

गिरीश—क्यों नहीं, जब वह पूर्ण युवा होगा तो अवश्य निकलेगी।

नरश्री—हाँ, यदि स्त्री पुरुष हो सकती हो।

गिरीश—शपथ भगवान की, मैंने उसे एक लड़के को दिया, एक मझले क़द के छोकरे को जो तुम से ऊँचा न था। यही विचारपति का लेखक था। उसने ऐसी मीठी मीठी बातें करके अँगूठी पारितोषिक में माँगी कि मैं अनंगीकार न कर सका और उसको सौंपते ही बनी।

पुरश्री—सुनो साहिब मैं स्पष्ट कहती हूँ कि इस विषय में सब दोष तुम पर है कि एक लड़के की बातों में आकर अपनी स्त्री का दिया हुआ पहला चिन्ह उसे दे डाला और वह वस्तु, जिस पर तुम ने अपनी उँगली में पहनने के समय सौगंद की बौछार मचा दी थी और प्रतिज्ञा के ढेर लगा दिए थे, ऐसे सहज में दे डाली। मैंने भी अपने प्यारे स्वामी को एक अँगूठी दी है और उनसे शपथ ले ली है कि उसे कभी जुदा न करें। यह देखिए वह यहाँ उपस्थित हैं, परंतु उनकी संती मैं शपथ खा सकती हूँ कि यदि कोई उन्हें कुबेर का भंडार भी अर्पण करे तो वह उसे अपनी उँगली से न उतारें, दे डालना तो दूर है। तात्पर्य यह कि गिरीश तुम ने अपनी स्त्री को व्यर्थ इतना बड़ा दुःख दिया। यदि मैं उसके स्थानापन्न होती तो इस समय क्रोध के मारे पागल हो जाती।

बसंत—(आप ही आप) इस समय इससे उत्तम कोई उपाय नहीं कि मैं अपना बायाँ हाथ काट डालूँ और शपथ खा लूँ कि जहाँ तक बस चला रक्षा की परतु अंत को जब हाथ कट गया तो सी के साथ अँगूठी भी गई।

गिरीश—मेरे स्वामी वसंत ने अपनी अँगूठी विचाराधीश को उसकी प्रार्थना पर दे दी और निस्संदेह उसने काम भी ऐसा ही किया था। इस पर उसके लेखक ने लिखाई की संती मेरी अँगूठी माँगी और अभाग्य यह कि उसे और उसके स्वामी दोनों को इस बात का आग्रह हुआ कि सिवाय उन अँगूठियों के और कोई वस्तु हाथ से न छुएंगे।

पुरश्री—क्यों साहब आपने कौन सी अँगूठी दी? वह तो काहे को दी होगी जो आपने मुझ से पाई थी।

वसंत—यदि मुझे झूठ बोल कर अपने अपराध को दूना कर देना स्वीकार हो तो हाँ निस्संदेह अस्वीकार करूँ परंतु तुम देखती हो कि मेरी उँगली में अँगूठी नहीं है, वह जाती रही।

पुरश्री—ऐसे ही आपका निर्दय चित्त भी स्नेह से शून्य है। शपथ भगवान की, जब तक आप मेरी अँगूठी मेरे सामने लाकर न रखिएगा मैं आपके साथ अंक में सोना पाप समझूँगी।

नरश्री—और मैं भी जब तक अपनी अँगूठी देख न लूँगी आपसे बात न करूँगी। [गिरीश से]

वसंत—मेरी प्यारी पुरश्री, यदि तुम्हें विदित हो कि मैंने अँगूठी किसे दी, किसके लिये दी, क्यों दी और कैसी निर्दशता से दी जबकि वह पुरुष सिवा उस अँगूठी के दूसरी वस्तु के लेने पर प्रसन्न ही नहीं होता था तो तुम्हारा क्रोध इतना न रह जाय।

पुरश्री—यदि आप को अँगूठी का गौरव विदित होता, या आपने उसके देने वाली को आधा भी दिया होता, या अपनी बात का कि मैं सदा अँगूठी प्राण-सदृश रक्खूँगा नेक भी विचार किया होता तो आप उसे कभी अपने से जुदा न करते। भला कौन ऐसा मूर्ख होगा कि आप से निर्लज्जता के साथ एक रीति की वस्तु को माँगे जाता, यदि आप ने कुछ भी चित्त से उसके न देने का यत्न किया होता। नरश्री का विचार मुझे यथार्थ प्रतीत होता है, मैं शपथ खा सकती हूँ कि आप ने अँगूठी अवश्य किसी स्त्री को दी।

वसंत—प्यारी, मैं अपनी प्रतिष्ठा, अपने प्राण की शपथ खाकर कहता

हूँ कि मैंने उसे किसी स्त्री को नहीं दिया वरंच एक वकील को, जिसने छ हज़ार रुपया लेना अस्वीकार किया और केवल वह अँगूठी माँगी। फिर भी मैंने निवेदन किया और उसे अप्रसन्न होकर चले जाने दिया यद्यपि यह वह पुरुष था जिसने मेरे प्यारे मित्र की जान बचाई थी। मेरी प्यारी तुम ही बतलाओ कि मैं क्या करता ? मेरे शील ने सहन न किया कि ऐसे उपकारी को अप्रसन्न करूँ, मुझे बड़ी लज्जा पर्दे पड़ी और स्वभाव इस बात को सह न सका कि मैं अपनी मर्यादा में कृतघ्नता का धब्बा लगाऊँ। अंत को मुझे विवश होकर अँगूठी उसके पीछे भेज देनी पड़ी। मेरी प्यारी मेरा अपराध क्षमा करो। शपथ है यदि तुम वहाँ होतीं तो अँगूठी को मुझ से छीन कर उस योग्य वकील को सौंप देतीं।

पुरश्री—अच्छा अब उस वकील की ओर से सचेत रहना और उसको मेरे घर के निकट कदापि न फटकने देना क्योंकि जिस वस्तु से मुझको प्रीति थी और आपने मेरे निहोरे सदा अपने पास रखने की शपथ खाई थी वह उसके हाथ में आ गई तो मैं भी आप की भाँति उदारता पर कमर बाँधूँगी और जो कुछ वह मुझ से माँगेगा उसके स्वीकार करने से मुँह न मोड़ूँगी। पहिचान तो मैं उसको लूँ ही गी इसमें किसी भाँति का संदेह नहीं। अब आप को उचित है कि कभी रात के समय घर से बाहर न जायँ और आठ पहर मेरी रक्षा करते रहें। यदि आपने मुझे किसी दिन अकेला छोड़ा तो शपथ है अपने लज्जा की जिस पर अब तक किसी पुरुष की परछाईं नहीं पड़ी है मैं उस वकील को अपने पास बुला लूँगी।

नरश्री—और मैं उसके लेखक को, इस लिये सावधान कभी मुझको मेरे भरोसे पर छोड़ कर न जाना।

गिरीश—अच्छा जैसा तुम्हारा जी चाहे करो, पर उस अवस्था में उसे मेरे पंजे से बचाए रहना नहीं तो लेखक साहब की लेखनी पर आपत्ति आ जायगी।

अनंत—मैं ही अभागा इन झगड़ों का कारण हूँ।

पुरश्री—आप न उदास हूजिए, आपके आने की मुझे बड़ी प्रसन्नता है।

वसंत–पुरश्री, इस बार मेरा अपराध जो निरी निर्वशता की अवस्था में हुआ क्षमा कर दो और अब मैं इन सब मित्रों के सामने तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ वरंच तुम्हारी आँखों की जिनमें मेरा प्रतिबिंब दृष्टि पड़ता है शपथ करे कहता हूँ कि—

पुरश्री—देखिए नेक आप लोग इस बात को विचारिए, वह मेरे दो नेत्रों में अपनी दुहरी प्रतिबिंब देखते हैं यानी हर नेत्र में एक, इस लिये आप अपनी दुहरी सूरत की शपथ खाइए तो हाँ विश्वास हो।

बसंत—अच्छा थोड़ा मेरा सुन लो। इस अपराध को क्षमा करो और अब मैं अपने जीवन की सौगंद खाता हूँ कि अब फिर कभी तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा से भ्रष्ट न हूँगा।

अनंत—मैंने एक बार रुपयों के बदले अपना शरीर इनके लिये धरा-हर रक्खा था और यदि वह मनुष्य, जिसने आपके स्वामी की अँगूठी ली, न होता तो यह अब तक कभी का नष्ट हो गया होता। अब मैं इस बार अपने प्राण को ज़मानत में दे करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि आपके स्वामी फिर कभी जान बूझ कर अपना वचन न तोड़ेंगे।

पुरश्री—तो मैं आपको उनका ज़ामिन समझूँगी। अच्छा उन्हें यह अँगूठी दीजिए और शपथ ले लीजिए कि इसको पहली से अधिक सावधानी के साथ रक्खें।

अनंत—लो वसंत इसको लो और शपथ खाओ।

वसंत—शपथ भगवान की यह वही अँगूठी है, जो मैंने उस वकील को दी थी।

पुरश्री—और मैंने भी तो उसी से पाई। वसंत मुझे क्षमा करना क्यों कि इसी अँगूठी के स्वत्व से वह मेरे साथ आकर सोया था।

नरश्री—और मेरे सुहृद गिरीश आप भी मेरा अपराध क्षमा करें क्योंकि वही मक्कार वकील का लेखक इस अँगूठी के बदले कल रात को मेरे साथ सोया हुआ था।

गिरीश—ऐं, यह तो मानो भरी बरसात में खेत को कुँए के पानी से

सींचना है। क्या हम लोगों में कोई दोष पाया जो हमारी स्त्रियों ने हमें अपना भँडुआ बनाया।

पुरश्री—इतनी असभ्यता से मत बको। आप लोग चकित हो गए। लीजिए यह पत्र पांडुपुर से बलवंत के पास से आया है, इसे अवकाश के समय पढ़ियेगा, उससे आप को विदित होगा कि पुरश्री वकील थी और नरश्री उसकी लेखक। लवंग उपस्थित हैं वह साक्षी ही देंगे कि ज्योंही आप सिधारे मैं भी उसी क्षण चल दी और अभी चली आती हूँ यहाँ तक कि घर में पैर नहीं रक्खा। अनन्त महाराज आपका आगमन मंगल, मैं आपको वह समाचार सुनाती हूँ जिसका आप को स्वप्न में भी ध्यान न होगा। इस पत्र की मुहर तोड़ कर पढ़िये, इसमें आप देखिएगा कि आपके तीन जहाज़ अनमोल माल से लदे हुए घाट (बन्दरगाह) में आ गए हैं। परन्तु मैं आपको यह न बतलाऊँगी कि मेरे हाथ यह पत्र क्योंकर लगा।

अनंत—मेरे मुख से तो शब्द नहीं निकलता।

बसंत—आप ही वकील थीं और मैंने पहचाना तक नहीं!

गिरीश—आप ही वह लेखक हैं जो मुझे जोरू का भँडुआ बनाया चाहती हैं?

नरश्री—जी हाँ, पर वह लेखक जिसकी इच्छा कभी ऐसा करने की नहीं परन्तु हाँ उस अवस्था में कि वह स्त्री से पुरुष बन सके।

बसंत—मेरे सुहृद वकील अब आप को मेरे साथ सोना होगा और जब मैं न रहूँ उस समय मेरी स्त्री के साथ सोइए।

अनंत—बबुई आप ने जीवन और उसकी सामग्री दोनों मुझे दी, क्योंकि इस पत्र से विदित हुआ कि वास्तव में मेरे जहाज़ कुशलता के साथ बंदरगाह में आ गए।

पुरश्री—लवंग, मेरे लेखक के पास आप के लिए भी कुछ सौग़ात प्रस्तुत है।

नरश्री—और मैं आपको बिना लिखाई लिए सौंपती हूँ, लीजिये यह

उस धनी जैनी ने आपको और जसोदा को एक दानपत्र अपनी सारी सम्पत्ति का लिख दिया है, जिसके आप लोग उसके मरने पर उत्तराधिकारी होंगे।

लवंग—महाशया जी, यह मानो भूखों के सामने मोहनभोग का ढेर लगा देना है।

पुरश्री—सवेरा हो गया और अब तक मेरी जान में आप लोगों का इन सब बातों के विषय पूरा तोष नहीं हुआ, इसलिये उचित होगा कि भीतर चल कर जो जो संदेह हों उनके विषय मुझसे प्रश्न कीजिए और ब्यौरेवार वृत्तांत सुनिए।

गिरीश—बहुत ठीक—

है जब तक मेरे दम में दम डरूंगा हर घड़ी हर दम।
रहेगा रात दिन खटका नरश्री की अँगूठी का।

(सब जाते हैं)

इति

अंधेर-नगरी

चौपट्ट राजा

टके सेर भाजी टके सेर खाजा

प्रहसन

संवत् १९३८

छेदश्चंदनचूतचम्पकवने रक्षा करीरद्रुमे
हिंसा हंसमयूरकोकिलकुले काकेषुलीलारतिः।
मातङ्गेन खरक्रयः समतुला कर्पूरकार्पासयोः
एषा यत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मैनमः॥ *

---

* चंदन, आम तथा चंपा के वन को काटकर करीर वृक्ष की जो रक्षा करता है ; हंस, मोर तथा कोयल को मार कर कौए की लीला में प्रेम रखता है ; हाथी देकर गदहा खरीदता है और कपूर तथा कपास को समान समझता है। जहाँ के गुणी लोगों के ऐसे विचार हों उस देशको नमस्कार है।

समर्पण

मान्य योग्य नहिं होत कोऊ कोरो पद पाए।
मान्य योग्य नर ते, जे केवल परहित जाए॥
जे स्वारथ-रत धूर्त्त हंस से काक-चरित-रत।
ते औरन हति बंचि प्रभुहिं नित होहिं समुन्नत॥
यदपि लोक की रीति यही पै अंत धर्म्म जय।
जौ नाहीं यह लोक तदपि छलियन अति जम भय॥
नरसरीर में रक्त वही जो परदुख साखी।
खात पियत अरु स्वसत स्वान मंडुक अरु भाखी॥
तासों अब लौं करी सो, पै अब जागिय।
यो श्रुति भारत देश समुन्नति मैं नित लागिय॥
साँच नाम निज करिय कपट तजि अंत बनाइय।
रूप तारक हरि-पद भजि साँच बड़ाई पाइय॥

ग्रंथकार।

अंधेर-नगरी

चौपट्ट राजा

टके सेर भाजी टके सेर खाजा

पहला अंक

स्थान—बाह्य प्रांत

(महंतजी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं)

सब—राम भजो राम भजो राम भजो भाई।

राम के भजे से गनिका तर गई,
राम के भजे से गीध गति पाई।
राम के नाम से काम बनै सब,
राम के भजन बिनु सबहि नसाई।
राम के नाम से दोनों नयन बिनु,
सूरदास भए कबिकुल-राई॥
राम के नाम से घास जंगल की,
तुलसीदास भए भजि रघुराई॥

महंत—बच्चा नारायणदास, यह नगर तो दूर से बड़ा सुंदर दिखलाई पड़ता है! देख, कुछ भिच्छा-उच्छा मिलै तो ठाकुरजी को भोग लगै। और क्या।

नारायण०—गुरुजी महाराज, नगर तो नारायण के आसरे से बहुत ही सुन्दर है जो है सो, पर भिच्छा सुंदर मिलै तो बड़ा आनंद होय।

महंत—बच्चा गोबरधनदास, तू पच्छिम की ओरसे जा और नारायण दास पूरब की ओर जायगा। देख, जो कुछ सीधा-सामग्री मिले तो श्रीशालग्रामजी का बालभोग सिद्ध हो।

गोबरधन०—गुरुजी, मैं बहुत सी भिच्छा लाता हूँ। यहाँ के लोग तो बड़े मालवर दिखलाई पड़ते हैं। आप कुछ चिंता मत कीजिए।

महंत—बच्चा बहुत लोभ मत करना। देखना, हाँ—

लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहिं कीजिए, यामैं नरक निदान॥

(गाते हुए सब जाते हैं)

दूसरा अङ्क

स्थान—बाजार

कबाबवाला—कबाब गरमागरम मसालेदार—चौरासी मसाला बहत्तर आँच का—कबाब गरमागरम मसालेदार—खाय सो होंठ चाटै, न खाय सो जीभ काटै। कबाब लो, कबाब का ढेर—बेचा टके सेर।

घासीराम—चने जोर गरम—

चने बनावैं घासीराम। जिनकी झोली में दूकान॥
चना चुरमुर चुरमुर बोलै। बाबू खाने को मुँह खोलै॥
चना खावै तौकी मैना। बोलै अच्छा बना चबैना॥
चना खायँ गफूरन, मुन्ना। बोलैं और नहीं कुछ सुन्ना॥
चना खाते सब बंगाली। जिनकी धोती ढीली ढाली॥
चना खाते मियाँ जुलाहे। डाढ़ी हिलती गाह बगाहे॥
चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते॥
चने जोर गरम—टके सेर।

नरंगीवाली—नरंगी ले नरंगी—सिलहट की नरंगी, बुटवल की नरंगी। रामबाग की नरंगी, आनंदबाग की नरंगी। भई नीबू से नरंगी। मैं तो पिय के रंग न रंगी। मैं तो भूली लेकर संगी। नरंगी ले नरंगी। कँवला नीबू, मीठा नीबू, रंगतरा, संगतरा। दोनों हाथों लो—नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे। नरंगी ले नरंगी। टके सेर नरंगी।

हलवाई—जलेबियाँ गरमागरम। ले सेव इमरती लड्डू गुलाबजामुन खुरमा बुँदिया बरफी समोसा पेड़ा कचौड़ी दालमोट पकौड़ी घेवर गुपचुप। हलुआ ले हलुआ मोहनभोग। मोयनदार कचौड़ी कचाका हलुआ नरम चभाका। घी में गरक चीनी में तरातर चासनी में चभाचभ। ले भूर का लड्डू। जो खाय सो भी पछताय। जो न खाय सो भी पछताय। रेवड़ी कड़ाका।

पापड़ पड़ाका। ऐसी जात हलवाई जिसके छत्तिस कौम हैं भाई। जैसें कलकत्ते के विलसन मंदिर के भितरिए, वैसे अंधेर नगरी के हम। सब समान ताजा। खाजा ले खाजा। टके सेर खाजा।

कुंजड़िन—ले धनिया मेथी सोआ-पालक चौराई बथुवा करेमू नोनियाँ कुलफा कसारी चना सरसों का साग। मरसा ले मरसा। ले बैंगन लौआ कोंहड़ा आलू अरुई बंडा नेनुआँ सूरन रामतरोई तरोई मुरई। ले आदी मिरचा लहसुन पियाज टिकोरा। ले फालसा खिरनी आम अमरूत निबुआ मटर होरहा। जैसे काजी वैसे पाजी। रैयत राजी टके सेर भाजी। ले हिंदुस्तान का मेवा फूट और बैर।

मुगल—बादाम पिस्ते अखरोट अनार बिहीदाना मुनक्का किशमिश अंजीर आबजोश आलूबोखारा चिलगोजा सेब नाशपाती बिही सरदा अंगूर का पिटारी। आमारा ऐसा मुल्क जिसमें अँगरेज का भी दाँत कट्टा ओ गया। नाहक को रुपया खराब किया बेबकूफ़ बनाश। हिंदोस्तान का आदमी लक-लक हमारे यहाँ का आदमी बुंबक बुंबक। लो सब मेवा टके सेर।

पाचकवाला—

चूरन अमलबेद का भारी। जिसको खाते कृष्ण मुरारी॥
मेरा पाचक है पचलोना। जिसको खाता श्याम सलोना॥
चूरन बना मसालेदार। जिसमें खट्टे की बहार॥
मेरा चूरन जो कोइ खाय। मुझको छोड़ कहीं नहिं जाय॥
हिंदू चूरन इसका नाम। बिलायत पूरन इसका काम॥
चूरन जब से हिंद में आया। इसका धन बल सभी घटाया॥
चूरन ऐसा हट्टा-कट्टा। कीना दाँत सभी का खट्टा॥
चूरन चला डाल की मंडी। इसको खाएँगी सब रंडी॥
चूरन अमले सब जो खावैं। दूनी रिशवत तुरत पचावैं॥
चूरन नाटकवाले खाते। इसकी नकल पचाकर लाते॥
चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हजम कर जाते॥

---

* चंद्रप्रभा प्रेस की प्रति में नहीं है।

चूरन खाते लाला लोग। जिनको अकिल अजीरन रोग॥
चूरन खावैं एडिटर जात। जिनके पेट पचै नहिं बात॥
चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता॥
चूरन पूलिसवाले खाते। सब कानून हजम कर जाते॥
ले रुपया का ढेर, बेचा टके सेर।

मछलीवाली—मछरी ले मछरी।

मछरिया एक टके कै बिकाय।
लाख टका कै बाला जोबन, गाँहक सब ललचाय॥
नैन-मछरिया रूप जाल में, देखत ही फँसि जाय।
बिनु पानी मछरी सो बिरहिया, मिले बिना अकुलाय॥

जातवाला (ब्राह्मण)—जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जायँ और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहा वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच करें। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिंदू से क्रिस्तान। टके के वास्ते धर्म्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावें। वेद धर्म्म कुल-मरजादा सचाई-बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल। ले टके सेर।

बनियाँ—आँटा दाल लकड़ी नमक घी चीनी मसाला चावल ले टके सेर।

(बाबाजी का चेला गोबरधनदास आता है और सब बेचनेवालों की आवाज सुन-सुनकर खाने के आनन्द में बड़ा प्रसन्न होता है)

गोबरधन०—क्यों भाई बनिये, आँटा कितने सेर?

बनियाँ—टके सेर।

गोबरधन०—औ चावल?

बनियाँ—टके सेर।

गोबरधन०—औ चीनी?

बनियाँ—टके सेर।

गोबरधन—औ घी?

बनियाँ—टके सेर।

गोबरधन—सब टके सेर! सचमुच।

बनियाँ—हाँ महाराज, क्या झूठ बोलूँगा?

गोबरधन०—(कुँजड़िन के पास जाकर) क्यों माई, भाजी क्या भाव?

कुँजड़िन—बाबाजी, टके सेर। निनुआ मुरई धनियाँ मिरचा साग सब टके सेर।

गोबरधन०—सब भाजी टके सेर! वाह-वाह! बड़ा आनंद है। यहाँ सभी चीज टके सेर। (हलवाई के पास जाकर) क्यों भाई हलवाई! मिठाई कितने सेर?

हलवाई—बाबाजी! लड्डुआ हलुआ जलेबी गुलाबजामुन खाजा सब टके सेर।

गोबरधन०—वाह! वाह!! बड़ा आनंद है। क्यों बच्चा, मुझसे मसखरी तो नहीं करता? सचमुच सब टके सेर?

हलवाई—हाँ बाबाजी, सचमुच सब टके सेर। इस नगरी की चाल ही यही है। यहाँ सब चीज टके सेर बिकती है।

गोबरधन०—क्यों बच्चा! इस नगरी का नाम क्या है?

हलवाई—अंधेरनगरी।

गोबरधन०—और राजा का क्या नाम है?

हलवाई—चौपट्ट राजा।

गोबरधन०—वाह! वाह! अंधेर नगरी चौपट्ट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा। (यही गाता है और आनंद से बगल बजाता है)

हलवाई—तो बाबाजी, कुछ लेना-देना हो तो लो-दो।

गोबरधन०—बच्चा, भिक्षा माँगकर सात पैसे लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई दे दे, गुरु-चेले सब आनंदपूर्वक इतने में छक जायँगे।

(हलवाई मिठाई तौलता है—बाबाजी मिठाई लेकर खाते हुए और अंधेरनगरी गाते हुए जाते हैं)

(जवनिका गिरती है)

—:०:—

तीसरा अंक

स्थान—जंगल

(महंतजी और नारायणदास एक ओर से "राम भजो" इत्यादि गाते हुए आते हैं और दूसरी ओर से गोबरधनदास 'अंधेरनगरी' गाते हुए आते हैं)

महंत—बच्चा गोबरधनदास ! कह, क्या भिक्षा लाया ? गठरी तो भारी मालूम पड़ती है।

गोबरधन०—बाबाजी महाराज ! बड़े माल लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई है।

महंत—देखूँ बच्चा ! (मिठाई की झोली अपने सामने रखकर खोल-कर देखता है) वाह ! वाह ! बच्चा इतनी मिठाई कहाँ से लाया ? किस धर्म्मात्मा से भेंट हुई ?

गोबरधन०—गुरुजी महाराज ! सात पैसे भीख में मिल थे, उसी से इतनी मिठाई मोल ली है।

महंत—बच्चा ! नारायणदास ने मुझसे कहा था कि यहाँ सब चीज टके सेर मिलती है, तो मैंने इसकी बात का विश्वास नहीं किया। बच्चा, यह कौन सी नगरी है और इसका कौन सा राजा है, जहाँ टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा है ?

गोबरधन०—अंधेरनगरी चौपट्ट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।

महंत—तो बच्चा ! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है, जहाँ टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा हों।

दोहा

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुँ न कीजै बास॥

कोकिल बायस एक सम, पंडित मूरख एक।
इंद्रायन दाड़िम विषय जहाँ न नेकु विवेक॥
बसिए ऐसे देश नहिं, कनक-वृष्टि जो होय।
रहिए तो दुख पाइए, प्रान दीजिए रोय॥

सो बच्चा चलो यहाँ से। ऐसी अंधेरनगरी में हजार मन मिठाई मुफ्त की मिले तो किस काम की? यहाँ एक छन नहीं रहना।

गोबरधन०—गुरुजी; ऐसा तो संसार भर में कोई देस ही नहीं है। दो पैसा पास रहने ही से मजे में पेट भरता है। मैं तो इस नगर को छोड़कर नहीं जाऊँगा। और जगह दिन भर माँगो तो भी पेट नहीं भरता। वरंच बाजे-बाजे दिन उपास करना पड़ता है। सो मैं तो यहीं रहूँगा।

महंत—देख बच्चा, पीछे पछतायगा।

गोबरधन०—आपकी कृपा से कोई दुख न होगा; मैं तो यही कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिए।

महंत—मैं तो इस नगर में अब एक छण भर नहीं रहूँगा। देख, मेरी बात मान, नहीं पीछे पछताएगा। मैं तो जाता हूँ, पर इतना कहे जाता हूँ कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना।

गोबरधन०—प्रणाम गुरुजी, मैं आपका नित्य ही स्मरण करूँगा। मैं तो फिर भी कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिए।

(महंत जी नारायणदास के साथ जाते हैं, गोबरधनदास बैठकर मिठाई खाता है)

(जवनिका गिरती है)

—

चौथा अंक

स्थान—राजसभा

(राजा, मंत्री और नौकर लोग यथास्थान स्थित हैं)

एक सेवक—(चिल्लाकर) पान खाइए, महाराज।

राजा—(पीनक से चौंक के घबड़ाकर उठता है) क्या कहा ? सुपनखा आई ए महाराज। (भागता है)

मंत्री—(राजा का हाथ पकड़कर) नहीं नहीं, यह कहता है कि पान खाइए महाराज।

राजा—दुष्ट लुच्चा पाजी। नाहक हमको डरा दिया। मंत्री इसको सौ कोड़े लगें।

मंत्री—महाराज ! इसका क्या दोष है ? न तमोली पान लगाकर देता, न यह पुकारता।

राजा—अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगें।

मंत्री—पर महाराज, आप पान खाइए सुनकर थोड़े ही डरे हैं, आप तो सुपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो।

राजा—(घबड़ाकर) फिर वही नाम ? मंत्री तुम बड़े खराब आदमी हो। हम रानी से कह देंगे कि मंत्री बेर-बेर तुमको सौत बुलाने चाहता है। नौकर ! नौकर ! शराब—

दूसरा नौकर—(एक सुराही में से एक गिलास में शराब उझलकर देता है) लीजिए महाराज। पीजिए महाराज।

राजा—(मुँह बना-बनाकर पीता है) और दे।

(नेपथ्य में—'दुहाई है दुहाई' का शब्द होता है)

कौन चिल्लाता है—पकड़ लाओ।

(दो नौकर एक फर्यादी को पकड़ लाते हैं)

फ०—दोहाई है महाराज दोहाई है। हमारा न्याव होय।

राजा—चुप रहो। तुम्हारा न्याव यहाँ ऐसा होगा कि जैसा जम के यहाँ भी न होगा—बोलो क्या हुआ ?

फ०—महाराज ! कल्लू बनियाँ की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई। दोहाई है महाराज, न्याव हो।

राजा—(नौकर से) कल्लू बनिये की दीवार को पकड़ लाओ।

मंत्री—महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती।

राजा—अच्छा, उसका भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो हो उसको पकड़ लाओ।

मंत्री—महाराज ! दीवार ईंट-चूने की होती है, उसको भाई बेटा नहीं होता।

राजा—अच्छा, कल्लू बनिये को पकड़ लाओ। (नौकर लोग दौड़ कर बाहर से बनिये को पकड़ लाते हैं) क्यों बे बनिये ! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर मर गई ?

मंत्री—बरकी नहीं महाराज, बकरी।

राजा—हाँ हाँ, बकरी क्यों मर गई—बोल, नहीं अभी फाँसी देता हूँ।

कल्लू—महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं। कारीगर ने ऐसी दीवार बनाई कि गिर पड़ी।

राजा—अच्छा, इस मल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ। (कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़कर लाते हैं) क्यों बे कारीगर ! इसकी बकरी किस तरह मर गई ?

कारीगर—महाराज, मेरा कुछ कसूर नहीं, चूनेवाले ने ऐसा बोदा चूना बनाया कि दीवार गिर पड़ी।

राजा—अच्छा, इस कारीगर को बुलाओ, नहीं नहीं निकालो, उस चूनेवाले को बुलाओ। (कारीगर निकाला जाता है, चूनेवाला पकड़कर लाया जाता है) क्यों बे खैर-सुपाड़ी-चूनेवाले ! इसकी कुबरी कैसे मर गई ?

चूनेवाला—महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं; भिश्ती ने चूने में पानी ढेर दे दिया, इसी से चूना कमजोर हो गया होगा।

राजा—अच्छा, चुन्नीलाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो। (चूनेवाला निकाला जाता है, भिश्ती लाया जाता है) क्यों बे भिश्ती ! गंगा-जमुना की किश्ती ! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई ?

भिश्ती—महाराज ! गुलाम का कोई कसूर नहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दी कि उसमें पानी जादे आ गया।

राजा—अच्छा, कस्साई को लाओ, भिश्ती निकालो। (लोग भिश्ती को निकालते हैं कस्साई को लाते हैं) क्यों वे कस्साई, मशक ऐसी क्यों बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई ?

कस्साई—महाराज ! गँड़ेरिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेड़ मेरे हाथ बेची कि उसकी मशक बड़ी बन गई।

राजा—अच्छा कस्साई को निकालो, गँड़ेरिए को लाओ। (कसाई निकाला जाता है, गँड़ेरिया आता है) क्यों बे ऊख पौंड़े के गँड़ेरिये, ऐसी बड़ी भेड़ क्यों बेचा कि बकरी मर गई ?

गँड़ेरिया—महाराज ! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उसके देखने में मैंने छोटी बड़ी भेड़ का खयाल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।

राजा—अच्छा, इसको निकालो, कोतवाल को अभी सरबमुहर पकड़ लाओ।) गँड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा आता है) क्यों बे कोतवाल ! तैंने सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गँड़ेरिए ने घबड़ाकर बड़ी भेड़ बेची, जिससे बकरी गिरकर कल्लू बनियाँ दब गया ?

कोतवाल—महाराज महाराज ! मैंने तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इंतजाम के वास्ते जाता था।

मंत्री—(आप ही आप) यह तो बड़ा गजब हुआ, ऐसा न हो कि यह बेवकूफ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फाँसी दे। (कोतवाल से) यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाला ?

राजा—हाँ हाँ, यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाला कि उसकी बकरी दबी ?

कोतवाल—महाराज महाराज—

राजा—कुछ नहीं, महाराज महाराज ले जाओ, कोतवाल को अभी फाँसी दो। दरबार बरखास्त।

(लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मंत्री को पकड़कर राजा जाते हैं) (जवनिका गिरती है)

पाँचवाँ अङ्क

स्थान—अरण्य

(गोवरधनदास गाते हुए आते हैं)

(राग काफी)

अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा॥
नीच ऊँच सब एकहि ऐसे। जैसे भँडुए पंडित तैसे॥
कुल-मरजाद न मान बड़ाई। सबै एक से लोग-लुगाई॥
जात-पाँत पूछै नहिं कोई। हरि को भजै सो हरि का होई॥
बेश्या जोरू एक समाना। बकरी गउ एक करि जाना॥
साँचे मारे मारे डोलैं। छली दुष्ट सिर चढ़ि चढ़ि बोलैं॥
प्रगट सभ्य अंतर छलधारी। सोई राजसभा बल भारी॥
साँच कहैं ते पनही खावैं। झूठे बहु बिधि पदवी पावैं॥
छलियन के एका के आगे। लाख कहौ एकहु नहिं लागे॥
भीतर होइ मलिन की कारो। चहिए बाहर रँग चटकारो॥
धर्म अधर्म एक दरसाई। राजा करे सो न्याव सदाई॥
भीतर स्वाहा बाहर सादे। राज करहिं अमले औरु प्यादे॥
अंधाधुंध मच्यौ सब देसा। मानहुँ राजा रहत बिदेसा॥
गो द्विज श्रुति आदर नहिं होई। मानहुँ नृपति बिधर्मी कोई॥
ऊँच नीच सब एकहिं सारा। मानहुँ ब्रह्म-ज्ञान बिस्तारा॥
अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा॥

(बैठकर मिठाई खाता है)

—गुरुजी ने हमको नाहक यहाँ रहने को मना किया था। माना कि देस बहुत बुरा है, पर अपना क्या? अपने किसी राजकाज में थोड़े हैं कि कुछ डर है, मिठाई चाभना, मजे में आनन्द से रामभजन करना।

(मिठाई खाता है चार प्यादे चार ओर से आकर उसको पकड़ लेते हैं)

प० प्या०—चल बे चल, बहुत मिठाई खाकर मुटाया है। आज पूरी हो गई।

दू० प्या०—बाबाजी चलिए, नमोनारायन कीजिए।

गोबरधन०—(घबड़ाकर) हैं! यह आफत कहाँ से आई! अरे भाई, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मुझको पकड़ते हो?

प० प्या०—आपने बिगाड़ा है या बनाया है इससे क्या मतलब, अब चलिए। फाँसी चढ़िए।

गोबरधन०—फाँसी! अरे बाप रे बाप फाँसी! मैंने किसकी जमा लूटी है कि मुझको फाँसी! मैंने किसके प्राण मारे कि मुझको फाँसी!

दू० प्या०—आप बड़े मोटे हैं, इस वास्ते फाँसी होती है।

गोबरधन०—मोटे होने से फाँसी? यह कहाँ का न्याय है! अरे, हँसी फकीरों से नहीं करनी होती।

प० प्या०—जब सूली चढ़ लीजिएगा तब मालूम होगा कि हँसी है कि सच। सीधी राह से चलते हौ कि घसीटकर ले चलें?

गोबरधन०—अरे बाबा, क्यों बेकसूर का प्राण मारते हो? भगवान के यहाँ क्या जवाब दोगे?

प० प्या०—भगवान को जवाब राजा देगा। हमको क्या मतलब। हम तो हुक्मी बंदे हैं।

गोबरधन०—तब भी बाबा बात क्या है कि हम फकीर आदमी को नाहक फाँसी देते हो?

प० प्या०—बात यह है कि कल कोतवाल को फाँसी का हुकुम हुआ था। जब फाँसी देने को उसको ले गए, तो फाँसी का फंदा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज किया, इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़कर फाँसी दे दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सजा होनी जरूर है, नहीं तो न्याव न होगा। इसी वास्ते तुमको ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फाँसी दें।

गोबरधन०—तो क्या और कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिलता जो मुझ अनाथ फकीर को फाँसी देते हैं ?

प० प्या०—इसमें दो बात है—एक तो नगर भर में राजा के न्याव के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़ें तो वह न-जानें क्या बात बनावे कि हमीं लोगों के सिर कहीं न घहराय और फिर इस राज में साधू महात्मा इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इससे तुम्हीं को फाँसी देंगे।

गोबरधन०—दुहाई परमेश्वर की, अरे मैं नाहक मारा जाता हूँ ! अरे यहाँ बड़ा ही अंधेर है, अरे गुरुजी महाराज का कहा मैंने न माना उसका फल मुझको भोगना पड़ा। गुरुजी कहाँ हो ! आओ, मेरे प्राण बचाओ, अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूँ। गुरुजी गुरुजी—

(गोबरधनदास चिल्लाता है, प्यादे उसको पकड़कर ले जाते हैं)

(जवनिका गिरती है)

———

छठा अङ्क

स्थान—श्मशान

(गोबरधनदास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश)

गोबरधन०—हाय बाप रे! मुझे बेकसूर ही फाँसी देते हैं। अरे भाइयो, कुछ तो धरम बिचारो! अरे मुझ गरीब को फाँसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा? अरे मुझे छोड़ दो। हाय! हाय! (रोता है और छुड़ाने का यत्न करता है)

प० सिपाही—अबे, चुप रह—राजा का हुकुम भला कहीं टल सकता है? यह तेरा आखरी दम है, राम का नाम ले—बेफ़ाइदा क्यों शोर करता है? चुप रह—

गोबरधन०—हाय! मैंने गुरुजी का कहना न माना, उसी का यह फल है। गुरुजी ने कहा था कि ऐसे नगर में न रहना चाहिए, यह मैंने न सुना! अरे! इस नगर का नाम ही अंधेरनगरी और राजा का नाम चौपट्ट है, तब बचने की कौन आशा है। अरे! इस नगरी में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है जो इस फकीर को बचावे। गुरुजी कहाँ हो? बचाओ-बचाओ—गुरुजी—गुरुजी—

(रोता है, सिपाही) लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं। गुरुजी और नारायणदास आते हैं)

गुरु—अरे बच्चा गोबरधनदास! तेरी यह क्या दशा है?

गोबरधन०—(गुरु को हाथ जोड़कर) गुरुजी! दीवार के नीचे बकरी दब गई, सो इसके लिये मुझे फाँसी देते हैं, गुरुजी बचाओ।

गुरु—अरे बच्चा! मैंने तो पहले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं; तैने मेरा कहना नहीं सुना।

गोबरधन०—मैंने आपका कहा नहीं माना, उसी का यह फल मिला। आपके सिवा अब ऐसा कोई नहीं है जो रक्षा करे।

मैं आप ही का हूँ, आपके सिवा और कोई नहीं। (पैर पकड़कर रोता है)

गुरु—कोई चिंता नहीं, नारायण सब समर्थ है। (भौं चढ़ाकर सिपाहियों से) सुनो, मुझको अपने शिष्य को अंतिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारे हो जाओ, देखो मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हारा भला न होगा।

सिपाही—नहीं महाराज, हम लोग हट जाते हैं। आप बेशक उपदेश कीजिए।

(सिपाही हट जाते हैं। गुरुजी चेले के कान में कुछ समझाते हैं)

गोबरधन०—(प्रगट) तब तो गुरुजी हम अभी फाँसी चढ़ेंगे।

गुरु—नहीं बच्चा, मुझको चढ़ने दे।

गोबरधन०—नहीं गुरुजी, हम फाँसी पड़ेंगे।

गुरु—नहीं बच्चा हम। इतना समझाया नहीं मानता, हम बूढ़े भए, हमको जाने दे।

गोबरधन०—स्वर्ग जाने में बूढ़ा जवान क्या? आप तो सिद्ध हो, आपको गति-अगति से क्या? मैं फाँसी चढ़ूँगा।

(इसी प्रकार दोनों हुज्जत करते हैं—सिपाही लोग परस्पर चकित होते हैं)

प० सिपाही—भाई! यह क्या माजरा है, कुछ समझ नहीं पड़ता।

दू० सिपाही—हम भी नहीं समझ सकते कि यह कैसा गबड़ा है।

(राजा, मंत्री, कोतवाल आते हैं)

राजा—यह क्या गोलमाल है?

प० सिपाही—महाराज! चेला कहता है मैं फाँसी पड़ूँगा, गुरु कहता है मैं पड़ूँगा; कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है।

राजा—(गुरु से) बाबाजी! बोलो। काहे को आप फाँसी चढ़ते हैं?

गुरु—राजा! इस समय ऐसी साइत है कि जो मरेगा सीधा बैकुंठ जायगा।

मंत्री—तब तो हमीं फाँसी चढ़ेंगे।

गोबरधन०—हम हम। हमको तो हुकुम है।

कोतवाल—हम लटकेंगे। हमारे सबब तो दीवार गिरी।

राजा—चुप रहो, सब लोग। राजा के आछत और कौन बैकुंठ जा सकता है! हमको फाँसी चढ़ाओ, जल्दी, जल्दी।

गुरु—जहाँ न धर्म्म न बुद्धि नहिं नीति न सुजान-समाज।
ते ऐसहि आपुहि नसैं, जैसे चौपटराज॥

(राजा को लोग टिकठी पर खड़ा करते हैं)

(पटाक्षेप)

———

सतीप्रताप

नाटक

संवत् १९४१

सतीप्रताप

नाटक

संवत् १९४१

नवोदिता हरिश्चंद्रचंद्रिका अक्टूबर
सन् १८८४ ई० में प्रकाशित

सतीप्रताप

(एक गीतिरूपक)

पहला दृश्य

स्थान—हिमालय का अधोभाग

(तृण-लता-वेष्टित एक टीले पर बैठी हुई तीन अप्सरा गाती हैं)

प० अप्सरा—

(राग झिंझौटी)

जय जय श्री रुकमिन महरानी।
निज पति त्रिभुवन-पति हरिपद में छाया सी लपटानी॥
सती-सिरोमनि रूपराशि करुनामय सब गुनखानी।
आदिशक्ति जगकारनि पालनि निज भक्तन सुखदानी॥

दू० अप्सरा—

(राग जंगला या पीलू)

जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान॥
अनसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान।
पति-देवता तीय जगधन-धन गावत बेद-पुरान॥
धन्य देस कुल जहँ निबसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय सब जन्म लेत ये धन्य ब्याह असथान॥
सब समर्थ पतिबरता नारी इन सम और न आन।
याही ते स्वर्गहु मे इनको करत सबै गुन-गान॥

ती० अप्सरा—

(रागिनी बहार)

नवल बन फूली द्रुम-बेली।
लहलह लहकहिं महमहकहिं मधुर सुगंधहिं रेली॥
प्रकृति नवोढ़ा सजे खरी मनु भूषन बसन बनाई।

आँचर उड़त बात-बस फहरत प्रेम-धुजा लहराई ॥
गूँजहिं भवर बिहंगम डोलहिं बोलहिं प्रकृति बधाई ।
पुतली सी जित-तित तितली-गन फिरहिं सुगंध लुभाई ॥
लहरहिं जल लहकहिं सरोजगन हिलहिं पात तरु डारी ।
लखि रितुपति आगम सगरे जग मनहुँ कुलाहल भारी ॥

(जवनिका गिरती है)

———

दूसरा दृश्य

स्थान—तपोवन, लतामंडप में सत्यवान बैठा हुआ है।

(रंग गीति—पीलू—धमार)

(नेपथ्य में गान)

"क्यों फकीर बन आया बे मेरे बारे जोगी।
नई बैस कोमल अंगन पर काहे भभूत रमाया बे॥
किन बे मात-पिता तेरे जोगी जिन तोहि नाहिं मनाया बे।
कौंचे जिय कहु काके कारन प्यारे जोग कमाया बे॥"

(चैती-गौरी—तिताला)

विदेसिया बे प्रीति की रीति न जानी।
प्रीति की रीति कठिन अति प्यारे कोई बिरले पहिचानी॥

सत्यवान—यह कोमल स्वर कहाँ से कान में आया? प्रति-ध्वनि के साथ यह स्वर ऐसा गूँज रहा है कि मेरी सारी कदंबखंडी शब्द-ब्रह्ममय हो गई। बीच-बीच में मोर कुहुक-कुहुक कर और भी गूँज दूनी कर देते हैं। (कुछ सोचकर) हाय! मेरा मन इस समय भी स्थिर नहीं। हाय! प्रासादों में स्फटिक की छत पर चलने में जिनके चरण को कष्ट होता था आज वह कंटक-मय पथ में नंगे पावों फिर रहे हैं और दुग्ध-फेन सी सेज के बदले आज मृगचर्म पर सोते हैं। हाय! हमारे माता-पिता बुढ़ापे से सामर्थ्यहीन तो थे ही ऊपर से दैव ने उन्हें अंधा भी बनाया। हाय! अभागे सत्यवान से भी कभी माता-पिता की सेवा न बन पड़ी! कभी उनके वात्सल्य-पूर्ण प्रेमामृत वचन ने मेरे कान न शीतल किए। और न ऐसा होना है। जनमते ही तो तपस्या करनी पड़ी। धन्य विधाता! दरिद्र को धनवान् और धनवान् को दरिद्र करना तो तुम्हें एक खेल है। किन्तु दरिद्र बना के फिर क्यों कष्ट देते हो! दरिद्र ही सही, पर मन को शान्ति दो। भला दो घड़ी भी वृद्ध माता-पिता की सेवा करने पावें। (चिंता)

(सावित्री को घेरे हुए गाते-गाते मधुकरी, सुरबाला और लवंगी का आना और फूल बीनना)

(गौरी)

सखीजन—

भौंरा रे बौरान्यो लखि बौर ।
लुबध्यौ उतहि फिरत मडरान्यौ जात कहूँ नहिं और—
भौंरा रे बौरान्यो ।

(चैती गौरी)

फूलन लागे राम बन नवल गुलबवा ।
फूलन लागे राम—महुआ फले आम बौराने डारहि डार
भँवरवाँ झूलन लागे राम ।

(गौरी)

पवन लगि डोलत वन की पतियाँ ।
मानहुँ पथिकन निकट बुलावहिं कहन प्रेम की बतियाँ ॥
अलक हिलत फहरत तन सारी होत हैं सीतल छतियाँ ।
यह छबि लखि ऐसी जिय आवत इतहि बितैये रतियाँ ॥

सुरबाला—सखी, कैसा सुंदर वन है ।

लवंगी—और यह बारी भी कैसी मनोहर है ।

मधुकरी—आहा ! तपोवन ऋषि-मुनि लोगों को कैसा सुखदायक होता है ।

सावित्री—सखी, ऋषी-मुनि क्या, तपोवन सभी को सुख देता है ।

सुर०—क्योंकि यहाँ सदा वसंत ऋतु रहती है न ।

सावित्री—वसंत ही से नहीं तपोवन ऐसा हुई है ।

मधु०—अहा ! यह कुञ्ज कैसा सुन्दर है । सखी, देखो माधवी लता इस कुञ्ज पर कैसी घनघोर छाई हुई है ।

सावित्री—सहज वस्तुएँ सभी मनोहर होती हैं । देखो, इस पर फूल कैसे सुंदर फूले हैं जैसे किसी ने देवता की फूलमंडली बनाई हो ।

सुर०—और उधर से हवा कैसी ठंढी आती है।

लवंगी—और हवा में सुगन्ध कैसी है।

मधु०—सखी! एक-टक उधर ही क्यों देख रही हो!

सुर०—सच तो सखी। वहाँ क्या है जो उधर ही ऐसी दृष्टि गड़ा रही हो?

लवंगी—तू क्या जाने। तपोवन में सैकड़ों वस्तुएँ ऐसी होती हैं।

(राग सोरठ)

सावित्री—

लखो सखि भूतल चंद खस्यों।
राहु-केतु-भय छोड़ि रोहिनिहि या बन आइ बस्यों॥
कै सिव-जय-हित करत तपस्या मनसिज इत निबस्यो।
कै लोक मनदेव कुञ्ज में मनविहार बिलस्यो॥

मधु०—सच तो, तपसियों में ऐसा रूप!

सुर०—जाने दे। वनवासी तपस्वी में ऐसा रूप कहाँ?

सावित्री—यह मत कहो। विधना की कारीगरी जैसी नगर में वैसी ही वन में।

(सत्यवान की ओर सतृष्ण दृष्टिपात)

सुर०—देखती हो? एक-मन एक-प्रान होकर कैसा सोच रहो है?

लवंगी—(परिहास से) आज जो यह तापस-कुमार के बदले राजकुमार होते तो घर बैठे गंगा बही थी।

मधु०—सखी, इसका कुछ नेम नहीं है कि राजकुमारी का ब्याह राजकुमार ही से हो।

सावित्री—विधाता ने जिस भाव में राजपुत्र को सिरजा है उसी भाव में मुनि-पुत्र को। और फिर राजधन से तपोधन कुछ कम नहीं होता।

सत्य०—(आप ही आप) यह क्या वनदेवी आई हैं!

मधु०—हम उनके पास जाकर प्रणाम तो कर आवें।

(मधुकरी का कुञ्ज की ओर बढ़ना और सत्यवान का लतामण्डप से निकलकर बाहर बैठना)

मधु०—(सत्यवान के पास जाकर) प्रणाम। (हाथ जोड़ कर सिर झुकाना)

सत्य०—आयुष्मती भव। आप लोग कौन हैं ?

मधु०—हम लोग अपनी सखी मद्र देश के जयंतीनगर के राजा अश्वपति की कुमारी सावित्री के साथ फूल बीनने आई हैं।

सत्य०—(स्वगत) राजकुमारी ! वामन को चंद्रस्पर्श।

मधु०—कृपानिधान ! आप सदा यहीं निवास करते हैं ?

सत्य०—जब तक दैव अनुकूल न हो, यहीं निवास है।

मधु०—इससे तो बोध होता है कि किसी राजभवन को सूना करके आप यहाँ आए हैं।

सत्य०—सखी ! उन बातों को जाने दो।

मधु०—हमारे अनुरोध से कहना ही होगा। दयालु सज्जनगण अतिथि की यांचा व्यर्थ नहीं करते, विशेष कर पहले ही पहल।

सत्य०—हम शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र हैं। हमारा नाम चित्राश्व वा सत्यवान् है। इस मेध्यारण्य नामक वन में पिता की सेवा करते हैं।

मधु०—(आप ही आप) तभी ! गंगा समुद्र छोड़कर और जलाशय की ओर नहीं झुकती। (प्रगट) तो आज्ञा हो तो अब प्रणाम करूँ।

सत्य०—(कुछ उदास होकर) यह क्यों ? विना आतिथ्य स्वीकार किए हुए ?

मधु०—इसका तो मैं सखी से पूछ लूँ तो उत्तर दूँ। (सावित्री के पास आकर) सखी ! कुमार तापस कहते हैं कि आतिथ्य स्वीकार करना होगा।

(सावित्री सखियों का मुख देखती है)

लवंगी—(परिहास से) अवश्य अवश्य। इसमें क्या हानि है।

सावित्री—(कुछ लज्जा करके) सखी, उनसे निवेदन कर दे कि हम लोग माता-पिता की आज्ञा लेकर तब किसी दिन आतिथ्य स्वीकार करेंगे, आज विलंब भी हुआ है।

मधु०—(सत्यवान के पास जाकर) कुमारी कहती हैं कि किसी दिन माता-पिता की आज्ञा लेकर हम आवेंगे तब आतिथ्य स्वीकार करेंगे। आप तो जानते ही हैं कि आर्यकुल की ललनागण किसी अवस्था में भी स्वतंत्र नहीं हैं। इससे आज क्षमा कीजिए।

सत्य०—(कुछ उदास होकर) अच्छा। (सखियों के साथ सावित्री का प्रस्थान। उधर ही देखता है) यह क्या ? चित्त में ऐसा विकार क्यों ? क्या स्वर्ण और रत्न में भी मलिनता ? क्या अग्नि में भी कीट की उत्पत्ति ? उह ! फिर वही ध्यान ! यह क्या ? अब तो जी नहीं मानता। चलें आगे बढ़ कर बदली में छिपते हुए चंद्रमा की शोभा देखकर जी को शांति दें।

[जाता है]

(जवनिका गिरती है)

—०—

तीसरा दृश्य

स्थान—जयंती नगर का गृहोद्यान

(जोगिन बनी हुई सावित्री ध्यान करती है)

(नेपथ्य में बैतालिक गान)

प्र० वै०—नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि,
'फूल-माल गरें बन झालरि सी लाई है।
भँवर-गुँजार हरि-नाम को उचार तिमि,
कोकिला सी कुहुकि बियोग राग गाई है॥
'हरिचंद' तजि पतझार घर-बार सबै,
बौरी बनि दौरी चारु पौन ऐसी धाई है।
तेरे बिछुरे तें प्रान कंत कै हिमंत अंत,
तेरी प्रेम-जोगिनी बसंत बनि आई है॥

द्वि० वै०—पीरो तन पर्‍यौ फूली सरसों सरस सोई,
मन मुरझान्यौ पतझार मनो लाई है।
सीरी स्वास त्रिबिध समीर सी बहति सदा,
अँखियाँ बरसि मधुझरि सी लगाई है॥
'हरिचंद' फूले मन मैन के मसूसन सों,
ताही सों रसाल बाल बदि कै बौराई है।
तेरे बिछुरे तें प्रान कंत कै हिमंत अंत,
तेरी प्रेम-जोगिनी बसंत बनि आई है॥

प्र० वै०—"बरुनी बघबर मैं गुदरी पलक दोऊ,
कोए राते बसन भगौंहैं भेख रखियाँ।
बूड़ी जल ही मैं दिन जामिनी हूँ जागैं औंह,
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ॥
आँसू ज्यौं फटिक-माल काजर की सेली पैन्हि,
भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ।
दीजिए दरस 'देव' कीजिए सँजोगिन, ये,
जोगिन ह्वै बैठी हैं बियोगिन की अँखियाँ॥"

द्वि० वै०—एकै ध्यान एकै ज्ञान एकै मन एकै प्रान,
दसों दिसि अबिचल एकै तान तानो है।
जग मैं बसत हूँ मनहुँ जग बाहिर सी,
हियो तन दोऊ निसि-दिवस तपानो है॥
'हरीचंद' जोग की जुगति रिद्धि सिद्धि सब,
तजि तिनका सी एक नेह को निभानो है।
बिना फल आस सीस सहनी सहस्र त्रास,
जोगिन सों कठिन बियोगिन को बानो है॥

(सावित्री ध्यान से आँख खोलती है)

सावित्री—अहा! एक पहर दिन आ गया। सखीगण अब तक नहीं आईं। इसी से ध्यान भी निर्विघ्न हुआ। हमारी वासना सत्य है तो अंतर्गति जाननेवाली सतीकुल-सरोजिनी भगवती भवानी हमारी भावना अवश्य पूर्ण करेंगी। मन बच कर्म से जो हमारी भक्ति पति के चरणारविंद में है तो वे हमको अवश्य ही मिलेंगे। अथवा न भी मिलें तो इस जन्म में तो दूसरा पति हो नहीं सकता। स्त्रीधर्म बड़ा कठिन है। जिसको एक बेर मन से पति कह कर वरण किया उसको छोड़ कर स्त्री-शरीर की अब इस जगत् में कौन गति है। पिता-माता बड़े धार्मिक हैं। सखियों के मुख से यह संवाद सुन कर वह अवश्य उचित ही करेंगे। वा न करेंगे तो भी इस जन्म में अन्य पुरुष अब मेरे हेतु कोई है नहीं। (अपना वेष देखकर) अहा! यह वेष मुझको कैसा प्रिय बोध होता है। जो वेष हमारे जीवितेश्वर धारण करें वह क्यों न प्रिय हो। इसके आगे बहुमूल्य हीरों के हार और चमत्कार-दर्शक वस्त्र सब तुच्छ हैं। वही वस्तु प्यारी है जो प्यारे को प्यारी हो। नहीं तो सर्वसंपत्ति की मूलकारण-स्वरूपा देवी पार्वती भगवान् भूतनाथ की परिचर्या इस वेष से क्यों करतीं? सतीकुलतिलका देवी जनकनंदिनी को अयोध्या के बड़े-बड़े स्वर्ग-विनिंदक प्रासाद और शचीदुर्लभ गृह-सामग्री से भी वन की पर्णकुटी और पर्वत-शिला अति प्रिय थीं, क्योंकि सुख तो केवल प्राणनाथ की चरणपरिचर्या में है। जब तक

अपना स्वतंत्र सुख है तब तक प्रेम नहीं। पत्नी का सुख एक-मात्र पति की सेवा है। जिस बात में प्रियतम की रुचि उसी में सहधर्मिणी की रुचि। अहा! वह भी कोई धन्य दिन आवेगा जब हम भी अपने प्राणाराध्य देवता प्रियतम पति की चरणसेवा में नियुक्त होंगी। वृद्ध श्वशुर और सास के हेतु पाक आदि निर्माण करके उनका परितोष करेंगी। कुसुम, दूर्वा, तुलसी, समिधा इत्यादि बीनने को पति के साथ वन में घूमेंगी। परिश्रम से थकित प्राणनायक के स्वेद-सीकर अपने अंचल से पोंछकर मंद-मंद वनपत्र के व्यजनवायु से उनका श्रीअंग शीतल और चरण-संवाहनादि से श्रमगत करेंगी। (नेत्र से आँसू गिरते हैं)

(गान करते हुए सखीगण का आगमन)

(ठुमरी)

सखीत्रय—

देखो मेरी नई जोगिनियाँ आई हो—जोगी पिय मन भाई हो।
खुले केस गोरे मुख सोहत जोहत दृग सुखदाई हो॥
नव छाती गाती कसि बाँधी कर जप माल सुहाई हो।
तन कंचन दुति बसन गेरुआ दूनी छवि उपजाई हो॥
देखो मेरी नई जोगिनियाँ आई हो।

(सावित्री के पास जाकर)

(लावनी)

लवंगी—

सखि! बाले जोबन महा कठिन व्रत कीनो।
यह जोग भेख कोमल अंगन पर लीनो॥
अबहीं दिन तुमरे खेल-कूद के प्यारी।
पितु मातु चाव सों भवन बसो सुकुमारी॥
ओढ़ौ पहिरौ लखि सुख पावै महतारी।
बिलसौ गृह संपति सखी गईं बलिहारी॥
तजि देहु स्वाँग जो सबही बिधि सों हीनो।
यह जोग-भेष जो कोमल अँग पर लीनो॥

मधु०—सखि ! यही जगत की चाल जिती हैं क्वारी ।
उनके सबही विधि मात पिता अधिकारी ॥
जेहि चाहैं ताकहँ दान करैं निज बारी ।
यामैं कछु कहनो तजनो लाज दुलारी ॥
बिनती मानहु हठ माँहि वृथा चित दीनो ।
यह जोग-भेष जो कोमल अँग पर लीनो ॥

सुर०—सखि ! औरहु राजकुमार बहुत जग माँहीं ।
विद्या-बुधि-गुन-बल-रूप-समूह लखाहीं ॥
चिरजीवी प्रेमी धनी अनेक सुनाहीं ।
का उन सम कोऊ और जगत में नाहीं ॥
जाके हित तुम तजि राजभेष सुख-भीनो ।
यह जोग-भेष निज कोमल अँग पर लीनो ॥

सावित्री—(ईषत् क्रोध से)
बस-बस ! रसना रोको ऐसी मति भाखो ।
कछु धरमहु को भय अपने जिय मैं राखो ॥
कुल-कामिनि है गनिका-घरमहि अभिलाखो ।
तजि अमृतफल क्यों विषमय विषयहि चाखो ॥
सब समुझि-बूझि क्यों निंदहु मूरख तीनों ।
यह जोग-भेष जो कोमल अँग पर लीनो ॥

लवंगी—सखी को कैसा जल्दी क्रोध आया है ?

सावित्री—अनुचित बात सुनकर किसको क्रोध न आवेगा ?

सुर०—सखी ! हम लोगों ने जो वचन दिया था वह पूरा किया ।

सावित्री—वचन कैसा ?

सुर०—सखी, तुम्हारे माता-पिता ने हम लोगों से वचन लिया था कि जहाँ तक हो सकेगा हम लोग तुमको इस मनोरथ से निवृत्त करेंगे ।

सावित्री—निवृत्त करोगी ? धर्मपथ से ? सत्य प्रेम से ? और इसी शरीर में ?

सुर०—सखी, शांत भाव धारण करो । हम लोग तुम्हारी सखी हैं, कोई अन्य नहीं हैं । जिसमें तुमको सुख मिले वही हम लोगों

को करना है। यह सब जो कुछ कहा-सुना गया, केवल ऊपरी जी से।

सावित्री—तब कुछ चिंता नहीं। चलो, अब हम लोग माता के पास चलें। किंतु वहाँ मेरे सामने इन बातों को मत छेड़ना।

सखीगण—अच्छा, चलो।

(जवनिका गिरती है)

चौथा दृश्य

स्थान—तपोवन। द्युमत्सेन का आश्रम

(द्युमत्सेन, उनकी स्त्री और ऋषि बैठे हैं)

द्युमत्सेन—ऐसे ही अनेक प्रकार के कष्ट उठाए हैं, कहाँ तक वर्णन किया जाय।

पहला ऋषि—यह आपकी सज्जनता का फल है।

(छप्पय)

क्यौं उपज्यौ नरलोक? ग्राम के निकट भयो क्यौं?
सघन पात सों सीतल छाया दान दयो क्यौं?
मीठे फल क्यौं फल्यो? फल्यौ तो नम्र भयो कित?
नम्र भयो तो सहु सिर पै बहु बिपति लोक-कृत।
तोहि तोरि मरोरि डारिहैं पाथर हनिहैं सबहि नित।
जे सज्जन ह्वै नै कै चलहिं तिनकी यह दुरगति उचित॥

दूसरा ऋषि—ऐसा मत कहिए। वरंच यों कहिए—

चातक को दुख दूर कियो पुनि दीनो सब जग जीवन भारी।
पूरे नदी-नद ताल-तलैया किए सब भाँति किसान सुखारी॥
सूखेहू रूखन कीने हरे जग पूरयौ महामुद दै निज बारी।
हे घन आसिन लौं इतनो करि रीते भए हूँ बड़ाई तिहारी॥

द्युमत्सेन—मोहिं न धन को सोच भाग्य-बस होत जात धन।
पुनि निरधन सो दोस न होत यहौ गुन गुनि मन॥
मोकहँ इक दुख यहै जु प्रेमिन हू मोहिं त्याग्यौ।
बिना द्रव्य के स्वानहु नहिं मोसों अनुराग्यौ॥
सब मित्रन छोड़ी मित्रता बंधुन हू नातो तज्यौ।
जो दास रह्यो मम गेह को मिलनहुँ मैं अब सो लज्यौ॥

प० ऋषि—तो इसमें आपकी क्या हानि है? ऐसे लोगों से न मिलना ही अच्छा है।

द्युमत्सेन—नहीं, उनके न मिलने का मुझको अणुमात्र सोच नहीं है। मुझको तो ऐसे तुच्छमना लोगों के ऊपर उलटी दया उत्पन्न होती है। मुझको अपनी निर्धनता केवल उस समय अति गड़ाती है जब किसी सत्पुरुष कुलीन को द्रव्य के अभाव से दुःखी देखता हूँ। उस समय मुझको निस्संदेह यह हाय होती है कि आज द्रव्य होता तो मैं उसकी सहायता करता।

दू० ऋषि—आपके मन में इसका खेद होता है तो मानसिक पुण्य आपको हो चुका। और आपकी मनोवृत्ति ऐसी है तो वह अवश्य एक न एक दिन फलवती होगी।

प० ऋषि—सज्जनगण स्वयं दुर्दशाग्रस्त रहते हैं, तब भी उनसे जगत में नाना प्रकार के कल्याण ही होते हैं।

द्युमत्सेन—अब मुझसे किसी का क्या कल्याण होगा! बुढ़ापे से शरीर में पौरुष हई नहीं। एक आँख थी सो भी गई। तीर्थभ्रमण और देवदर्शन से भी रहित हुए।

प० ऋषि—आपके नेत्रों के इतने निर्बल हो जाने का क्या कारण है? अभी कुछ आपकी अवस्था अति वृद्ध नहीं हुई है।

द्युमत्सेन—वही कारण जो हमने कहा था। (उदास होकर) पुत्रशोक से बढ़कर जगत में कोई शोक नहीं है। गणक लोगों ने यह कहकर कि तुम्हारा पुत्र अल्पायु है, मेरा चित्त और भी तोड़ रखा है। इसी से न मैं ऐसा घर, ऐसी लक्ष्मी सी बहू पाकर भी अभी विवाह-संबंध नहीं स्थिर करता।

दू० ऋषि—अहा! तभी महाराज अश्वपति और उनकी रानी इस संबंध से इतने उदास हैं। केवल कन्या के अनुरोध से संबंध करने कहते हैं।

(हरिनाम गान करते हुए नारदजी का आगमन)

नारद—(नाचते और वीणा बजाते हुए)

(चाल नामकीर्तन महाराष्ट्रीय कटाव)

जय केशव करुणा-कंदा। जय नारायण गोविंदा॥
जय गोपीपति राधा-नायक। कृष्ण कमल-लोचन सुखदायक॥

माधव सुरपति रावण-हंता। सीतापति जदुपति श्रीकंता॥
बुद्ध नृसिंह परशुधर बावन। मच्छ-कच्छ-बपुधर गज-रावन॥
कल्कि बराह मुकुन्दा। जय केशव करुणा कंदा॥
जय जय विष्णु भक्त भयहारी। बृंदावन - बैकुण्ठ - बिहारी॥
जसुदा-सुअन देवकीनंदन। जगबंदन प्रभु कंसनिकंदन॥
शंख-चक्र-कौमोदकि - धारी। वंशीधर बकबदन-बिदारी॥
जय बृंदावन - चंदा। जय केशव करुणा कंदा॥
जय नारायण गोविंदा।

(सब लोग प्रणाम करके बैठाते हैं)

द्युमत्सेन—हमारे धन्य भाग कि इस दीनावस्था में आपके दर्शन हुए।

नारद—राजन्! तुम्हारे पास सत्यधन, तपोधन, धैर्यधन अनेक धन हैं, तुम क्यों दीन हो? और आज हम तुमको एक अति शुभ संदेश देने को आए हैं। तुम्हारे पुत्र का विवाहसंबंध हम अभी स्थिर किए आते हैं। सावित्री के पिता को भी समझा आए हैं कि उनकी कन्या सावित्री अपने उज्ज्वल पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से सब आपत्तियों को उल्लंघन करके सुखपूर्वक कालयापन करेगी और अपने पवित्र चरित्र से दोनों कुल का मान बढ़ावेगी। तुमसे भी यही कहने आए हैं कि सब संदेह छोड़कर विवाह का संबंध पक्का करो।

द्युमत्सेन—मुझको आपकी आज्ञा कभी उल्लंघनीय नहीं है। किन्तु—

नारद—किंतु किंतु कुछ नहीं। विशेष हम इस समय नहीं कह सकते। इतना मात्र निश्चय जानो कि अन्त में सब कल्याण है।

द्युमत्सेन—जो आज्ञा।

नारद—अब हम जाते हैं।

(गान चाल भैरव, ताल इकताला वा बाउल भजन की
चाल पर ताल आड़ा)

बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम।
गोविंद गोविंद केशव केशव गोपाल गोपाल माधव माधव।

हरि हरि हरि वंशीधर वंशीधर श्याम।
नारायण वासुदेव नंदनन्दन जगबंदन।
वृंदावन चारु चंद्र गरे गुंजदाम।
'हरीचंद' जन-रंजन सरन सुखद मधुर मूर्ति
राधापति पूर्ण करन सतत भक्त काम॥

(नृत्य और गीत)

(जवनिका गिरती है)

———

पाँचवाँ दृश्य †

बनदेवी और बनदेवता आते हैं

दोनों—(गाते हुए, पूरबी)

हम बनबासी हो रामा।
जाहिं न पास नगर के कबहीं सब से रहत उदासी हो रामा॥
फल भोजन फूलन के गहना गिरिकन्दरा निवासी हो रामा।
जगत-जाल सों बचि हम बिहरत केवल प्रेम उपासी हो रामा॥

बनदेवी—(गाती हुई, पूरबी)

आओ प्यारे प्रान हमारे बैठो सीतल छाहीं हो।

बनदेवता—तुमहुँ थकी ग्रीषम दुपहरिया चलौ दिये गलबाहीं हो॥

(दोनों एक कुंज के पास जाते हैं)

बनदेवी—यह रसाल की सीतल छाया तापर मालति छाई हो।

बनदेवता—वैसे तुमहू प्यारी मेरे कंठ रहो लपटाई हो॥

(दोनों कुञ्ज में एक शिला पर बैठते हैं)

बनदेवी—देखहु प्यारे उपबन-सोभा कैसी छई छनाई हो॥

बनदेवता—वासों बढ़ि तुव अङ्ग अङ्ग में प्यारी देत लखाई हो॥

बनदेवी—प्राणनाथ! देखो जब से सती-कुलतिलक श्रीसावित्री देवी के पवित्र चरण इस बन में पड़े हैं तब से इसकी शोभा दूनी हो गई है।

बनदेवता—इस बन में जिस शोभा के अंकुर को महात्मा सत्यवान ने लगा रक्खे थे उसे प्रतिप्राणा सावित्री ने अभिसिंचन कर के पूरी उन्नति पर पहुँचाया। जैसे प्यारी! तुमने हमारे प्रेमांकुर को सींचकर पुष्पान्वित किया।

---

† भारतेन्दु जी ने इस नाटक के केवल चार दृश्य लिखे थे, जिसे बा० राधाकृष्णदास ने बाद को पूरा किया था।

बनदेवी—प्राणवल्लभ ! पति भी स्त्री के लिए कैसा दवता है ।

पति सम जग में नहिं कोउ देव ।
हम अबलन कहँ पति ही को बल प्रानपतिहि कहँ सेव ॥
पतिप्राना नारी सों सुख धन कोउ जग में नहिं लेव ।
पति बिनु नारी जीवन बिरथा ज्यों बारी बिनु नेव ॥

बनदेवता—भगवान तुम्हारी सी पतिप्राणा भार्या सब को दे ।

नारि सम जग में नहिं सुखमूल ।
पतिबरता नारी मिलबे सम सुख नहिं पायो भूल ॥
पति हि उधारे तीन पुरुष संग एक सुलच्छन नारि ।
ऐसी प्राणपियारी ऊपर दीजै सब जग बारि ॥

बनदेवी—आहा ! नाथ ! प्रेम सा अमूल्य रत्न संसार में नहीं है, देखो उसके उदय होते ही तुम्हारे कमल नेत्रों में मुक्ता फूल उठे । (मुह फेर कर आँसू पोछती है, दोनों गले लगकर प्रेमाश्र से अभिसिंचित होते हैं)

दोनों—गाओ सब मिल प्रेम बधाई ।

प्रेमहि सुखसागर अरु प्रेमहि तीन लोक को राई ॥
प्रेम-रज्जु में बँध्यो सकल जग याकी फिरत दुहाई ।
प्रेमनाथ ही की स्वर्गहु में एकछत्र ठकुराई ॥
प्रेमहि जग को जीवन प्रान ।
प्रेमहि सगरो काम करावत प्रेम बढावत मान ॥
बिना प्रेम के जो नर जग में सो नर पसु समान ।
प्रेमहि सुख सम्पति रतन को अति अनुपमतर खान ॥
प्रेम मैं निसि दिन बसत मुरारी ।
बिना प्रेम पैये नहिं पीतम लाख संपदा वारी ॥
बिना प्रेम रीझत नहिं प्यारो बृंदाबिपिन बिहारी ।
प्रेमहि जग को तारन कारन प्रेमहि भवभय-हारी ॥

बनदेवी—(नेपथ्य की ओर देखकर) प्यारे ! देखो वह सती-सिरोमनि सावित्री देवी शोभा को बढ़ावती बन को हँसाती अपने प्राण पति के साथ इसी कुञ्ज में पधारती हैं ।

बनदेवता—और देखो सत्यवान भी प्रेम में मग्न अपनी प्यारी का

मुख एक टक देखता और कोमल पुष्पकली की वर्षा करता मदोन्मत्त झूमता कैसा शोभायमान है। आहा! इन दोनों नव किशोरों को तापसी वेष कैसा सजा है जैसे साक्षात् शिव पार्वती का जोड़ा हो।

बनदेवी—प्यारे! चलो हम लोग इस कुंज की आड़ में से इन दोनों के पवित्र प्रेम-पुरान को सुनकर अपना जीवन चरितार्थ करें।

(दोनों कुञ्ज की ओट में छिपते हैं)

(पटाक्षेप)

———

छठा दृश्य

(मालती कुञ्ज में शिला पर सावित्री और सत्यवान बैठे हैं)

सावित्री—तुम मेरे बहुत जतन के प्यारे।

तुव दरसन-लालसा पियारे कह कह कठिन नेम नहिं धारे॥
तुमहि प्रानधन जीवनसर्वस तुमही मम नैनन के तारे।
अब तौ नेकहुँ नाहिं टरौं पिय दुष्ट काल हू जो पै टारे॥

सत्यवान—(मुखचुम्बन करके) "तुव मुख चंद चकोर ये नैना।
पलक न लगत पलहु बिनु देखे भूलि जात गति पलहु लगै ना॥
अरबरात मिलिबे को निसिदिन मिलेइ रहत मनु कबहुँ मिलै ना।
'भगवत रसिक' रसिक की बातें रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना॥"

दोनों—"प्रीति की रीति ही अति न्यारी।

लोक वेद सब सों कछु उलटी केवल प्रेमिन प्यारी॥
को जानै समझे को याको बिरली समझनहारी।
'हरीचन्द' अनुभव ही लहिए जामैं गिरवरधारी॥"

सत्यवान—प्यारी! जब से तुम यहाँ पधारी तब से इस बन की शोभा ही दूसरी हो गई। आहा! वह सुन्दर राज्य प्रासाद और वे सब सुख के सामान जैसे सुखद थे उन से कहीं बढ़कर यह बन तुम्हारे कारण सुखप्रद है।

सावित्री—नाथ! यह सब केवल तुम्हारा ही प्रभाव है। भला मेरे भाग्य कहाँ जो मैं इस शरीर से तुम्हारी सेवा कर सकूँ; पर न जाने किस देवता की कृपा से आज मैं तुम्हारे चरणों की दासी हुई, जिसके लिये लोग जनम जनम पच मरते हैं पर नहीं पाते। (आँखों में आँसू भर आते हैं)

सत्यवान—(गाढ़ आलिंगन करके) मेरी प्राण! धन्य हमारे भाग्य जो तुम सी नारी हमने पाई। हमारे ऐसा बड़भागी कोई स्वर्ग में भी न होगा। आहा!

हम सम जग में नहिं कोउ आन।
जा घर तुम सी नारि बिराजत ताके कौन समान॥
रूपराशि गुनराशि छबीली प्रेममयी मम जीवन-प्रान।
सकल संपदा वारूँ तुम पर प्यारी चतुर सुजान॥

सावित्री—प्राणनाथ! क्यों मुझे लजाते हो? मैं कदापि तुम्हारे योग्य नहीं। न जाने मेरे कौन से पुरबले पुन्य उदय हुए जो आपकी श्री चरणसेवा मेरे बाँट पड़ी। प्राणवल्लभ! आपके गुणों का अनुभव जो मेरे चित्त को है उसे क्या यह बिचारी चमड़े की जीभ कभी भी जान सकती है? (प्रेमाश्रु आँखों में भर आते हैं)

सत्यवान—चलो रहने दो शिष्टाचार की बातें बहुत हो चुकीं। (ऊपर देख कर) अहो! हम लोगों की बातों में इतना दिन चढ़ आया, पिता के अग्निहोत्र का समय हो गया अभी लकड़ी चुन कर ले जाना है। प्यारी! तुम यहीं ठहरो मैं अभी काष्ठ लेकर आता हूँ।

सावित्री—नहीं प्राणनाथ! तुम्हें जाने देने को जी नहीं चाहता। आज न जाने क्यों जी उदास हो रहा है, न जाने कैसा कैसा जी कर रहा है, आप मत जाइए।

सत्यवान—स्त्रियों का स्वभाव अत्यंत कोमल और प्रेममय होता है, इसी से तुम्हारा जी ऐसा हो रहा है और कुछ बात नहीं है। अब हम जाते हैं।

सावित्री—(दहिनी आँख का फड़कना दिखाकर) नहीं नहीं आप मत जाइये, देखिये मेरी दहिनी आँख भी फड़कती है, आज न जाने क्या होनहार है। मैं आपको न जाने दूँगी।

सत्यवान—यह स्त्रियों के स्वाभाविक दुर्बलता का कारण है और कुछ भी नहीं है। होता वही है जो उसकी इच्छा होती है। अब तुम आग्रह मत करो, हमें जाने दो, देर हो रही है, पिता दिक़ हो रहे होंगे। (जाता है और सावित्री बेर बेर मना करती है और व्याकुलता नाट्य करती है)।

सावित्री—(अत्यंत उदास होकर) आज जी ऐसा क्यों हो रहा है?

आज ऐसा जान पड़ता हैं कि कोई भारी अनर्थ होगा। (चौंक कर) हैं! क्या आज ही वह भयानक दिन है जो मुनि ने बतलाया था? हाय? मैंने बुरा किया जो प्राणनाथ को अकेले जाने दिया। हाय! अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? क्या मुझ निगोड़ी को मौत नहीं है? प्राणनाथ! तुम कहाँ गए? एक बात हमारी सुनते जाओ। (कुछ ठहर कर) जान पड़ता है दूर निकल गये, तो चलूँ मैं ही खोज कर मिलूँ। मैंने बुरा किया जो आज उन्हें अकेले जाने दिया। (अत्यंत व्याकुलता के साथ जाती है)।

(नेपथ्य में गान)

हाय सुख देख सकत नहिं नेक।
महा कठोर विधाता कीनो सुखभंजन की टेक॥
द्वै दिन हू सुख सों नहिं बीतत भोगत जग के चैन।
दुखसागर बोरत अचानचक नेकहु दया करै न॥
जग के झूठे सुख सम्पति में धोखे हु भूलहु नाहिं।
अरे बावरे बेग धाइ गहु चरन-तरोवर छाहिं॥

(पटाक्षेप)

———

सातवाँ दृश्य

(स्थान–घोर अरण्य। एक बड़े वृक्ष के नीचे सत्यवान मूर्छित सा पड़ा है और सावित्री उसका सिर अपने गोद में रक्खे अत्यंत व्याकुल बैठी है)

सावित्री—प्राणनाथ, जीवनधन, यह तुम्हें क्या हुआ ? अरे अभी तो अच्छे बिच्छे हम से बिदा होकर आये थे, अभी यह क्या दशा हो गई ? हाय ! यह गुलाब की पत्ती सा कोमल सुंदर मुख इतनी ही देर में ऐसा श्याम क्यों हो गया ? अरे कोई दौड़ो रे—किसी वैद्य गुणी को बुलाओ—(कुछ ठहर कर) हाय ! यहाँ कौन बैठा है जो मेरी इस विपत्ति में सहायता करेगा। हे दीनानाथ, अशरण-शरण ! मुझे सिवाय तेरे और कोई अवलंब इस समय नहीं है। देखो तुम्हारे रहते मैं अबला इस घोर बन में अनाथों की तरह लूटी जाती हूँ। मुझे बचाओ।

सत्यवान—(कुछ सचेत होकर सावित्री की ओर देख कर) प्रिये ! तुम यहाँ कहाँ ? मैं तो चला, मेरे कारण तुम्हें बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े, मुझे क्षमा करना और कभी कभी इस अभागे का भी स्मरण करना। (कुछ रुक कर) पिता से मेरी बहुत तरह से प्रणाम कहना और कहना कि मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि मैं आपकी सेवा बहुत कम करने पाया, मेरे अपराधों को आप क्षमा करें। मातृ-चरण में भी मेरा प्रणाम पहुँचाना। मुझे बड़ा ही दुःख है कि मैं अंत समय उनके दर्शन न कर सका। तुम अपने सास ससुर की सेवा बड़ी सावधानता से करना, भगवान के चरणों में सदा स्नेह रखना (घबड़ाहट नाट्य कर के) उह ! अब चले, कंठ सूखा जाता है। बड़ी प्यास लगी है। पानी—पानी—

सावित्री—(घबड़ाकर) हाय ! यहाँ पात्र भी नहीं कि पानी लाऊँ। (दौड़ कर अंचल में भिगा कर पास के तालाब से पानी लाकर सत्यवान के मुँह में निचोड़ती है)

सत्यवान—(कुछ स्थिर हो जाता है) धन्य देवी, धन्य। इस समय तुम ने मानों अमृत के बूंद चुआ दिये।

सावित्री—इन सब बातों को रहने दीजिये, यह बतलाइए अभी तो आप अच्छे चंगे थे अभी यहाँ क्या हो गया ?

सत्यवान—(मुमुर्षु अवस्था में) मैं—तुम—से—विदा होकर लकड़ी चुनने आया। इस झाड़ी मे घुस कर उस सूखे वृक्ष की लकड़ी ज्यों ही काटी मुझे जान पड़ा मानों मेरा सिर एक दम उड़ा जाता है। ऐसी भारी वेदना मेरे सिर में अकस्मात् उठी कि मैं किसी तरह सम्हल न सका, किसी किसी तरह झाड़ी से निकला, यहाँ तक आते आते तो असुध हो कर गिरही पड़ा। फिर मुझे कुछ ज्ञान नहीं, जब ज्ञान हुआ तो तुम्हें बैठे पाया—उह ! बड़ी ज्वाला है, शरीर झुका जाता है—अब चला—(मूर्छित हो जाता है)

(नेपथ्य में गान)

यमदूत हैं हम भूत हैं मजबूत हैं रन में।
सोने के घर को खाक हमीं करते हैं छन में॥

सावित्री—हाय ! क्या यमदूत आ गये ? क्या अब मुझ से प्राणनाथ का वियोग हो होगा ? कभी नहीं—कभी नहीं—यदि हमारा सतीत्व सत्य है तो देखते हैं यमदूतों की क्या सामर्थ्य है जो प्राणनाथ के अंग को छू भी सकें।

(अंधकार हो जाता है और यमदूत आते हैं)

यमदूतगण—(गाते हैं और नाचते हैं)

यमदूत हैं हम भूत हैं मज़बूत हैं रन में।
सोने के घर को खाक हमीं करते हैं छन में॥
हो बादशाह या कि भिखारी हो कोई हो।
ज्ञानी हो या कि पापी हो जो चाहे जोई हो॥
इक दिन सभी हमारे ही चंगुल में फँसेंगे।
उस दिन किसी फरेब से हमसे न बचेंगे॥
हम मुश्क बाँध बाँध के सबको ले जायँगे।
हम कूद कूद खूब ही डंडे लगायँगे॥

हम जिसको लेंगे उससे ज़रा भी न डरेंगे।
जो कुछ कि जी में आवैगा हम वोही करेंगे॥

यमदूत हैं हम भूत हैं—

एक दूत—अरे तुम सब नाचा ही गाया करोगे या कुछ काम भी करोगे?

सब—(घबड़ा कर) हाँ हाँ, चलो भाई सत्यवान के प्राण को अभी प्रभु के पास ले चलना है। (सब आगे बढ़ते हैं)

एक दूत—(डर कर) हैं यहाँ तो आग सी जल रही है, किसकी सामथ है जो इसमें कूदैगा। (सब आश्चर्य और भय से उसी ओर देखते हैं)

दूसरा—सच तो, हमने भी असंख्य जीवों के प्राण लिये, यही करते जन्म बीता, पर ऐसा चमत्कार कभी नहीं देखा था। अब महाराज से चल कर क्या कहैंगे?

तीसरा—छि—तुम सब निरे डरपोक हो, हम लोग रात दिन के नरकाग्नि में रहनेवाले लोग हमारा इस आग से क्या होना है देखो हम अभी लाते हैं। (सत्यवान के पास तक जाता है और बड़े ज़ोर से चिल्ला कर "अरे बाप रे मरे रे" कह कर अचेत हो गिरता है)

सब—(मारे डर के काँपते हुए) भाइयो जान बचाना हो तो जल्दी यहाँ से भागो। जो दशा देखते हैं वहो वहाँ निवेदन कर देंगे।

एक दूत—जरा ठहरो एक बेर इनसे यह तो कहना चाहिये कि ये हट जायँ देखैं क्या कहती हैं तब वैसा चल कर कहैंगे।

दूसरा—तुम्हें अपनी जान भारी पड़ी हो तो कहो, हम तो न कहैंगे।

पहिला—(साहसपूर्वक दूर से हाथ जोड़कर) देवी! तुम जरा सा हट जाओ तो हमारे प्रभु की जो आज्ञा है वह करके हमलोग शीघ्र ही प्रभु के पास जायँ। अब व्यर्थ दुःख करने का क्या फल।

सावित्री—(तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर) खबरदार, एक पैर भी आगे मत रखना। जाकर अपने प्रभु से कह दो कि प्राण रहते हुए इस शरीर को न छूने दूँगी।

सब—(घबड़ा कर) अरे बाप रे जले रे (सब भागते हैं)

(नेपथ्य में गान)

(राग पीलू या बंगला)

"जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि-हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान॥
अनुसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान।
पतिदेवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान॥
धन्य देस कुल जँह निवसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य ब्याह असथान॥
सब समर्थ पतिबर्ता नारी इन सम और न आन।
याही तें स्वर्गहु में इनको करत सबै गुन गान॥१॥"

(यमराज का हाथ में लौह दंड लिए प्रवेश)

यम—(आपही आप) आहा! देखो सतीत्व का कैसा तेज है मानों प्रलयाग्नि बल रही है। मुझे यह निष्ठुर कार्य करते इतने दिन हो गए पर ऐसा अपूर्व दृश्य कभी नहीं देखा। (प्रगट) देवी! तुम क्यों वृथा हठ करती हो, जब दिन पूरे हो जाते हैं तो किसी की सामर्थ्य नहीं है जो जीव को बचावै। तुम जरा हट जाओ हम सत्यवान के प्राणवायु को ले जायँ।

सावित्री—(हाथ जोड़कर) महाराज! ऐसी बात मत कहिए। इसके सुनने से हमारा कलेजा फटा जाता है। सत्यवान हमारा जीवन-सर्वस्व है, इसको छोड़कर हम कहाँ हट सकती हैं?

यम—सावित्री! तुम्हारे पवित्र सतीत्व में कुछ संदेह नहीं—पर पूर्व जन्म के पाप का फल भोगना ही पड़ता है। विधाता के लेख को कौन मिटा सकता है? अब व्यर्थ हठ मत करो हट जाओ।

सावित्री—धर्मराज! यदि आप को ऐसा ही आग्रह है तो मुझे भी ले चलिए सत्यवान बिना मैं जी ही कर क्या करूँगी?

यम—यह हमारी सामर्थ्य से बाहर है; अभी तुम्हारे दिन नहीं पूरे हुए हैं; अच्छा हमें अब बहुत देर होती है।

सावित्री—हाय! आप को मुझ अबला पर तनिक भी दया नहीं आती!

यम—सावित्री ! हम क्या करें, हमारी क्षमता के बाहर जो बात है वह हम कैसे कर सकते हैं ? सत्यवान के सिवाय तुम और जो कुछ चाहो हम देने को प्रस्तुत हैं।

सावित्री—महाराज ! मेरे बूढ़े सास ससुर की आँखें जाती रही हैं सो आप कृपा करके दें।

यम—एवमस्तु। अच्छा ले अब हट जाओ। (सावित्री हट जाती है और यमराज सत्यवान के प्राणवायु को लेकर जाते हैं और पीछे पीछे सावित्री भी जाती है)

(नेपथ्य में गान)

"तुझ पर काल अचानक टूटैगा।
गाफिल मत हो लवा बाज ज्यों हँसी खेल में लूटैगा॥
कब आवैगा, कौन राह से प्रान कौन विधि छूटैगा।
यह नहिं जानि परैगी बीचहि यह तन दरपन फूटैगा॥
तब न बचावैगा कोई जब काल दंड सिर कूटैगा।
'हरीचंद' एक वही बचैगा जो हरिपद रस घूटैगा॥"

(वह पर्दा हट जाता है, दूसरा दृश्य घोर अरण्य अंधकारमय दिखाई पड़ता है। आगे आगे यमराज पीछे पीछे रोती हुई सावित्री का प्रवेश)

यम—(फिर कर सावित्री को देखकर) देवि ! तुम क्यों हमारे साथ आती हो ? जाओ अपने घर। होना था सो तो हो चुका।

सावित्री—सूने घर में जाकर क्या करें ? जहाँ सत्यवान वहीं सावित्री।

यम—तुम्हारे सतीत्व से हम अत्यंत संतुष्ट हुए। सत्यवान के प्राण व्यतीत और जो इच्छा हो सो माँगो।

सावित्री—महाराज ! जो आप प्रसन्न हैं तो हमारे ससुर का राज्य जो शत्रुओं ने छीन लिया है सो फेर मिलै।

यम—तथास्तु। अच्छा अब तुम फिर जाओ।

(यमराज आगे बढ़ते हैं, सावित्री पीछे पीछे चलती है। वह पर्दा उठ जाता है दूसरा दृश्य भयानक वन महा अंधकार)

यम—(पीछे देख कर) ऐं ! तुम अभी भी नहीं गईं ! क्यों व्यर्थ का

प्रयास करती हो—जाओ—अब सत्यवान का मिलना असम्भव ही समझो।

सावित्री—धर्मराज ! एक बात और भी प्रार्थनीय है।

यम—सत्यवान के सिवाय और जो कुछ चाहो मिल सकता है।

सावित्री—महाराज ! मेरे श्वसुर कुल में वंश चलानेवाला कोई नहीं है इससे मुझे यह वर दीजिये कि सत्यवानसे मुझे एकसौ लड़के हों।

यम—तथास्तु।

(यमराज आगे बढ़ते हैं, सावित्री उनका अनुसरण करती है। वह पर्दा उठ जाता है। दूसरा दृश्य स्वर्ग का द्वार महाउज्ज्वल तीन अप्सरा हाथ में माला लिये खड़ी हैं)

अप्सरागण—आओ सावित्री के जीवन।

बहुत दिनन की आसा पूजी अधर-सुधा रसजीवन॥
तुव हित प्रेम-मालिका गूथी पहिरावैं निज हाथ।
निर्भय ह्वै नंदन बन बिहरैं पल्हूँ तजैं न साथ॥ १॥

यम—(पीछे सावित्री को देखकर) क्या तुम अभी तक हमारे साथ ही हो ?

सावित्री—महाराज ! क्या अपने दिये हुए वर को अभी भूल गये ? सत्यवान का प्राणवायु मुझे दीजिये।

यम—धन्य देवी धन्य ! मैं तुमसे हारा। यद्यपि विधाता के नियम के विरुद्ध है तथापि मैं तुम्हें सत्यवान का जीवदान करता हूँ। (सत्यवान का प्राणदान) आज से मैंने जाना सती नारी को सब कुछ करने की सामर्थ्य है; संसार में सती का अकर्तव्य कोई काम नहीं है। सावित्री ! तुम्हारी यह विमल यशध्वजा अनंत काल तक संसार में उड़ती रहैगी, तुम्हारा पवित्र गुण-गान संसार को पावन करता रहैगा और तुम्हारा पूजनीय नाम पतिव्रता स्त्रियों का सर्वस्व होगा। अहा ! इस अलौकिक सतीत्व के आगे मुझे भी पराजित होना पड़ा। सतीत्व की जय—सावित्री की जय। (यही शब्द चारों ओर से प्रति-ध्वनित होता है और आकाश से पुष्प-वृष्टि होती है। तीनों अप्सरा सावित्री को बीच में करके नाचती और गाती हैं।

गाओ सब मिलि प्रेम बधाई।
पतिप्राना नारी के आगे काहू की न बसाई॥
पतिहि जिवायो निज सतीत्व बल कालहु दियो हराई।
इनके यश की सुभग पताका तीन लोक फहराई॥
थाप्यो थिर करि प्रेम पंथ जग निज आदर्श दिखाई।
देव-बधूगन आनन्दित है प्रेम बधाई गाई॥ १॥

(सावित्री वहाँ से चलती है और एक एक करके वही दृश्य दिखलाई पड़ते हैं जो सावित्री को यमराज के साथ दिखलाई पड़े थे। अंत में वन का वह दृश्य दिखलाई पड़ता है जिसमें सत्यवान का मृत शरीर पड़ा है। सावित्री उसमें प्राण संस्थापन करती है और सत्यवान उठता है जैसे कोई सोता हुआ जागे)

सत्यवान—(अँगड़ाई लेकर) उफ! कैसा भयानक दुःस्वप्न मैंने देखा है। मानो कोई महा विकराल मूर्ति धारण किये महाकाल मेरे प्राण को लेकर चला है। रास्ते में कैसे कैसे घोर वन और भयानक नर्ककुंड मिले हैं, जिसके स्मरण होने ही से रोमांच हो जाता है। फिर मानो वह महाकाल स्वर्ग के द्वार पर मुझे ले गया है, वहाँ मुझे वरण करने के लिये तीन अप्सरा खड़ी हैं, इतने में मानो किसी स्वर्गीय देवी ने मेरा प्राणदान महाकाल से ले लिया है, और वह देवी मानो हूबहू तुम्हीं हो। उफ! कलेजा काँपता है, हे जगदीश रक्षा करो।

सावित्री—नाथ! डरिये मत, अब कुछ चिंता नहीं यह सब सत्य था, स्वप्न न था पर अब कुछ डर नहीं।

सत्यवान—ऐं! क्या यह सब सच था? क्या मुझे महाकाल के पास से तुम्हीं छुड़ा लाई? धन्य देवी धन्य! (घबड़ाहट का नाट्य करता है) अह! बेतरह सिर घूमता है। कुछ समझ नहीं पड़ता, जागता हूँ या सोया।

(नारद मुनि बीन बजाते गाते आते हैं)

"बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम।
गोविन्द गोविन्द केशव केशव, गोपाल गोपाल॥
माधव माधव, हरि हरि हरि बंशीधर बंशीधर श्याम।

नारायण वासुदेव नंदनंदन जगबंदन वृंदावन चारुचद्र गरे गुञ्जदाम ॥
'हरिचंद' जनरंजन सरन सुखद मधुर मूर्ति राधापति पूर्ण करन सतत
भक्त काम ॥ १ ॥

(सत्यवान, सावित्री प्रणाम करते हैं)

नारद—मंगलमय भगवान श्रीकृष्णचंद्र सदा तुम लोगों का मंगल कर। (सावित्री से) सावित्री ! आज तूने सतीकुल का मुख उज्ज्वल किया, आज तुमने सतीत्व की ध्वजा फहराई, जो अनंत काल तक उड्डीयमान रहेगी। तुम्हारा यश देवांगनागण गाकर अपने को धन्य मानैंगी और तुम्हारी पुण्यकथा संसार को पवित्र करैगी।

(लवंगी, मधुकरी और सुरबाला का प्रवेश)

सखीत्रय—वाह, सखी वाह ! तुममें इतने गुण भरे हैं यह हम लोगों को तनिक भी विदित न था। धन्य तुम्हारा सतीत्व।

नारद—(सत्यवान से) पुत्र ! तुम्हारा धन्य भाग्य है जो तुमने ऐसी सती स्त्री पाई। (सावित्री का हाथ सत्यवान के हाथ में देते हैं) लो आज फिर मैं तुम्हें इस अमूल्य रत्न को सौंपता हूँ, इसे यत्न से रखना।

(तीनों सखी और अप्सरागण सावित्री-सत्यवान को बीच में करके नाचती और गाती हैं। रंगशाला में खूब प्रकाश हो जाता है)

जय जय सावित्री महरानी।
सती-सिरोमनि रूपरासि करुनामय सब गुनखानी ॥
प्रेममयी निज पति के पद में छाया-सी लपटानी।
इनके जस की सुभग पताका तीन लोक फहरानी ॥
अचल प्रताप सतीत्व धरम को थाप्यो जग सुखदानी।
सतीमंडली भूषण ह्वैहै इनकी प्रेम कहानी ॥१॥

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है और जवनिका गिरती है)

नाटक

परिशिष्ट

संवत् १९४०

मेडिकल हॉल प्रेस से सन् १८८२ ई०
में प्रथम बार प्रकाशित ।

समर्पण

हे मायाजवनिकाच्छन्न ! जगन्नाटक-सूत्रधार ! मदंगरंगनायक ! नटनागर !

जिसने इस इतने बड़े संसार-नाटक को रचकर खड़ा किया है, जगदंतःपाती वस्तुमात्र उसी को समर्पणीय है, विशेष कर नाटक-संबंधी और वह भी उसी के एक अभिमानी जन की।

नाथ ! आज एक सप्ताह होता कि मेरे इस मनुष्य-जीवन का अंतिम अंक हो चुकता, किंतु न जाने क्या सोचकर और किस पर अनुग्रह करके उसकी आज्ञा नहीं हुई। नहीं तो यह ग्रंथ प्रकाश भी न होने पाता। यह भी आप ही का खेल है कि आज इसके प्रकाश का दिन आया। जब प्रकाश होता है तो समर्पण भी होना अवश्य हुआ। अतएव—

त्वदीयं वस्तु गोविंद ! तुभ्यमेव समर्पये।[1]

अपनाए हुए की वस्तु समझकर अंगीकार कीजिए।

यद्यपि संसार के कुरोग से मन प्राण तो नित्य ग्रस्त थे ही किंतु चार महीने से शरीर से भी रोगग्रस्त तुम्हारा

हरिश्चंद्र।

बपु लख चौरासी सजे नट सम रिझवन तोहि।
निरखि रीझि गति देहु कै खीझि निवारहु मोहि॥[2]

---

१ हे गोविंद आपकी यह वस्तु आप ही को समर्पित है।

२ यह दोहा नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ के एक श्लोक का भावार्थ है।

कृष्ण त्वदीयपदपंकजपंजरांते
अद्यैव मे विशतु मानसराजहंसः ।
प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः
कंठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते ॥†

चैत्र शुक्ला पूर्णिमा
महारास की समाप्ति,
संवत् १९४०

† हे कृष्ण, प्राण निकलने के समय कफ, वायु तथा पित्त के कारण कंठ रुकने पर तुम्हारा स्मरण कैसे हो सकता है इस लिए आज ही से मेरा मनरूपी राजहंस तुम्हारे चरण-कमल रूपी पिंजड़े में बैठ जाता है।

उपक्रम

—:o:—

मुद्राराक्षस का जब मैंने अनुवाद किया तब यह इच्छा थी कि नाटकों के वर्णन का विषय भी इसके साथ दिया जाय। किंतु एक तो ग्रंथ के बढ़ने के भय से, दूसरे कई मित्रों के अनुरोध से यह विषय स्वतंत्र, पुस्तकाकार मुद्रित हुआ। इसके लिखित विषय दशरूप, भारतीय नाट्यशास्त्र, साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाश, विल्सन्स हिन्दू थिएटर्स, लाइफ आव दि एमिनेंट परसन्स, ड्रामेटिस्ट्स ऐंड नावेलिस्ट्स, हिस्टरी डि इटालिक थिएटर्स और आर्य दर्शन से लिए गए हैं। आशा है कि हिंदी भाषा में नाटक बनानेवालों को यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी हो। एक तो मनुष्यबुद्धि ही भ्रमात्मिका है, दूसरे मेरी ठीक रुग्णावस्था में यह विषय लिखा गया है, इससे बहुत-सी अशुद्धियाँ सम्भव हैं। आशा है कि सज्जनगण गुण मात्र ग्रहण करके मेरा श्रम सफल करेंगे। इसके निर्माण में मुझको जिससे सहायता मिली है उसको धन्यवाद देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि दक्षिण हस्त के परिवर्त्त में वाम हस्त जो कार्य करे वह भी निज कृत ही है।

चैत्र शुक्ला १५, संवत् १९४० } हरिश्चंद्र



नाटक

अथवा

दृश्य काव्य

नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। नट कहते हैं विद्या के प्रभाव से अपने वा किसी वस्तु के स्वरूप के फेर वा स्वयं दृष्टि रोचन के अर्थ फिरना। नाटक में पात्रगण अपना स्वरूप परिवर्तन करके राजादिक का स्वरूप धारण करते हैं वा वेषविन्यास के पश्चात् रंगभूमि में स्वकीय कार्य-साधन के हेतु फिरते हैं। काव्य दो प्रकार के हैं—दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है जो कवि की वाणी को उसके हृदयगत आशय और हावभाव सहित प्रत्यक्ष दिखला दे। जैसा कालिदास ने शाकुंतल में भ्रमर के आने पर शकुंतला का सूधी चितवन से कटाक्षों का फेरना जो लिखा है, उसको प्रथम चित्रपटी द्वारा उस स्थान का, शकुंतलावेषसज्जित स्त्री द्वारा उसके रूप-यौवन और वनोचित शृङ्गार का, उसके नेत्र, सिर, हस्तचालनादि द्वारा उसके अंगभंगी और हाव-भाव का, तथा कवि-कथित वाणी के उसी के मुख से कथन द्वारा काव्य का, दर्शकों के चित्त पर खचित कर देना ही दृश्यकाव्यत्व है। यदि श्रव्यकाव्य द्वारा ऐसी चितवन का वर्णन किसी से सुनिए या ग्रंथ में पढ़िए तो जो काव्य-जनित आनंद होगा, यदि कोई प्रत्यक्ष अनुभव करा दे तो उससे चतुर्गुणित आनंद होता है। दृश्यकाव्य की संज्ञा रूपक है। रूपकों में नाटक ही सब से मुख्य है। इससे रूपक मात्र को नाटक कहते हैं। इसी विद्या का नाम कुशीलवशास्त्र भी है। ब्रह्मा, शिव, भरत, नारद, हनुमान, व्यास, वाल्मीकि, लव-कुश, श्रीकृष्ण, अर्जुन, पार्वती, सरस्वती और तुंबुरु आदि इसके आचार्य हैं, इनमें भरत मुनि इस शास्त्र के मुख्य प्रवर्त्तक हैं।

अर्थ भेद

नाटक शब्द की अर्थग्राहिता यदि रंगस्थ खेल ही में की जाय तो हम इसके तीन भेद करेंगे। काव्यमिश्र, शुद्ध कौतुक और भ्रष्ट। शुद्ध कौतुक यथा—कठपुतली वा खिलौने आदि से सभा इत्यादि का दिखलाना, गूँगे-बहिरे का नाटक, बाजीगरी वा घोड़े के तमाशे में संवाद, भूत-प्रेतादि की नकल और सभ्यता की अन्यान्य दिल्लगियों को कहैंगे। भ्रष्ट अर्थात् जिनमें अब नाटकत्व नहीं शेष रहा है यथा भाँड़, इंद्रसभा, रास, यात्रा, लीला और झाँकी आदि। पारसियों के नाटक, महाराष्ट्रों के खेल आदि यद्यपि काव्यमिश्र हैं तथापि काव्य-हीन होने के कारण वे भी भ्रष्ट ही समझे जाते हैं। काव्यमिश्र नाटकों को दो श्रेणी में विभक्त करना उचित है। प्राचीन और नवीन—

अथ प्राचीन

प्राचीन समय में अभिनय नाट्य, नृत्य, नृत्त, तांडव और लास्य इन पाँच भेदों में बँटा हुआ था। इनमें नृत्य भावसहित नाचने को, नृत्त केवल नाचने को और तांडव और लास्य भी एक प्रकार के नाचने ही को कहते हैं। इससे केवल नाट्य में नाटक आदि का समावेश होगा; शेष चारों नाचनेवालों पर छोड़ दिए जायँगे। नाट्य रूपक और उपरूपक में दो भेदों से बँटा है। रूपक के दश भेद हैं। यथा—

१ नाटक

काव्य के सर्वगुण-संयुक्त खेल को नाटक कहते हैं। इसका नायक कोई महाराज (जैसा दुष्यंत) वा ईश्वरांश (जैसा श्रीराम) वा प्रत्यक्ष परमेश्वर (जैसा श्रीकृष्ण) होना चाहिए। रस शृंगार वा वीर। अंक पाँच के ऊपर और दस के भीतर। आख्यान मनोहर और अत्यंत उज्ज्वल होना चाहिए। उदाहरण शाकुंतल, वेणी संहार आदि।

२ प्रकरण

यह और बातों में नाटक के तुल्य होना चाहिए किंतु इसका उपाख्यान लौकिक हो। नायक कोई मंत्री, धनी वा ब्राह्मण हो।

इसकी नायिका मंत्रिकन्या, किसी के घर में आश्रित भाव से रहनेवाली, वा वेश्या हो। प्रथमावस्था में शुद्ध और द्वितीयावस्था में प्रकरण की संकर संज्ञा होती है। उदाहरण मल्लिकामारुत, मालती-माधव और मृच्छकटिक।

३ भाण

भाण में एक ही अंक होता है। इसमें नट ऊपर देख-देखकर, जैसे किसी से बात करे, आप ही सारी कहानी कह जाता है। बीच में हँसना, गाना, क्रोध करना, गिरना इत्यादि आप ही दिखलाता है। इसका उद्देश्य हँसी, भाषा उत्तम और बीच-बीच में संगीत भी होता है। उदाहरण "विषस्य विषमौषधम्।"

४ व्यायोग

युद्ध का निदर्शन, स्त्रीप-त्र-रहित और एक ही दिन की कथा का होता है। नायक कोई अवतार[1] वा वीर होना चाहिए। ग्रंथ नाटक की अपेक्षा छोटा। उदाहरण 'धनंजयविजय।'

५ समवकार

यह तीन अंक में हो। इसमें १२ तक नायक हो सकते हैं। कथा दैवी हो। छंद वैदिक हों। युद्ध, आश्चर्य, माया इत्यादि इसमें दिखलाई जाती हैं। उदाहरण भाषा में नहीं है।

६ डिम

यह भी वैसा ही किंतु इसमें उपद्रव-दर्शन विशेष होता है। अंक चार, नायक, देवता वा दैत्य वा अवतार। (उदाहरण नहीं)

---

१ अवतारों का वर्णन भक्तमाल में एक ही छप्पय में लिखा है:—

जय जय मीन बराह कमठ नरहरि बलि बावन।
परसुराम रघुबीर कृष्ण कीरति जगपावन॥
बौध कलंकी व्यास पृथू हरि हंस मन्वंतर।
यज्ञ ऋषभ हयग्रीव ध्रुवहि वर देन धन्वतर॥
बद्रीपति दत्त कपिल देव सनकादिक करुना करी।
चौबीसरूप लीला रुचिर अग्रदास उर पद धरौ॥

७ ईहामृग

नाटक, नायक ईश्वर वा अवतार। नायिका देवी। प्रेम वर्णित होता है। नायिका द्वारा युद्धादि कार्य संपादन होता है। (उदाहरण नहीं)

८ अंक

एक ही अंक में खेल दिखलाना। नायक गुणी और आख्यान प्रसिद्ध हो। (उदाहरण नहीं)

९ वीथी

भाण की भाँति एक अंक में। इसमें दो पुरुष आकर बात कर सकते हैं और अपनी वार्त्ता में विविध भाव द्वारा किसी का प्रेम वर्णन करेंगे किंतु हँसाते जायँगे। (उदाहरण नहीं)

१० प्रहसन

हास्य रस का मुख्य खेल। नायक, राजा वा धनी वा ब्राह्मण वा धूर्त कोई हो। इसमें अनेक पात्रों का समावेश होता है। यद्यपि प्राचीन रीति से इसमें एक ही अंक होना चाहिए किंतु अब अनेक दृश्य दिए बिना नहीं लिखे जाते। उदाहरण— हास्यार्णव, वैदिकी हिंसा, अंधेर नगरी।

महानाटक

नाटक के लक्षणों से पूर्ण ग्रंथ यदि दश अंकों में पूर्ण हो तो उसको महानाटक कहते हैं।

अथ उपरूपक

उपरूपक के अठारह भेद हैं। यथा नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित (श्रीरासिका), शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीश और भाणिका।

नाटिका

नाटिका में चार अंक होते हैं और स्त्री पात्र अधिक होते हैं तथा नाटिका की नायिका कनिष्ठा होती है अर्थात् नाटिका के नायक की पूर्व-प्रणयिनी के वश में रहती है। उदाहरण—रत्नावली, चंद्रावली इत्यादि।

त्रोटक

इसमें सात, आठ, नौ या पाँच अंक होते हैं और प्रायः प्रति अंक में विदूषक होता है। नायक दिव्य मनुष्य होता है। उदाहरण—विक्रमोर्वशी।

गोष्ठी

नौ या दस साधारण मनुष्य और पाँच-छ स्त्री जिसमें हों और कैशिकी वृत्ति तथा एक ही अंक हो। (उदाहरण नहीं)

सट्टक

जो सब प्राकृत में हो और प्रवेशक, विष्कंभक जिसमें न हों और शेष सब नाटिका की भाँति हो वह सट्टक है। उदाहरण—कर्पूरमंजरी।

नाट्यरासक

इसमें एक अंक, नायक उदात्त, नायिका वासकसज्जा, पीठमर्द उपनायक, और अनेक प्रकार के गान नृत्य होते हैं।

अथ शेष उपरूपक

योंही थोड़े-थोड़े भेद में और भी शेष उपरूपक होते हैं। न तो इन सबों के भाषा में उदाहरण हैं न इन सबों का काम ही विशेष पड़ता है, इससे सविस्तर वर्णन नहीं किया गया।

भरत मुनि ने उपरूपकों के भेद नहीं लिखे हैं। दश प्रकार के रूपक लिखकर नाटक के दो भेद और माने हैं यथा नाटिका और त्रोटक। 'मल्लिका-मारुत' प्रकरणकार दंडी[1] कवि रूपक मात्र को मिश्रकाव्य नाम से व्यवहृत करते हैं।

अथ नवीन भेद

आज-कल योरोप के नाटकों की छाया पर जो नाटक लिखे जाते हैं और वंग देश में जिस चाल के बहुत से नाटक बन भी चुके हैं वह सब नवीन भेद में परिगणित हैं। प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारंबार दृश्यों के बदलने में है और इसी हेतु एक-एक अंक में अनेक-अनेक गर्भांकों की कल्पना की जाती है क्योंकि इस

---

१ यह प्रकरण दंडी कृत नहीं है। इसका रचयिता उद्दंड है, कीथ कृत द इंडियन ड्रामा पृ० २२१। (सं०)

समय में नाटक के खेलों के साथ विविध दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है। इन अंक और गर्भांकों की कल्पना यों होनी चाहिए, यथा पाँच वर्ष के आख्यान का एक नाटक है तो उसमें वर्ष-वर्ष के इतिहास के एक-एक अंक और उस अंक के अंतःपाती विशेष-विशेष समयों के वर्णन का एक-एक गर्भांक। अथवा पाँच मुख्य घटना-विशिष्ट कोई नाटक है तो प्रत्येक घटना के संपूर्ण वर्णन का एक-एक अंक और भिन्न-भिन्न स्थानों में विशेष घटनांतःपाती छोटी छोटी घटनाओं के वर्णन में एक-एक गर्भांक। ये नवीन नाटक मुख्य दो भेदों में बँटे है—एक नाटक, दूसरा गीतिरूपक। जिनमें कथा भाग विशेष और गीति न्यून हों नाटक और जिसमें गीति विशेष हों वह गीतिरूपक। यह दोनों कथाओं के स्वभाव से अनेक प्रकार के हो जाते हैं, किंतु उनके मुख्य भेद इतने किए जा सकते हैं यथा—१ संयोगांत—अर्थात् प्राचीन नाटकों की भाँति जिसकी कथा संयोग पर समाप्त हो। २ वियोगांत—जिसकी कथा अंत में नायिका वा नायक के मरण वा और किसी आपद घटना पर समाप्त हो। (उदाहरण "रणधीर-प्रेम मोहिनी") ३ मिश्र-अर्थात् जिसके अंत में कुछ लोगों का तो प्राणवियोग हो और कुछ सुख पावें।

इन नवीन नाटकों की रचना के मुख्य उद्देश्य ये होते हैं यथा—१ शृंगार २ हास्य ३ कौतुक ४ समाज-संस्कार ५ देशवत्सलता। शृंगार और हास्य के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं, जगत् में प्रसिद्ध है। कौतुकविशिष्ट वह है जिसमें लोगों के चित्तविनोदार्थ किसी यंत्रविशेष-द्वारा या और किसी प्रकार अद्भुत घटना दिखाई जायँ। समाज-संस्कार नाटकों में देश की कुरीतियों का दिखलाना मुख्य कर्तव्य कर्म है। यथा शिक्षा की उन्नति, विवाह-संबंधी कुरीति-निवारण, अथवा धर्मसंबंधी अन्यान्य विषयों में संशोधन इत्यादि। किसी प्राचीन कथाभाग का इस बुद्धि से संगठन कि, देश की उससे कुछ उन्नति हो इसी प्रकार के अंतर्गत है। (इसके उदाहरण, सावित्री-चरित्र, दुःखिनी बाला, बाल्यविवाहविदूषक,[1] * जैसा काम वैसा ही परिणाम,* जय नारसिंह की, चक्षुदान इत्यादि।) देशवत्सल नाटकों

१ प्रथम आवृत्ति में नहीं है।

का उद्देश्य पढ़नेवालों वा देखनेवालों के हृदय में स्वदेशानुराग उत्पन्न करना है और ये प्रायः करुण और वीर रस के होते हैं। (उदाहरण—भारतजननी, नीलदेवी, भारतदुर्दशा इत्यादि।) इन पाँच उद्देश्यों को छोड़कर वीर, सख्य इत्यादि अन्य रसों में भी नाटक बनते हैं।

अथ नाटक-रचना

प्राचीन समय में संस्कृत भाषा में महाभारत आदि का कोई प्रख्यात वृत्तांत अथवा कवि-प्रौढ़ोक्ति-संभूत, किंवा लोकाचारसंघटित, कोई कल्पित आख्यायिका अवलंबन करके, नाटक प्रभृति दशविध रूपक और नाटिका प्रभृति अष्टादश प्रकार उपरूपक लिपिबद्ध होकर, सहृदय सभासद लोगों को तात्कालिक रुचि अनुसार, उक्त नाटक-नाटिका प्रभृति दृश्यकाव्य किसी राजा की अथवा राजकीय उच्च-पदाभिषिक्त लोगों की नाट्यशाला में अभिनीत होते थे।

प्राचीन काल के अभिनयादि के संबंध में तात्कालिक कवि लोगों की और दर्शकमंडली की जिस प्रकार रुचि थी, वे लोग तदनुसार ही नाटकादि दृश्य काव्य-रचना करके सामाजिक लोगों का चित्त-विनोदन कर गए हैं। किंतु वर्त्तमान समय में इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगों की रुचि उस काल की अपेक्षा अनेकांश में विलक्षण है, इससे संप्रति प्राचीन मत अवलंबन करके नाटक आदि दृश्य काव्य लिखना युक्तिसंगत नहीं बोध होता।

जिस समय में जैसे सहृदय जन्म ग्रहण करें और देशीय रीति-नीति का प्रवाह जिस रूपसे चलता रहे, उस समय में उक्त सहृदय-गण के अंतःकरण की वृत्ति और सामाजिक रीतिपद्धति इन दोनों विषयों की समीचीन समालोचना करके नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना योग्य है।

नाटकादि दृश्यकाव्य प्रणयन करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करे यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि जो सब प्राचीन रीति वा पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मनःपोषिका होंगी वह सब अवश्य ग्रहण होंगी। नाट्यकला-कौशल दिखलाने को देश, काल और पात्रगण के प्रति विशेष रूप से दृष्टि रखनी उचित है।

पूर्वकाल में लोकातीत असंभव कार्य की अवतारणा सभ्यगण को जैसी हृदयहारिणी होती थी, वर्त्तमान काल में नहीं होती।

अब नाटकादि दृश्यकाव्य में अस्वाभाविक सामग्री-परिपोषक काव्य सहृदय सभ्य-मंडली को नितांत अरुचिकर है; इसलिए स्वाभाविकी रचना ही इस काल के सभ्यगण की हृदय-ग्राहिणी है, इससे अब अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकादि दृश्य काव्य प्रणयन करना उचित नहीं है। अब नाटक में कहीं 'आशीः'[1] प्रभृति नाट्यालंकार, कहीं 'प्रकरी'[2], कहीं 'विलोभन'[3], कहीं 'संफेट'[4], कहीं 'पंचसंधि'[5], वा ऐसे ही अन्य विषयों की कोई आवश्यकता नहीं रही। संस्कृत नाटक की भाँति हिंदी नाटक में इनका अनुसंधान करना, वा किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रखकर हिंदी नाटक लिखना व्यर्थ है क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा संपादन करने से उल्टा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है। संस्कृत नाटकादि रचना के निमित्त महामुनि भरतजी जो सब नियम लिख गए हैं, उनमें जो हिंदी नाटक-रचना के नितांत उपयोगी हैं और इस काल के सहृदय सामाजिक लोगों की रुचि के अनुयायी हैं वे ही नियम यहाँ प्रकाशित होते हैं।

अथ प्रतिकृति (Scenes)

किसी चित्रपट-द्वारा नदी, पर्वत, वन वा उपवन आदि की प्रतिच्छाया दिखलाने को प्रतिकृति कहते हैं। इसी का नामांतर अंतः

---

१. आशीः नाटक में जो आशीर्वाद कहा जाय। यथा शाकुन्तल में 'यया-तेरिव शर्मिष्ठा पत्युर्बहुमता भव'।

२. 'प्रकरी नायकस्य स्यान्नाटकीयफलांतरम्'।

३. 'गुणाख्यानं विलोभनं' यथा वेणीसंहार में 'नाथ किं दुक्करं तुए परिकुविदेते'।

४. 'संफेटो रोषभाषणम्' यथा वेणीसंहार में राजा—अरे मरुत्तनय! वृद्धस्य राज्ञः पुरतो निंदितमप्यात्मकर्म श्लाघयसि।

५. पंचसंधि यथा—'मुखं प्रतिमुखं गर्भो विमर्ष उपसंहृतिः। इति पंचास्यभेदाः स्युः'।

पटी वा चित्रपट वा दृश्य वा स्थान है[1]। यद्यपि महामुनि भरत-प्रणीत नाट्यशास्त्र में, चित्रपट-द्वारा प्रासाद, वन, उपवन किंवा शैल प्रभृति की प्रतिच्छाया दिखाने का कोई नियम स्पष्ट नहीं लिखा है, किंतु अनुधावन करने से बोध होता है कि तत्काल में भी अंतः-पटी-परिवर्त्तन द्वारा वन, उपवन वा पर्वतादि की प्रतिच्छाया अवश्य दिखलाई जाती थी। ऐसा न होता तो पौर-जानपदवर्ग के अपवाद भय से श्रीरामकृत सीता-परिहार के समय में उसी रंगस्थल में एक ही बार अयोध्या का राज-प्रासाद और फिर उसी समय वाल्मीकि का तपोवन कैसे दिखलाई पड़ता। इससे निश्चय होता है कि प्रतिकृति के परिवर्त्तन-द्वारा पूर्वकाल में यह सब अवश्य दिखलाया जाता था। ऐसे ही अभिज्ञान-शाकुतल नाटक के अभिनय करने के समय सूत्र-धार एक ही स्थान में रहकर परदा बदले बिना कैसे कभी तपोवन और कभी दुष्यंत का राजप्रासाद दिखला सकेगा[2]। यही सब बात प्रमाण हैं कि उस काल में भी चित्रपट अवश्य होते थे। ये चित्रपट नाटक में अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु हैं और इनके बिना खेल अत्यंत नीरस होता है।

जवनिका वा वाह्यपटी[3] (Drop Scene)

कार्य-अनुरोध से समस्त रंगस्थल को आवरण करने के

---

१. वर्त्तमान समय में जहाँ जहाँ ये दृश्य बदलते हैं, उसी को गर्भांक कहते हैं।

२ मुद्राराक्षस में भी कई उदाहरण इसके प्रत्यक्ष मिलते हैं। मलयकेतु राक्षस से मिलने जाता है, यह कहकर उसी अंक में कहते हैं कि आसन पर बैठा राक्षस दिखलाई पड़ा। श्मशान से चंदनदास को लेकर चांडाल कुछ बढ़कर पुकारता है कि भीतर कौन है, अमात्य चाणक्य से कहो इत्यादि। अर्थात् पूर्व के दोनों दृश्य बदलकर राक्षस के और चाणक्य के घर के दृश्य दिखलाई पड़े। यह न हो तब तो नाटक निरे व्यर्थ हो जाते हैं जैसा रास में महाराष्ट्री के नाटक में शतरंजी और मशालची को दिखला कर नायिका नायक कहते हैं कि अहा देखो! यह फुलवारी वा नदी कैसी सुंदर है। इससे जहाँ पात्र जैसे स्थान का अपने वाक्य में वर्णन करे वा जिस स्थान की वह कथा हो, उसका चित्र पीछे पड़ा रहना बहुत ही आवश्यक है।

३. इस परदे पर कोई सुन्दर मनोहर नदी, पर्वत, नगर इत्यादि का दृश्य वा किसी प्रसिद्ध नाटक के किसी अंक का चित्र दिखलाना अच्छा होता है।

लिए नाट्यशाला के सम्मुख जो चित्र प्रक्षिप्त रहता है उसका नाम जवनिका वा बाह्यपटी है। जब रंगशाला में चित्रपट-परिवर्त्तन का प्रयोजन होता है उस समय यह जवनिका गिरा दी जाती है। संस्कृत नाटकों में जवनिका-पतन का नियम देखने से और भी प्रतीत होता है कि अंतःपटी-परिवर्त्तन-द्वारा गिरि-नदी आदि की प्रतिच्छाया उस काल में भी अवश्य दिखलाई जाती थी।

"ततः प्रविशन्त्यपटीक्षेपेणाप्सरसः"

अर्थात् फिर जवनिका बिना गिराए ही उर्व्वशी-विरहातुर अप्सरागण ने रंगस्थल में प्रवेश किया इत्यादि दृष्टांत ही इसके प्रमाण हैं।

अथ प्रस्तावना

नाटक की कथा आरंभ होने के पूर्व नटी, विदूषक किंवा पारिपार्श्वक सूत्रधार से मिलकर प्रकृत प्रस्ताव-विषयक जो कथोपकथन करें, नाटक के इतिवृत्त-सूचक उस प्रस्ताव को प्रस्तावना कहते हैं। नाटक की नियमावली में मुनिवर भरताचार्य ने पाँच प्रकार की प्रस्तावना लिखी हैं। वह पाँचों प्रणाली अति आश्चर्य-भरित और सुन्दर हैं। उसमें से चार हिंदी नाटक में भी व्यवहार की जा सकती है। सूत्रधार के पार्श्वचर बंधु को पारिपार्श्वक कहते हैं। पारिपार्श्वक की अपेक्षा नट कुछ न्यून होता है। अब पूर्व-लिखित पाँच प्रकार की प्रस्तावना लिखते हैं।

यथा—१ उद्घात्यक, २ कथोद्घात, ३ प्रयोगातिशय, ४ प्रवर्त्तक और ५ अवगलित।

अथ उद्घात्यक

सूत्रधार प्रभृति की बात सुनकर अन्य प्रकार अर्थ प्रतिपादनपूर्वक जहाँ पात्र प्रवेश होता है उसे उद्घात्यक प्रस्तावना कहते हैं।

उदाहरण-मुद्राराक्षस

सूत्र०—प्यारी, मैंने जोतिःशास्त्र के चौसठों अंगों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो रसोई तो होने दो। पर आज गहन है, यह तो किसी ने तुम्हें धोखा ही दिया है।

क्योंकि—

चंद्रबिंब पूर न भए, क्रूर केतु हठ दाप।
बल सों करिहै ग्रास कह—

(नेपथ्य में)

हैं! मेरे जीते चंद्र को कौन बल से ग्रास कर सकता है?

सूत्र०— जेहि बुध रच्छत आप।

यहाँ सूत्रधार ने तो ग्रहण का विषय कहा था किंतु चाणक्य ने चंद्र शब्द का अर्थ चंद्रगुप्त प्रगट करके प्रवेश करना चाहा, इसी से उद्घात्यक प्रस्तावना हुई।

अथ कथोद्घात

जहाँ सूत्रधार की बात सुनकर उसके साथ वाक्य के अर्थ का मर्म ग्रहण करके पात्र प्रविष्ट होते हैं उसे कथोद्घात कहते हैं।

यथा रत्नावली में, सूत्रधार के इस कहने पर कि ईश्वरेच्छा से द्वीपांतर किंवा समुद्र के मध्य की वस्तु भी सहज में मिल जाती है, यौगंधरायण का आना।

यहाँ सूत्रधार के वाक्य का मर्म यह था कि जिस नाटक में द्वीपांतर की नायिका आती है, वह खेला जायगा इसी को समझकर अन्य नट मंत्री बनकर आया।

अथ प्रयोगातिशय

एक प्रयोग करते-करते घुणाक्षरन्याय से दूसरे ही प्रकार का प्रयोग कौशल में प्रयुक्त और उसी प्रयोग का आश्रय करके पात्र प्रवेश करें तो उसको प्रयोगातिशय प्रस्तावना कहते हैं।

जैसे कुंदमाला नामक नाटक में सूत्रधार ने नृत्य प्रयोग के निमित्त अपनी भार्या को आह्वान करने के प्रयोग विशेष-द्वारा सीता और लक्ष्मण का प्रवेश सूचित किया[1]। इस प्रकार से नाटक की प्रस्तावना शेष होने पर पात्र प्रवेश और नाटकीय इतिवृत्त की सूचना होगी।

---

१ प्रवर्त्तक और अवगलित की परिभाषा नहीं दी गई है। जहाँ सूत्रधार किसी गुप्त बात का वर्णन करता है और उसी के आश्रय से किसी पात्र का प्रवेश होता है, उसे प्रवर्त्तक कहते हैं। जहाँ एक प्रयोग में किसी प्रकार के सादृश्य आदि की उद्भावना के द्वारा किसी पात्र के प्रवेश की सूचना दी जाय, उसे अवगलित कहते हैं (स०)

अथ चर्चरिका

जब-जब एक-एक विषय समाप्त होगा जवनिका-पात करके पात्र-गण अन्य विषय दिखलाने को प्रस्तुत होंगे तब पटाक्षेप के साथ ही नेपथ्य में चर्चरिका आवश्यक है, क्योंकि बिना उसके अभिनय शुष्क हो जाता है। जहाँ बहुत स्वर मिलकर कोई बाजा बजे या गान हो उसको चर्चरिका कहते हैं। इसमें नाटक की कथा के अनुरूप गीतों का वा रागों का बजना योग्य है। जैसे सत्य हरिश्चंद्र में प्रथम अंक की समाप्ति में जो चर्चरिका बजै वह भैरवी आदि सबेरे के राग की और तीसरे अंक की समाप्ति पर जो बजै वह रात के राग की होनी चाहिए।

कैशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती वृत्ति

अथ कैशिकी वृत्ति

जो वृत्ति अति मनोहर, स्त्रीजनोचित भूषण से भूषित, और रमणी-बाहुल्य नृत्य[1] गीतादि परिपूर्ण और भोगादि विविध विलास-युक्त होती है उसका नाम कैशिकी वृत्ति है। यह वृत्ति शृङ्गाररस-प्रधान नाटकों की उपयोगिनी है।

---

१ हिंदुस्तान से नृत्यविद्या उठ गई। यह विद्या आगे इस देश में ऐसी प्रचलित थी कि सब अच्छे लोग इसको सीखते थे। इसके शास्त्र अब तक कहीं-कहीं लब्ध होते हैं और उनसे इस विद्या का महत्त्व प्रत्यक्ष प्रगट होता है। संगीतशास्त्र का यह एक अंग है। वाद्य, नृत्य और गाना यह तीनों वस्तु जिसमें हों उसकी संगीत संज्ञा है। इस काल में हिंदुस्तान में संगीत शास्त्र जाननेवालों का कुछ आदर नहीं और लोग इस विद्या से लज्जा करते हैं, परंतु वही इस देश के दुर्दिन का उदाहरण है। अब भी भारतवर्ष के जिस प्रदेश में यह विद्या बच गई है वहाँ बहुत अच्छा है कि १८७१ ई० में श्री महाराज व्यङ्कटगिरि के संग एक नर्त्तकी शारदा नाम की आई थी। निस्संदेह वह इस विद्या में बहुत प्रवीण थी। नृत्त और नृत्य दोनों में अपूर्व काम करती थी। इस देश की नर्त्तकी तो केवल मुखावलोकन ही के योग्य होती हैं, गुण तो उनके पास से भी नहीं निकलता। परंतु वह "वयानाम तथागुणाः" को सत्य करती थी। नृत्य और नृत्त में यह भेद है कि "भवेद्भावाश्रयं नृत्तं नृत्यं ताललयाश्रयम्" जिसमें भाव मुख्य हो वह नृत्त

अथ सात्वती वृत्ति

जिस वृत्ति-द्वारा शौर्य, दान, दया और दाक्षिण्य प्रभृति से वीरोचिता, विविध गुणान्विता, आनंद-विशेषोद्भाविनी, सामान्य विलास-युक्ता, विशोका और उत्साहवर्द्धिनी वाग्भंगी नायक-कर्तृक प्रयुक्त होती है उसका नाम सात्वती वृत्ति है। वीररस-प्रधान नाटक में इसकी आवश्यकता होती है।

अथ आरभटी

माया, इंद्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात, प्रतिघात और बंधनादि विविध रौद्रोचितकार्यजड़ित वृत्ति का नाम आरभटी है। रौद्ररस वर्णन के स्थल में इस वृत्ति पर दृष्टि रखनी चाहिए।

अथ भारती

साधुभाषाबाहुल्य वृत्ति का नाम भारती वृत्ति है। बीभत्स रस वर्णन स्थल में यह व्यवहृत होती है। नाटककर्त्ता ग्रंथगुंफन करने के समय यदि आद्यरस-प्रधान नाटक लिखने की इच्छा करेंगे, तो उनको कैशिकी वृत्ति ही में समस्त वर्णन करना योग्य है। आद्यरस वर्णन करने के समय ताल ठोंकना, मुग्दर घुमाना, वा असिक्षेप प्रभृति वीरोचित विषयक कोई भी वर्णन नहीं करना चाहिए। सात्वती वृत्तियों के पक्ष में भी ठीक यही चाल है।

अथ उपक्षेप

अभिनय कार्य के प्रथम संक्षेप में समस्त नाटकीय विवरण कथन का नाम उपक्षेप है।

और जिसमें लय मुख्य हो वह नृत्य कहलाता है। भाव नेत्र, भौंह, मुख और हाथ तथा स्वर से भी प्रगट होते हैं। लय भी हाथ, पैर, गले और भौंह से होती है। नृत्य के शास्त्रों में १०८ भेद लिखे हैं और लाग, डाँट उड़प, तिरप, हस्तक भेद इत्यादि इसके अङ्ग हैं, जिसमें केवल घुँघरू बजाने के ७ मुख्य भेद हैं। लास्य और तांडव इसके दो मुख्य अङ्ग हैं और यह नृत्त एक से लेकर बहुत से मनुष्यों से भी होता है। पुरुष और स्त्री दोनों इसके अधिकारी हैं परंतु नृत्तभेद से किसी में केवल पुरुष, किसी में केवल स्त्री और किसी में दोनों होते हैं। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि यह विद्यासंबंधी संगीत शास्त्र हम लोगों में फैले और यह प्रचलित मूर्खतामय लज्जा का कारण विषयरूपी संगीत हमारे शत्रुओं को मिले।

अथ नेपथ्य

रंगस्थल के पश्चात् भाग में जो एक गुप्त स्थान रहता है उसका नाम नेपथ्य है।

अलंकारयिता इसी स्थान में पात्रों को वेष-भूषणादि से साजते हैं। जब रंगभूमि में आकाशवाणी, दैवी वाणी अथवा और कोई मानुषी वाणी का प्रयोजन होता है तो वह नेपथ्य ही में से गाई या कही जाती है।

अथ उद्देश्यबीज

गुंफित आख्यायिका के समग्र मर्म्म का नाम उद्देश्यबीज है। कवि जो इसका साधन न कर सकेगा तो उसका ग्रंथ नाटक में परिगणित न होगा।

अथ वस्तु

नाटकीय इतिहास अथवा कोई विवरण विशेष का नाम वस्तु है। वस्तु दो प्रकार की है यथा—आधिकारिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु।

अथ आधिकारिक वस्तु

जो समस्त इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उसको अधिकारी कहते हैं। अधिकारी का आश्रय करके जो वस्तु विरोचित होती है, उसका नाम आधिकारिक वस्तु है। जैसा उत्तरचरित।

अथ प्रासंगिक वस्तु

इस आधिकारिक इतिवृत का रस पुष्ट करने के लिए प्रसंगक्रम में जो वृत्ति लिखी होती है, उसका नाम प्रासंगिक वस्तु है। जैसा बालरामायण में सुग्रीव-विभीषणादि का चरित्र।

अथ मुख्य उद्देश्य

प्रसंग-क्रम से नाटक में कितनी भी शाखा-प्रशाखा विस्तृत हों और गर्भांक के द्वारा आख्यायिका के अतिरिक्त और कोई विषय वर्णित हो किंतु मूल प्रस्ताव निष्कंप रहै तो उसकी रसपुष्टि करने को मुख्य उद्देश्य कहा जाता है।

अथ अभिनय

कालकृत अवस्था-विशेष के अनुकरण का नाम अभिनय है।

अवस्था यथा, रामाभिषेक, सीता-निर्वासन, द्रौपदी का केशभारा-कर्षण इत्यादि।

अथ पात्र

जो लोग राम युधिष्ठिरादि का रूप धारण करके कथित अवस्था का अनुकरण करते हैं, उन लोगों को पात्र कहते हैं। नाटक के जो सब अंश स्त्रीगणकर्तृक प्रदर्शित होते हैं, उनमें भाव, हाव, हेला प्रभृति यौवन-संभूत अष्टाविंशति प्रकार के अलंकारों का उन लोगों को अभ्यास नहीं करना पड़ता, किंतु पुरुषों को स्त्री-वेश धारण के समय अभ्यास द्वारा वह भाव दिखलाना पड़ता है।

अथ अभिनय प्रकार

अभिनय चार प्रकार का होता है यथा—आंगिकाभिनय, वाचिकाभिनय, आहार्याभिनय और सात्विकाभिनय।

अथ आंगिकाभिनय

केवल अंगभंगी-द्वारा जो अभिनय कार्य साधन करते हैं, उसको नाम आंगिकाभिनय है। जैसे सती नाटक में नंदी। सती ने शिव की निंदा श्रवण करके देह त्याग किया। यह सुनकर महावीर नंदी ने जब त्रिशूल हस्त में ले करके रंगस्थल में प्रवेश किया तब केवल आंगिकभाव द्वारा क्रोध दिखलाना चाहिए।

अथ वाचिकाभिनय

केवल वाक्य-विन्यास द्वारा जो अभिनय-कार्य समाहित होता है, उसका नाम वाचिकाभिनय है। यथा तोतले आदि का वेश।

अथ आहार्याभिनय

वेष भूषणादि निष्पाद्य का नाम आहार्याभिनय है। जैसा सत्यहरिश्चंद्र में चोबदार वा मुसाहिब लोग जब राजा के साथ रंगस्थल में प्रवेश करते हैं तब इनको कुछ बात नहीं करनी पड़ती। केवल आहार्याभिनय के द्वारा आत्मकार्य निष्पन्न करना होता है।

अथ सात्विकाभिनय

स्तंभ, स्वेद, रोमांच, कंप और अश्रु प्रभृति द्वारा अवस्थानुकरण का नाम सात्विकाभिनय है। जैसा सती का मृत देह देखकर नंदी का व्यवहार और अश्रुपात इत्यादि।

गमन, नौका-परिचालन और नदी में संतरण प्रभृति अघटनीय विषय।

अथ नायक निर्वाचन

विनय, शीलता, वदान्यता, दक्षता, क्षिप्रता, शौर्य, प्रियभाषिता, लोकरंजकता, वाग्मिता प्रभृति गुणसमूह-संपन्न सद्वंशसंभूत युवा को नायक होने का अधिकार है। नायक की भाँति नायिका में भी यथासंभव वही गुण रहना आवश्यक है। प्रहसन आदि रूपक-विशेष के नायकादि अन्य प्रकार के होते हैं।

अथ परिच्छद-विवेक

नाटकांतर्गत कौन पात्र कैसा परिच्छद पहरे यह ग्रंथकार कत्तृ क उल्लिखित नहीं होता, न किसी प्राचीन नाटककार ने इसका उल्लेख किया है। नाटक में किसी-किसी स्थान में उत्तम परिच्छद का परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। जैसा सत्यहरिश्चंद्र में "दरिद्र वेष से हरिश्चंद्र का प्रवेश।"

ऐसी अवस्था भिन्न स्पष्ट रूपसे परिच्छद का वर्णन किसी स्थान में उल्लिखित नहीं रहता, इससे अभिनय में वेश-रचयिता पात्रगण का स्वभाव और अवस्था विचार करके वेशरचना कर दे। नेपथ्य-कार्य सुंदर रूप से निर्वाह के हेतु एक रसज्ञ वेषविधायक की आवश्यकता रहती है।

अथ देशकाल प्रवाह

अति दीर्घकाल संपाद्य घटना सकल नाटक में अल्पकाल के मध्य में वर्णन करना यद्यपि दूषणावह नहीं है तथापि नाटक में देशगत और कालगत वैलक्षण्य वर्णन करना अतिशय अनुचित है।

अथ विष्कंभक

नाटक में विष्कंभक रखने का तात्पर्य यह है कि नाटकीय वस्तु-रचना में जो जो अंश अत्यंत नीरस और आडंबरात्मक हैं उनके सन्निवेशित होने से सामाजिक लोगों को विरक्ति और अरुचि हो जाती है। नाटक-प्रणेतृगण इन घटनाओं को पात्र विशेष के मुख से संक्षेप में विनिर्गत कराते हैं।

अथ नाटकरचना-प्रणाली

नाटक लिखना आरंभ करके, जो लोग उद्देश्य वस्तु परंपरा से

अथ वीभत्साभिनय

एक पात्र-द्वारा जब कथित अभिनय में से दो वा तीन अथवा सब प्रदर्शित होते हैं तो उसको वीभत्साभिनय कहते हैं।

अथ अंगांगी भेद

नाटक में जो प्रधान नायक होता है उसको समस्त इतिवृत्ति का अंगी कहते हैं। जैसे सत्यहरिश्चंद्र में हरिश्चंद्र।

अथ अंग

अंगी के कार्यसाधक पात्रगण अंग कहलाते हैं। जैसे वीर-चरित में सुग्रीव, विभीषण, अंगद इत्यादि।

अथ वैषम्यपात दोष

नाटक में अंगी को अवनत करके अंग का प्राधान्य करने से वैषम्यपात नामक दोष होता है।

अथ अंक लक्षण

नाटक के एक-एक विभाग को एक-एक अंक कहते हैं। अंक में वर्णित नायक-नायिकादि पात्र का चरित्र और आचार-व्यवहारादि दिखलाया जाता है। अनावश्यक कार्य का उल्लेख नहीं रहता। अंक में अधिक पद्य का समावेश दूषणावह होता है।

अथ अंकावयव

नाटक का अवयव बृहत् होने से एक रात्रि में अभिनय-कार्य समाहित नहीं होगा। इस हेतु दश अंक से अधिक नाटक निर्माण-विधि और युक्ति के विरुद्ध है। प्रथम अंक का अवयव जितना होगा द्वितीयांक का अवयव तदपेक्षा न्यून होना चाहिए। ऐसे ही क्रम-क्रम से अंक का अवयव छोटा करके ग्रंथ समाप्त करना चाहिए।

अथ विरोधक

नाटक में जिन विषयों का वर्णन निषिद्ध है, उनका नाम विरोधक है।

उदाहरण

दूराह्वान, अति विस्तृत युद्ध, राज्य देशादि का विप्लव, प्रबल वात्या, दंतच्छद, नखक्षत, अश्वादि वृहत्काय जंतु का अति वेग से

शकुंतला श्वशुरालय में गमन करेगी इस पर भगवान कण्व जिस भाँति खेदप्रकाश करते हैं वह यह है।

वहति विधिहुत या हविर्या च होत्री। ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्॥ यामाहुस्सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवंतः। प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥" बहुत प्रसिद्ध है और सब टीकाकारों ने इसके अनेक अर्थ किए हैं तथापि मुझे ऐसा निश्चित होता है कि कालिदास ने क्षिति इत्यादि शब्दों से श्रीशिवजी का विराट् स्वरूप वर्णन नहीं किया है क्योंकि उन मूर्त्तियों का 'प्रत्यक्षाभिः' यह विशेषण दिया है और लोग "या स्रष्टुः सृष्टिराद्या" इसका अर्थ आकाश करते हैं तो आकाश क्या अक्षि का विषय है? इससे मेरे ध्यान में आता है कि शिवजी की जो प्रत्यक्ष परम सुंदरी मूर्त्ति है यह उसी का वर्णन है। जैसे—

'या स्रष्टुः सृष्टिराद्या' अर्थात् जल, 'शीर्षे च मंदाकिनी' जिस मूर्त्ति में जल सब के ऊपर है।

'वहति विधिहुतं या हविः' अर्थात् अग्नि, 'वंदे सूर्यशशाङ्कवह्निनयन' जिस मूर्त्ति का एक मुख्य अंग अर्थात् नेत्र अग्नि है वा मुख वर्णन किया 'मुखो वै अग्निः, मुखादग्निः'।

'या च होत्री' अर्थात् यजमानस्वरूपा जो मूर्त्ति कर्म्ममार्ग स्थापन करनेवाली है 'अभिवाद्यो महाकर्म्मा तपस्वी भूतभावनः' 'सर्व्वकर्म्मा' 'सर्व्वयज्ञकृत्' इत्यादि नाम प्रसिद्ध हैं, 'तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षं पुरुषं' इत्यादि को दो-तीन ऋचा में यज्ञोत्पत्ति कही है।

ये द्वे कालं विधत्तः' अर्थात् चंद्रमा और सूर्य्य 'सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं' जिसकी दो नेत्र स्वरूप मूर्त्तियाँ काल का विधान करती हैं और शिव के निमिष में प्रलयादिक होते हैं यह भी पुराण-प्रसिद्ध वा सूर्य्य नेत्र चंद्रमा सिर पर वा मन स्वरूप 'चंद्रमा मनसो जातश्चक्षोस्सूर्य्यो अजायत'।

'श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वं' अर्थात् वाणीस्वरूपी मूर्त्ति, जिसकी वाणी वेद स्वरूप विश्व को अपने नियम में व्याप्त कर के स्थित है क्योंकि शिवजी वाणी के अधिदेवता 'वागीशः' 'अहंकलानां ऋषभोपि' 'विद्याकामस्तु गिरिशं' 'वाणी व्याकरणं यस्य' इत्यादि पुराण में प्रसिद्ध हैं वा वेदों का विषय होकर जो मूर्त्ति एकदेशावच्छिन्ना होकर भी विश्व को व्याप्त करके स्थित है 'स भूमिं सर्व्वतोवृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम्' वा नाभि अंग का वर्णन किया है, 'यस्य नाभिर्वै आकाशः' 'नाभ्या आसीदंतरिक्षं' इत्यादि।

चमत्कारजनक और अति मधुर वस्तु निर्व्वाचन करके भी स्वाभाविक सामग्री परिपोष के प्रति दृष्टिपात नहीं करते उनका नाटक नाटिकादि दृश्य काव्य लिखने का प्रयास व्यर्थ है क्योंकि नाटक आख्यायिका की भाँति श्रव्य काव्य नहीं है।

ग्रंथकर्त्ता ऐसी चातुरी और नैपुण्य से पात्रों की बातचीत रचना करै कि जिस पात्र का जो स्वभाव हो वैसी ही उसकी बात भी विरचित हो। नाटक में वाचाल पात्र की मितभाषिता, मितभाषी की वाचालता, मूर्ख की वाक्पटुता और पंडित का मौनीभाव विडंबना मात्र है। पात्र की बात सुनकर उसके स्वभाव का परिचय ही नाटक का प्रधान अंग है। नाटक में वाक्-प्रपंच एक प्रधान दोष है। रसविशेष द्वारा दर्शकों के अंतःकरण को उन्नत अथवा एकबारगी शोकावनत करने को समधिक वागाडंबर करने से कभी उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। नाटक में वाचालता की अपेक्षा मितभाषिता के साथ वाग्मिता का ही सम्यक् आदर होता है। नाटक में प्रपंच रूप से किसी भाव को व्यक्त करने का नाम गौण उपाय है और कौशल विशेष द्वारा थोड़ी बात में गुरुतर भाव व्यक्त करने का नाम मुख्योपाय है। थोड़ी सी बात में अधिक भाव की अवतारणा ही नाटक जीवन का महौषध है। जैसा उत्तर- रामचरित में महात्मा जनकजी आकर पूछते हैं—'क्वास्ते प्रजावत्सलो रामः'? यहाँ प्रजावत्सल शब्द से महाराज जनक के हृदय के कितने विकार बोध होते हैं, केवल सहृदय ही इसका अनुभव करगे। चित्रकार्य के निमित्त जिन-जिन उपकरणों का प्रयोजन और स्थान-विशेष की उच्चता-नीचता दिखलाने की जैसी आवश्यकता होती है वैसे ही वही उपकरण और उच्चता-नीचता प्रदानपूर्वक अति सुंदर रूप से मनुष्य के वाह्य भाव और कार्यप्रणाली के चित्रण द्वारा सहज भाव से उनका दिखलाना प्रशंसा का विषय है। जो इस भाँति दूसरे का अंतरभाव व्यक्त करने को समर्थ हैं, उन्हीं को नाटककार संबोधन दिया जा सकता है और उन्हीं के प्रणीत ग्रंथ नाटक में परिगणित होते हैं।

नाटक में अंतर का भाव कैसे चित्रित किया जाता है इसका एक अति आश्चर्य दृष्टांत अभिज्ञान शाकुंतल* से उद्धृत किया गया।

---

* इस प्रसिद्ध नाटक के मंगलाचरण का श्लोक "या सृष्टुः सृष्टिराद्या

कण्व का स्वभाव मनुष्य स्वभाव से कितना दूर जा पड़ता। इसी हेतु कविकुलमुकुट-माणिक्य भगवान् कालिदास ने ऋषि-जनोचित भाव ही में कण्व का शोक वर्णन किया।

नाटक-रचना में शैथिल्य दोष कभी न होना चाहिए। नायक-नायिका द्वारा किसी कार्य विशेष की अवतारणा करके अपरिसमाप्त रखना अथवा अन्य व्यापार की अवतारणा करके उसका मूलच्छेद करना नाटक-रचना का उद्देश्य नहीं है। जिस नाटक की उत्तरोत्तर कार्य-प्रणाली संदर्शन करके दर्शक लोग पूर्व-पूर्व कार्य विस्मृत होते जाते हैं वह नाटक कभी प्रशंसा-भाजन नहीं हो सकता। जिन लोगों ने केवल उत्तम-उत्तम वस्तु चुनकर एकत्र किया है उनकी गुंफित वस्तु की अपेक्षा जो उत्कृष्ट, मध्यम और अधम तीनों का यथास्थान निर्वाचन करके प्रकृति की भावभंगी उत्तम रूप से चित्रित करने में समर्थ हैं वही काव्यामोदी रसज्ञ-मंडली को अपूर्व आनंद वितरण कर सकते हैं। कालिदास, भवभूति और शेक्सपियर प्रभृति नाटक-कार इसी हेतु पृथ्वी में अमर हो रहे हैं। कोई सामग्री संग्रह नहीं है, अथच नाटक लिखना होगा यह अलीक संकल्प करके जो लोग नाटक लिखने को लेखनी धारण करते हैं उनका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। यदि किसी को नाटक लिखने की वासना हो तो नाटक किसको कहते हैं इसका तात्पर्य हृदयंगम करके, नाटकरचयिता को सूक्ष्म रूप से ओतप्रोत भाव में मनुष्य की प्रकृति आलोचना करनी चाहिए। जो अनालोचित-मानव-प्रकृति हैं उनके द्वारा मानव जाति के अंतर्भाव सब विशुद्ध रूप से चित्रित होंगे, यह कभी संभव नहीं है। इसी कारण कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतल और शेक्सपियर के मैकबेथ और हैमलेट इतने विख्यात हो के पृथ्वी के सर्व स्थान में एकादर से परिभ्रमण करते हैं। मानव प्रकृति की समालोचना करनी हो तो नाना देशों में भ्रमण करके नाना प्रकार के लोगों के साथ कुछ दिन वास करे; तथा नाना प्रकार के समाज में गमन करके विविध लोगों का आलाप सुने तथा नाना प्रकार के ग्रंथ अध्ययन करे; वरंच समय में अश्वरक्षक, गोरक्षक, दास, दासी, ग्रामीण, दस्यु प्रभृति नीच-प्रकृति और सामान्य लोगों के साथ कथोपकथन करे। यह न करने से मानवप्रकृति समालोचित नहीं होती। मनुष्यों की मानसिक

कण्व- (मन में चिंता करके) आहा आज शकुंतला पतिगृह में जायगी यह सोचकर हमारा हृदय कैसा उत्कंठित होता है, अंतर में जो वाष्पभर का उच्छवास हुआ है उससे वाग्जड़ता हो गई है और दृष्टिशक्ति चिंता से जड़ीभूत हो रही है। हाय ! हम वनवासी तपस्वी हैं। सो जब हमारे हृदय में ऐसा वैक्लव्य होता है तो कन्या के वियोग के अभिनव दुःख में बेचारे गृहस्थों की क्या दशा होती होगी ?

सहृदय पाठक ! आप विवेचना करके देखिए कि इस स्थान में कविश्रेष्ठ कालिदास कुलपति कण्व ऋषि का रूप धारण करके ठीक उनका मानसिक भाव व्यक्त कर सके हैं कि नहीं।

इसके बदले कालिदास यदि कण्व ऋषि का छाती पीटकर रोना वर्णन करते तो उनके ऋषि-जनोचित धैर्य की क्या दुर्दशा होती अथवा कण्व का शकुंतला के जाने पर शोक ही न वर्णन करते तो

'यामाहुः सर्व्वबीजप्रकृतिरिति' अर्थात् पृथ्वी को आपने भस्म स्वरूप से सर्व्वांग में धारण किया है 'भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गः' 'भस्मोद्धूलितविग्रहः' इत्यादि वा पृथ्वी, गंगा, शिर, नेत्र, मुख, नाभि इत्यादि अंगों को वर्णन करके चरण का वर्णन करते हैं जिसके चरण पृथ्वी स्वरूप हैं 'चरणे धरा' 'पद्भ्याम्भूमिः' इत्यादि।

'यया प्राणितः प्राणवंतः' अर्थात् आत्मा, तो इसमें मूर्त्ति ही में आत्मा का वर्णन इस हेतु किया जिसमें भगवान् के देह में आत्मा अलग है यह संदेह न हो क्योंकि 'यथा सैंधवघनो' इत्यादि परमात्मा का स्वरूप है तो सब मूर्त्तियों का वर्णन करके व्यापकत्व और आत्मस्वरूपत्व कहा वा कानों का वर्णन मानों 'श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च' वा आप प्राणायामस्थ हैं यह ध्यान किया है।

तो इन आठों मूर्त्तियों से विशिष्ट प्रत्यक्ष शिवजी का वर्णन कालिदास ने किया, कुछ संसार स्वरूप भगवान् का वर्णन नहीं है क्योंकि अंत में भी 'नीललोहितः' विशेषण दिया है और यों मानने से क्रम से शिर पर गंगा फिर मुख और उनके यज्ञादिक कर्म्म और चंद्रचूड़ तथाच नेत्र फिर वाणी का वा नाभि का और भस्मधारण का तथा चरण का और फिर मुखस्वरूप आत्मा का क्रमशः वर्णन हो गया तो मेरी बुद्धि में आता है कि कालिदास का अभिप्राय भी यही होगा क्योंकि 'प्रत्यक्षाभिः' का दोष और नाटक के उपसंहार में सगुण शिव नीललोहित करके वर्णन इत्यादि का इस अर्थ में विरोध नहीं आता।

रहता। शृंगार की पुष्टि के हेतु विदूषक का प्रयोजन होता है, सो भी सब स्थलों में नहीं, क्योंकि किसी-किसी अवसर पर विदूषक के बदले विट, चेट, पीठमर्द, नर्मसखा प्रभृतिका प्रवेश विशेष स्वाभाविक होता है। प्रचीन शास्त्रों के अनुसार कुसुमवसंतादिक नामधारी, नाटा, मोटा, वामन, कुबड़ा, टेढ़े अंग का वा और किसी विचित्र आकृति का, किंवा हकला, तोतला, भोजनप्रिय, मूर्ख, असंगत, किंतु हास्य रस के अविरुद्ध बात करने वाला विदूषक होना चाहिए और उसका परिच्छद भी ऐसा हो जो हास्य का उद्दीपक हो।

संयोग शृङ्गार वर्णन में इसकी स्थिति विशेष स्वाभाविकी होती है।

अथ रस वर्णन

शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्भुत, वीभत्स, शांत, भक्ति वा दास्य, प्रेम वा माधुर्य, सख्य, वात्सल्य, प्रमोद वा आनंद।

शृंगार, संयोग और वियोग दो प्रकार का। यथा शकुंतला के पहले और दूसरे अंक में संयोग, पाँचवें छठे अंक में वियोग।

हास्य, यथा भाण और प्रहसनों में।

करुण, यथा सत्यहरिश्चंद्र में शैव्या के विलाप में।

रौद्र, यथा धनंजयविजय में युद्धभूमि-वर्णन।

वीर रस ४ प्रकार। यथा दानवीर, सत्यवीर, युद्ध वीर और उद्योगवीर। दानवीर, यथा सत्यहरिश्चंद्र में 'जेहि पाली इक्ष्वाकु सों' इत्यादि। सत्यवीर, यथा सत्यहरिश्चंद्र में 'बेंचि देह दारा सुअन' इत्यादि। युद्धवीर यथा नीलदेवी। उद्योगवीर[1] मुद्राराक्षस। भयानक, अद्भुत और वीभत्स, यथा सत्यहरिश्चंद्र में श्मशानवर्णन।

शांत यथा प्रबोध-चंद्रोदय में; भक्ति यथा संस्कृत चैतन्यचंद्रोदय में; प्रेम यथा चंद्रावली में। वात्सल्य और प्रमोद के उदाहरण नहीं हैं।

---

१ मुद्राराक्षस में मुख्य अंगीभाव से कोई रस न पाकर मुझको उद्योगवीर की कल्पना करनी पड़ी।

वृत्ति परस्पर जिस प्रकार अदृश्य है उन लोगों के हृदयस्थ भाव भी उसी रूप अप्रत्यक्ष हैं। केवल बुद्धि-वृत्ति की परिचालनाद्वारा तथा जगत् के कतिपय वाह्य कार्यों पर सूक्ष्म दृष्टि रखकर उसके अनुशीलन में प्रवृत्त होना होता है। और किसी उपकरणद्वारा नाटक लिखना झख मारना है।

राजनीति, धर्म्मनीति, आन्वीक्षिकी, दण्डनीति, संधि, विग्रह प्रभृति राजगुण; मंत्रणा, चातुरी, आद्य, करुणा प्रभृति रस, विभाव, अनुभाव, व्यभिचार भाव तथा सात्विक भाव तथा व्यय वृद्धि, स्थान प्रभृति त्रिवर्ग की समालोचना में सम्यक् रूप समर्थ हो तब नाटक लिखने को लेखनी धारण करे।

स्वदेशीय तथा भिन्नदेशीय सामाजिक रीति, व्यवहारिक रीति पद्धति का निदान फल और परिणाम इन तीनों का विशिष्ट अनुसंधान, नाटक-रचना का उत्कृष्ट उपाय है।

वेश और वाणी दोनों ही पात्र के योग्यतानुसार होनी चाहिएँ। यदि भृत्यपात्र प्रवेश करे तो जैसे बहुमूल्य परिच्छद उसके हेतु अस्वाभाविक है वैसे ही पंडितों के संभाषणकी भाँति विशेष संस्कृतगर्भित भाषा भी उसके लिए अस्वाभाविकी है। महामुनि भरताचार्य पात्र-स्वभावानुकूल भाषण रखने का वर्णन अत्यंत सविस्तर कर गए हैं। यद्यपि उनके नांदीरचनादि विषय के नियम हिंदी में प्रयोजनीय नहीं किंतु पात्रस्वभाव-विषयक नियम तो सर्वथा शिरोधार्य हैं।

नाटक पठन वा दर्शन में स्वभाव-रक्षा मात्र एक उपाय है जो पाठक और दर्शकों के मनःसमुद्र को भाव-तरंगों से आस्फालित कर देता है।

अथ विदूषक

नाटकदर्शकगण विदूषक के नाम से अपरिचित नहीं है, किंतु विदूषक का प्रवेश किस स्थान में योग्य है इसका विचार लोग नहीं करते। बहुत से नाटक-लेखकों का सिद्धांत है कि अथ इति की भाँति विदूषक की नाटक में सहज आवश्यकता है किंतु यह एक भ्रम मात्र है। वीर वा करुणरस-प्रधान नाटक में विदूषक का प्रयोजन नहीं

अथ रसविरोध

नाटक-रचना में विरोधी रसों को बहुत बचाना चाहिए। जैसे शृंगार के हास्य वीर विरोधी नहीं किंतु अति करुण वीभत्स रौद्र भयानक और शांत विरोधी हैं; तो जिस नाटक में शृंगाररस प्रधान अंगी भाव से हो उसमें ये न आने चाहिएँ। अति करुण लिखने का तात्पर्य यह है कि सामान्य करुण तो वियोग में भी वर्णित होगा किंतु पुत्रशोकादिवत् अति करुण का वर्णन शृंगार का विरोधी है। हाँ नवीन (ट्रैजेडी) वियोगांत नाटक-लेखक तो यह रस-विरोध करने को बाधित हैं। नाटकों की सौंदर्य्यरक्षा के हेतु विरोधी रसों को बचाना भी बहुत आवश्यक कार्य है, अन्यथा होने से कवि का मुख्य उद्देश्य नष्ट हो जाता है।

अथ अन्य स्फुट विषय

नाटक-रचना के हेतु पूर्वोक्त कथित विषयों के अतिरिक्त कुछ नायिकाभेद और कुछ अलंकारशास्त्र जानने की भी आवश्यकता होती है। ये विषय रसरत्नाकर, भारतीभूषण, लालि-
आदि ग्रंथों में विस्तृत रूप से वर्णित हैं।

आजकल की सभ्यता के अनुसार नाटकरचना में उद्देश्यफल उत्तम निकलना बहुत आवश्यक है। यह न होने से सभ्यशिष्टमण्ड ग्रंथ का तादृश आदर नहीं करते, अर्थात् नाटक पढ़ने वा देखने से कोई शिक्षा मिले, जैसे सत्यहरिश्चंद्र देखने से आर्य जाति की सत्य प्रतिज्ञा, नीलदेवी से देशस्नेह इत्यादि शिक्षा निकलती हैं। इस मर्यादा की रक्षा के हेतु वर्त्तमान समय में स्वकीया नायिका तथा उत्तम गुण विशिष्ट नायक को अवलंबन करके नाटक लिखना योग्य है। यदि इसके विरुद्ध नायिका-नायक के चरित्र हों तो उसका परिणाम बुरा दिखलाना चाहिए। यथा नहुष नाटक में इंद्राणी पर आसक्त होने से नहुष का नाश दिखलाया गया है, अर्थात् चाहे उत्तम नायिका-नायक के चरित्र की समाप्ति सुखमय दिखलाई जाय किंवा दुश्चरित्र पात्रों के चरित्र की समाप्ति कंटकमय दिखलाई जाय।

---

१ प्रथम आवृत्ति में यह नाम नहीं है। तीनों भारतेंदु जी के पिता बा० गिरिधरदास प्रणीत हैं। (स०)

नाटक के परिणाम से दर्शक और पाठक कोई उत्तम शिक्षा अवश्य पावें।

अथ अभिनय विषयक अन्यान्य स्फुट नियम

नाटक की कथा—नाटक की कथा की रचना ऐसी विचित्र और पूर्वापरबद्ध होनी चाहिए कि जब तक अंतिम अंक न पढ़े किंवा न देखे, यह न प्रगट हो कि खेल कैसे समाप्त होगा। यह नहीं कि 'सीधा एक को बेटा हुआ, उसने यह किया वह किया' प्रारंभ ही में कहानी का मध्य बोध हो।

पात्रों के स्वर—शोक, हर्ष, हास, क्रोधादि के समय में पात्रों को स्वर भी घटाना-बढ़ाना उचित है। जैसे स्वाभाविक स्वर बदलते हैं, वैसे ही कृत्रिम भी बदलें। 'आप ही आप' ऐसे स्वर में कहना चाहिए कि बोध हो कि धीरे-धीरे कहता है, किंतु तब भी इतना उच्च हो कि श्रोतागण निष्कंटक सुन लें।

पात्रों की दृष्टि—यद्यपि परस्पर वार्त्ता करने में पात्रों की दृष्टि परस्पर रहेगी किंतु बहुत से विषय पात्रों को दर्शकों की ओर देख-कर कहने पड़ेंगे। इस अवसर पर अभिनय-चातुर्य यह है कि यद्यपि पात्र दर्शकों की ओर देखें किंतु यह न बोध हो कि वह बातें वे दर्शकों से कहते हैं।

पात्रों के भाव—नृत्य की भाँति रंगस्थल पर पात्रों को हस्तक भाव वा मुख, नेत्र, भ्रू के सूक्ष्मतर भाव दिखलाने की आवश्यकता नहीं, स्वर भाव और यथायोग्य स्थान पर अंगभंगी भाव ही दिख-लाने चाहिएँ।

पात्रों का फिरना—एक यह साधारण नियम भी माननीय है कि फिरने वा जाने के समय जहाँ तक हो सके पात्रगण अपनी पीठ दर्शकों को बहुत कम दिखलावें किंतु इस नियम पालन का इतना आग्रह न करें कि जहाँ पीठ दिखलाने की आवश्यकता हो वहाँ भी न दिखलावें।

पात्रों का परस्पर कथोपकथन—पात्रगण आपस में जो वार्त्ता क उसको कवि निरे काव्य की भाँति न ग्रथित करे। यथा नायिका से नायक साधारण काव्य की भाँति 'तुम्हारे नेत्र कमल हैं, कुच कलश

हैं' इत्यादि न कहें। परस्पर वार्त्ता में हृदय के भावबोधक वाक्य ही कहने योग्य हैं। किसी मनुष्य वा स्थानादि के वर्णन में लंबी-चौड़ी काव्यरचना नाटक के उपयोगी नहीं होती।

अथ नाटकों का इतिहास

यदि कोई हमसे यह प्रश्न करे कि सब के पहिले किस देश में नाटकों का प्रचार हुआ तो हम क्षणमात्र का भी विलंब किए बिना मुक्त कंठ से कह देंगे 'भारतवर्ष में'। इसका प्रमाण यह है कि जिस देश में संगीत और साहित्य प्रथम परिपक्व हुए होंगे वहीं प्रथम नाटक का भी प्रचार हुआ होगा। हम नहीं समझ सकते कि पृथ्वी की और कोई जाति भी भारतवर्ष के सामने इस विषय में मुँह खोले। आर्यों का परम शास्त्र वेद संगीत और साहित्यमय है। और जाति में संगीत और साहित्य प्रमोद के हेतु होते हैं किंतु हमारे पूज्य आर्य महर्षियों ने इन्हीं शास्त्रों-द्वारा आनंद में निमग्न होकर परमेश्वर की उपासना की है, यहाँ तक कि हमारे तीसरे वेद साम की संज्ञा ही गान है। और किसके यहाँ धर्म संगीत-साहित्य-मय है? हमारे यहाँ लिखा है—

वीणावादनतत्त्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्चाप्रयासेन मोक्षमार्गं प्रयच्छति॥ १॥
काव्यालापाश्च ये केचित् गीतिकान्यखिलानि च।
शब्दरूपघरस्यैते विष्णोरंशा महात्मनः॥ २॥

तो जब हमारे धर्म के मूल ही में संगीत और साहित्य मिले हैं, तब इसमें क्या संदेह है कि इस रस के प्रथमाधिकारी आर्यगण ही हैं। इसके अतिरिक्त नाटकरचना में रंग नट इत्यादि जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे सब प्राचीन काव्य, कोष, व्याकरण और धर्मशास्त्रों में पाए जाते हैं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि नाटकरचना हमारे आर्यगणों को पूर्व-काल ही से विदित है।

सर्वदा नट लोगों के ही द्वारा ये नाटक नहीं अभिनीत होते थे, आर्य राजकुमार और कुमारीगण भी इसको सीखते थे। महाभारत के खिल हरिवंश पर्व के विष्णु पर्व के ६३ अध्याय में प्रद्युम्न-सांबादि यादव राजकुमारों का वज्रनाभ के पुर में जाना और वहाँ नट बनकर (कौवेररंभाभिसार) नाटक खेलना बहुत स्पष्ट रूप से वर्णित

है। वहाँ लिखा है कि जब प्रद्युम्न आदिक वीर वज्रनाभ के पुर में गए तब भगवान् श्रीकृष्णचंद्र ने कुमारों को नाटक करने की आज्ञा देकर भेजा था। प्रद्युम्न सूत्रधार थे, सांब विदूषक थे और गद पारिपार्श्वक थे। यहाँ तक कि स्त्रियाँ भी गाने-बजाने का साज लेकर साथ गई थीं। पहले दिन इन लोगों ने रामजन्म नाटक किया जिसमें लोमपाद राजा की आज्ञा से गणिकाओं का शृंगी ऋषि को ठगकर लाना बहुत अच्छी रीति से दिखलाया गया था। दूसरे दिन फिर रंभाभिसार नाटक किया[1]। इसमें पहिले इन लोगों ने नेपथ्य बाँधा[2]। फिर स्त्रियों ने भीतर से बड़े सुंदर स्वर से गान किया[3]। पीछे गंगाजी के वर्णन में प्रद्युम्न, गद और सांब ने मिलकर नांदी गाई[4] और तदनंतर प्रद्युम्नजी ने विनय के श्लोक पढ़कर सभा को प्रसन्न किया[5] और तब नाटक आरंभ हुआ। इसमें शूर नामक यादव रावण बना, मनोवती नाम्नी स्त्री रंभा,[6] प्रद्युम्न नलकूबर और सांब विदूषक। इसी प्रकरण से यह बात सिद्ध होती है कि केवल नट ही नहीं, प्राचीन काल से आर्यकुल में बड़े बड़े लोग भी इस विद्या को भली भाँति जानते थे।

मध्य समय के नाटक

मध्य समय के नाटककारों में कविकुलगुरु भगवान् कालिदास[7]

---

१ मैमापि बद्धनेपथ्या नटवेषधरास्तथा। कार्यार्थं भीमकर्माणो नृत्यार्थमुपचक्रमुः॥ इत्यादि २१ श्लोक से ३२ तक।

२ अर्थात् बिना नेपथ्य के महाराष्ट्रों की भाँति शतरंजी और मशालची के भरोसे नाटक नहीं खेला।

३ इससे विदित हुआ कि वाह्यपटी उठने के पहले गान होना भी प्राचीन रीति है।

४ नांदी विषयक दृढ़ नियम उसी काल से प्रचलित है।

५ विनय के श्लोक पढ़े अर्थात् प्रस्तावना हुई।

६ इससे एक बात यह बहुत बड़ी प्रमाणित हुई कि प्राचीन काल में स्त्री का वेष स्त्री लेती थीं।

७ पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावात् अनामिका सार्थवती बभूव॥ १॥

मुख्यतम हैं। भवभूति[1] और धावक दूसरी श्रेणी में हैं। राजशेखर, जयदेव, भट्टनारायण, दंडी[2] इत्यादि तीसरी श्रेणी में हैं। अब जितने नाटक प्रसिद्ध हैं उनमें मृच्छकटिक सबसे प्राचीन है। इसके पीछे शकुंतला और विक्रमोर्वशी बने हैं। यहाँ पर एक बड़ी प्रसिद्ध बात का विचार करना है। प्रायः सभी प्राचीन इतिहास-लेखकों ने लिखा है कि श्रीहर्ष कालिदास के पूर्व हुआ, क्योंकि मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने धावक का नाम लिया है, किंतु राजतरंगिणी में हर्ष नामक जो राजा हुआ है वह विक्रमादित्य के कई सौ वर्ष पीछे हुआ है। अनंतदेव नामक राजा भोज के समय में था। अनंत का पुत्र कलस हुआ जिसने आठ बरस राज्य किया। इसका पुत्र हर्ष था जिसने कई दिन मात्र राज्य किया था। कनिंगहम के मत से हर्ष सन् १०८८ ई० में और विल्सन के मत से १०५४ ई० में हुआ था। यद्यपि राजतरंगिणीकार ने हर्ष को कवि लिखा है और बिल्हण और बिल्लण कवि भी इसके समय में लिखे हैं किंतु धावक का नाम तथा रत्नावली इत्यादि के बनने का प्रसंग कोई नहीं लिखा। राजतरंगिणीकार के मत से हर्ष के समय अत्यंत उपद्रव रहा। और चारों ओर राजकुमार तथा उच्च कुल के लोगों के रुधिर की

---

१ भवभूतेः संबंधात् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥ १ ॥

२ जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दंडिनि ॥ १ ॥

प्रसिद्ध कवि कालिदास और दंडी की साक्षिनी दो स्त्रियाँ भी कवि हुई थीं। यथा—'नीलोत्पलदलश्यामां विजिकां मामजानता। वृथैव दंडिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥' तथा 'सरस्वतीव कर्णाटी विजयांका जयत्यसौ। या वैदर्भगिरां वासः कालिदासादनंतरम्' ॥ १ ॥

[दंडी नाटककार नहीं थे। भूल से उद्दंड कृत मल्लिकामारुत को भारतेंदु जी ने दंडी कृत माना है। (सं०)]

भास नामक कोई कवि नाटककार हुआ है, किंतु उसका नाटक प्रसिद्ध नहीं है। सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः। सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव' ॥ १ ॥ 'भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः' ॥ १ ॥ [अब इनके प्रायः सब नाटक प्राप्त हो गये, जिनकी संख्या तेरह है। (सं०)]

नदी बहती थी। हर्ष श्रीस्वामी दयानंद सरस्वती की भाँति मूर्ति-पूजा के भी विरुद्ध था, इसी हेतु प्रजा उसको तुरुष्क पुकारती थी। इन बातों से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि या तो धावकवाला श्रीहर्ष दूसरा है, कश्मीर का नहीं या मालविकाग्निमित्रकार कालिदास वह जगत्प्रसिद्ध शकुंतला का कालिदास नहीं। दूसरी बात विशेष संभव बोध होती है, क्योंकि शकुंतला और मालविकाग्निमित्र की संस्कृत ही में भेद नहीं, काव्य की उत्तमता मध्यमता में भी आकाश-पाताल का बीच है।

राजतरंगिणी में लिखा है कि कश्मीर के राजा तुंजीन के समय म चंद्रक कवि ने बड़ा सुंदर नाटक बनाया। यह तुंजीन राजतरंगिणी के हिसाब से गत कलि ३५८२ मे अर्थात् आज से १४०२ वर्ष पहिले, ट्रायर के मत से १०३ ई० पूर्व अर्थात् आज १९८६ वर्ष पहले, कनिंगहम के मत से ईस्वी सन् ३१९ में अर्थात् १५६४ वर्ष पहले, विल्सन के मत से १०४ ई० पूर्व अर्थात् १९८७ वर्ष पहले, विल्फर्ड के मत से सन् ५४ ईस्वी में अर्थात् १८२९ वर्ष पहले हुआ था।

जिन-जिन संस्कृत नाटकों की स्थिति मुझको उपलब्ध हुई है, उनकी एक तालिका प्रकाशित की जाती है। इनमें* ऐसा चिह्न जिनपर दिया है वे नाटक मेरे पढ़े हुए हैं और छपे भी हैं और जिनपर × ऐसा चिह्न है वे मेरे पढ़े तो हैं, किंतु छपे नहीं हैं और शेष भारतवर्ष में मिलते तो हैं, किंतु मेरे देखे हुए नहीं हैं। इन्हीं नाटकों में कोई कोई ऐसे भी होंगे जो मृच्छकटिक के पूर्व के बने होंगे किंतु अब इस बात का पता नहीं लग सकता है। यह सारी सृष्टि दो हजार वर्ष की है। जिस काल के अनंत उदर में हम आर्यों के अनंत ग्रंथ-रत्न गल-पच गए वहाँ इसके पूर्व के नाटक भी गए। कालिदास, भवभूति प्रभृति महाकवियों के जीवनचरित स्वतंत्र आलोच्य विषय हैं; इस हेतु यहाँ नहीं लिखे गए।

अथ संस्कृत-नाटक-तालिका

शाकुंतल*	(कालिदास)	धूर्तसमागम*१	(राजशेखर)
मालविकाग्निमित्र*	,,	कर्पूरमंजरी ×	,,
विक्रमोर्वशी*	,,	विद्धशालभंजिका*	,,

मालतीमाधव*	(भवभूति)	प्रचंडपांडव२	(राजशेखर)
महावीरचरित*	”	बालरामायण७	”
उत्तररामचरित*	”	प्रसन्नराघव*	(जयदेव)
रत्नावली*	(श्रीहर्ष)	अनर्घ्यराघव*	(मुरारि)
नागानन्द*	”	पुष्पमाला*३	(चंद्रशेखर)
प्रियदर्शिका*	”	उदात्तराघव४	”
महारामायण ५	(चंद्रशेखर)	तप्तीसंवरण १३	(त्रावंकोरराज)
अगदनाटक६		मालमंगल भाण	(मालमंगल)
हनुमन्नाटक७	...	कलावतीकामरूप	...
मुद्राराक्षस*	(विशाखदत्त)	नवभूपतिग्रह नाटक	...
वेणीसंहार*	(नारायण भट्ट)	प्रियदर्शना १४	...
धनञ्जयविजय*	(कांचन)	यादवोदय	...
मृच्छकटिक*	(शूद्रक)	बालिबध	...
जामदग्न्यजय८	...	अनेकमूर्त्त १५	...
समुद्रमथन } ९ त्रिपुरदा }	...	मयंकपालिका १६	...
		क्रीड़ारसातल १७	...
शारदातिलक१०	(शङ्कर)	कनकावतीमाधव	...
ययातिचरित	(रुद्र भट्ट)	विदुमती १८	...
ययाति विजय	...	केलिरैवतक १९	...
ययातिशर्म्मिष्ठा ११	...	कामदत्ता	...
मृगांकलेखा	(त्रिमल्लदेव के पुत्र विश्वनाथ)	सुदर्शनविजय २०	...
		वासंतिकापरिणय	...
हास्यार्णव ×१२	...	चित्रयज्ञ	(वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य्य)
विदग्धमाधव ×	(रूप गोस्वामि)	वृषभानुजा नाटिका ×	(मथुरादास कायस्थ)
राधामाधव	...		
पारिजात नाटक	...	ऊषारागोदय ×	(रुद्रचंद्र देव)
कमलिनीकलहंस	(चूड़ामणि दीक्षित)	मल्लिकामारुत*	(उद्दंड)
वसंततिलक भाण*२१	(वरदाचार्य्य)	शृंगारतिलक	(रुद्र भट्ट)
मुकुदानंद × २२	...	देवीमहादेव ३१	...
लटक मेलक प्रहसन * २३...		ताराशशांक ३२	(श्रीधर)
दानकेलिकौमुदी × २४	...		

अभिरामणि (सुंदर मिश्र)
मधुरानिरुद्ध २५ (चंद्रशेखर)
कंसवध × (शेष कृष्णकवि)
प्रद्युम्नविजय { वेंकटकृष्ण दीक्षित के पुत्र शङ्कर दीक्षित
श्रीदामचरित धूर्तनर्तक { सामराज दीक्षित
कौतुकसर्वस्व (गोपीनाथ पं०)
प्रबोधचंद्रोदय* (कृष्ण मिश्र)
चैतन्यचन्द्रोदय × (कर्णपूर)
संकल्पसूर्योदय*२६ (वेदांताचार्य)
रामाभ्युदय २७ ...
कुंदमाला ...
सौगंधिकाहरण २८ ...
रैवतकमदनिका २९ ...
कुसुमशेखरविजय ३० ...
नर्मवती नाटक ...
विलासवती ...
पार्वतीस्वयंवर ...
सुभद्राविजय ...
सुभद्राहरण ४३ ...
मैथीपरिणय ...
रुक्मिणीकल्याण (चूड़ामणि दीक्षित)
वसुमती-चित्रसेन ...
विद्यापरिणय ४४ (वेदकवि स्वामी)
अहल्या-सक्रन्दन ...
आनन्दविलास ...
सेवंतिकापरिणय ...
कनकवल्लीपरिणय ...

चंडकौशिक*३३ (आर्य क्षेमीश्वर)
जानकीराघव ...
रुक्मिणीपरिणय × ३४ (रामचन्द्र)
गृहवृक्षवाटिका (काव्य)...
कुलपत्यंग ३६ ...
वध्यशिला ३७ ...
तरंगदत्त (प्रकरण) ...
लीलामधुकर ३८ ...
दूतांगद × ३९ ...
मुंडित प्रहसन × (सुभट)
नाटक सर्वस्व ४० ...
उदयनचरित ...
कृत्यारावण ...
रामाभिनंद ...
रामचरित ...
चन्द्रकला ४१ (विश्वनाथ)
प्रभावतीपरिणय ४२ ...
सामवत नाटक (पं० अंबिकादत्त व्यास साहित्याचार्य)
छलितराम ...
कंदर्पकेलि ...
स्तंभितरंभ ...
विजयपारिजात वा आसामविजय नाटक } (हरिजीवन) ४८
पुष्पदूषितक (प्रकरण) ४९
लक्षिता नाटिका ५० ...
जानकीपरिणय × (रामभद्र दीक्षित)
माधवाभ्युदय ५१ (वेदांताचार्य)

औफ्रेने पुष्पमाला तथा भाषार्णव का रचयिता एक चन्द्रशेखर तथा मधुरा-निरुद्ध का अन्य चन्द्रशेखर राय लिखा है।

५—औफ्रे में इस नाम का कोई नाटक नहीं मिला, वेदान्त पर एक ग्रंथ है।

६—यह भूभट्ट कृत है।

७—इसका दूसरा नाम महानाटक है और किसी हनुमंतकृत कहा जाता है।

८—यह ऑफ्रे में नहीं दिया है।

९—समुद्र-मंथन समवकार और त्रिपुरदाह डिम् वत्सराज कृत हैं। इसके चार अन्य नाटक रुक्मिणी-हरण, किरातार्जुनीय, कर्पूरचरित और हास्य 'ड़ामणि हैं।

(कीथ पृ० २६७)

१०—यह भाण नाटक है।

११—यह ऑफ्रे में नहीं है।

१२—यह जगदीश्वर कृत है।

(कीथ पृ० २६१)

१३—यह तथा सुभद्रा-धनंजय केरलनरेश कुलशेखर वर्मा कृत हैं।

(कीथ पृ० ३४२)

१४-१६-ऑफ्रे में नहीं दिया है।

१७—यह श्रीगादित नाटक है और इसका साहित्यदर्पण में उल्लेख है।

१८—ऑफ्रे में नहीं है।

१९—यह हल्लीश है, साहित्यदर्पण में इसका उल्लेख है।

२०—यह श्री निवासाचार्य्य कृत है।

२१—यह वरदाचार्य उपनाम अम्माल आचार्य वैष्णव कृत है। इस नाटक का दूसरा नाम अम्माभाण है।

२२—यह काशीपति कविराज कृत भाण है।

(कीथ पृ० २६४)

२३—यह शंखधर कविराज कृत प्रहसन है। ऑफ्रे ने लटकमेलन नाम लिखा है पर सं० १४८० की हस्तलिखित प्रति मेरे पास है उसमें लटक मेलक ही नाम है।

रामनाटक ...
सुभद्राधनंजयविजय (गुरुराम)
बकुलमालिनीपरिणय ४५ (कृष्ण दीक्षित)
वसंतभूषण भाण ४६ ...
इंदिरापारणय ...
कल्याणीपरिणय ...
कुसुमबाणविलास ...
बटुचरित्र नाटक ...
मरकतवल्लीपरिणय ४७ ...
चूड़ामणि नाटक ...
हरिश्चंद्रयशश्चन्द्रिका ...
नरकासुर व्यायोग ५१
अरुणामोदिनी ...
बृहन्नाटक ...
काशीदास प्रहसन ...
अंबाल भाण ५४ (श्रीवरदाचार्य्य)
कृष्णभक्तिचन्द्रिका नाटक × (अनन्त देव)
अतंद्रचन्द्रिका (विद्यानिधि)
पार्थपराक्रम ५५ ...
प्रद्युम्नानंदनीय (वेंकटाचार्य्य)
पंचबाणविजय ...
रविकिरणकूर्चिका ...
सुभद्राधनंजय ५२ ...
कन्यामाधव नाटक ...
त्रिपुरारि ...
सत्यभामापरिणय (कृष्णकवींद्र)
भिक्षाटन नाटक ...
मंत्रांग नाटक ...
संवरण नाटक ...
सीताराघव नाटक ...
भर्तृ हरिनिर्वेद ...
धर्मविजय नाटक (शुकल भूदेव)
सत्संगविजय नाटक (वैद्यनाथ)
चन्द्रप्रभा × ...
कर्णसुंदरी नाटिका ५६ ...
रतिवल्लभ × ५७ (जगन्नाथ पंडितराज)
जगन्नाथवल्लभ नाटक ५८
ध्रुवचरित * ५९ (पं० दामोदर शास्त्री)

१—यह प्रहसन ज्योतिरीश्वर कवि शेखर कृत है जो पँद्रहवीं शताब्दी में हुआ है ।

(कीथ पृ० २६१)

२—प्रचण्ड पाण्डव का दूसरा नाम बाल भारत है और यह अपूर्ण है। राजशेखर की केवल चार कृतियाँ हैं।

(कीथ पृ० २३२—३)

३—यह तथा मधुरानिरुद्ध दो नाटक भारतेन्दु जी ने चन्द्रशेखर कृत लिखे हैं पर कीथ ने केवल एक चन्द्रशेखर का उल्लेख किया है, जो शंकुतलो का टीकाकार है।

४—यह मायुराज कलचुरी कृत है। इसके केवल उद्धरण मिलते हैं।

(कीथ पृ० २६९-२७०)

४०—ऑफ्रे में नहीं है।

४१—विश्वनाथ कृत चन्द्रकला नाटिका है और इसी नाम का एक अन्य नाटक नारायण कृत है।

४२—यह भी विश्वनाथ की कृति है।

४३—यह माधवकृत है और श्रीगदित नाटक है।

(कीथ पृ० २६८)

४४—यह तथा जीवानंदन दो नाटक आनंदराय मखी कृत हैं, जो वेद कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(कीथ पृ० २५३)

४५—४६-ऑफ्रे में नहीं है।

४७—नाटककार का नाम श्रीनिवासदास है।

४८—ऑफ्रे में नहीं है।

४९—इसका दूसरा नाम पुष्पभूषित है।

(कीथ पृ० २२५-३४०)

५०—ऑफ्रे में नहीं है।

५१—यह नाम अशुद्ध ज्ञात होता है। देखिए टि० १२।

५२—यह तथा सुभद्रा-धनंजय-विजय नाटक इस तालिका में गुरु-रामकृत लिखे गए हैं पर दोनों एक ज्ञात होते हैं। देखिए टि० १३

५३—इसका ठीक नाम नरकासुर-वध या नरकासुर-विजय होगा और यह धर्म पंडित कृत है।

५४—इसका ठीक नाम अम्माभाण है और अम्माल आचार्य कृत है जो वरदाचार्य का उपनाम है। देखिए टि० २१

(कीथ पृ० २६३)

५५—यह प्रह्लादन देवकृत है, जिनका समय बारहवीं शताब्दि है।

(कीथ पृ० २६०)

५६—यह विल्हण कृत है।

२४— यह रूप गोस्वामी कृत भाणिका है।

(कीथ पृ० २६८)

२५—देखिए टिप्पणी नं० ३।

२६—नाटककार का नाम वेंकटनाथ है, जिसने इस नाटक के सिवा यादवाभ्युदय महाकाव्य तथा हंस-संदेश खण्ड काव्य लिखा है।

(कीथ पृ० २५३)

२७—रामाभ्युदय, सुभद्रा-परिणय तथा पाण्डवाभ्युदय तीन नाटक श्रीरामदेव व्यास कृत हैं।

२८—यह व्यायोग विश्वनाथ कृत है। इस तालिका में इसका दो बार उल्लेख हुआ था, जिसमें से एक निकाल दिया गया।

(कीथ पृ० २६६)

२९—रैवतमदनिका गोष्ठी है और साहित्य-दर्पणमें इसका उल्लेख है।

३०—यह ईहामृग नाटक है।

३१—यह उल्लाप्य नाटक है।

३२—ऑफ्रे में इस नाम के नाटककार का पता नहीं है पर कृष्णकृत इसी नाम के एक काव्य का उल्लेख है।

३३—आर्य क्षेमीश्वर का एक और नाटक नैषधानंद है।

(कीथ पृ० २४०)

३४—रुक्मिणी-परिणय त्रावंकोर के रामवर्मा की कृति है, स्यात् भूल से रामचन्द्र लिखा गया है। रामचन्द्र ने बारहवीं शताब्दि में ६ नाटक लिखे थे, जिनका इसमें उल्लेख नहीं हुआ है।

(कीथ पृ० २४७, २६६)

३५—यह काव्य है।

३६—३८—ऑफ्रे में नहीं है।

३९— यह छाया नाटक सुभटकृत है। नाटककार का नाम प्रेस की कृपा से नीचे खसक कर मुंडित प्रहसन के सामने चला आया है, जो शिव ज्योतिर्विद कृत है।

अथ भाषानाटक

हिंदी भाषा में वास्तविक नाटक के आकार में ग्रंथ की सृष्टि हुए पचीस वर्ष से विशेष नहीं हुए। यद्यपि नेवाज कवि का शकुंतला नाटक, वेदांत-विषयक भाषा-ग्रंथ समयसार-नाटक, ब्रजवासीदास के प्रबोधचंद्रोदय प्रभृति नाटक के भाषा-अनुवाद नाटक नाम से अभिहित हैं किंतु इन सबों की रचना काव्य की भाँति है, अर्थात् नाटक-रीत्यानुसार पात्रप्रवेश इत्यादि कुछ नहीं है। भाषाकविकुल-मुकुटमणिक्य देव कवि का 'देवमायाप्रपंच नाटक' और श्रीमहाराज काशिराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्रीमहाराज विश्वनाथसिंह रीवाँ का आनंदरघुनंदन नाटक यद्यपि नाटक-रीति से बने हैं किंतु नाटकीय यावत् नियमों का प्रतिपालन इनमें नहीं है और ये छंदप्रधान ग्रन्थ है। विशुद्ध नाटक-रीति से पात्रप्रवेशादि नियम-रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य-चरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचंद्रजी) का है। इसमें इंद्र को ब्रह्महत्या लगना और उसके अभाव में नहुष का इंद्र होना, नहुष का इंद्रपद पाकर मद, उसकी इंद्राणी पर कामचेष्टा, इंद्राणी का सतीत्व, इंद्राणी के भुलावा देने से सप्तऋषि को पालकी में जोतकर नहुष का चलना, दुर्वासा का नहुष को शाप देना और फिर इंद्र का पूर्व पद पाना, यह सब वर्णित है। मेरे पिता ने बिना अँगरेजी शिक्षा पाए इधर क्यों दृष्टि दी, यह बात आश्चर्य की नहीं; उनके सब विचार परिष्कृत थे। बिना अंगरेजी की शिक्षा के भी उनको वर्तमान समय का स्वरूप भली भाँति विदित.

(कीर्ति पृ० २५६)

५७—जगन्नाथ पंडितराज की तेरह रचनाएँ मिली हैं, जिनमें एक भी नाटक नहीं है और न रतिवल्लभ नाम की कोई उनकी रचना है। आँफ्रे में भी उल्लेख नहीं है। एक अन्य जगन्नाथ का रतिमन्मथ ग्रंथ मिला है।

५८—इसके रचयिता का नाम रामानंदराय ज्ञात होता है।

५९—इसका नाम प्रथम संस्करण में नहीं है। इन टिप्पणियों में जिनके बारे में कुछ अन्य ग्रंथों से अशुद्धियाँ या रचयिता के नाम का पता चला है, उन्हीं का केवल उल्लेख किया गया है।

था। पहले तो धर्म के विषय में ही वे इतने परिष्कृत थे कि वैष्णवव्रत पूर्ण पालन के हेतु उन्होंने अन्य देवता-मात्र की पूजा और व्रत घर से उठा दिए थे। टामसन साहब लेफ्टिनेंट-गवर्नर के समय काशी में पहला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बड़ी बहिन को उन्होंने उस स्कूल में प्रकाश रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय में बहुत ही कठिन था क्योंकि इसमें बड़ी ही लोकनिंदा थी। हम लोगों को अँगरेजी शिक्षा दी। सिद्धांत यह कि उनको सब बातें परिष्कृत थीं और उनको स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है। नहुष नाटक बनने का समय मुझको स्मरण है। आज पचीस बरस हुए होंगे, जब कि मैं सात बरस का था, नहुष नाटक बनता था। केवल २७ वर्ष की अवस्था में मेरे पिता ने देह-त्याग किया, किंतु इसी अवसर में चालीस ग्रंथ—जिनमें बलराम-कथामृत, गर्गसंहिता, भाषा वाल्मीकिरामायण, जरासंधवध महा-काव्य और रसरत्नाकर ऐसे बड़े बड़े भी हैं—बनाए।

हिंदी भाषा में दूसरा ग्रंथ वास्तविक नाटककार राजा लक्ष्मण-सिंह का शकुंतला नाटक है। भाषा के माधुर्य आदि गुणों से यह नाटक उत्तम ग्रंथों की गिनती में है। तीसरा नाटक हमारा विद्यासुंदर है। चौथे के स्थान में हमारे मित्र लाला श्रीनिवासदास का तपती-संवरण, पंचम हमारा वैदिकी हिंसा, षष्ठ प्रिय मित्र बाबू तोताराम का केटोकृतांत और फिर तो और भी दो चार कृतविद्य लेखकों के लिखे हुए अनेक हिंदी नाटक हैं। सर विलियम म्योर साहिब के काल में अनेक ग्रंथ बने हैं क्योंकि वे ग्रंथ बनाने वालों को पारितो-षिक देते थे। इसी से रत्नावली भी हिंदी में बनी और छपी है किंतु इसकी ठीक वही दशा है जो पारसी नाटकों की है। काशी में पारसी नाटकवालों ने नाचघर में जब शकुंतला नाटक खेला और उसमें धीरोदात्त नायक दुष्यंत खेमटेवालियों की तरह कमर पर हाथ रख-कर मटक-मटककर नाचने और 'पतरी कमर बल खाय' यह गाने लगा तो डाक्टर थिबो, बाबू प्रमदादास मित्र प्रभृति विद्वान् यह कहकर उठ आए कि अब देखा नहीं जाता। ये लोग कालिदास के गले पर छुरी फेर रहे हैं। यही दशा बुरे अनुवादों की भी होती है। बिना पूर्व-कवि के हृदय से हृदय मिलाए अनुवाद करना शुद्ध झख मारना ही नहीं, कवि की लोकांतर-स्थित आत्मा को नरक-कष्ट देना है

इस रत्नावली की दुर्दशा के दो चार उदाहरण यहाँ दिखलाए जाते हैं। यथा 'तब यह प्रसंग हुआ कि यौगंधरायण प्रसन्न होकर रंगभूमि में आया और यह बोला,' 'और गान कर कहता है कि अए मदनिके'। अब कहिए यह रामकहानी है कि नाटक ?

और आनंद सुनिए 'जो आज्ञा रानीजी को ऐसा कर तैसा ही करती है' हाहाहा ! ! !

एक आनंद और सुनिए। नाटकों में कहीं-कहीं आता है 'नाट्येनोपविश्य' अर्थात् पात्र बैठने का नाट्य करता है। उसका अनुवाद हुआ है 'राजा नाचता हुआ बैठता है'। 'नाट्येनोल्लिख्य' की दुर्दशा हुई है 'ऐसे नाचते हुई लिखती है'। ऐसे ही 'लेखनी को लकर नाचती हुई' 'निकट बैठकर नाचती हुई'।

और आनंद सुनिए। 'इति विष्कम्भकः' का अनुवाद हुआ है 'पीछे विष्कम्भक आया'। धन्य अनुवादकर्त्ता और धन्य गवर्नमेंट जिसने पढनेवालों की बुद्धि का सत्यानाश करने को अनेक द्रव्य का श्राद्ध करके इसको छापा ! ! !

गवर्नमेंट की तो कृपादृष्टि चाहिए योग्यायोग्य के विचार की आवश्यकता नहीं। फालेन साहब की डिक्शनरी के हेतु आधे लाख रुपए से विशेष व्यय किया गया तो यह कौन बड़ी बात है। 'सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास'। यहाँ तो 'भेंट भए जयसाहि सों भाग चाहियत भाल' वाली बात है। किंतु ऐसी दशा में अच्छे लोगों का परिश्रम व्यर्थ हो जाता है क्योंकि 'आँधरे साहिब की सरकार कहाँ लौं करे चतुराई चितेरो'।

यद्यपि हिंदी भाषा में दस-बीस नाटक बन गए हैं किंतु हम यही कहेंगे कि अभी इस भाषा में नाटकों का बहुत ही अभाव है। आशा है कि काल की क्रमोन्नति के साथ ग्रंथ भी बनते जायँगे और अपनी संपत्ति-शालिनी ज्ञान वृद्धा बड़ी बहन वंगभाषा के अक्षय रत्नभांडागार की सहायता से हिंदी भाषा बड़ी उन्नति करे।

यहाँ पर यह बात प्रकाश करने में भी हमको अतीव आनंद होता है कि लंडननगरस्थ श्रीयुत फ्रेडरिक पिनकाट साहब ने भी शकुंतला का हिंदी भाषा में अनुवाद[1] किया है। वह अपने २० मार्च

१ यह अनुवाद नहीं है वास्तव में टीका टिप्पणी सहित राजा लक्ष्मणसिंह के अनुवाद का संस्करण है।

के पत्र में हिंदी ही में मुझको लिखते हैं 'उस पर भी मैंने हिंदी भाषा के सिखलाने के लिए कई एक पोथियाँ बनाई हैं। उनमें से हिंदी भाषा में शकुंतला नाटक एक है।'

हिंदी भाषा में जो सबसे पहला नाटक खेला गया वह जानकी-मंगल था। स्वर्गवासी मित्रवर बाबू ऐश्वर्यनारायण सिंह के प्रयत्न से चैत्र शुक्ल ११ संवत् १९२५ में बनारस थिएटर में बड़ी धूमधाम से यह खेला गया था। रामायण से कथा निकाल कर यह नाटक पंडित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी ने बनाया था। इसके पीछे प्रयाग और कानपुर के लोगों ने भी रणधीर-प्रेममोहनी और सत्यहरिश्चंद्र खेला था। पश्चिमोत्तर देश में ठीक नियम पर चलनेवाला कोई आर्य शिष्ट जन का नाटकसमाज नहीं है।

अथ हिंदी-नाटक-तालिका

नहुष नाटक	(श्रीगिरधरदास)	भारतजननी	(हरिश्चन्द्र)
शकुंतला	(राजा लक्ष्मण सिंह)	धनंजय-विजय	,,
,,	पिनकाट	वैदिकी हिंसा	,,
मुद्राराक्षस	(हरिश्चन्द्र)	बूढे मुँह मुँहासे लोग देखे तमाशे (बूढ़ो शालिकेरका अनुवाद)	बाबू गोकुल-चंद
सत्यहरिश्चन्द्र	,,		
विद्यासुंदर	,,		
अंधेर नगरी	,,		
विषस्य विषमौषधम्	,,	अद्भुतचरित्र वा गृहचडी	(श्रीमती)
सतीप्रताप	,,	तपतीसंवरण	(लाला श्रीनिवासदास)
चंद्रावली	,,	रणधीर-प्रेममोहिनी	,,
माधुरी	,,	केटो कृतांत	(बाबू तोताराम भारतबंधु-सम्पादक)
पाखड-विडंबन	,,	सज्जाद-सुबुक	(बाबू केशोराम भट्ट विहारबंधु-संपादक)
नवमल्लिका	,,	शमशाद-सौसन	,,
दुर्लभबंधु	,,	जय नारसिंह की	(पं देवकीनंदन तिवारी प्रयाग समाचारपत्र-संपादक)
प्रेमयोगिनी	,,	होली-खगेश	,,
जैसा काम वैसा परिणाम	,,	चक्षुदान	,,
कर्पूरमंजरी	,,		
नीलदेवी	,,		
भारतदुर्दशा	,,		

पूजा से वहाँ इनका चलन हुआ। प्राचीन काल से योरप के नाटक संयोगांत और वियोगांत इन दो भागों में बँटे हैं। आरिअन नामक कवि ने ५८० वर्ष ईसा के पूर्व वियोगांत नाटक की सृष्टि की। ट्रैजिडी (Tragedy) शब्द बकरे से निकला है, जिससे अनुमान होता है कि बैकस देवता के सामने बकरे का बलि दिया जाता था और उसी समय पहिले यह खेल आरम्भ हुआ; इससे वियोगांत नाटक की संज्ञा ट्रैजिडी हुई। कामेडी (Comedy) ग्राम शब्द से निकला है अर्थात् ग्राम्य सुखों का जिसमें वर्णन हो वह कामेडी (संयोगांत) है। थेसपिस ने (५३६ ई० पू०) प्रथम रंगशाला में एक शिष्य का वेष देकर मनुष्यों को संवाद पढ़वाया और उसी पात्र को फ्रिनिशश ने (५१२ ई० पू०) पहले पहल स्त्री का वेष देकर रंगशाला में सबको दिखलाया। इसके पीछे इशिलस के काल तक वियोगांत नाटकों में फिर कोई नई उन्नति नहीं हुई।

आरिअन ही के समय में बरन उसी के लाग पर सुसेरिअन ने संयोगांत नाटकों का प्रचार सारे यूनान में फिर-फिरकर किया और एक छोटी सी चलती-फिरती रंगशाला भी उनके साथ थी। उस काल के ये नाटक अब के बंगाली यात्रा वा रास के से होते थे। उस समय में वियोगांत नाटक गंभीराशय और विशे चित्ताकर्षक होने के कारण सभ्य लोगों में और संयोगांत ग्राम्य लोगों में खेले जाते थे। एपिकार्मस, फार्मस, मैग्नेस, क्रेटस्, क्रेटनस, यूपोलिस, फेटिक्रेटस् और एलिस्टेफेंस ये सब उस काल के प्रसिद्ध कामेडी-लेखक थे। बीच में लोगों ने संयोग-वियोग मिलाकर भी पुस्तकें लिखकर इस विद्या की उन्नति की।

वियोगांत नाटक में इशिलस, सोफाकोलस और यूरुपिडीस ये तीन बड़े दक्ष हुए। इन कवियों ने स्वयं पात्रों को अभिनय करना सिखाया और स्वाभाविक भावभंगी दिखलाने में विशेष परिश्रम किया। अरस्तू ने इन्हीं तीनों कवियों की अपने ग्रन्थ में बड़ाई की है।

रोमवाले नाटकविद्या में ऐसे दक्ष नहीं थे। इन लोगों ने यूनानवालों ही से इस विद्या का स्वाद पाया। शोक का विषय है कि प्लाटस् और टेरेंस के अतिरिक्त इन कवियों में से किसी का

पद्मावती, शर्मिष्ठा, चंद्रसेन (पं० बालकृष्ण भट्ट हिंदी प्रदीप-संपादक)
सरोजिनी (प० गणेशदत्त)
,, (राधाचरण गोस्वामी भारतेंदु-संपादक)
मृच्छकटिक (पं० गदाधर भट्ट) मालवीय)
,, (पं० दामोदर शास्त्री)
,, (बाबू ठाकुरदयाल सिंह)
वारांगनारहस्य (पं० बदरीनारायण चौधरी, आनन्दकादंबिनी के संपादक)
विज्ञानविभाकर (पं० जानी बिहारी-लाल)
ललिता नाटिका (पं० अंबिकादत्त व्यास साहित्याचार्य, वैष्णव पत्रिका और पीयूष-प्रवाह के संपादक)
देव-पुरुष दृश्य ,,
वेणीसंहार नाटक ,,
गोसंकट ,,
जानकीमंगल (पं० शीतलाप्रसाद त्रिपाठी)
दुःखिनी बाला (बाबू राधाकृष्ण दास)
पद्मावती ,,
महारास (महाराजाधिराज कुमार लाल खड्गबहादुर मल्ल युवराज मझौली राज)
रामलीला ७ कांड (पं० दामोदर शास्त्री, विद्यार्थी-संपादक)
बालखेल ,,
राधामाधव ,,
वेनिस का सौदागर (बाबू बालेश्वरप्रसाद काशीपत्रिका-संपादक)
,, बाबू ठाकुरदयाल सिंह

योरोप में नाटकों का प्रचार

योरप में नाटकों का प्रचार भारतवर्ष के पीछे हुआ है। पहले दो मनुष्यों के संवाद को ही वहाँ नाटकों का सूत्रपात मानते हैं। प्राचीन ईसाई-धमपुस्तक में 'बुक आव् जाब' और सुलैमान के गीतों में ऐसे संवाद मिलते हैं किंतु इनके अतिरिक्त हिब्रू भाषा में और कोई प्राचीन नाटक का ग्रंथ नहीं। योरप में सबसे प्राचीन नाटक यूनान में मिलते हैं और यह निश्चय अनुमान हुआ है कि भारतवर्ष से वहाँ यह विद्या गई होगी। यूनान में एथेंस प्रदेश में नाटकों का प्रचार विशेष था और डायोनिसस[1] नामक देवता के मेले में नाटक प्रायः खेले जाते थे। अनुमान होता है कि बैकस[2] नामक देवता की

१ यह युद्ध का देवता था।
२ यह मद्य का देवता है। प्रिंसिप साहब कहते हैं कि यह बलराम है।

रोका। जहाँ कोई नाटक खेलता, ये पादरी उसको धर्म्म-दंड देने को दौड़ते। विलेना, सांतिलाना, नाहरो और रूएडा नामक कवियों ने इस आपत्ति से बचने को अपनी लेखनी को धर्म्मविषयक नाटकों के लिखने पर परिचालित किया। विशेष करके करबैंटस ने अपने नाटक ऐसी उत्तमता से लिखे कि लोगों के चित्त से नाटकों की बुराई का संस्कार एकबारगी उठ गया। इसके पीछे कल्डिरन भी ऐसा ही उत्तम कवि हुआ कि उसको राजनियम-विरुद्ध होने पर भी सैंतीस बरस के वास्ते नाटक लिखने की राजाज्ञा मिली। ये दोनों कवि सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व्व-भाग में हुए थे।

फरासीस में नाटकों के विषय में बहुत सा वाद-विवाद होता रहा और इसके होने के नियमों पर लोगों में बड़ा चरचा रहा किंतु कोई बहुत उत्तम नाटक-लेखक उस समय नहीं हुआ। जाडिली ने पहले-पहल पाँच अंक का एक वियोगांत नाटक ठीक चाल पर बनाया और फरासीस के दूसरे हेनरी बादशाह के सामने वह खेला गया। चौदहवें लुई के दरबार में कार्नेली, मोलिएर और रैसिनी क्रम से एक से दूसरे अच्छे नाटकवाले हुए। इसके पीछे वालटायर बड़ा प्रसिद्ध हुआ और फिर चार-पाँच और प्रसिद्ध कवि हुए।

जर्मनी के नाटक के इतिहास में अठारहवीं शताब्दी के आरंभ तक कोई भी विशेष बात नहीं। लेसिंग ने पहले-पहल अपनी धूम-धाम की समालोचना में जर्मनी का ध्यान इधर फेरा। इसके पीछे गोथे और सिलर दो बड़े प्रसिद्ध लेखक हुए।

इँगलैंड के नाटकों का इतिहास अत्यंत शृंखलाबद्ध है। पहले यहाँ केवल मतसंबंधी नाटक होते थे और इनका प्रबंध भी पादरियों के हाथ में रहता था। ये नाटक दो प्रकार के होते थे—एक धर्मसंबंधी आश्चर्य्य घटनाओं के, दूसरे शिक्षा-संबंधी। इँगलैंड के पुनस्संस्कार ने इन पुरानी बातों में कोई स्वाद बाकी न रखा, यहाँ तक कि सोलहवीं शताब्दी के मध्य में संयोग और वियोग के नाटक स्वतंत्र रूप से वहाँ प्रचंड हुए। पहला संयोगांत नाटक सन् १५५७ में निकोलस उडाल ने लिखा। ठीक उसके दस बरस पीछे बीबी नोरटेन और लार्ड बकहर्स्ट ने गारवूडाक नामक पहला वियोगांत नाटक बनाया।

न नाम मालूम है न कोई ग्रंथ मिला। प्रसिद्ध आगस्टस के समय में रोम में इस विद्या की उन्नति हुई थी किंतु सेनीका नामक नाटक के अतिरिक्त और किसी ग्रंथ का नाम तक कहीं नहीं मिला। रोम के बड़े-बड़े महलों और वीरों के साथ वहाँ की विद्या और कला भी धूल में मिल गई, यहाँ तक कि उनका नाम लेनेवाला भी कोई न बचा। जब रोम में क्रिस्तानी मत फैला तो ऐसे नाटक का खेल राजनियम के अनुसार निषिद्ध कर दिए गए। केवल पिता पुत्र एपोलीनारी और ग्रेगरी ने इंजील से कथाभाग लेकर क्रिस्तानों का जी बहलाने को कुछ सवाँग इत्यादि बनाए थे।

योरप में इटलीवालों ने पहले-पहल ठीक तरह से नाटक के प्रचार में उद्योग किया और रोमवालों के चित्त में फिर से मुरझाए हुए इस बीज को हरा किया। सोलहवीं शताब्दी में ट्रिसनो कवि का सोफोनिस्बा नामक वियोगांत नाटक पहले-पहल छापा गया। आरिआस्टोवैबिना और मैशियाविली ने ट्रिसीनो की भाँति और कई नाटक लिखे। इसी शताब्दी के अंत में गिएम्बाटिस्टालिआपोर्टा ने प्रहसन पहले-पहल प्रकाश किया और इसमें परिहास की बातें ऐसी सुसभ्यता से वर्णन कीं कि लोगों ने नाटक की इस शैली को बहुत ही प्रसन्नता से स्वीकार किया। इसी समय में हिशी, बोरगिनी, ओडो और बुओनाटोरी ने जातीय स्नेह बढ़ानेवाले वीररसाश्रित इतिहास के खेल लिखे और प्रचारित किए। सत्रहवीं शताब्दी में रिनुशिनी ने पहले-पहल आपेरा (संगीत-नाट्य) का आरंभ किया। इसमें उसने ऐसी उत्तम रीति से प्रेम, देशस्नेह, वीर और करुण रस के गीत बाँधे कि सब लोग और नाटकों को भूलकर इसी की ओर झुके। मैकी नामक कवि ने इसकी और भी उन्नति की। अब स्पेन, फरासीस आदि में चारों ओर इसी गीतिनाट्य का चर्चा फैल गया। इसके पीछे जीनों, मेटैस्टेसिओ, गोलडोनी, मोलिएर, रिशोबिनी, गोज्जी, गालडोनी, आलफीरो, माँटी, मांजानी और निकोलिनी इत्यादि प्रसिद्ध कवियों ने पूर्वोक्त नाटकों के ऐसी उत्तमता से ग्रंथ लिखे और नाट्य में ऐसी उन्नति की कि इटली इस विद्या में सारे योरप की गुरु मानी गई।

योरप के और देशों में नाटकों के प्रचार को पादरियों ने बहुत

पात्रानुक्रम

अंधकार—भारत दुर्दशा
अनंगकेलि—कर्पूरमंजरी
अनंगलेखा— ,,
अनंगसेना— ,,
अनंत—दुर्लभबंधु
अब्दुश्शरीफ खाँ—नीलदेवी
अब्दुस्समद— ,,
आलस्य—भारतदुर्दशा
इंद्र—धनंजय विजय, सत्यहरिश्चन्द्र
उत्तरा— ,,
उदुर—मुद्राराक्षस
कंदर्पकेलि—कर्पूरमंजरी
कनकचंद— ,,
करिंजल— ,,
करुणा—पाखंड विडंबन
कर्पूरकेलि—कर्पूरमंजरी
कर्पूरमंजरी— ,,
कलिंगसेना— ,,
कलावती— ,,
कल्लू बनिया—अंधेर नगरी
कांचनचंद्र—कर्पूरमंजरी
कांचनमाला— ,,
कापालिक—पाखंडविडंबन
काममंजरी—चंद्रावली
कामिनी— ,,
कालगाशिक—मुद्राराक्षस
कुंदमाला—कर्पूरमंजरी
कुरंगिका— ,,
कुवलयमाला— ,,
कृपाचार्य—धनंजयविजय
केलिवती—कर्पूरमंजरी
कौडिन्य—सत्यहरिश्चन्द्र
क्षपणक जीवसिद्धि—मुद्राराक्षस
गंडकीदास—वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति
गंगाभाट—विद्यासुंदर
गप्प पंडित—प्रेमयोगिनी
गिरीश—दुर्लभ बंधु
गुणसिंधु—विद्यासुंदर
गृद्धराज—वैदिकी हिंसा
गोपाल शास्त्री—प्रेमयोगिनी
गोबरधन दास—अंधेरनगरी
चंडिका (नीलदेवी)—नीलदेवी
चंदनदास—मुद्राराक्षस
चंदनमाला—कर्पूरमंजरी
चंद्रकान्ता—चंद्रावली

उसके पीछे स्टिल, किड, लॉज, ग्रीन, लायली, पील, मार्लो और नैश इत्यादि कई प्रसिद्ध नाटककार हुए। जगद्विख्यात शेक्सपियर ने अपने वाक्य-माधुर्य्य के आगे सबको जीत लिया। यह प्रसिद्ध कवि सन् १५६४ में उत्पन्न हुआ। इसका पिता ऊन का व्यवसाय करता था और उसके दस लड़कों में शेक्सपियर सबसे बड़ा था। काल पाकर यह ऐसा प्रसिद्ध कवि हुआ कि पृथ्वी के मुख्य कवियों की गणना में एक रत्न समझा जाने लगा। इसको जैसी कविता-शक्ति थी वैसी ही विचित्र कथाओं को बाँधने की भी शक्ति थी। जिसके मस्तिष्क में ये दोनों शक्तियाँ एकत्र हों उसके बनाए हुए नाटकों का क्या पूछना है। नाटक भी इसने बहुत बनाए और सब रस के। निस्संदेह यह मनुष्य परमेश्वर की सृष्टि का एक रत्न हुआ है।

बेन ज़ानसन, ब्यूमौंट और फ्लेचर ये तीन शेक्सपियर के समकालीन प्रसिद्ध नाटककार हुए हैं। मैसिंजर, फोर्ड और शरला के काल तक इंगलैंड की प्राचीन नाटक-प्रणाली समाप्त होती है। सत्रहवीं शताब्दी के अंत में ड्राइडन ने नई प्रणाली के नाटक लिखने आरंभ किए। अठारहवीं शताब्दी में लो आटवे, ग्रे, कानग्रीव, सिबर, विचरली, वैनब्रो, फारक्वहर, एडिसन, जानसन, यंग, टामसन, लिलो, मूर, गैरिक, गोलडस्मिथ, कालमंस, कंबरलैंड, हालक्राफ्ट, बीबी इंचवाल्ड, लूइस, मैटूरिन और मैटयूरिन तथा आधुनिक काल में शेरिडन नोल्स, बुलवर लिटन, लार्ड बैरन, कालेरिज, हेनरी टेलर, टालफोर्ड, जेरल्ड ब्रूक्स, मार्स्टन, टाम टेलर, चार्ल्स रीड, राबर्टसन, विलस, बैरन, गिल्बर्ट, स्विनबर्न, टेनीसन और ब्रौनिंग प्रसिद्ध नाटककार गद्य-पद्यके कवि हुए हैं।

इँगलैंड में इन नाटक लिखनेवालों के हेतु एक राजनियम है जिससे अपने जीवित समय में कवि लोग और उनके पीछे उनके उत्तराधिकारी कवि-स्वत्व का भोग कर सकते हैं।

———

भागुरायण—मुद्राराक्षस
भामा—चंद्रावली
भारतदुर्गा—भारत जननी
भारत दुर्दैव—भारतदुर्दशा
भारतभाग्य— ,,
भारतमाता—भारतजननी
भारतलक्ष्मी— ,,
भारत सरस्वती— ,,
भासुरक—मुद्राराक्षस
भैरव—सत्यहरिश्चंद्र
भैरवानंद—कर्पूर मंजरी
मंगलमाला— ,,
मथुरादास—प्रेमयोगिनी
मदिरा—भारत दुर्दशा
मदिरावती—कर्पूरमंजरी
मधुकरी—सतीप्रताप
मल्लजी—प्रेमयोगिनी
मलयकेतु—मुद्राराक्षस
महादेव—सत्यहरिश्चंद्र
माखनदास—प्रेमयोगिनी
माणिक्यचंद—कर्पूरमंजरी
माणिक्यमाला— ,,
माधव शास्त्री—प्रेमयोगिनी
माधवी—चंद्रावली
माधुरी— ,,
मृगांकलेखा—कर्पूरमंजरी
मेघाक्ष—मुद्राराक्षस
यमराज—वैदिकी हिंसा, सतीप्रताप
यशोदा—दुर्लभबंधु
यौगंधरायण—रत्नावली
रत्नचंद—कर्पूरमंजरी
राक्षस—मुद्राराक्षस
राजसेन— ,,
रामचंद्र—प्रेमयोगिनी
रामभट्ट— ,,
रोग—भारतदुर्दशा
रोहिताश्व—सत्यहरिश्चन्द्र
ललिता—चंद्रावली
लवंग—दुर्लभबंधु
लवंगी—चंद्रावली
वनदेवी— ,,
वनितादास—प्रेमयोगिनी
वर्षा—चंद्रावली
वल्लभराज—कर्पूरमंजरी
वल्लभा—चंद्रावली
वसंत—नीलदेवी, दुर्लभबंधु
वसंतसेना—कर्पूरमंजरी
विचक्षणा— ,,
विजयपाल—मुद्राराक्षस
विजयवर्मा— ,,
विद्या—विद्यासुंदर
विद्याधर—धनंजय विजय

चंद्रगुप्त—मुद्राराक्षस
चंद्रपाल—कर्पूरमंजरी
चंद्रावली—चंद्रावली
चंपकलता— ,,
चंबूभट्ट—प्रेमयोगिनी
चपरगट्टू खाँ—नीलदेवी
चपला—विद्यासुंदर
चाणक्य—मुद्राराक्षस
चित्रगुप्त—वैदिकी हिंसा
चित्रलेखा—कर्पूरमंजरी
चित्रवर्मा—मुद्राराक्षस
छबकूजी—प्रेमयोगिनी
जाजलक—मुद्राराक्षस
विष्णुदास— ,,
जीर्णविष— ,,
जीवसिद्धि— ,,
झूरीसिंह—प्रेमयोगिनी
टेकचंद— ,,
डिसलायल्टी—भारत दुर्दशा
तरंगवती—कर्पूर मंजरी
तांबूलवती— ,,
दंडपाशिक—मुद्राराक्षस
दिगम्बर भिक्षुक—पाषंड विडम्बन
दीर्घचक्षु—मुद्राराक्षस
दुर्बल—दुर्लभबंधु
दुर्योधन—धनंजय विजय
देवीसिंह—नीलदेवी
द्युमत्सेन—सतीप्रताप
धनदास—प्रेमयोगिनी
धर्म—सत्यहरिश्चन्द्र
धर्मराज—धनंजय विजय
धूमकेतु—विद्यासुंदर
धैर्य—भारत जननी
नरश्री—दुर्लभबंधु
नारद—सत्यहरिश्चंद, चंद्रावली, सती प्रताप
नारायण—सत्यहरिश्चंद्र
नारायणदास—अंधेरनगरी
निपुणक—मुद्राराक्षस
नीलदेवी—नलीदेवी
पर्वतक—मुद्राराक्षस ,,
पार्वती—सत्यहरिश्चंद्र
प्रियंवदक—मुद्राराक्षस
पीकदानअली—नीलदेवी
पुरश्री—दुर्लभबंधु
पुरुषदत्त—मुद्राराक्षस
पुष्करनयन)—,,
पुष्कराक्ष)
प्रवीरक— ,,
बालमुकुन्द—प्रेमयोगिनी
बुद्धागम—पाषंडविडंबन
बुभुक्षित दीक्षित—प्रेमयोगिनी
भंडाचार्य—विषस्यविषमौषधम्
भद्रभट—मुद्राराक्षस

प्रतीकानुक्रमणिका

अंजन, गुटिका, पादुका ३०३
अंधेर नगरी अनबूझ राजा ६७०
अति कोमल सब अंग रंग साँवरो ४१५
अति चपल जे रथ चलत १९१
अतिसय दुर्गम ठाम मैं १८९
अति सुन्दर हू कामिनी बिनु ३८८
अतिहि क्रोध करि खोलिकै १८७
अतिही तीखन होन सों २२२
अथए सूरहि चंद के १९९
अधिक लाभ के लोभ सों २१४
अनियारे तीखे दृगनि ३९८
अपने बल सों लावहीं १४५
अपरस सोल्हा छूत रुचि ४७५
अपुनो अपुनो करि चुके १७३
अब जागे भागे लखौ ११४
अब जौ प्यारी सुन्दरी ६०८
अब भीलनि की भाँति इमि १०३
अब हम जात हो परदेसवाँ ५०५
अभय दियो जिन जगत कों १०२
अरे अहै कौटिल्य दुष्ट टेढ़ी १४०
अरे केवल बहु गहिना पहिरि १८१
अरे पौन सुख भौन सबै ४३८
अरे भँवर तुम श्याम-रंग ४३८
अरे भानु तुम तो घर घर ४३८
अरे यह जोगी सब मनमानै २३
अरे सुण-पीण पयोधर वारी ६१
अरे हंस तुम राज-वंस ४३८
अर्जुन ने यह बरुन अस्त्र १११
अलख गति युगल पिया प्यारे की ४६२
अलसाने कछु सुरत श्रम १०१
अहो अहो बन के रुख ४३२
अहो कुंज बन लता ४३२
अहो खींच कै खड्ग की ५९
अहो जिनकों बिधि सब जीवसों १८१
अहो झुक्यो न जिनको मान ते १८१
अहो तुम सोच करो मति प्यारी १२
अहो यह भ्रम उपजत कित आय ६०५
अहो यह शरद शंभु ह्वै आई १८१
आइ चारहू सिंधु के १८२
आओ प्यारे प्रान हमारे बैठो ६९५
आओ मेरे झूठन के सिरताज ४३७
आओ मेरे मोहन प्यारे झूठे ४३७
आओ सावित्री के जीवन ७०६
आके पिंजड़े में फँसा ३३६
आगे खस अरु मगध चले २०९
आज अनंद भयो अति ही ३९
आज यह फतह का दर्बार ५४२
आज अति मोहि अनंद भयो २१
आपु आवती लक्ष्मी ११६
आयो आयो वसंत ५७५
आरंभ पहिले सोचि रचना १८९
आश्रम बिनसे और पैं २२०
आसन कित जित ही रमे ४५८
इंद्र काल हू सरिस जो ३०१
इंद्र नीलमनि पैंजनी ३८७
इकले शिव रिपुपुर दह्यो ११५
इनको ऊँचो सीस है १९८
इत लाखन कुरु सँग लरत १११

विभ्रमलेखा—कर्पूरमंजरी
विभ्रमसेना— ,,
विमला—विद्या सुदर
विराट—धनंजयविजय
विराधगुप्त—मुद्राराक्षस
विलासिनी—चंद्रावली
विशाखा— ,,
विष्णुगुप्त—मुद्राराक्षस.
विष्णुशर्मा—नीलदेवी
विश्वामित्र—सत्यहरिश्चंद्र
वीरसिंह—विद्यासुन्दर
वैहीनर—मुद्राराक्षस
शकटदास— ,,
शशिप्रभा—कर्पूरमंजरी
शांति—पाखंडविडम्बन
शारंगरव—मुद्राराक्षस
शिखरसेन— ,,
शुकदेव—चंद्रावली
शैव्या——सत्यहरिश्चन्द्र
शैलाक्ष—दुर्लभबंधु
शोणोत्तरा—मुद्राराक्षस
श्यामला—चंद्रावली
श्रद्धा—पाखंडविडंबन
संध्या—चद्रावली
सत्यवान्—सतीप्रताप
सत्यानाश—भारतदुर्दशा
सरल—दुर्लभबंधु
सलारन— ,,
सलोने— ,,
सारंगिका—कर्पूरमंजरी
सावित्री—सतीप्रताप
सिंधुसेन—मुद्राराक्षस
सिंहनाद— ,,
सिद्धार्थक— ,,
सुंदरी—विद्यासुंदर
सुधाकर—प्रेमयोगिनी
सुरबाला—सती प्रताप
सुलोचना—विद्यासुन्दर
सूरजदेव—नीलदेवी
सोमदेव— ,,
स्तनकलश—मुद्राराक्षस
हरजनवा—सत्यहरिश्चंद्र
हरिश्चंद्र— ,,
हिंगुराज—मुद्राराक्षस
हीरा मालिन—विद्यासुन्दर

—:०:—

किन गजपति मर्दन प्रबल २३०
किन जिन बसननि मैं धरी २३०
कुंतल नृप कन्या मिली ४०८
कुच नितम्ब के भार सों ३९९
कूजत कहुँ कल हंस ४५६
कूर सदा भाखत पियहि १७५
कूल मैं छाइ रहे हैं सिवार ५३
केवल है यह सोक १६९
केहि पाप सों पापी न प्रान चलैं ४३६
कै तेहि रोग असाध्य भयो २२३
कै पिय पद उपमान जानि ४५५
कैसे करिहैं मित्र पैं २३३
कोइ एक जोगिन रूप कियैं ? ४५३
कोउ नहिं उत्तर देत भए सब ४३८
कोइ नहिं पकरत मेरो हाथ ४७१
कोकिल बायस एक सम ६६६
को हित अनहित तासु को २०३
कौन है सीस पै चन्द्रकला १३५
क्यों फकीर बन आया रे ६८१
क्यों बोलत नहिं मुख माय बचन ५०२
क्यों माता मुख मलिन होय ५०१
क्यों उपज्यौ नरलोक ६९१
खंजन-मद गंजन करन ३९७
खल गगन सों सज्जन दुखी ३१८
खींचि खड्ग कर पतँग सम २१६
खींच्यो कृष्ण केस जो ११६
खुली सिवाहूँ बाँधिवे १८७
खुल्यो द्वार कल्यान को ३०४
गंगा सुत के बधि तुरग ११३
गज जूथ सोई घन घटा ११०
गजरथ बाजि सजे नहीं १७६
गयो जगत रमनी-गरब ३९०
गरजि-गरजि गंभीर रव १९८
गरजि गरजि जिन छिन मैं ११३
गर बर आई आजू मेरी ५८४
गाइहौं मलारै औ जनाइहौं ३९०
गाओं सब मिलि प्रेम बधाई ६०७
गाओ सब मिलि प्रेम बधाई ६९६
गुन नीति बल सों जीति १५९
गुन पै रिझवति दोस सों २०६
गुरु आयसु छल सों कलह १८८
गेंदा फूले जैसे पकौरि ३७५
गोपिन की सरि कोऊ नाहीं ४१८
गोरक्षन रिपु मान बध १०३
गोरे कर कारी चुरी ३८७
गोरे तन कुंकुम सुरंग ३८७
गोरो सो रङ्ग उमंग भर्‌यो चित ३९१
घिरी स्वान अरु गीध सों १८७
चंद उदय लखि कै मदन ४००
चंद्रगुप्त चाणक्य सों २१६
चंद टरै सूरज टरै २६६, २७६, ४१४
चंद्रगुप्त निज तेज बल १७३
चंद्र बिंब पूरन भए १३७
चंद्रवंश को प्रथम कलह १०६
चढ़ावत मोपै काम कमान १२
चढ़ौ लै सरैं धाइ घेरौ अटाकों १६४
चने जोर गरम ६६१
चपल चवँर चहुँ ओर चलहिं १०५
चपला की चमक चहूँघा सों लगाई ३०१
चलहु वीर उठि तुरत ५३९
चलै मेरु बरु प्रलय जल ३०५
चाणक्य को अधिकार छूट्यौ १९७
चाणक्य ने लै जदपि बाँधी १५९

इतहि देव अभ्यास हित २२१
इन दुखियान कों न सुख सपनेहू ४३०
इन दुष्ट वैरिन सों दुखी १६१
इस राजपूत से रहो हुशियार ५२२
उड़िकै तियगन गंड जुगल २१६
उतै भँवर को शब्द इत १९८
उन्नत चित ह्वै आर्य परस्पर ४०८
उपजा ईश्वर कोप से ४७३
उपजैं अच्छे खेत में १३६
उलटे तेहू बनत है १४५
ऋण छूट्यौ पूज्यो वचन २९३
एक गुनी तिथि होत है १९९
एक पितामह छोड़िकै ११४
एक रथी इक ओर १०८
एकाकी मद गलित गज १५७
एकै ध्यान एकै ज्ञान एकै मन ६८७
एहि असार संसार में ७२
एहि बिधि सो भूपति करी ३८८
और देव को काम नहिं १४५
औरन तजि तासों चुनत ६०७
और भजाई सैन सब ११३
कंचन वेदी बैठि बड़ोपन १०७
कटे कुंड सुंडन के रुण्ड मै लगाय नित ११०
कठिन संस्कृत अति मधुर ३७२
कन्या जो विष की गई १६८
कबहुँ होत सतचंद ४५५
कमल कुमोदिनि सरन में १७६
कमलनाल विष जालसम ३९८
करत अलिंगन ही अहो ३९३
करन, गहौ धनु वेगि १०६
करन फूल जुग करन में ३८८
कर पै धारि कपोल निज २१०
कर बलय उर ताड़त गिरे १९१
करि कुलीन के बहुत ब्याह ४७५
करिकै पथ्य-विरोध इक २२७
करि मूरख मित्र मिताई २३७
करिवर मद धारा तिया १०५
करि विचार देखहु जिय माँही ३१२
करी बसन बिनु द्रौपदी ११५
कवि मुनि के सब सिसुन कों १०२
कहँ गए विक्रम, भोजराज ५०९
कहाँ करुनानिधि केसव सोए ५३६
कहाँ चली सजि कै पियारे सों ४३२
कहाँ तुम्हारो देस है ? ४५८
कहाँ अभूषन, कह बसन ३९७
कहुँ परे गोमय शुष्क कहुँ सिल १७८
कहूँ गुप्त अति ही रहत २०२
कहूँ तीर पर कमल अमल ४५४
कहूँ बालुका बिमल ४५६
कहूँ विरल कहुँ सघन २०२
कहै को चन्द बदन की शोभा ११
कहो वह कैसे बरनैं रूप ८
का जग में कुलवन्त नृप १६०
काजर भीनी काम-निधि ३९४
कादर जेहि लखि कै डरत २९६
काम कछू नहिं यासों हमैं ४३७
कारज उलटो होत है १८९
कारन अकारन सोचि फैली १८९
कालकेय बधि कै १०८
कालसर्पिणी नन्द-कुल १४२
कांव्य, सुरस सिंगार ४१०
का सेसहि नहिं भार पै १६८
कितकों डरिगौ वह प्यार सबै ४२९

जामैं रस कछु होत है ३७२
जावो अभी दखिनी मसान २९३
जाहिं तपोवन, पै न मन २१६
जाहि तहाँ थिर ह्वै रही २२०
जाहि बिलोकौ बनै सोइ सिद्ध ६३
जिअ-रंजन-खंजन दृगनि ३८८
जिन कलि मैं हू मित्र हित २३९
जिनके हितकारक पंडित हैं २३६
जिन जनन ने अति सोच सों १४३
जिन तोपै विश्वास करि २०५
जिन तृन सम किय जानि जिय ३२१
जिन निवात-कवचन बध्यौ १०३
जिन श्री गिरिधरदास कवि ४१४
जिन हिडंब-अरि रिसि भरे १०७
जिमि इन तृन सम प्रान तजि १५६
जिमि कपूर के हंस सों ३८६
जिमि जे जनमे ते मरे २१०
जिमि नव ससि कहँ सब लखत २२१
जिमि नृप नंदहि मारि कै १७७
जिमि यह उज्ज्वल रजत सुहायो ३२२
जिमि हम नृप अपमान सों १७७
जिय सूधी चितौन की साधै रही ४२८
जुग तूँबन की बीन परम ४१७
जेहि छिन बल मारे हे ४९४
जेहि पाली इक्ष्वाकु सों २७७
जे बात कछु जिय धारि भागे १५७
जेहि सहसन परिचारिका ३०७
जै जै कलियुग-राज की ४८३
जै पूरब दिसि कामिनि-कंत ३७३
जो अजोग करते न हम ११६
जो औषध खोजत रहे १०३
जोग लियो केहि कारनै ४५८
जोगिन-आँखन प्रेम-खुमारी ४५४
जोगिन प्रेम की आई ४५३
जोगिन मुख पर लट लटकाई ४५४
जोगिन रूप-सुधा की प्यासी ४६०
जो गुन नृप हरिचंद मैं २६१
जो दूजे को हित करै १७५
जो नृप बालक सों रहत १९७
जो पै ऐसिहि करन रही ४३३
जो बन मैं सरितान के तीर ५३
जो बिधि चन्दहि राहु बनायो २५
जो विषमयी नृप चंद्र-वध हित १६४
जो मो कहँ आनँद भयो ११४
जोर किया जोर किया जोर किया रे ८२
जौ न करौ परनाम दै ५५
जौ लखि छवि ऊपरी भुलाते ६०८
जौ बिधना अनुकूल तौ ४७
झूलत पाट की डोरी गहे ३९१
झूलनि मैं किंकिनि बजन ३९०
टूट टाट घर टपकत ३००
टूटि गई दोउ भौंह स्वेद सों १११
डरति सूर सों भीरु कहँ १७५
डाँड़ी फेरन के समय १८६
तंत्र युक्ति सब जानहीं १५८
तजि कै निज पति भुवनपति २२०
तजौ मोहि काके ऊपर नाथ ५३८
तजौ गरब अब चंद तुम ४०१
तन पीरो दिन चंद सम ३८६
तनहिं बेंचि दासी कहवाई ३१३
तरनि-तनूजा तट तमाल ४५४
तरु गन को सूख्यौ हियो २२१
तरुवर भे फल-हीन जिमि २२१

चातक को दुख दूर कियो पुनि	६९१	जन्मपन बिधि मिले	४७५
चारहु आश्रम बर्न बसैं मनि	२८१	जब वन में गंधर्व-गानन	१०९
चारु चमेली बन रंही	१७६	जब लौं बछरा करुना करि	१०४
चाहत हे नृपगन सबै	२२१	जब लौं बिगारै काज नहिं	१७५
चिताभस्म सब अंग लगाए	३०१	जब लौं रहै सुख राज को	१४४
चूड़ी पहिरन सों गयो	१०९	जब सूरज उदयो प्रबल	२००
चूरन अमलबेद का भारी	६६२	जब सों देखी मृगनयनि	३८७
चोटी गुथि पाटी सरस	३८८	जम की सब त्रास	२८२
छन छन मैं बिगरत बनत	५५	जय केशव करुणा-कन्दा	६९२
छरी सी छकी सी जड़ भई सी	४५७	जय जय जगदीशराम	२३६
छलियन सों रहो सावधान	२३७	जय जय श्री रुकमिन महरानी	६७९
छिपाये छिपत न नैन लगे	४२२	जय सतजुग थापन करन	४६९
छूटि गए सब शस्त्र तबौं	१०५	जय जय सावित्री महरानी	७०८
छोड़ि मांस-भख मरन भय	२२७	जयति आर्य चाणक्य की	२१७
छोड़ि सबै घरबारकौं	५७	जलद नील तन जयति जय	२१७
छोड़ौ सब गज तुरग	२३५	जहँ द्वै जन की होड़	६०८
जग ज़ानत कौन है प्रेम बिथा	४२७	जहँ नृपगन संकित रहे	२२१
जग जिन तृन सम करि तज्यो	४१४	जहँ लौं हिमालय के सिखर	१८०
जगत-पिता जग जीवन जागो	५०१	जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं	६७५
जगत सब मानत मेरी आन	४७८	जहाँ पिय तहीं सबै सुखसाज	२१
जग में घर की फूट बुरी	२३६	जहाँ बिसेसर सोमनाथ माधव	५०७
जग में तेई चतुर कहावैं	२३७	जस कुल तजि अपमान सहि	२०३
जग में पतिव्रत सम नहिं आन	६७९	जाओ जाओ काहे आओ	५४४
ज़ग में पतिव्रत सम नहिं आन	७०४	जाइ तहाँ थिर ह्वै रही	२२०
जग सूरज चंद टरैं तो टरैं	२३८	जाकी आयसु जग नृपति	३०७
जदपि आपु जीती पुरी	१८६	जाके जिय में तूल सों	१०२
जदपि इतै जीबन नवल	३९४	जाको अति निर्मल चरित	२३०
जदपि उतै रूपादि गुन	३९४	जागो जागो रे भाई	४९१
ज़दपि उदित कुमुदन सहित	१९३	जाति अनेकन करी	४७५
ज़दपि चरित कुरुनाथ के	१०३	जाति दास चंडाल की	२९४
जदपि होत सुंदर कमल	१४६	जा धन के हित नारि तजैं	२२४
जदपि स्वामिहिं के हित कारन	४८	जाबाली, जैमिनि, गरग	५०९

धनिक वधू जो छवि लहत ३९८
धनुर्वेद को सार जिन १०७
धन्य वे लोग जो मांस खाते ७२
धवल करत चारहु दिसा ३७२
धाइकै आगे मिलीं पहिले तुम ४२९
धारन दीजिए धीर हिये ४३५
धिक है वह देह और गेह सखी ३४
धूर धूसरित अलक सब ११५
नंद गए हू नहिं तजत १७१
नंद नसे सों निरुज ह्वै १८७
नंद मरे सैलेइवरहि २२०
नंद वंश को जानि कै २०३
नंद नेह छूट्यौ नहीं २३३
नमो नमो अर्हंत को २०१
नरनारी डोलत न कहुँ १७६
नव उज्ज्वल जलधार हार २८२
नव द्वाराँ रो देह घर ५५
नव नंदन को मूल सहित १४३
नवल वन फूली द्रम बेली ३७९
नव ससि उदय होइ सुखदायक ३५९
नसत स्वामि-कुल जिन लख्यौ २२९
नसे विपुल नृप वुल सरिस २२१
नहिं जल थल पाताल में ६४
नहिं शस्त्र को यह काल २२६
नाक बोलावत, धनु किए ११४
नारि सम जग में नहिं सुखमूल ६९६
निज कर सों बाँधन लगी ३८७
निज कलंक हम पै धर्यौ १६९
निज कुल गुरु तुव पुत्र ११२
निज तुच्छ सुख के हेतु तजि १६०
निज प्रभु सों करि नेह जे २१५
निज स्वारथ को धरम दूर ९५
नित सीस के काटे लहू सों भरे ५८
निरभर बालक राजकवि ३७२
निहचै भारत को अब नास ४८४
नीके निरखि निहारि नैन भरि ४६५
नूपुर बाजत पद कमल ३९४
नृप द्विजादि जिन नरन को १९०
नृप नंद काम समान चातक १६०
नृप नंद जीवत नीति बल सों १५४
नृप रूठे अचरज कहा १९४
नृप सों सचिव सों सब १७८
नेति नेति तत् शब्द ४१३
नैन कहैं गुरु मन दियो ४५८
नैन लाल कुसुम पलास से ६८६
नैना वह छवि नाहिंन भूले ४२४
पचि मरत वृथा सब लोग ४५९
पति-सम जग में नहिं कोउ देव ६९६
परत चंद्र प्रतिबिंब कहुँ ४५५
परतिय जिन कबहुँ न लखी १०८
परतिय परधन देखि न ३६८
परतिय-रत रावन बध्यो ३५७
पर नारी पैनी छुरी ३५७
परमारथ स्वारथ दोऊ ४६६
परम प्रेम-निधि रसिक वर ४१४
पल पटुली पैं डोर प्रेम की ४५२
पवन लगि डोलत बन की पतिया ६८२
पहिराई मनि-किंकिनी ३८७
पहिले कटु परिणाम मधु १९८
पहिले मुसुकाइ लजाइ कछू ४२८
पाइ स्वामि सत्पात्र जो २३२
पाद-प्रहार सों जाइ पाताल न १३५
पिंग जटा को भार सीस पै ४१७
पिकदानो चपरगट्टू है बस ५२६

ता पूजा के पात्र कों	२३०	दान देन में समर मैं	१०१
तासों कलबल करि बहुत	१८६	दिसाबधू चंदन तिलक	४००
ताही कुल में प्रगट भे	१०२	दिसि सरिस रिपु रमनी	१४३
ताही सों ताहि नहिं बध्यौ	११४	दुखी जानि निज मित्र कहँ	२२१
तिनके सुत सब गुन भरे	१०२	दुनियाँ में हाथ पैर हिलाना नहीं	
तिनको न कछू कबहूँ बिगरै	२३७	अच्छा	४८०
तिन पैं जेहि छिन चंद जोति	४५५	दुराचार मैं अति लपटाई	५५
तिमि चाणक्यहु पाइ दुख	१९५	दुष्ट मनोरथ सरिस	११२
तिमि सुन्दरि सदेह यह	६०८	दूजे के हित प्रान दै	१५६
तिमि सोऊ नृप चंद्र को	१७७	दूजे ही को हित करै	१७५
तिमि सोऊ मोहि नीति बल	१७७	दूध सुरा दधि हू सुरा	४८२
तिष्ठ तिष्ठ क्षणमद्य हम	८६	दूर परे ते तरु सबै	२००
तीछन परसु-प्रहार सों	२२१	दूर रहौ कुरुनाथ नाहिं	१०९
तुझ पर काल अचानक टूटैगा	७०५	दृग काजर लहि हृदय वह	३८८
तुम कछु नहिं चाणक्य जो	१७७	दृग युग अलसाने कंज से नील	
तुम जानौ चाणक्य सों	१८८	सोहैं	६०
तुम बिन तासु उसास गुरु	३८६	देख सखी देख अनमेख ऐसो यह	४३६
तुम मेरे बहुत जतन के प्यारे	६९८	देखहु लहि रितुराजहि उपवन	३७३
तुमरे आछत बहुरि गुरु	२३२	देखा देखी प्रजहु सब	२२०
तुम सों हारि बिगारि सब	२२९	देखि घन श्याम घन श्याम	
तुम्हरे तुम्हरे सब कोऊ कहैं	४२९	की सुरति करि	४५२
तुव सरूप जाने बिना	११६	देखी तुमरी कासी लोगो	३३३
तुव सुत-रथ-हय-खुर बढ़ी	१०९	देखो बीत चल्यौ दिन प्यारे	३८३
तुव सुत-सर सहि मदगलित	११०	देखो मेरी नई जोगिनियाँ	
तू केहि चितवति चकित मृगीसी	४६२	आई हो	६८८
ते गुणग्राहक नृप सबै	२१५	देवनंद को नहिं सह्यो	१९५
तुव मुख चंद चकोर ये नैना	६९८	देश काल के कलश में	२०१
तेहि हम जौ कछु टारहीं	१८२	दैव भए अनुकूल तें	११४
तोरि गदा सों हृदय	११६	दोऊ सचिव विरोध सों	१५९
तोरे आँख में चरबी छाई	३३३	द्विज सोहत विद्या पढ़े	११५
दच्छिन खुर महि मरदि हय	१०४	धन कुल की मरजाद कछु	३९८
दहन नंदकुल बन सहज	१४२	धन धन भारत की छत्रानी	५२०

बिरचि नली गज सुंड की १११
बिरह अनल दहकत नित छाती ३८६
बेंचि देह दारा सुअन २७८,२८४,२९४
बोल रे बोल कापालिका तू अरे ५८
बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम ७०७
बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम ६९३
ब्रांडी को अरु ब्रह्म को ८५
ब्रह्म जीव, निरगुन सगुन ४१७
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु ८६
ब्राह्मण सब छिपि २ पियत ८६
भई यह साँझ सबन सुखदाई ३८३
भरित नेह नव नीर१३५,३२१,३७१,४१३
भरी वीर रस सों कहत १०८
भारत के भुजबल जग रचिछत ४९१
भारत जननी मुख क्यों उदास ५०२
भारत में मची है होरी ५०३
भीख असन कंबल बसन २९३
भूखे पेट कोई नहीं सुतता ऐसी है ई कासी ३३२
भूलति ना वह झूलनि बाल की ३९१
भूषणप्रिय ! भूषण सबै २१४
भेद न कछु जामैं खुलै १९३
भोर भयो लखि काम-मातु १०१
मौंरा रे बौरान्यो लखि बौर ६८२
मंद मंद लै सिरिस सुगधहि ३७३
मछरिया एक टकै कै बिकाय ६६३
मदन दहन दहकत हिए ३८९
मद पी बिधि जग को करत ८६
मदवा पीले पागल जोबन बीत्यौ जात ४८३
मदिरा को तो अंत अरु ८६
मदिरा ही के पान हित ८५
मन की कासों पीर सुनाऊँ ४६३
मन भावनि भई साँझ सुहाई ३९४
मनमोहन तें बिछुरी जब सों ४२४
मनमोहन प्यारे तेरे लिए ४६०
मनहु अचानक रुद्र दृग १८७
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत ४५५
मनु तीरथ-मय कृष्ण चरित ४१७
मम देखे बिन न्हाय नहिं ५३
मम भागुरायन आदि भृत्यन १७७
मम लेख नहिं यह किमि कहैं २१४
मरनो भलो विदेशको २९५
मरम की पीर न जानत कोय ४२८
मरे स्वामिहू नहिं तज्यौ २२०
मलय-पवन तापत तनहिं ३८७
मलिन मुख भारत माता तेरो ५०५
मिटत ताप नहिं पान सों २१७
मिट्यौ सकल भ्रम भीति नसानी ६०७
मित्र परोच्छहुँ मैं कियो २२५
मित्र शत्रु ह्वै जात हैं २०५
मिलि कै शत्रुन सों करन २१३
मिलि बछरन सों धेनु सब ११५
मुद्रा ताके हाथ में २१३
मूरख कातर स्वामिभक्त १४४
मूरख स्वामी लहि गिरैं २३२
मेरे तन अति बाढ़ी बिरह पीर १२
मेरे बिनु अब जीति दल २२२
मेलि गरे मृदु बेलि सी बाँहन ३४
मैत्री राक्षस सों भई २३४
मोहिं न धन को सोच ६९१
मोहे परिजन रीति सों १८६
यमदूत हैं हम भूत हैं ७०२

पियत भट्ट के ठट्ट अरु ८६
पिय तुम और कहूँ जिन जाहु ४६४
पिय तोहि कैसे बस करि राखौं ४६४
पिय तोहि कैसे हिये राखौं छिपाय ४६३
पिय तोहि राखोंगी भुजन में बाँधि ४६३
पीरो तन परयौ फूली सरसों सरस ६८६
पीले अवधू के मतवाले प्याला ८७
पीसत कोऊ सुगंध कोऊ १३७
पुत्र दार की याद करि २१३
पुरुष जनन के मोहन को यह ३५८
पुरुष जनन के मोहन को विधि ३५८
पूरी अमी की कटोरिया सी २३८
पृथ्वीराज जैचंद कन्ह करि ५०७
पै जिनको तृष्णा नहीं १७८
प्यारो बिन कटत न कारी रैन ५२८
प्यारे कितै गई सो प्रीति ५३८
प्यारे क्यौं सुधि हाय बिसारी ५३८
प्रगटहु रवि-कुल-रवि निसि बीती २७२
प्रथम चित्रवर्मा कुलूत को १५०
प्रारंभ ही नहिं विघ्न के भय १६८
प्रिया दूर घन गरजहीं १५४
प्रीति की रीति ही अति न्यारी ६९८
प्रेम में निसि दिन बसत मुरारी ६९६
प्रेमहि जग को जीवन प्रान ६९६
फर फर फरकत अधर पुट १८७
फूलन लागे राम बन नवल गुलबवा ६८२
फूली फूलबेली सी नवेली अलबेली बधू ३९०
फूलेंगे पलास बन आगिसी ३७६
फेरत धनु टंकारि दरप १०५
बड़े बड़े मुक्तान सों ३८८
बचन रचत तजि और के ६०६
बनबन धावत सदा धूर १०५
बनी मन मोहिनी जोगिनियाँ ४९३
बरुनी बघंबर मैं ६८६
बरु रन मैं मरनो भलो ११५
बरु सूरज पच्छिम उगे ३०२
बल कला कौशल अमित विद्या ५१४
बलि साँवरि सूरति मोहिनी मूरत ४३४
बसन चाँदनी, चंद मुख १७६
बस बस रसना रोको ऐसी मति भाखो ६८९
बसिए ऐसे देस नहिं ६६६
बसैं बिन्दुमाधव बिसेसरादि २८१
बहु दिन श्रम करि नंद नृप १७४
बहु दुख सहि बनबास करि १०८
बहु दुख सों सोचत सदा २३१
बहु देवी देवता ४७५
बहु फूल की माल लपेट १७४
बहु बकरा बलि हित कटैं ६९
बहु बार बारबधून के सँग ६२
बहुरि उढ़ाई ओढ़नी ३८८
बातहु सों झगरैं बली १०८
बार अनेकन रंडन कों हम ६०
बारबधू जन को अहै १६०
बाला के जुग कान मैं ३८८
बावरी प्रीति करौ मति कोय १६
बिगरयौ तौन प्रबंधहू २२०
बिछुरे पिय के जग सूनो भयो ४३०
बिदेसिया ने प्रीति की रीति न जानी ६८१
बिन गुनहूँ के नृपन कों १७८
बिनु भक्ति भूले बिनहि स्वारथ १५९
बिनु भूषन ही सोहही ३८८

शंख कपाल लिये कर मैं	७८	समर साध तन पुलकित नित	२२५
शत्रु जीति निज मित्र को	११४	सरद बिमल ऋतु सोहही	१७५
शत्रु सुजोधन सों लही	११७	ससि अति सुन्दर ताहि कहुँ	४००
शरद देखि सब जग भयो	१०२	ससि सम मुख दृग कुमुद से	३९२
शिव तोषन खांडव दहन	१०५	सहत विविध दुख मरि मिटत	३०२
श्री रघुनाथ की प्रानपिया	५४	साँझ सोई पट लाल कसे	२९८
श्रीहर्ष सों अति निपुन कवि	४६	सागर जिमि बहु रत्नमय	२३१
षट्गुन सुदृढ़ गुथी मुख फाँसी	२२०	सागर परम गंभीर नँध्यौ	१०६
संख पटह धुनि सों मिल्यौ	२२२	सात चरनहू सँग चले	११६
सकट बच्यौ जो ता कहे	२२६	सावधान सब लोग रहहु	५२४
सकल कुसुम रस पान करि	१६२	सिर दै कस्तूरी तिलक	४००
सखि औरहु राजकुमार बहुत	६८९	सिर पै बाँकी जटा	१०७
सखि बाले जोबन महा कठिन	६८८	सिर पै बैठ्यो काग	२९५
सखि यही जगत की चाल	६८९	सीस कटे भट सोहहीं	१११
सखी ये नैना बहुत बुरे	४२३	सीस सोन सिंदूर सों	१९८
सखोरी क्यों सुधि मोहिं दिवाई	४५६	सुनि चित धरि यह बात	७२
सखी हम कहा करैं कित जायँ	१५	सुन्यो मित्र, श्रुति भेद-कर	२०५
सचिव दोष सों होत हैं	१८८	सुर-मुनि-विद्याधर की नारी	६३
सचिवहु भे उत दास ही	२१४	सूँड फिरावत सीकरन	११३
सजी हरित सारी सरस	३८७	सूरज धूम बिना की चिता	२९८
सत्य प्रतिज्ञा करन कों	१०२	सूरज बाँधू चंदर बाँधू	३७९
सत्यासक्त दयाल द्विज	२५९	सेत सेत सब एक से	६६५
सदा दंति के कुंभ को	१४२	सेवक प्रभु सों डरत सदा हीं	२१०
सब कुरान को अनय	१०७	सोओ सुख निदिया प्यारे ललन	५२७
सब कों सुखदाई अति मन भाई	१०१	सोई मुख जेहि चंद बखान्यौ	२९६
सब भाँति दैव प्रतिकूल	५३१	सोई मुख सोई उदर	२९५
सब मिलि गाओ प्रेम बधाई	५२०	सोई राक्षस शत्रु सों	२२०
सब सज्जन के मान को	२६०	सो कोलाहल सुनत ही	६०८
सबहि भाँति अधिकार लहि	१९५	सो नृप नंदहि पुत्र सह	१७७
सब ही द्वेष बढ़न सों करहीं	२१०	सो मम भ्रम तुम करि दया	६०८
सभा माँहि लखि द्रौपदिहिं	११४	सोवहिं धनुष उतारि हम	२३२
समर विलोकन कों जुरे	१०८	सो हम तुमही कहँ छलन	१८८

यह पवित्र भव-भय-हरण ६१
यहाँ सत्य भय एक के २६१
याके राज बीच कहूँ विग्रह ४८
या मल रूपी देह माँ ५५
याही भुव महँ होत है ४९४
याही मेरे अंक में ५०९
याही मेरे अंक में मनु ५०९
ये कृष्ण बरन जब मधुर तान ४९४
ये दुखियाँ सदा रोयो करैं ४३५
रँगे गंड सिंदूर सों ११३
रन-भूषन भूषित सुतन १०४
रचि कै मत वेदांत को ४७५
रचित प्रभा सी भासी २८१
रचि बहु विधि के वाक्य ४७५
रति धर जन चित बसत ४८
रन मरि पितु ढिग जात हम १९१
रहत लगामहिं कसे अश्व की २३३
रहत साध्य तें अन्वित अरु २०९
रहसि रहसि हसि हँसि कै
हिंडोरे चढ़ीं ३९०
राजकाज मंत्री चतुर १७७
राजवर्ग मद छोड़ि निपुन ११७
राजा राजकुमार मिलि ८६
राम भजो, राम भजो, राम भजो ६५९
रामरस पीओ रे भाई, जो पीये ८२
रावन ने दस सिर दिये ३५७
री गुनवारी सब उपाय की १३७
रुरुआ चहुँ दिसी रत २९८
रैन सँजोगिन कों सुखदाई ४००
रोअहु सब मिलि कै आवहु ४६९
रोकि विलायत गमन ४७५
लक्ष्मी करत निवास अति १९७
लखत चरन की ओर हू २१०
लखो सखि भूतल चंद खस्यो ६८३
लखौ किन भारतवासिन की गति ५०६
लगन होत है शुभ लगन १९९
लगौंही चितवनि औरहि होति ४२३
लपटि दपटि चहुँ दिसन ११२
लहने को मिला घल छुंदलछा ५६
लह्यो बाहु-बल जीति कै १०३
लही बधू सुत-हित भयो ११७
लहौ सुख सब विधि भारतवासी २३८
लाल कंचुकी मैं उगे ३८७
लीकहु नहिं लखि परत १०४
लै बाम बाहु लताहि राखत १६३
लोक धरषि चंद्रहि कियो १७८
लोभ पाप को मूल है ६६०
वरु रन मैं मरनो भलो ११५
वसुधे ! तुम बहु सुख कियो २७७
वह दुख चंदनदास को २३१
वह सूली गड़ी जो बड़ी दृढ़ कै १७०
वहै मनोरथ फल सुफल १०३
वा चकई को भयो चित चीतो ३०७
विषकन्या दै पितु हत्यौ २१५
विष वृक्ष अहि-सुत सिंह-पोत १६०
विष्णु वारुनी पोर्ट पुरु ८६
वीर सिंह महराज को २
वृत्ति अयाचित आत्मरति ३०२
वे सब भद्रमटादि वह २३१
वेद वेद सबही कहैं ८४
वैष्णव लोग कहावहीं ८६
व्याकुल तुव सुत बान सों ११३
व्रज की लता पता मोहिं कीजै ४१८

सौगंधिक तोऱ्यो छनक ११६
स्वामि पुत्र तुव मौर्य २१४
स्वामि-पुत्र मम मौर्य २१४
स्रवत गण्डमद गरब गज २१८
स्रवन सुखद भव भय-हरन ४१४
हम खोवैं इक महत नर १८६
हम चौधरी डोम सरदार २९२
हम प्रतच्छ हरि रूप जगत ३०२
हम प्रतच्छ हरि रूप २९१
हम बनवासी हो रामा ६९५
हम भेद न जानिहैं जो पै कछू ४२२
हम सम जग में नहिं कोउ आन ६९९
हम सौंहू तजि जात नहिं ४१५
हमारा नाम है सत्यानास ४७४
हय-खुर-रज सों नभ छयो १०५
हय हिनहिनात अनेक गज ११०
हर सिच्छित सर रीति जिन ११०
हरि उपासना, भक्ति ४१०
हरिभक्ति सबै कछु सिद्ध करै ६४
हरिहर आदिक देवगनन को
बाँधि मँगाऊँ ५९
हरौ हरि-नैन तुम्हारी बाधा १८१
हरौ हरि-रूप सबै जग बाधा २३८
हाँ गरवा लगावै गिरधारी हो ५४५
हाँ मोसे सेजिया चढ़ल नहिं
जाई हो ५४३
हाड़ की कंठ में चारु माला धरे ५८
हाड़ माँस लाला रकत २९६
हाय सुख देख सकत नहिं नेक ७००
हार धार तरवार से ३८७
हिलन भुजा सिर ससि चमक १११
हीन नंद सों रहित नृप १७९
हूलति हिये में प्रानप्यारे के
विरह-सूल ४४६
हे कोकिल कुल स्याम ४३८
हे पपिहा तुम पिउ पिउ ४३८
हे सारस तुम नीके ४३८
है जब तक मेरे दम में दम ६५३
है जितनो बड़ो देह को पिंडक ५८
है न कछू बिन भोग के या जग ६०
हैं भूत प्रेत हम २९९
हैं जहँ झुण्ड खड़े गज मेघ के १६४
होइ विफल उद्योग मैं २२०
होटल में मदिरा पियैं ८६
होत सखि ये उलझौहैं नैन ४२४
होनहार जाको उदय २३२
हौं तो याही सोच मैं ४२५
ह्वै बिनु काम लजाय करि २३२